Agrawal Publications
"Igniting Minds"

महाराजा सुहेल देव राज्य विश्वविद्यालय, आजमगढ़

विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व

School Management and Leadership

(Semester – 2)

Paper Code – 202


AL-2
S-3
- एस. पी. सुखिया
4977
371.1
SUKHIYA
धारित आपके विश्वविद्यालय के नवीनतम् पाठ्यक्रमानुसार

विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व

[SCHOOL MANAGEMENT AND LEADERSHIP]

(महाराजा सुहेल देव राज्य विश्वविद्यालय, आजमगढ़ के दो वर्षीय बी. एड. के नवीनतम् पाठ्यक्रमानुसार)

सेमेस्टर – द्वितीय

Paper Code – 202

SITARAM SHASTRI B.Ed. TRAINING COLLEGE
LIBRARY
4977

लेखक

एस. पी. सुखिया

एम. ए., टी. डिप. (लन्दन)

भूतपूर्व सदस्या, बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश

भूतपूर्व कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय

तथा

Book Name | विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व

Author | एस. पी. सुखिया

Edition | Latest

Price | ₹ 280

Published by | Agrawal Group Of Publications (AGP)
© All Rights reserved
ADDRESS (Head office) | 28/115 Jyoti Block, Sanjay Place, Agra, U.P. 282002

PRINTED BY | Schoolcart

DESKTOP PUBLISHING | Agrawal Group Of Publications (AGP)

ISBN | 978-93-5703-184-3

COPYRIGHT | Agrawal Group Of Publications (AGP)

महत्वपूर्ण सूचना

"आपके पुस्तक खरीदने से लेकर पुस्तक पूरा पढ़ने तक के सफर में हम आपके सारथी होंगे। इसीलिए हमने कुछ ऐसी सेवाएँ (नीचे दी गई) शुरू की हैं जिनकी मदद से हम आपकी सहायता कर पाएंगे।"

Whatsapp Helpline No. (पुस्तक में गलती सम्बन्धित जानकारी)

(हमारी पुस्तकों में किसी भी तरह की गलती पाए जाने पर हमारे **Whatsapp Helpline** नंबर पर संपर्क करें। हमारी Experts की Team आपको उससे सम्बन्धित सही जानकारी उपलब्ध कराएगी।)

Whatsapp number ☞ 8937099777

or

Scan Code

Join Telegram Group

Agrawal Publication ने **AGP Live** के नाम से एक नया Telegram Group शुरू किया है जिससे आपको **B.Ed., B.A., M.A., Diploma Education** एवं **M.Ed.** से सम्बन्धित विभिन्न जानकारी समय पर उपलब्ध करायी जायेगी।

Join us on Telegram: ☞ t.me/agplive

or

Scan Code

इस पुस्तक के प्रकाशक के बारे में कुछ जानकारी

यह पुस्तक Agrawal Publications द्वारा प्रकाशित है जो Agrawal Group Of Publications (प्रकाशन में 75 वर्ष पुराने प्रकाशन) की 4 कम्पनियों में से एक है।

AGRAWAL GROUP
OF PUBLICATIONS
4 कंपनियों का एक समूह (Group) है

Agrawal Publications

www.agrawalpublications.com

Agrawal Publications - Diploma (D.El.Ed.), Bachelor & Masters of Education (B.Ed. & M.Ed.) and Bachelor & Masters of Arts (B.A. & M.A.) पर सभी बड़े भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमानुसार पुस्तकें प्रकाशित करता है।

AGRAWAL EXAMCART

www.examcart.com

Agrawal Examcart - Teacher exam, Police, Railway, Civil Services, Defence, Bank and Polytechnic आदि कैट्स और सभी राज्यों से संबंधित परीक्षाओं के पाठ्यक्रमानुसार पुस्तकें प्रकाशित करता है।

EduCart

www.educart.co

EduCart - Pre-Nursery से 12 class तक CBSE, NEET एवं सभी राज्यों के Board के पाठ्यक्रमानुसार पुस्तकें प्रकाशित करता है।

SchoolCart

SchoolCart - एक आधुनिक प्रिंटिंग यूनिट है जो प्रिंट ऑन डिमांड बुक्स / कैटलॉग और ब्रोशर / प्रमोशन मैटेरियल पोस्टर्स और रेफरेंस बुक्स जैसे समाधान प्रदान करती है। प्रिंटिंग यूनिट मोनो और मल्टी-कलर शीटफेड, वेब ऑफसेट प्रिंटिंग, ऑटोमेटेड बाइंडिंग और अन्य उन्नत प्रौद्योगिकी मशीनों से सुसज्जित है।

पुस्तकों के लिए समृद्ध सामग्री कम मूल्य में प्रदान करना हमारा लक्ष्य है जो हमें पाठ्यपुस्तक प्रकाशन में बाजार में अग्रणी बनाता है। पूरे भारत वर्ष में हमारे लाखों पाठकों के सहयोग व प्रेम के साथ हम अपनी पुस्तकों में सर्वोत्तम गुणवत्ता और त्रुटि मुक्त सामग्री वितरित करना जारी रखने का वादा करते हैं।

हमारे उत्पादों और व्यवसाय संबंधी प्रश्नों के बारे में अधिक जानने के लिए,
कृपया **+ 91-9258088445** पर संपर्क करें।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा निर्धारित उद्देश्यों तथा परिवर्तित पाठ्यक्रम के आधार पर समेस्टर पद्धति के अनुसार बी.एड. छात्रों हेतु लिखी गई है। इस पुस्तक में विद्यालय प्रबन्ध एवं नेतृत्व की पूर्ण जानकारी समाहित की गई है।

"विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व" को एक संगठित और व्यवस्थित अनुशासन बनाना इसका उद्देश्य शैक्षिक प्रक्रिया से जुड़े प्रबन्धकों में नैतिक आचरण को बनाए रखना है। यह गतिविधियों के निष्पादन की कला है। यह एक ऐसी कला है जिसका स्वरूप सृजनात्मक होता है। उद्देश्य शिक्षा में व्यवस्थाओं को प्रभावी बनाना है। इसकी प्रकृति लोकतान्त्रिक है। इसमें अधीनस्थ सहयोगी के रूप में तथा स्वयं को न्यासी के रूप में अंगीकार किया गया है। स्वयं का अर्थ व्यक्तियों, शिक्षकों, अधिकारियों से है जो किसी व्यवस्था व प्रबन्धन के लिये विधिक रूप से बनाए गए है। यहाँ शैक्षिक प्रबन्धन में शैक्षिक संसाधनों का प्रबन्धन मानवीय संसाधनों का वित्तीय संसाधनों का प्रबन्धन तथा कुशल लोकतान्त्रिक विकासोन्मुख नेतृत्व प्रशासन है जिसे को करना है।

प्रस्तुत पुस्तक **"विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व"** भावी शिक्षकों एवं **बी एड** के छात्रों व्यावहारिक ज्ञान का सुगम व सरल बोध कराने हेतु एक प्रयास मात्र है। आशा है पुस्तक संस्करण बी एड छात्र-छात्राओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। पुस्तक की सामग्री को एन द्वारा प्रदत्त नवीनतम दिशा निर्देश पर आधारित नवीन पाठ्यक्रम के अनुरूप रखा गया पुस्तक अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। आप सभी सम्बन्धित महानुभावों के सुझ पुस्तक को और अधिक परिष्कृत करने के लिये अपेक्षित है।

SYLLABUS

School Management and Leadership

Unit-I : Introduction

- Meaning, Definition and Nature of Educational Administration.
- Objectives, Scope and Type of Educational Administration.
- Principles and Functions of Educational Administration.
- Theories of Educational Administration.
- School Management—Concept, Characteristics, Need, Scope and Problems
- Difference between Educational Administration and Management.

Unit-II : Functions of Educational Administration

- Recommendations of Indian Education Commission (1882), Secondary Education Commission (1952-53), Education Commission (1964), National Policy on Education (1986) Regarding Educational Administration and Management.
- School as an Organization.
- Educational Planning: Meaning, Nature, Objectives, Qualities, Principles and Types
- Educational Supervision: Meaning, Nature, Objectives, Types, Scope, Importance and Functions
- Decision Making; Characteristics, Type, Techniques and Methods.

Unit-III : Machinery of Educational Administration In India

- Central Administrative Machinery of Education and Its Role
- State Administrative Machinery of Education and Its Role
- Local Educational Administrative Structure and Its Functions
- Functions of UGC, NCERT, NUEPA, NCTE, SIEMAT and DIET

Unit-IV : School Management

- Qualities and Duties of Head of Institution as Manager and Administrator.
- Qualities and Duties of Teachers as Manager, Facilitator, Counselor and Community Leader.
- Classroom Management: Concept, Principles, Techniques and Factors Influencing it.

3. शैक्षिक प्रशासन : सिद्धान्त एवं कार्य 17-24
[Educational Administration : Principles and Functions]

3.1 शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त (Principles of Educational Administration)
3.2 शैक्षिक प्रशासन के कार्य (Functions of Educational Administrations)
• अभ्यास प्रश्न

4. शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त एवं शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन में अन्तर 25-36
[Theories of Educational Administration and Differences between Educational Administration and Management]

4.1 शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त (Theories of Educational Adminstration)
4.1.1 फेडरिक टेलर का सिद्धान्त (Theory of Fedrick Taylor's)
4.1.2 लूथर गुलिक का सिद्धान्त (Theory of Luther Gullick)
4.1.3 मानवीय सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Human Relations)
4.2 प्रबन्धन की अवधारणा (Concept of Management)
4.3 प्रबन्धन की विशेषताएँ (Characteristics of Management)
4.4 शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Educational Management)
4.5 शैक्षिक प्रबन्धन के आयाम (Dimensions of Educational Management)
4.6 शैक्षिक प्रबन्धन की आवश्यकता (Need of Educational Management)
4.7 शैक्षिक प्रबन्धन की विशेषताएँ (Characteristics of Educational Management)
4.8 शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principles of Educational Management)
4.9 शैक्षिक प्रशासन तथा प्रबन्धन मे अन्तर (Difference Between Educational Administration and Management
• अभ्यास प्रश्न

5. विद्यालय प्रबन्धन : अवधारणा, विशेषताएँ आवश्यकताएँ, क्षेत्र एवं समस्याएँ 37-51
[School Management : Concept, Characteristics, Need, Scope and Problems]

5.1 विद्यालय का अर्थ (Meaning of School)
5.2 विद्यालय की आवश्यकता (Need of School)
5.3 विद्यालय प्रबन्धन की अवधारणा एव अर्थ (Meaning and Concept of School Management)

5.4 विद्यालय प्रबन्धन की विशेषताएँ (Characteristics of School Management)
5.5 विद्यालय प्रबन्धन का स्वरूप (Nature of School Management)
5.6 विद्यालय प्रबन्धन के कार्य (Functions of School Management)
5.7 विद्यालय प्रबन्धन का क्षेत्र (Scope of School Management)
5.8 विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता (Need of School Management)
5.9 विद्यालय प्रबन्धन का महत्व (Importance of School Management)
5.10 विद्यालय प्रबन्धन की समस्याएँ (Problems of School Management)
• अभ्यास प्रश्न

Unit-II
शैक्षिक प्रशासन के कार्य
[Functions of Educational Administration]

6. भारतीय शिक्षा आयोग, 1882 [Indian Education Commission, 1882] 52-61

6.1 भारतीय शिक्षा आयोग के उद्देश्य (Aims of Indian Education Commission)
6.2 भारतीय शिक्षा आयोग के कार्य (Functions of Indian Education Commission)
6.3 हण्टर आयोग की सिफारिशें (Recommendations of Hunter Commission)
6.3.1 प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Primary Education)
6.3.2 माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Secondary Education)
6.3.3 उच्च शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Higher Education)
6.3.4 स्त्री शिक्षा पर संस्तुतियाँ (Recommendations on Woman Education)
6.3.5 मुस्लिम शिक्षा पर संस्तुतियाँ (Recommendations About on Muslim Education)
6.3.6 पिछड़े क्षेत्रों की शिक्षा पर सुझाव (Suggestions for Backward Areas)
6.3.7 धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions Related to Religious Education)
6.3.8 मिशनरियों से शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Related to Missionary Education)

6.4 भारतीय शिक्षा आयोग (1882) का मूल्याकन [Evaluation of Indian Education Commission (1882)]

6.5 भारतीय शिक्षा आयोग का भारतीय शिक्षा नीति पर प्रभाव (Impact of Hunter Commission on Indian Education Policy)

- अभ्यास प्रश्न

7. माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53 [Secondary Education Commission, 1952-53] 62-80

7.1 माध्यमिक शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ (Recommendations of Secondary Education Commission)

7.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) की संस्तुतियों का मूल्याकन (Evaluation of Recommendations of Secondary Education Commission)

7.3 आयोग की संस्तुतियों का माध्यमिक शिक्षा पर प्रभाव तथा उनसे होने वाले लाभ (Impact of Commission's Recommendations on Secondary Education and Acquired Advantages)

- अभ्यास प्रश्न

8. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66 [National Education Commission, 1964-66] 81-105

8.1 आयोग के गठन के कारण (उद्देश्य) एवं कार्यक्षेत्र (Scope and Causes of Organisation of Commission)

8.1.1 आयोग का प्रतिवेदन (Commission's Report)

8.1.2 आयोग के सुझाव व संस्तुतियाँ (Recommendations and Suggestions of Commission)

8.2 कोठारी शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ एवं सुझाव (Recommendations and Suggestion of Kothari Commission)

8.2.1 शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य (Aims of National Education)

8.2.2 शिक्षा के प्रशासन, वित्त व नियोजन सम्बन्धी सुझाव (Suggestions regarding Administration, Finance and Planning)

8.2.3 कृषि शिक्षा, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions about Agricultural Education, Vocational Education and Technical Education)

8.2.4 शिक्षा की नवीन संरचना व स्तर (New Structure of Education and Standard)

8.2.5 शिक्षक स्तर व सेवा शर्तों सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Teacher's Status and Service Conditions)

8.2.6 शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी आयोग के सुझाव (Suggestions Regarding Teacher Education)

8.2.7 शैक्षिक अवसरो की समानता सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Equalization of Educational Opportunities)

8.2.8 स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा व समाज शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Woman Education, Adult Education and Social Education)

8.3 कोठारी आयोग के सुझावों व सस्तुतियों का मूल्याकन (Evaluation of Suggestions & Recommendations of Kothari Commission)

8.3.1 कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग) के गुण (Characteristics of Kothari Commission)

8.3.2 कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग) की सीमाएँ (Limitations of Kothari Commissions)

- अभ्यास प्रश्न

9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 **106-130**

[National Education Policy, 1986]

9.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का दस्तावेज (Format of National Education Policy, 1986)

9.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) हेतु कार्य योजना (Plan of Programme of Action or (POA) for National Education Policy)

9.2.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action for Elementary Education in National Educational Policy)

9.2.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे माध्यमिक शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action for Secondary Education in National Education Policy)

9.2.3 उच्च शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action for Higher Education in National Education Policy)

9.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 द्वारा उठाये गये कुछ महत्वपूर्ण कदम (Some Important Steps Taken By National Education Policy-1986)

9.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा (Estimation of National Education Policy 1986)

9.4.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की विशेषताएँ (Characteristics of National Education Policy, 1986)

9.4.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के दोष (Demerits of National Education Policy, 1986)

- अभ्यास प्रश्न

10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 [National Education Policy, 2020] 131-164

10.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से सम्बन्धित अन्य जानकारी [Other Information Related to National Education Policy (NEP), 2020]

10.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्य [Objectives of National Education Policy (NEP), 2020]

10.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की विशेषताएँ [Characteristics of National Education Policy (NEP), 2020]

10.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धान्त (Principles of National Educational Policy, 2020)

10.5 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विषय (Subject of National Education Policy, 2020)

10.6 भाग–I : स्कूल शिक्षा (Part-I School Education)

10.7 भाग–II : उच्चतर शिक्षा (Part-II High Education)

10.8 भाग–III : अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे (Part-III : Other Central Issues to Consider)

10.9 भाग–IV : क्रियान्वयन की रणनीति (Part-IV : Strategy of Implementation)

10.10 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के लाभ(Merits of National Education Policy, 2020)

10.11 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की कमियाँ (Demerits of National Education Policy, 2020)

- अभ्यास प्रश्न

11. संगठन के रूप में विद्यालय [School As an Organization] 165-171

11.1 विद्यालय संगठन का अर्थ (Meaning of School Organization)

11.2 विद्यालय संगठन का स्वरूप (Nature of School Organization)

11.3 विद्यालय संगठन का महत्व (Importance of School Organization)

11.4 विद्यालय संगठन के सिद्धान्त (Principles of School Organization)

11.5 विद्यालय संगठन के क्षेत्र (Scopes of School Organization)

11.6 संगठन एवं प्रशासन में भेद (Difference between Organization and Administration)

- अभ्यास प्रश्न

12. शैक्षिक नियोजन : अर्थ, स्वरूप, उद्देश्य, गुण, सिद्धान्त एवं प्रकार 172-181
[Educational Planning : Meaning, Nature, Objectives, Qualities, Principles and Types]

12.1 शैक्षिक नियोजन का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Educational Planning)
12.2 शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य (Objectives of Educational Planning)
12.3 शैक्षिक नियोजन के मुख्य उपागम (Main Approaches of Educational Planning)
12.4 शैक्षिक नियोजन के प्रकार (Types of Educational Planning)
12.5 शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता (Need of Educational Planning Education)
12.6 शैक्षिक नियोजन के गुण (Qualities of Educational Planning)
12.7 शैक्षिक नियोजन के सिद्धान्त (Principles of Educational Planning)
- अभ्यास प्रश्न

13. शैक्षिक पर्यवेक्षण : अर्थ, स्वरूप, उद्देश्य, प्रकार, क्षेत्र, महत्व एवं कार्य 182-190
[Educational Supervision : Meaning, Nature, Objectives, Types, Scope, Importance and Functions]

13.1 पर्यवेक्षण की अवधारणा (Concept of Supervision)
13.2 शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Educational Supervision)
13.3 शैक्षिक पर्यवेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Educational Supervision)
13.4 शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार (Types of Educational Supervision)
13.5 शैक्षिक पर्यवेक्षण का कार्यक्षेत्र (Scope of Educational Supervision)
13.6 शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य (Functions of Educational Supervision)
13.7 शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्त्व (Importance of Educational Supervision)
- अभ्यास प्रश्न

14. निर्णयन निर्माण : अर्थ, विशेषताएँ, प्रकार, प्रविधि एवं विधि 191-1
[Decision Making : Characteristics, Types, Techniques and Methods]

14.1 निर्णयन का अर्थ (Meaning of Decision)
14.2 निर्णयन निर्माण की विशेषताएँ (Characteristics of Decision Making)
14.3 निर्णय लेने की विधि (Method of Decision Making)
14.4 निर्णयन निर्माण की प्रविधि (Technique of Decision Making)

14.5 निर्णयन निर्माण का महत्त्व (Important of Decision Making)
14.6 निर्णयन निर्माण के प्रकार (Types of Decision Making)
14.7 निर्णयन लेने के चरण (Steps for Decision Making)
• अभ्यास प्रश्न

Unit-III
भारत में शैक्षिक प्रशासन का तन्त्र
[Machinery of Educational Administration in India]

15. शिक्षा का केन्द्रीय प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका 200-212
[Central Administrative Machinery of Education and Its Role]

15.1 केन्द्र मे शिक्षा का प्रशासन (Educational Administration at Centre)
15.2 शिक्षा मन्त्रालय (Ministry of Education)
15.2.1 शिक्षा मन्त्रालय के उद्देश्य (Objective of Ministry Education)
15.2.2 शिक्षा मन्त्रालय के विभाग (Department of Ministry of Education)
15.3 प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार की भूमिका (Role of Central Government in Elementary Education)
15.4 शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार की भूमिका (Role of the Central Government in Education)
• अभ्यास प्रश्न

16. शिक्षा का राज्य प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका 213-222
[State Administration Machinery of Education & Its Role]

16.1 राज्य का शिक्षा–विभाग (Education Department of State)
16.2 राज्य शिक्षा–परामर्शदाता मण्डल (State Advisory Board of Education)
16.3 राज्य शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् (एस. सी. ई. आर. टी.) [State Council of Educational Research and Training (SCERT)]
16.4 जिला स्तरीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान (डायट) [District Institute of Education and Training (DIET)]
16.5 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार की भूमिका (Role of the State Government in Secondary Level)
16.6 राज्य सरकार के माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालय सम्बन्धी कार्य (Functions of the State Government Related to the Secondary and Higher Secondary School)
• अभ्यास प्रश्न

17. शिक्षा का स्थानीय प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका 223-236
[Local Administration Machinery of Education & Its Role]

17.1 स्थानीय निकायों का कार्य–क्षेत्र (Scope of Local Bodies)
17.2 बेसिक शिक्षा परिषद का गठन एव कार्य (Function and Organisation of Basic Education Council)
17.2.1 बेसिक शिक्षा परिषद के कृत्य (Functions of Basic Educational Council)
17.2.2 बेसिक शिक्षा परिषद का कार्य सचालन (Work Organization of the Basic Educational Council)
17.2.3 नई शिक्षा नीति 2020-2021 व बेसिक शिक्षा (New Education Policy 2020-2021 and Basic Education)
17.3 प्रारम्भिक शिक्षा में पचायतों तथा स्थानीय निकायों की भूमिका (Primary Education in Jury and Role of Local Body)
17.4 ग्राम शिक्षा समिति (Gram Shiksha Samiti)
17.4.1 ग्राम शिक्षा समिति के कार्य (Functions of Gram Shiksha Samiti)
17.5 वैकल्पिक शाला (Alternative School)
अभ्यास प्रश्न

18. यू.जी.सी., एन.सी.ई.आर.टी., एन.यू.ई. पी.ए., एन.सी.टी.ई., एस.आई.ई.एम.ए.टी. एवं डाइट के कार्य 237-252
[Functions of UGC, NCERT, NUEPA, NCTE, SIEMAT and DIET]

18.1 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग [University Grants Commission (UGC)]
18.2 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद [National Council of Educational Research and Training (NCERT)]
18.2.1 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद के उद्देश्य (Functions of National Council of Educational Research and Training)
18.2.2 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद का सगठन (Structure of National Council of Educational Research and Training)
18.2.3 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद के कार्य (Functions of National Council of Educational Research and Training)

Students Issue-Return Register

Session: (2023-2024) (2024-25)

B.Ed 1st 2nd Year

14.5 निर्णयन निर्माण का महत्त्व (Important of Decision Making)
14.6 निर्णयन निर्माण के प्रकार (Types of Decision Making)
14.7 निर्णयन लेने के चरण (Steps for Decision Making)
- अभ्यास प्रश्न

Unit-III
भारत में शैक्षिक प्रशासन का तन्त्र
[Machinery of Educational Administration in India]

15. शिक्षा का केन्द्रीय प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका 200-212
[Central Administrative Machinery of Education and Its Role]

15.1 केन्द्र मे शिक्षा का प्रशासन (Educational Administration at Centre)
15.2 शिक्षा मन्त्रालय (Ministry of Education)
15.2.1 शिक्षा मन्त्रालय के उद्देश्य (Objective of Ministry Education)
15.2.2 शिक्षा मन्त्रालय के विभाग (Department of Ministry of Education)
15.3 प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार की भूमिका (Role of Central Government in Elementary Education)
15.4 शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार की भूमिका (Role of the Central Government in Education)
- अभ्यास प्रश्न

16. शिक्षा का राज्य प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका 213-222
[State Administration Machinery of Education & Its Role]

16.1 राज्य का शिक्षा-विभाग (Education Department of State)
16.2 राज्य शिक्षा-परामर्शदाता मण्डल (State Advisory Board of Education)
16.3 राज्य शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद (राज्य में इसे ई क्या है (State Council of Educational Research and Training SCERT)
16.4 जिला स्तरीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान (DIET) (District Institute of Education and Training DIET)
16.5 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार की भूमिका (Role of the State Government in Secondary Level)
16.6 राज्य सरकार के माध्यमिक तथा उच्च [illegible]

18.2.4 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के विभाग (Departments of National Council of Educational Research and Training)

18.3 राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजना तथा प्रशासन विश्वविद्यालय [National University of Educational Planning and Administration—NUEPA]

18.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की भूमिका व कार्य [Role and Functions of National Council of Teacher Education (NCTE)]

18.4.1 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का इतिहास (History of the National Council of Teacher Education)

18.4.2 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के उद्देश्य (Aims of National Council of Teacher Education)

18.4.3 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की समितियाँ (Committees of National Council of Teacher Education)

18.4.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का संगठन (Organisation of National Council for Teacher Education)

18.4.5 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के कार्य (Functions of National Council for Teacher Education)

18.5 राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान [State Institute of Educational Management and Training (SIEMAT)]

18.5.1 राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान की संरचना और कार्य (Functions and Structure of State Institute of Educational Management and Training)

18.6 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) [District Institute of Education and Training (DIET)]

18.6.1 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान डाइट की स्थापना (Establishment of District Institute of Education and Training)

18.6.2 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के उद्देश्य व भूमिका (Objective and Role of District Institute of Education and Training)

18.6.3 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के विभिन्न विभाग (Various Component of District Institute of Education and Training)

18.6.4 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान हेतु मानवीय तथा भौतिक संसाधन (Physical and Human Resources for District Institute of Education and Training)

18.6.5 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के कार्य (Functions of District Institute of Education and Training)

अभ्यास प्रश्न

Unit-IV
विद्यालय प्रबन्धन
[School Management]

19. प्रबंधक एवं प्रशासक के रूप में संस्था के प्रधानाचार्य के गुण एवं कर्त्तव्य 253-269
[Qualities and Duties of Head Master of Institution as Manager and Administrator]

19.1 विद्यालय प्रशासन में प्रधानाचार्य की स्थिति या महत्त्व (Position or Importance of Headmaster in School Administration)

19.2 प्रधानाचार्य के गुण (Qualities of Headmaster)

19.2.1 वैयक्तिक गुण (Individual Qualities)

19.2.2 प्रशासकीय गुण (Administrative Qualities)

19.2.3 व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)

19.3 प्रधानाचार्य के कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities of Headmaster)

19.3.1 प्रशासनिक कर्त्तव्य एवं दायित्व (Administrative Duties and Responsibilities)

19.3.2 समाज से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Society)

19.3.3 अभिभावकों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Gardian)

19.3.4 शिक्षा विभाग और उनके अधिकारियों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Education Department and Its Officers)

19.3.5 छात्रों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Students)

19.3.6 शिक्षण व्यवस्था से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Teaching Management)

19.3.7 विद्यालय में पाठ्य-सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Co-ordination Activities in School)

19.3.8 शिक्षकों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Teachers)

अभ्यास प्रश्न

20. अध्यापक के गुण एवं कर्त्तव्य **270-288**
[Qualities and Duties of Teachers]

20.1 अध्यापक की भूमिका एवं महत्त्व (Role or Importance of the Teacher)
20.2 अध्यापक के गुण (Qualities of an Teacher)
20.2.1 वैयक्तिक गुण (Personal Qualities)
20.2.2 व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)
20.3 अध्यापक के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व (Duties and Responsibilities of Teacher)
20.4 अध्यापक एक प्रबन्धक के रूप में (Teacher as a Manager)
20.5 अध्यापक एक सुगमकर्ता के रूप में (Teacher as a Facilitator)
20.6 अध्यापक एक परामर्शदाता (Teacher : A Counselor)
20.7 अध्यापक एक समुदाय नेता के रूप में (Teacher as a Community Leader)
अभ्यास प्रश्न

21. कक्षाकक्ष प्रबन्धन : अवधारणा, सिद्धान्त, प्रविधियाँ एवं प्रभावित करने वाले कारक **289-304**
[Classroom Management : Concept, Principles, Techniques and Factors Influencing It]

21.1 कक्षाकक्ष प्रबन्धन की अवधारणा (Concept of Classroom Management)
21.2 कक्षाकक्ष प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Classroom Management)
21.2.1 कक्षाकक्ष का अर्थ (Meaning of Classroom)
21.2.2 कक्षाकक्ष प्रबन्धन का अर्थ (Meaning of Classroom Management)
21.3 कक्षाकक्ष प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principles of Classroom Management)
21.4 कक्षीय प्रबन्धन की नीतियाँ (Strategies for Classroom Management)
21.5 प्रबन्धन से सम्बन्धित कक्षाकक्ष की समस्याओं के समाधान सम्बन्धी उपागम (Approaches to Solution of Classroom Problems related to Management)
21.6 कक्षाकक्ष के चर या घटक (Classroom Variables or Components)
21.7 कक्षाकक्ष प्रबन्धन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Classroom Management)

21.8 कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सहायक युक्तियाँ (Supporting Devices of Classroom Management)
21.9 कक्षाकक्ष प्रबन्धन में शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher in Classroom Management)
21.10 कक्षाकक्ष प्रबन्धन हेतु प्रविधियाँ (Techniques for Classroom Management)
अभ्यास प्रश्न

22. समय-सारणी : अवधारणा, प्रकार, आवश्यकता, गुण एवं व्यावहारिक समस्याएँ 305-318
[Time Table : Concept, Types, Need, Qualities and Practical Problems]

22.1 समय-सारणी की अवधारणा (Concept of Time Table)
22.2 समय-सारणी का महत्व अथवा आवश्यकता (Need or Significance of the Time Table)
22.3 समय-सारणी के प्रकार (Types of Schedule Time Table)
22.4 समय-सारणी निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Time Table Construction)
22.5 समय-सारणी के गुण (Qualities of Time-table)
22.6 फ्रेम करने में व्यावहारिक समस्याएँ (Practical Problems in Framing o
अभ्यास प्रश्न

23. विद्यालय अनुशासन : अवधारणा, आवश्यकता, प्रकार एवं युक्तियाँ 319-331
[School Discipline : Concept, Need, Types and Strategies]

23.1 अनुशासन का अर्थ (Meaning of Discipline)
23.2 विद्यालय अनुशासन की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of School Discipline)
23.3 विद्यालय अनुशासन के प्रकार (Types of School Discipline)
23.4 विद्यालय अनुशासन का महत्व एवं आवश्यकता (Importance and Need of School Discipline)
23.5 विद्यालय अनुशासन स्थापना के सिद्धान्त (Principles for maintaining School Discipline)
23.6 अनुशासन-स्थापन की युक्तियाँ (Strategies of Maintaining Discipline)
23.7 पुरस्कार (Rewards)
23.8 दण्ड (Punishment)
23.8.1 दण्ड के विभिन्न रूप (Different Forms of Punishment)
23.9 प्रधानाध्यापक और शिक्षक की भूमिका (Role of Principle and Teacher
अभ्यास प्रश्न

Unit-V
स्कूल की गतिविधियों का प्रबन्धन
[Management of School Activities]

24. पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ 332-351
[Co-curricular Activities]

24.1 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का अर्थ (Meaning of Co-curricular Activities)
24.2 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं के लक्ष्य (Aims of Co-curricular Activities)
24.3 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं की आवश्यकता (Need of Co-curricular Activities)
24.4 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं का महत्व (Importance of Co-curricular Activities)
24.5 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं के आयोजन के सिद्धान्त (Principles of Co-curricular Activities)
24.6 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं के प्रकार (Types of Co-curricular Activities)
24.7 पाठ्य-सहायक क्रियाओं के सगठन के लिए निर्देशन सिद्धान्त (Guiding Principles for the Organisation of Co-curricular Activities)
अभ्यास प्रश्न

25. विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम 352-368
[Guidance Programme in School]

25.1 विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम की अवधारणा (Concept of Guidance Programme in School)
25.2 विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का स्वरूप (Nature of Guidance programme in School)
25.3 विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम को संगठित करने के सिद्धान्त (Principles to Organize Guidance Programme in School)
25.4 विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार (Types of Organization in School)
25.5 अच्छे निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Guidance Programme)
25.6 विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन (Organizations of Guidance Programme in School)
25.7 विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का महत्व (Importance of Guidance programme In School)

25.7.1 निर्देशन कर्मचारियों के उत्तरदायित्वों का महत्व (Importance of Responsibilities of Guidance Personnel)

25.7.2 प्रधानाचार्य के निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का महत्व (Importance of responsibilities Related to Headmaster Guidance)

25.7.3 निर्देशन-संचालक के उत्तरदायित्वों का महत्व (Importance of Responsibilities of the Director)

25.7.4 परामर्शदाता के कार्य (Functions of Counsellor)

25.7.5 अध्यापकों के निर्देशन कार्य (Guidance Functions of Teachers)

25.7.6 निर्देशन कार्यक्रम के संगठन में शिक्षक की भूमिका (Role of the Teacher in Organising Guidance Programme)

25.7.7 कक्षा अध्यापक के निर्देशन कार्य (Guidance Functions of Class Teacher)

25.7.8 मनोवैज्ञानिक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य (The Guidance Functions of the Psychologist)

25.7.9 स्वास्थ्य विशेषज्ञ के कार्य (Role of the Health-Specialist)

अभ्यास प्रश्न

26. विद्यालय अभिलेख तथा रजिस्टर **369-389**

[School Records and Register]

26.1 अभिलेख का अर्थ (Meaning of Record)

26.2 रजिस्टर का अर्थ (Meaning of Register)

26.3 विद्यालय अभिलेखों तथा रजिस्टरों की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of School Records and Registers)

26.4 विद्यालय अभिलेखों तथा रजिस्टर उपयोग (Uses of School Records and Register)

26.5 विद्यालय अभिलेखों की विशिष्ट योग्यताएँ अथवा अनिवार्य आवश्यकताएँ (Salient or Essential Requisites of School Records)

26.6 अभिलेखों का रखरखाव (Maintaining these Records)

26.7 विद्यालय अभिलेख एवं रजिस्टरों के प्रकार (Types of School Records and Registers)

26.8 महत्त्वपूर्ण विद्यालय अभिलेख एवं रजिस्टरों का विवरण (Description of Important School Records and Registers)

26.9 संचित अभिलेख (Cumulative Record)

26.9.1 संचित अभिलेख के प्रकार या नमूने (Types or Designs of Cumulative Record)

26.9.2 संचित अभिलेख की सामग्री (Contents of the Cumulative Record)

26.9.3 सचित अभिलेख पत्र की विशेषताएँ (Chracteristics of Cumulative Record Card)

26.9.4 सचित अभिलेख पत्र के लाभ (Advantages of Cumulative Record Card)

26.9.5 सचित अभिलेख पत्रो की व्यवस्था तथा उनके प्रयोग की समस्याएँ (Problem in the Maintenance and Use of Cumulative Record Cards)

अभ्यास प्रश्न

27. अभिभावक–शिक्षक संघ 390-394
[Parent-Teachers Association]

27.1 अभिभावक-शिक्षक संघ की स्थापना कैसे ? (How to Establish Parent-Teacher Association ?)

27.2 अभिभावक-शिक्षक संघ (Parent-Teacher Association)

27.3 अभिभावक-शिक्षक संघ के कार्य एवं आवश्यकता (Function and Need of Parent-Teacher Association)

27.3.1 अभिभावक-शिक्षक संघ के कार्य (Functions of Parent-Teachers Association)

27.3.2 अभिभावक-शिक्षक संघ की आवश्यकता (Need of Parent-Teachers Association)

27.4 अभिभावक-शिक्षक संघ के लाभ (Advantages of Parent-Teachers Associations)

अभ्यास प्रश्न

28. विद्यालय प्रशासन में विद्यार्थी की भूमिका 395-398
[Role of Students in School Administration]

28.1 एक अच्छे विद्यार्थी की विशेषताएँ/गुण (Qualities or Characteristics of a Good Student)

28.2 विद्यालय प्रशासन में विद्यार्थी की भूमिका (Role of Student in School Administration)

अभ्यास प्रश्न

Unit-I
परिचय
[Introduction]

अध्याय
1

शैक्षिक प्रशासन : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

[EDUCATIONAL ADMINSTRATION : MEANING, DEFINITION AND NATURE]

किसी भी संगठन के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशासन की आवश्यकता होती है। प्रशासन वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है। किसी भी समाज की सरचना उसके प्रशासन से ही सुनिश्चित होती है। प्रशासन एक महत्वपूर्ण पद है जिसकी व्यवस्थित एव विशद व्याख्या लोक प्रशासन मे किया जाता है। शिक्षा प्रशासन लोक प्रशासन का एक अभिन्न अग है फिर भी यह उसका एक अभिन्न अंग होते हुए उससे भिन्न है, क्योकि इसका सबध विद्यालयो से है और विद्यालय स्वय मे एक विशिष्ट सस्था है। यह एक ओर तो समाज की सस्कृति को सुरक्षित रखने तथा दूसरी ओर परिष्कृत करके आगे बढ़ाने का कार्य करती है, साथ ही सामाजिक परिवर्तन के साधन या सयत्र के रूप मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। इस प्रकार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया हो जाती है, इसका प्रशासन दूसरे प्रशासन से भिन्न हो जाता है।

हिंदी शब्द प्रशासन अग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेशन का रूपातरण है। एडमिनिस्ट्रेशन शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द मिनिस्टर से हुआ है, जिसका आशय दूसरो की सेवा मे रत रहने वाले व्यक्ति से है। इस प्रकार प्रशासन का अर्थ हुआ, अधीनस्थ लोगो की सेवा प्रभावशाली ढग से करने की कला और जो व्यक्ति प्रभावशाली ढग से अपने अधीनस्थ लोगो की सेवा करता है, वह प्रशासक हुआ।

दूसरा शब्द एडमिनिस्टर मिलता है, जिसका अर्थ होता है टू मैनेज व्यवस्था करना या टू गवर्न प्रशासन करना।

प्रशासन शब्द का निश्चित स्वरूप व अर्थ का निर्धारण जर्मनी तथा आस्ट्रिया मे विकसित कमेरियल विचारधारा द्वारा किया गया। विचारधारा ने सार्वजनिक सेवा मे कार्यरत व्यक्तियो के कार्यों को प्रशासन से जोड़ा। इस विचारधारा ने प्रशासन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करके क्रमबद्ध बनाया। इस मान्यता को आगे बढ़ाने के कार्य मे निम्नलिखित तीन विद्वानो ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

1. प्रोसे ने प्रशासन को नीति के रूप मे स्वीकार किया।

2 जिन्के ने इसे व्यवस्थापन (मैनेजमेंट) के रूप मे स्वीकार किया।

3 इकोनॉमी के रूप मे वान जुस्टि ने इसे अभिव्यक्त किया।

18वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे **अलेक्जेंडर हैमिल्टन** ने प्रशासन को परिभाषित करने का प्रयास किया। हैमिल्टन का विचार है कि सरकार का कार्य व्यापक अर्थ मे उन सभी कार्यकलापों से सबधित है जो शासन प्रणाली को करने होते है। शासन तत्र को व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका से सबधित क्रियाकलाप करने होते है, परतु प्रशासन मात्र कार्यपालिका के कार्यों से सबधित रहता है। इस प्रकार प्रशासन का विशेष तथा सीमित अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

शासन के उक्त कार्यों के लिए प्रशासन तथा व्यवस्थापन दोनो शब्दो का प्रयोग किया जाता था। प्रशासन को सरकार के कार्यों से जोड़ने पर लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुआ। 19वी शताब्दी मे लोक प्रशासन की मान्यता ने जोर पकड़ा जिससे सरकार के कार्यों के अध्ययन की एक विशेष शाखा का जन्म हुआ।

सन 1887 ई मे **वुडरो विल्सन** की किताब द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन जिसमे प्रशासन को विशेष रूप से सरकार के कार्यों के रूप मे परिभाषित किया गया, जबकि **फ्रैंक गुडनो** ने प्रशासन तथा पॉलिटिक्स को अलग-अलग कार्य माना। पॉलिटिक्स का अर्थ सरकार के उन कार्यों से है जो राज्य की इच्छा को अभिव्यक्त करने तथा नीतियो के निर्धारण से संबधित है। इस प्रकार विल्सन तथा फ्रैंक गुन्नू ने प्रशासन को अलग-अलग अर्थ मे स्पष्ट किया। विल्सन ने प्रशासन के नार्मेटिव स्वरूप कैसा होना चाहिए किसके रूप मे व्यक्त किया जबकि गुडनो ने व्याख्यात्मक स्वरूप कैसा है के रूप मे स्पष्ट किया।

प्रशासन कला है अथवा विज्ञान—प्रश्न उठता है कि प्रशासन कला है या विज्ञान, कुछ विद्वान इसे व्यावहारिक कौशल मात्र समझते है जो अनुभव मात्र से आ जाता है, जबकि दूसरे विद्वान इसके लिए विकसित सिद्धात तथा इसके प्रभावीपन के लिए आवश्यक तकनीको का प्रशिक्षण भी आवश्यक समझते है इसके आधार पर यह कला है अथवा विज्ञान विचारणीय है?

प्रशासन एक कला है—इस विचारधारा के अनुसार अन्य कलाओं की तरह प्रशासन भी एक कला है। जिस व्यक्ति मे कुछ आवश्यक गुण तथा योग्यताएँ होती है वही सफल प्रशासक बन पाते है, हर एक प्रशासक नही बन सकता। वैयक्तिक गुणो पर बल देने वाले संप्रदाय की यही मान्यता रही है। वे यह भी मानते है कि अच्छे प्रशासन जन्मजात होते है, बनाए नही जाते। दूसरे लोग इसे परिस्थिति जन्य मानते है। परिस्थितियाँ प्रशासक बना देती है। आज अनेक विद्वान आधुनिक प्रशासन क्षेत्र के विकास और जटिलताओ के बढ़ने के कारण यह मानने लगे है कि एक सफल प्रशासक को जन्मजात के अतिरिक्त भी बहुत कुछ सीखना होता है। **स्टॉकडिल** 1948 एवं **मायर्स** 1954 के अनुसार-प्रशासनिक तकनीको मे आवश्यक प्रशिक्षण के बाद जन्मजात गुण वाले प्रशासक और भी अधिक सफल प्रशासक बन सकते है।

प्रशासन विज्ञान है—प्रशासन को जो लोग विज्ञान कहते है, वे इसे टेक्नोलॉजी मानते है। उनकी धारणा है कि प्रशासनिक समस्याओ को सुलझाने के लिए प्रशासनिक सिद्धातो का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। वह प्रशासन को एक प्रक्रिया मानते है। उनकी धारणा है कि प्रशासनिक नियमो पर

चलकर प्रशासन को सुचारु रूप से बनाया जा सकता है। इनका प्रशासन के विकास में काफी योगदान देखा जा सकता है।

वस्तुत प्रशासन में दोनों का ही समावेश होता है। प्रशासन के निरतर जटिल होते जाने के कारण आज प्रशासनिक तकनीकों के प्रशिक्षण की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कल्बर्टसन 1955 ने प्रशासन के विज्ञान में मुख्य तत्व मान्यताओ पर विचार व्यक्त किया–

1. प्रशासन उन व्यक्तियों या व्यक्ति द्वारा सचालित होता है जिन पर किसी सगठन या सभाग या कार्यक्रम या उत्सव के अदर किसी निर्णय को लेने का ज्ञान हो तथा उसका अनुप्रयोग करने की योग्यता हो

2. जिसमे इस ज्ञान मे वृद्धि के लिए तथ्यो का पता लगाने की योग्यता हो ।

3. आज एक प्रशासक के लिए प्रशासन का उच्च तकनीकी ज्ञान उस क्षेत्र मे आवश्यक है जिसका उसे प्रशासन करना है।

4. प्रशासन कला हो अथवा विज्ञान उसका ज्ञान व्यवहारिक परिस्थितियो में अधिक प्रभावी ढग से सीखा जाता है तथा,

5. शिक्षा प्रशासन को अभी भी एक स्थान बनाने की आवश्यकता है तथा इसके लिए आवश्यक सिद्धातो तथा तकनीकों के विकास की आवश्यकता है।

यह तथ्य केवल प्रशासन मे रुचि रखने वाले सभी विद्यार्थी ही स्वीकार नही करते है, बल्कि आज प्रशासक के लिए प्रशासन के उच्च तकनीकी ज्ञान उस क्षेत्र में अति आवश्यक है।

1.1 : शैक्षिक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (MEANING AND DEFINITIONS OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

यद्यपि शिक्षा प्रशासन–सामान्य प्रशासन या लोक प्रशासन का एक अग है, परन्तु शिक्षा प्रशासन अन्य प्रशासनो की अपेक्षा मानव मूल्यो को प्राप्त करने का दायित्व अधिक वहन करता है। यह प्रशासन विद्यालयों के माध्यम से इन आदर्शों एवं मूल्यो को प्राप्त करने मे सफलीभूत होता है। इस कारण यह लोक प्रशासन या अन्य प्रशासनो से कार्य एव उद्देश्य के आधार पर भिन्न होता है। अत शिक्षा प्रशासन इस रूप मे एक विशिष्ट व्यवसाय है। शिक्षा प्रशासन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए नीचे कुछ परिभाषाएँ दी जा रही है–

शिक्षा अनुसन्धान का विश्वकोश– "शिक्षा प्रशासन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियो के प्रयास का समन्वय तथा उचित सामग्री का उपयोग, इस प्रकार किया जाता है जिससे मानवीय गुणो का समुचित विकास हो सके। यह प्रक्रिया केवल बालको तथा नवयुवको के विकास से ही सम्बन्धित नही है वरन् इसके अन्तर्गत प्रौढ़ो एव कार्यकर्ताओ के विकास को भी महत्व प्रदान किया जाता है।"

"Educational administration is a process of integrating the efforts of personnel and of utilizing appropriate materials in such a way as to promote effectively the

development of human qualities It is concerned not only with the development of child and youth but also with the growth of adults and particularly with the growth of school personnel"

—*Encyclopaedia of Educational Research*

कैम्बेल व अन्य—"शिक्षा प्रशासन में शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया से सम्बन्धित लक्ष्यों तथा नीतियों के विकास को प्रोत्साहित करने वाली सुविधाएँ निहित है। यह शिक्षण तथा सीखने के उपयुक्त कार्यक्रमों के विकास को प्रोत्साहन प्रदान करता है। साथ ही शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया को सचालित करने के लिए भौतिक मानवीय तत्वों (कर्मचारी वर्ग) की व्यवस्था करता है।"

"The educational administration consists of facilitating the development of goals and policies basic to teaching and learning, stimulating the development of appropriate programmes for teaching and learning and procuring and managing personnel and material to implement teaching and learning" —**Cambell, Corbally** and **Ramseyer**

ग्राहम बेलफोर—"शिक्षा प्रशासन उपयुक्त बालकों को उपयुक्त शिक्षकों द्वारा समुचित शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाना है जिससे वे उपलब्ध आर्थिक साधनों का उपयोग करके अपने प्रशिक्षण से सर्वोत्तम को प्राप्त करने में समर्थ हो सकें।"

"Educational administration is to enable the right pupils to receive the right education from the right teachers, at a cost within the means of the state under conditions which will enable the pupils best to profit by their training"

—**Graham Belfour** : *Educational Administration*

आर. मॉर्ट पॉल (R. Mort Paul)—"शिक्षा प्रशासन का अर्थ है—छात्रों के विकास को निर्धारित उद्देश्यों की दिशा में प्रवाहित करना। इस दृष्टि से शिक्षकों का साधन के रूप में प्रयोग करना तथा इस प्रक्रिया का सचालन ऐसे जनसमुदाय के सन्दर्भ में करना जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं उनकी प्राप्ति के साधन दोनों से विभिन्न प्रकार से सम्बन्धित है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है—

1. शिक्षा प्रशासन एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए समस्त साधनों एवं प्रयासों को क्रियाशील बनाता है।
2. शिक्षा प्रशासन शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है।
3. शिक्षा प्रशासन व्यक्तियों तथा समाज की प्रगति में सहायक है।
4. शिक्षा प्रशासन विभिन्न प्रकार के कार्यकर्ताओं—शिक्षक, छात्र, अभिभावक व जनता तथा उनके प्रयासों के समन्वय से सम्बन्धित है।

1.2 : शैक्षिक प्रशासन का स्वरूप
(NATURE OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

शिक्षा प्रशासन का प्रमुख विषय प्राधिकरण या सत्ता तथा नियन्त्रण माना जाता है, क्योंकि प्रशासन का स्वरूप तथा उसकी गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि सत्ता तथा नियन्त्रण करने की शक्ति

किस बिन्दु पर आधारित है और उनका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। वस्तुत प्राधिकरण उस शक्ति को परिलक्षित करता है जो कार्यकर्ताओ मे कार्यों का विभाजन करती है तथा कार्य के लिये उन्हे उत्तरदायी बनाती है। नियन्त्रण वह प्रणाली है जिसके द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जाता है, परन्तु ये दोनो तत्व (प्राधिकरण तथा नियन्त्रण) मिलकर प्रशासन की गुणवत्ता का निर्णय करते है। प्रशासन मे प्राधिकरण तथा नियन्त्रण के स्वरूप के पक्ष निम्नाकित है–

I. केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण (Centralization and Decentralization)

केन्द्रीकरण–यह प्रशासन का वह स्वरूप है जिसमे सत्ता या शक्ति एक केन्द्रीय साधन मे निहित होती है। यही केन्द्रीय साधन नीतियो का निर्धारण एव क्रियान्वयन करता है। साथ ही आदेश एव धन प्रदान करता है। इस प्रकार का प्रशासन एकरूपता (uniformity) लाने पर बल देता है। इसमे शिक्षा पर राज्य का एकाधिकार होता है। यह प्रशासन नौकरशाही से अधिकृत होता है।

विकेन्द्रीकरण–यह प्रशासन का वह स्वरूप है जिसमे सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है। यह स्वरूप स्थानीय समुदायो के आत्मनिर्णय (self-determination) के सिद्धान्त पर आधारित है। इस स्वरूप के शिक्षा प्रशासन मे अभिभावको, समुदाय तथा शिक्षको तीनो को समान महत्व प्रदान किया जाता है। साथ ही शिक्षा को एक सहयोगी प्रयास माना जाता है। यह प्रशासन स्थानीय परिस्थितियो के साथ अनुकूलन करने पर बल देता है। साथ ही यह विविधता को कायम रखता है और अत क्रियाओ की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर बल देता है।

II. बाह्य तथा आन्तरिक प्रशासन (External and Internal Administration)

बाह्य प्रशासन–शिक्षा का बाह्य प्रशासन उस प्रभाव एव आदेश का सकेत देता है जो उच्च स्तर की शक्ति द्वारा दिये जाते है। भारत मे शिक्षा के बाह्य प्रशासन का अर्थ–शिक्षा विभाग द्वारा शासकीय नियन्त्रण से लगाया जाता है। बाह्य प्रशासन नियमो का निर्माण करता है तथा पाठ्य- पुस्तक एव पाठ्यक्रम निर्धारित करता है। इसके साथ ही वह भवनो के निर्माण एव खेल के मैदानो की व्यवस्था मे सहायता देता है। साथ ही उनके लिये निर्देशक सिद्धान्तो का निर्धारण करता है। यह शिक्षको तथा अन्य कर्मचारियो के वेतन, सेवा की दशाओ, सत्र की अवधि आदि का निर्धारण करता है।

आन्तरिक प्रशासन–आन्तरिक प्रशासन से उस व्यवस्था का अर्थ लगाया जाता है जो विद्यालय का नेता अपने साथियो की सहायता से विद्यालय के प्रतिदिन के कार्यक्रमो एव क्रियाओ के सचालन के लिये स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त विद्यालय का नेता अपने शिक्षको, अन्य कर्मचारियो, प्रबन्धको तथा छात्रो के सहयोग से शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित सामान्य नियमो के अनुसार, विद्यालय की व्यवस्था करता है।

1.3 : शिक्षा प्रशासन का आधार
(BASIS OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

शिक्षा प्रशासन के प्रमुख आधार निम्नलिखित है–

1. **शैक्षिक उद्देश्य** (Educational Aims)–शिक्षा-प्रशासन उन शैक्षिक उद्देश्यो पर आधारित होता है जिनको समाज का प्रचलित दर्शन निर्धारित करता है। समाज के अन्तर्गत सामाजिक, सास्कृतिक

ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि गतिशील तत्व सामाजिक दर्शन का निर्धारण करते है और यही सामाजिक दर्शन शैक्षिक उद्देश्यो का सूत्रपात करता है। विश्व मे मुख्यत दो प्रकार के दर्शन पाये जाते है—प्रथम—एकाधिकारात्मक, तथा द्वितीय—लोकतन्त्रात्मक। एकाधिकारात्मक दर्शन मे व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि माना जाता है। लोकतन्त्रीय दर्शन मे व्यक्ति के महत्व पर बल दिया जाता है और व्यक्तिगत एव सामाजिक हित मे सन्तुलन रखा जाता है। इन दर्शनो की विभिन्नता इन देशो के शैक्षिक उद्देश्यो को प्रभावित करती है। शिक्षा प्रशासन इन उद्देश्यो के अनुरूप होता है। एकाधिकारात्मक देशो मे शिक्षा प्रशासन का रूप एकात्मक होता है और कार्यकर्ताओ से अधिकारियो के आदेशो का पालन मात्र अपेक्षित होता है जबकि लोकतन्त्रात्मक देशो मे व्यक्तिगत विचार स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित किया जाता है। इन देशो मे शिक्षा प्रशासन—सहयोग, समायोजन, एकीकरण तथा कार्यकर्ताओ की सहभागिता एव सद्भावना पर आधारित होता है।

शैक्षिक उद्देश्य समस्त देशो मे समान तथा सदैव के लिए स्थायी नहीं होते है। वे देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एव सास्कृतिक जीवन की आवश्यकताओ एव आकाक्षाओ के अनुरूप होते है। जब ये आवश्यकताएँ एव आकाक्षाएँ परिवर्तित होती है तब उनके अनुरूप शैक्षिक उद्देश्य भी परिवर्तित होते है। शैक्षिक उद्देश्यो का निर्माण न केवल देश की वर्तमान परिस्थितियो के अनुकूल होता है वरन् देश के विकास की दिशा तथा भावी समाज की रूपरेखा के आधार पर भी होता है। अत शैक्षिक उद्देश्य शिक्षा प्रशासन के स्वरूप का निर्धारण करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

2. **सामाजिक आधार** (Sociological Basis)—शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और उसकी कार्यविधि एव प्रशासन विभिन्न सामाजिक घटको पर निर्भर करता है। राष्ट्र का दर्शन एव इतिहास शिक्षा प्रशासन के स्वरूप को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित करता है। सयुक्त राज्य अमेरिका लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो के आधार पर स्वतन्त्र हुआ तथा अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा उसका एक नवीन राष्ट्र के रूप मे देरी से उदय हुआ। इसलिए वहाँ लोकतन्त्रीय विचारधारा के अनुसार, शिक्षा प्रशासन को भी लोकतन्त्रात्मक तथा विकेन्द्रीकृत रूप प्रदान किया गया। रूस ने ऐतिहासिक प्रभाव तथा साम्यवादी दर्शन के कारण केन्द्रीकृत शिक्षा प्रशासन को अपनाया। भारत मे वर्तमान शिक्षा प्रशासन ब्रिटिश शासन की देन है। अत कोई भी देश अपनी ऐतिहासिक परम्परा से अलग नही हो सकता है। ये परम्पराएँ उसके शिक्षा प्रशासन मे प्रतिबिम्बित होती है।

देश की सस्कृति शिक्षा प्रशासन मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वय को परिलक्षित करती है। समाज शिक्षा से अपेक्षा करता है कि वह उसकी सस्कृति की रक्षा करे। साथ ही उसे प्रगति की ओर ले जाये। शिक्षा प्रशासन समाज के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सस्था या सगठन का सचालन करता है। इसी कारण शिक्षा प्रशासन को एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश के सास्कृतिक वातावरण से प्रभावित होती है। इस कथन की पुष्टि **केण्डल** (Kandel) के इन शब्दो से की जा सकती है—"शिक्षा-प्रणालियाँ अपने सास्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है, न केवल राष्ट्रीय प्रणालियाँ एक-दूसरे से भिन्न होती है बल्कि लोकतन्त्र के अन्तर्गत जहाँ विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन प्राप्त है वहाँ स्थानीय प्रणालियाँ भी कई बातो मे एक-दूसरे से भिन्न होती है।"

3. मनोवैज्ञानिक **आधार** (Psychological Basis)—शिक्षा प्रशासन अन्य प्रशासनो से भिन्न होता

है क्योकि उसका सम्बन्ध व्यक्ति के विकास से होता है। अन्य प्रशासनो मे व्यक्ति के विकास पर ध्यान देना इतना अपेक्षित नही होता। शिक्षा व्यक्ति के समग्र विकास की प्रक्रिया है। इसलिए उसके प्रशासन को व्यक्ति के आदर्श से पृथक् नही किया जा सकता है। शिक्षा प्रशासन एक गतिशील प्रक्रिया है जिसका केन्द्र-बिन्दु बालक है। **ग्राहम बैलफोर** के अनुसार, "शिक्षा प्रशासन का उद्देश्य उपयुक्त बालको को उपयुक्त शिक्षको द्वारा उपयुक्त शिक्षा, उपलब्ध आर्थिक साधनो का उपयोग करके सुविधापूर्वक प्राप्त करने मे सहायता प्रदान करना है।" अत शिक्षा प्रशासन का फाइल केन्द्रित (File centred) न होकर व्यक्ति-केन्द्रित होना आवश्यक है। अत शिक्षा प्रशासन द्वारा व्यक्ति के विभिन्न पक्षो—शारीरिक, आध्यात्मिक, सवेगात्मक, सौन्दर्यात्मक आदि के अधिकाधिक विकास के लिए प्रयास किया जाय तो उचित होगा। मनोविज्ञान की सहायता से बालक की स्वाभाविक शक्तियो, क्षमताओ, योग्यताओ, रुचियो आदि की जानकारी प्राप्त करके, उनके अनुसार—विद्यालय पाठ्यक्रम, समय-तालिका, शिक्षण-विधियाँ, शैक्षिक सामग्री, साज-सज्जा, फर्नीचर आदि की व्यवस्था करने से व्यक्ति का सर्वोत्तम विकास होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षको एव अन्य कार्यकर्ताओ की रुचियो, शक्तियो, क्षमताओ आदि को ध्यान मे रखने से उनकी कार्य-कुशलता मे उन्नति होगी क्योकि रुचि एव क्षमताओ के अनुसार किया गया कार्य-विभाजन कार्यकर्ताओ की कार्यक्षमता को बढ़ाने तथा उनमे सहयोग एव समुचित ढग से कार्य करने के लिए उत्सुकता उत्पन्न करने मे बहुत सहायक होता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. शैक्षिक प्रशासन से क्या तात्पर्य है? उदाहरण देकर वर्णन कीजिए।
2. शैक्षिक प्रशासन का स्वरूप क्या है? वर्णन कीजिए।
3. शैक्षिक प्रशासन के आधारो को उदाहरण सहित समझाइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रशासन से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिए।
2. शैक्षिक प्रशासन को परिभाषा द्वारा स्पष्ट कीजिए।
3. शैक्षिक प्रशासन के किसी एक आधार को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. प्रशासन को 'इकॉनोमी के रूप मे व्यक्त किया—

   (अ) वान जुस्टी (ब) प्रोसे

   (स) जिन्के (द) इनमे से कोई नही उत्तर—अ,

2. 18वी शताब्दी मे किसने प्रशासन को परिभाषित किया?

   (अ) अलेक्जेण्डर हेमिल्टन (ब) जिन्के

   (स) वान जुस्टी (द) इनमे से कोई नही उत्तर—अ

3 किसने 'दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' की पुस्तक का प्रकाशन किया?

(अ) वुडरो विल्सन
(ब) लूथर
(स) जिन्के
(द) इनमे से कोई नही

उत्तर–(अ)

4 किसने प्रशासन को नीति के रूप मे लिया?

(अ) पोसे
(ब) जिन्के
(स) वान जुस्टी
(द) इनमे से कोई नही

उत्तर–(अ)

अध्याय

2

शैक्षिक प्रशासन : उद्देश्य, क्षेत्र एवं प्रकार

[EDUCATIONAL ADMINSTRATION : OBJECTIVES, SCOPE AND TYPE]

2.1 : शैक्षिक प्रशासन के उद्देश्य (OBJECTIVES OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

शैक्षिक विकास की दृष्टि से शिक्षा प्रशासन के उद्देश्यो को हम निम्नलिखित रूप मे स्पष्ट कर सकते है–

1. बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिये उचित वातावरण तैयार करना (To Create a Proper Environment for the Allround Development of the Children)–शैक्षिक प्रशासन शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न कराता है। शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत व्यक्तियो की सहायता करता है। इन सब के साथ-साथ शैक्षिक प्रशासन बच्चों के लिये ऐसा वातावरण तैयार करता है जिसमे बालक का सम्पूर्ण विकास सम्भव हो सके। इस सन्दर्भ मे **कैण्डल** (Kandal) महोदय का मत है– "मूलत शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य यह है कि अध्यापको तथा छात्रो को ऐसी परिस्थितियों मे एक-साथ लाया जाये जिससे कि शिक्षा के उद्देश्य अधिक सफलतापूर्वक प्राप्त हो सकें।"

2. उचित बालको को, उचित शिक्षको द्वारा उचित शिक्षा प्रदान करना (Providing Proper Education to Children by Teacher)–शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य है कि शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत व्यक्तियों को उनके उत्तरदायित्व का ज्ञान कराया जाये। बालक के व्यक्तित्व का विकास किया जाये और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य करने के अवसर उपलब्ध कराये जाये। इस दृष्टि से शैक्षिक प्रशासन प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक कार्यक्रम, क्रियाकलाप और अन्य गतिविधियों का सुचारु रूप से सचालन करता है और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा शर्तें तथा उनके प्रशिक्षण का निर्धारण करता है ताकि शिक्षा की सही दिशा मे प्रगति हो सके। सही शिक्षा के सन्दर्भ मे **ग्राहम बेलफोर महोदय** (Sir Graham Balfour) का मत है– "शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य सही बालको को सही शिक्षको द्वारा राज्य के सीमित साधनो के अन्तर्गत उपलब्ध व्यय से सही शिक्षा लेने योग्य बनाना है जिससे वे बालक शिक्षा प्राप्त करके लाभान्वित हो सकें।"

3. **उत्पादन कुशलता** (Production Skill)—शैक्षिक प्रशासन में शिक्षा द्वारा छात्रों में उत्पादन कुशलता में वृद्धि की जाती है फलस्वरूप किसी संस्था में छात्रों की संख्या में वृद्धि होती है, लेकिन शैक्षिक प्रशासन छात्रों की संख्या में वृद्धि तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु यह इससे भी आगे बढ़कर छात्रों की योग्यता और गुणात्मकता में वृद्धि करने का प्रयास भी करता है। यह प्रयास बालकों के परीक्षा परिणामों से विदित होता है। गुणात्मकता में यह वृद्धि ही वास्तविक उत्पादन है।

4. **शिक्षा को सुनिश्चित योजना और सुनियोजित रूप प्रदान करना** (To Provide Assured Planning and Systematic form of Education)—शैक्षिक प्रशासन शिक्षा को सुनियोजित रूप प्रदान करने में सहायता करता है। यह सुनिश्चित योजना का निर्माण करता है ताकि शिक्षा समाज के अनुरूप संचालित हो सके और राज्य एवं सरकार की शिक्षा नीतियों का क्रियान्वयन सही रूप में हो सके। सुनियोजन के सन्दर्भ में **आर्थर बी. मोहिल्मन** (Arthur B. Mohilman) का कथन है—"शिक्षा का कार्य निश्चित संगठन अथवा सुनिश्चित योजना विधियों, व्यक्तियों तथा आर्थिक साधनों के माध्यम से चलना चाहिये।"

5. **शिक्षा की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्णय लेना एवं शिक्षा सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण तथा क्रियान्वयन करना** (To Make Decisions According to Needs of Education and to Determine and Implement Policies Related to Education)—शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य है कि वह शिक्षा सम्बन्धी उचित कार्यों, निर्णयों और विचारों को प्रोत्साहित करे और प्रशासन में लगे सभी व्यक्तियों को प्रेरित करे, ताकि सभी शिक्षक भयमुक्त होकर छात्रों को ज्ञान प्रदान करें। इसके साथ ही शैक्षिक प्रशासन राज्य और सरकार की शिक्षा सम्बन्धी नीतियों का क्रियान्वयन करे। ऐसी योजना बनाई जाये जिससे सभी कर्मचारियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण परामर्श मिले, कुशल निर्देशन मिले तथा उपयुक्त निर्णय एवं सुझाव मिलें। निर्णय के सन्दर्भ में **जेसी बी. सीयर्स** महोदय (Jesse B. Sears) का कथन है—"प्रत्येक प्रशासनिक निर्णय तथा प्रत्येक कार्य शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप अति आवश्यक है।"

6. **प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण विकसित करना** (Develop a Democratic Outlook)—शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य छात्रों एवं कर्मचारियों में श्रेष्ठ नागरिकता, धर्म-निरपेक्षता एवं समानता की भावना का विकास करना है। यह भावना प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण का विकास करती है तथा शिक्षण संस्थाओं के कार्यकर्ताओं में पारस्परिक सहयोग और स्वशासन का प्रशिक्षण प्रदान करती है। शिक्षा के नवीन उद्देश्यों, मूल्यों, आवश्यकताओं, सिद्धान्तों आदि के साथ सामंजस्य स्थापित करती है। इस प्रकार यह दृष्टिकोण शिक्षा सम्बन्धी नवीन उत्तरदायित्वों को स्वीकार करना तथा उनका उचित निर्वाह करने के लिये तैयार करता है ताकि शिक्षा की व्यवस्था सफल हो सके। प्रजातन्त्र के सन्दर्भ में **के. जी. सैयदेन** (K.G. Saiydain) महोदय का कथन है—"आज के युग में विद्यालय को प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार, चलाया जाना चाहिये। यदि यह दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया तो प्रशासन तथा निरीक्षण का महत्व ही समाप्त हो जाता है।"

2.2 : शैक्षिक प्रशासन का क्षेत्र
(SCOPE OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

शैक्षिक प्रशासन के विस्तार को देखते हुए इसे निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **कानूनी नियम व व्यवस्था (वैधानिक संरचना)** (Legal Rules and Regulations)—इसके अन्तर्गत शिक्षा के अभिकरण के अधिकार व कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को निर्धारित किया जाता है और

प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण किया जाता है। इस प्रकार प्रशासन से सम्बन्धित नियम, कानून, शर्तें व्यवस्थाएँ आदि को शैक्षिक प्रशासन में सम्मिलित किया जाता है।

2. **बाल-केन्द्रित व्यवस्था (बालक)** (Child Centered System)—आधुनिक शिक्षा में बालक पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिये, आज की शिक्षा बाल केन्द्रित शिक्षा कहलाती है। बाल केन्द्रित से अभिप्राय बालक के विकास के लिये की जाने वाली प्रक्रिया से है, अर्थात बालक के व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के उद्देश्य निर्धारित करना और बालक की रुचि, क्षमता, समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा की प्रक्रिया निर्धारित करना और प्रवेश, उन्नति, अनुशासन आदि के नियम बनाना व लागू करना शैक्षिक प्रशासन का क्षेत्र है। अत: शैक्षिक प्रशासन बालक की प्रगति, प्रवेश और अनुशासन के नियम बनाता है।

3. **कर्मचारी वर्ग (कार्मिक)** (Staff)—शैक्षिक व्यवस्था की सफलता अच्छे प्रशासन पर निर्भर करती है और अच्छे प्रशासन में कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कर्मचारी ही मानवीय व भौतिक ससाधनों को ध्यान में रखते हैं और उद्देश्य-प्राप्ति की ओर बढ़ते हैं। इसलिये, योग्य कर्मचारी की नियुक्ति, सेवा शर्तों का निर्धारण, प्रशिक्षण की व्यवस्था, वेतन, कल्याणकारी योजनाएँ, सेवामुक्ति सम्बन्धी लाभ उत्पादन को बढ़ाने हेतु अतिरिक्त बोनस देना आदि की व्यवस्था आवश्यक होती है, तभी शैक्षिक प्रशासन अच्छा शासन प्रदान कर सकता है। अत: सेवाकालीन प्रशिक्षण आदि प्रभावकारी कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिये।

4. **वित्तीय नियोजन** (Finance Planning)—इसके अन्तर्गत शिक्षा से सम्बन्धित नीतियाँ तथा विविध कार्यक्रम बनाये जाते हैं। इस हेतु सख्या सम्बन्धी आँकड़े एकत्र करना, भवन-निर्माण की योजना बनाना, आय-व्यय का लेखा-जोखा, अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार करना आदि कार्य आवश्यक है। शैक्षिक गतिविधि हेतु वित्त की व्यवस्था, स्टाफ का व्यय, भवन-निर्माण, मेण्टीनेन्स, बीमा, बजट बनाना आदि की व्यवस्था अच्छी होनी आवश्यक है। व्यवस्था अच्छी है तो कार्यक्रम भी अच्छे होंगे। अत: शैक्षिक प्रशासन वित्तीय साधनों का पता लगाता है और शैक्षिक लक्ष्यों की शर्तों हेतु उनका दोहन करता है।

5. **भौतिक व शारीरिक सुविधाएँ** (Substantial and Physical Facilities)—भौतिक सुविधाएँ—विद्यालय भवन, उपकरण, रखरखाव और भौतिक सुविधाओं की व्यवस्था शैक्षिक प्रशासन के द्वारा की जाती है। इसके साथ ही बालक के सर्वांगीण विकास हेतु खेलकूद सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, जैसे—खेल का मैदान, खेल-सामग्री, निर्देशन, स्वास्थ्य की जाँच कराना प्रशासन का दायित्व है।

6. **पाठ्यक्रम** (Curriculum)—शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने का माध्यम पाठ्यक्रम होता है और पाठ्यक्रम शैक्षिक प्रशासन से सीधा सम्बन्ध रखता है। शैक्षिक प्रशासन पाठ्यक्रम का निर्माण, आयोजन और परिवर्तन करता है। परिवर्तन के लिये वैज्ञानिक तकनीकी एव सामाजिक परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाता है और शैक्षिक कार्यक्रमों का मूल्याकन करके इसमें सुधार की व्यवस्था भी शैक्षिक प्रशासन द्वारा की जाती है। शैक्षिक प्रशासन द्वारा ही विषय-वस्तु की तैयारी, पुस्तकों का वितरण तथा अन्य सहायक सामग्री पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त भोजन, स्वास्थ्य सेवाएँ, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, निर्देशन, पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ आदि का आयोजन भी शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में ही निहित है।

7. **व्यापक जनसम्पर्क** (Comprehensive Public Relations)—शैक्षिक कार्यक्रमों के सचालन में अध्यापक, छात्र और अभिभावक मूल आधार हैं। इनके सहयोग के बिना कार्यक्रम सचालन सम्भव नहीं हो पाता है। इसलिये, व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान करने हेतु व्यापक जनसम्पर्क की आवश्यकता होती है। इसके लिये सूचना माध्यमों का सहारा लिया जाता है और विविध समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, टी. वी.

आदि के द्वारा जानकारी प्राप्त की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासन और समुदाय के मध्य दूरियाँ कम हो जाती है और निकटता बढ़ती है। परिणामस्वरूप सामुदायिक ससाधनों का उपयोग विभिन्न महत्वपूर्ण सेवाओं मे किया जा सकता है।

2.3 : शैक्षिक प्रशासन के प्रकार (TYPES OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

शैक्षिक प्रशासन के मूलत निम्नलिखित प्रकार है–

1. सर्वाधिकारयुक्त शैक्षिक प्रशासन (Totalitarian Educational Administration),
2. एकाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन (Autocratic Educational Administration),
3. प्रजातान्त्रिक शैक्षिक प्रशासन (Democratic Educational Administration).

2.3.1 सर्वाधिकारयुक्त शैक्षिक प्रशासन (Totalitarian Educational Administration)

इस प्रकार के शैक्षिक प्रशासन मे राज्य या देश को सर्वाधिकार प्राप्त होता है। राज्य, देशहित मे जो भी कार्य करता है या शैक्षिक नियमों/पाठ्यक्रमों को निर्धारित करता है, उसमें पूर्ण रूप से देश को सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। इसमें व्यक्ति के अथवा नागरिक के अथवा बालक के अधिकार सीमित होते है या गौण होते है। इस प्रकार के शैक्षिक प्रशासन का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना और उसे गति प्रदान करना, वर्गविहीन समाज का विकास करना होता है। इसका उद्देश्य समतामूलक शोषणमुक्त समाज का निर्माण करना है। इसमें शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र के हितों को सबल बनाया जाता है। राष्ट्र की सामूहिक आवश्यकता के अनुसार, शिक्षा की व्यवस्था और उसका नियोजन किया जाता है। इसमे अभिभावक या छात्र अपनी शिक्षा प्राप्त करने का स्वय निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र नहीं होते। चीन और रूस जैसे साम्यवादी देशों मे इस प्रकार की व्यवस्था है। यद्यपि इस प्रशासन का उद्देश्य, शोषणमुक्त, भ्रष्टाचारमुक्त, समता पर आधारित समाज का निर्माण करना है, परन्तु व्यावहारिक रूप से यदि देखा जाये तो इन समाजो मे भी ये समस्याएँ उपस्थित है, क्योंकि प्रशासन और सत्ताधारी अपने लाभ के लिए अन्य वर्ग के लोगों के अधिकारो का हनन करने से नहीं चूकते यह सत्ता और शक्ति का दुष्परिणाम है।

- "Administration is the comprehensive effort to direct, guide and integrate associated human strivings which are focussed toward some specific ends."

—**Ordway Teard**

2.3.1.1 सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन की विशेषताएँ (Characteristics of Totalitarian Educational Administration)–सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. यह शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध तथा नि शुल्क होती है।
2. सभी स्थानो पर एकसमान उपलब्ध एव अनिवार्य होती है।
3. शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक एकता, समता तथा सस्कृति के विकास को सुनिश्चित करना होता है
4. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।
5. विद्यालयों की शिक्षा को समाज एव राष्ट्र के हितो एव आवश्यकता को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है।

6. इस शिक्षा में धर्म, व्यक्तिगत रुचि एवं विकास को कोई स्थान नहीं है।

7. इसमें व्यावसायिक शिक्षा, राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा, भौतिक सम्पन्नता, वैज्ञानिक शिक्षा पर विशेष बल होता है।

8. यह शैक्षिक व्यवस्था परम्परागत नीतियों की व्यवस्था पर आधारित होती है। मौलिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह परिवर्तन की विरोधी है।

9. शिक्षकों एवं छात्रों की व्यावसायिक स्वतन्त्रता, रुचि, योग्यता को महत्व नहीं देती।

2.3.1.2 सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन के गुण (Merits of Totalitarian Educational Administration)–सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन के गुण निम्न प्रकार है–

1. राष्ट्र का हित सर्वोपरि होने के कारण, राज्य शिक्षा पर अधिक ध्यान देता है और प्रचुर मात्रा में धन का नियोजन शिक्षा में करता है।

2. समयानुसार शिक्षा–राज्य, राष्ट्र के हितों के अनुरूप नागरिकों का निर्माण करने में सक्षम होती है। देश का वाछित दिशा में विकास होता है।

3. अपव्यय/अवरोधन तथा धनाभाव जैसी समस्याओं से शिक्षा को बचाये रखना सम्भव रहता है।

4. सामाजिक एकता तथा समता के विकास से राष्ट्रीय शासन को स्थायित्व प्राप्त होता है।

5. छात्रों में राष्ट्रीय भावना का विकास होता है तथा वे स्वय को समाज तथा देशहित में समर्पित रखते है।

6. राष्ट्र की शक्ति का सदुपयोग होता है। देश का नियोजित विकास होता है।

2.3.1.3 सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन की हानियाँ (Demerits of Totalitarian Educational Administration)–सर्वाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन की कुछ हानियाँ भी है, जो इस प्रकार है–

1. बालक एव राष्ट्र का एकागी (केवल भौतिक) विकास ही हो पाता है।

2. बालक के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। यदि तन्त्र में उपर्युक्त लक्षणों के प्रति निष्ठा का अभाव हो तो समाज में असन्तोष एव विद्रोह पनपता है।

2.3.2 एकाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन (Autocratic Educational Administration)

इसमें शासन-सत्ता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। व्यक्ति नागरिक या बालक को गौण या द्वितीयक स्थान दिया जाता है। प्रशासन के कार्य शासक की इच्छा, नीतियो एव निर्णय के अनुसार ही होते है। इसमें तानाशाही की प्रवृत्ति कालान्तर में विकसित होने का खतरा रहता है। इसमें प्रशासन द्वारा जबरदस्ती/बलपूर्वक राष्ट्र-प्रेम, व्यक्ति-पूजा तथा अन्ध-भक्ति को थोपा जाता है। व्यक्तिगत विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

2.3.2.1 एकाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन की विशेषताएँ (Characteristics of Autocratic Educational Administration)–इसमें राज्य या देश के विकास को प्रमुख स्थान सैद्धान्तिक रूप से प्रदान किया जाता है जिससे देश का विकास अधिकतम होने की सम्भावना रहती है।

2.3.2.2 एकाधिकारणवादी शैक्षिक प्रशासन के दोष (Demerits of Autocratic Educational Administration)–इसके दोष निम्न प्रकार है–

1. शिक्षा का मशीनीकरण हो जाता है जिसमें शिक्षकों की नैतिक एव मानसिक शक्ति का पूर्ण सदुपयोग नहीं हो पाता। शिक्षकों में कुण्ठा एव कार्य के प्रति अनादर का भाव विकसित होता है।

2. यदि सत्ता का शीर्ष पदधारी निरकुश या एकागी व्यक्तित्व का है तो देश के लिए विकास की बजाय भ्रष्टाचार, निरकुशता तथा विद्रोह को बढ़ावा मिलता है।

3. जन-भावना शासन सत्ता देश के खिलाफ होने लगती है।

4. शैक्षिक कठोर नियन्त्रण के कारण बालक का स्वतन्त्र, स्वाभाविक, सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।

5. क्योंकि बालकों/नागरिकों के विकास से देश का विकास सीधे तौर पर सम्बन्धित होता है। इसलिए, यह देश के विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है।

6. इस प्रकार का प्रशासन तानाशाही या राजशाही व्यवस्था में देखने को मिलता है। इस्लामिक देशों जैसे–पाकिस्तान, इराक आदि में इसके परिणाम स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। भारत में भी स्वतन्त्रता पूर्व मुगलकालीन शिक्षा में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जहाँ धर्म, परम्परा, व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति के लिए अन्ध-भक्ति को प्रोत्साहन देने का कार्य किया जाता था। मुसलमानों की शिक्षा प्रगति की दर अभी भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, उसके पीछे भी इन प्रवृत्तियों को उत्तरदायी माना जाता है।

2.3.3 प्रजातान्त्रिक शैक्षिक प्रशासन (Democratic Educational Administration)

प्रजातान्त्रिक (Democratic) प्रशासन में राष्ट्रीय एवं व्यक्ति या बालक के या दोनों के विकास को महत्व प्रदान किया जाता है। लोकतन्त्रात्मक देशों में इसी प्रकार के शैक्षिक प्रशासन को प्रमुखता दी जाती है। यह प्रशासन व्यक्ति की स्वतन्त्रता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, मूल्य, आदर्श, परम्परा, विश्वबन्धुत्व, सद्भाव, परस्पर प्रेम आदि गुणों के विकास पर जोर देता है। यह सभी बालकों/व्यक्तियों/नागरिकों को उनकी क्षमता, रुचि, योग्यता के अनुसार, विकास करने के अवसर प्रदान करता है। यह एक आदर्श शैक्षिक प्रशासन है जिसमें व्यक्ति एवं समाज, नागरिक एवं देश का सन्तुलित विकास होता है। दोनों एक-दूसरे के लिए कार्य करते हैं। व्यक्ति से देश का विकास और देश या समाज के द्वारा व्यक्ति के विकास का प्रयास किया जाता है।

2.3.3.1 प्रजातान्त्रिक शैक्षिक प्रशासन की विशेषताएँ (Characteristics of Democratic Educational Administration)–प्रजातान्त्रिक प्रशासन की शैक्षिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं

1. शिक्षा सर्वसुलभ एवं जनसामान्य की पहुँच में होनी चाहिए।

2. शिक्षा में स्वतन्त्र रूप से सबको अपनी योग्यता, क्षमता को विकसित करने के अवसर मिलते हैं।

3. बालक के व्यक्तिगत विकास को प्रमुखता दी जाती है जिससे अभिभावक एवं समाज दोनों अपने-अपने स्तर से बालक को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, किन्तु बालक का स्वाभाविक विकास होता है न कि जबरन या बलपूर्वक। इसमें बालक की भी इच्छा सर्वोपरि होती है।

4. शिक्षकों को भी बालक के विकास के लिए पूर्ण सहयोग देने की स्वतन्त्रता होती है, केवल इस बात के साथ कि बालक एवं शिक्षक की स्वतन्त्रता देश के विकास एवं स्वतन्त्रता के विरुद्ध न हो।

5. शिक्षा प्रशासन देश, काल, परम्परा, संस्कृति, तत्कालीन आवश्यकता आदि को ध्यान में रखता है।

6. [illegible] शासनसत्ता, लोकसत्ता, समाज, व्यक्तिगत विभिन्नता को समान रूप से सम्मान [illegible]

7. पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियाँ लचीली होती है जिन्हे समय-समय पर शासन द्वारा, देश की आवश्यकता एव उपयोगिता को ध्यान में रखकर बदला जा सकता है।

8. शैक्षिक सगठनों, प्रशासनिक मशीनरी एव उच्च प्रशासन का विकेन्द्रीकरण होने से शक्ति का दुरुपयोग होने की आशका न के बराबर है।

2.3.3.2 प्रजातांत्रिक शैक्षिक प्रशासन के लाभ (Merits of Democratic Educational Administration)

1. प्रजातन्त्र के अन्तर्गत बालक स्वाभाविक रूप से अपने विकास के लिए स्वतन्त्र रहता है। फलत उनका विकास सहज, सरल, समरस एव समाज के प्राकृतिक वातावरण में धीरे-धीरे होता रहता है जिससे बालक को कोई दबाव या जबरदस्ती का अनुभव नहीं होता, बल्कि वह स्वय धीरे-धीरे सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक मान्यताओं, नियमों आदि को अपने जीवन का अग बना लेता है। इस प्रशासनिक व्यवस्था में देश, समाज एव व्यक्ति का समान रूप से विकास होता है।

2. प्रजातांत्रिक शिक्षा सहभागिता, सहयोग, स्वतन्त्रता को महत्व देती है जिससे मानवीय तत्वों को प्रोत्साहन मिलता है और देश तथा जनता में सामजस्य बना रहता है। दोनों के मध्य मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

3. व्यक्ति के सर्वांगीण विकास (शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक) को प्रमुखता दी जाती है जिसमे मानव का पूर्ण रूप से विकास होता है। पूर्ण मानव का विकास, एक स्वस्थ देश एव मानवता के लिए आवश्यक है जिसकी पूर्ति इस शैक्षिक प्रशासन से हो सकती है।

4. **'सभी की सन्तुष्टि'** इसकी प्रमुख विशेषता है। इसलिए, स्वतन्त्र देश के लिए इससे बेहतर अन्य कोई व्यवस्था नहीं हो सकती।

2.3.3.3 प्रजातांत्रिक शैक्षिक प्रशासन के दोष (Limitations or Demerits of Democratic Educational Administration)–इसके दोष निम्न प्रकार है–

1. इस प्रशासनिक व्यवस्था में देश के समग्र विकास की दर या गति अपेक्षाकृत मन्द होती है।

2. शिक्षा में निवेश की अपेक्षा प्रत्यक्ष परिणाम या लाभ कम दिखाई देता है या अधिक समय लगता है।

3. इसमें मानवीय शक्ति या ससाधनों का नियोजित या योजनाबद्ध विकास सम्भव नहीं हो पाता।

4. क्योंकि बालक तथा अभिभावक अपनी शिक्षा के लिए स्वतन्त्र होते है। अत उनका निवेश प्रमुखत लाभ के क्षेत्रों मे ही अधिक होता है। परिणामत किसी क्षेत्र का विकास अधिक एव किसी का कम हो पाता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. शैक्षिक प्रशासन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
3. शैक्षिक प्रशासन के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. सर्वाधिकारयुक्त शैक्षिक प्रशासन को स्पष्ट कीजिए।
2. एकाधिकारवादी शैक्षिक प्रशासन को स्पष्ट कीजिए।
3. प्रजातान्त्रिक शैक्षिक प्रशासन को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. शैक्षिक प्रशासन के उद्देश्य है—

(अ) शिक्षा को उत्पादन का साधन बनाना

(ब) शिक्षा को सुनिश्चित योजना और सुनियोजित रूप प्रदान करना

(स) प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण विकसित करना

(द) उपरोक्त सभी

उत्तर—(द)

अध्याय

3

शैक्षिक प्रशासन : सिद्धान्त एवं कार्य

[EDUCATIONAL ADMINISTRATION : PRINCIPLES AND FUNCTIONS]

3.1 : शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF EDUCATIONAL ADMINSTRATION)

शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. दायित्व की सहभागिता का सिद्धान्त (Principle of Sharing Responsibility)– लोकतन्त्रात्मक सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन दायित्व की सहभागिता के आधार पर कार्य करता है। वह नियन्त्रण और दायित्व का वहन न केवल अपने सहकर्मियो से करता है अपितु छात्रो के साथ भी करता है। स्कूल मे वह प्रत्येक मामले मे आगे रहने से सकोच करता है। वह कुछ शक्तियाँ अपने सहयोगियो को भी प्रदान करता है। वह विशेषज्ञ अध्यापको के निर्देशन मे स्कूल मे छात्र सरकार बनाता है। नेता तथा उसके अनुयायियो को इससे स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। वह अपने कार्य का बोझ इस प्रकार से काफी सीमा तक कम करने मे सफल होता है। स्टाफ और छात्र अपने आप को स्कूल से जोड़ने मे सफल होते हैं। इस प्रकार दायित्व की सहभागिता और कुछ नही केवल प्रबन्धन और प्रशासन की चिन्ताओ की भागीदारी है। जिम्मेदारी की सहभागिता को एक स्वस्थ सिद्धान्त इसलिए माना जाता है क्योकि इस बात का अनुभव किया जाता है कि अनेक दिमाग इकट्ठे मिलकर उस दिमाग से बेहतर कार्य कर सकते है जोकि अकेला है।

2. समानता का सिद्धान्त (Principle of Equality)–एक लोकतान्त्रिक सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक अध्यापको को सामाजिक रूप से अपने समान समझता है। वे उसके साथी है, सहकर्मी है, सह-वक्ता है तथा सहभागी है। लोकतन्त्र मे कोई अधीनस्थ नही होता। स्कूल चलाने मे, निर्णय लेने मे, वह सदा अपने सहयोगियो को विश्वास मे लेता है। वह अपने आप अकेला निर्णय नही लेता अपितु अपने सहयोगियो के साथ निर्णय लेता है। वह उन्हे दायित्व का अनुभव करवाता है। वह सम्पूर्ण अफसरी वृत्तियो पर अकुश रखता है। एक लोकतन्त्रात्मक अध्यापक आरम्भ से ही यह मान कर चलता है कि वह उस समूह का एक सदस्य है जोकि स्कूल के विकास के लिए काम कर रहा है तथा जिसमे समूह स्टाफ का

दायित्व होता है और स्वार्थ निहित है। इस प्रकार की प्रणाली मे स्कूल प्रबन्धक अपने उन सभी सहयोगियो को ऐसे बिन्दु पर ला सकता है जहाँ पर वे दायित्व निभाने के लिए तत्पर होते है।

3. **स्वतन्त्रता का सिद्धान्त** (Principle of Freedom)—स्कूल का लोकतन्त्रीय मुखिया अपने अध्यापको पर प्रतिबन्ध और निषेध नही लगाता अपितु वह उन्हे उनकी शक्तियो और प्रतिभाओ के प्रयोग की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। अध्यापको को कार्यान्वयन की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। लोकतान्त्रिक मुखिया अध्यापको को प्रश्न पूछने, आलोचना करने, तर्क करने तथा अपने दृष्टिकोण से भिन्नता रखने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करता है। जिस किसी विधि से भी वे चाहे कक्षाओ को पढ़ा सकते है। केवल अध्यापको को ही नही अपितु छात्रो को भी अपनी शक्तियो का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। मूल विचार यह है कि लोग उस समय अपनी पूर्णता पर होते है जब उन्हे अपनी शक्तियो और प्रतिभाओ के प्रयोग की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। व्यक्तियो द्वारा स्वतन्त्रता के वातावरण मे ही उपयुक्त निर्णय पर पहुँचने के लिए तार्किक विचार का विकास किया जा सकता है जो लोकतात्रिक शिक्षण विधि की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

4. **सहयोग का सिद्धान्त** (Principle of Co-operation)—सहयोग का सिद्धान्त लोकतात्रिक सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन का आधार है। स्कूल एक प्रकार की सहकारी सस्था है जिसमे प्रत्येक सदस्य को सबके लिए और सबको एक-दूसरे के लिए कार्य करना आवश्यक है। एक लोकतात्रिक मुखिया शैक्षिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए साझी सहायता तथा सहयोग की भावना से काम करने के महत्व पर बल देता है। स्कूल की प्रत्येक क्रिया मे सहयोग की भावना परिलक्षित होनी चाहिए। मुख्याध्यापक तथा अध्यापको, मुख्याध्यापक तथा छात्रो, मुख्याध्यापक तथा माता-पिता, मुख्याध्यापक तथा प्रबन्ध समिति, मुख्याध्यापक तथा निरीक्षक, अध्यापको तथा छात्रो, अध्यापको तथा माता-पिता मे सहयोग होना आवश्यक है। नीतियो का निर्णय, कार्यान्वयन तथा मूल्याकन सहयोगात्मक ढग से किया जाता है। स्कूल प्रशासन का लोकतात्रिक ढाचा समूह के सदस्यो से सहयोगात्मक अन्तर्क्रिया की आशा करता है।

5. **न्याय सिद्धान्त** (Principle of Justice)—लोकतात्रिक सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन स्कूल के मुख्याध्यापक की ओर से पूर्ण न्याय की आशा रखता है। लोकतात्रिक प्रबन्धन तभी सफल कहा जा सकता है जब मुख्याध्यापक सबके साथ न्याय करता है। लोकतात्रिक प्रबन्धन मे सबके साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है और उन्हे यथेष्ट महत्व प्रदान किया जाता है। उनकी योग्यता के अनुसार, उनका मूल्याकन किया जाता है। किसी प्रकार का अनुचित पक्षपात नही किया जाता। झगड़े के सम्पूर्ण मुद्दो को तत्परता तथा बुद्धिमानी से निपटाया जाता है। प्रत्येक अध्यापक निष्पक्षता का व्यवहार चाहता है। पक्षपातपूर्ण व्यवहार उन्हे खलता है और वे अपनी कार्यशीलता को मन्द कर देते है जब वे सोचते है कि अमुक को उनसे अधिक महत्व मिल रहा है अथवा मुख्याध्यापक के चहेते है। इसी प्रकार के अन्याय के मामले मे वह अपने सहकर्मियो का सहयोग खो बैठेगा। अन्याय निराशा और कुण्ठा का जनक है। नियमो तथा विनियमो से ऊपर कोई नही होता। स्कूल के मामलो के दक्षतापूर्ण प्रबन्धन के लिए स्कूल का लोकतात्रिक मुखिया स्वस्थ मनोबल का निर्माण करता है। हमारे स्कूलो की अधिकाश समस्याएँ तो तभी सुलझ जायेगी जब हम न्याय एव निष्पक्षता का महत्व समझ लेगे।

6. **वैयक्तिक योग्यता की पहचान का सिद्धान्त** (Principle of Recognition of Individual Worth)—पहचान की इच्छा और महत्वपूर्ण समझे जाने की कामना कार्य के मुख्य प्रेरक है। स्कूल सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन अध्यापको से अधिक कुशलता से कार्य सम्पादन करवा सकता है यदि वह उन्हे यह अनुभव करवा दे कि प्रशासन को उनमे विश्वास है और जो कार्य वे कर रहे है उसमे प्रशासन की आस्था है। अध्यापको और छात्रो मे यह इच्छा होती है कि उनके वरिष्ठ इस बात का अनुमोदन करे

कि जो कार्य वे कर रहे है उससे स्कूल का वास्तविक रूप से कल्याण होगा और वे अपना श्रेष्ठ योगदान दे रहे है। प्रत्येक व्यक्ति की गुणवत्ता अथवा श्रेष्ठता को उचित स्वीकृति प्रदान की जानी चाहिए।

7. **नेतृत्व का सिद्धान्त** (Principle of Leadership)—लोकतान्त्रिक सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन को प्रत्येक स्तर पर नेतृत्व चाहिए। स्कूल सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक मे भी नेतृत्व के गुण विद्यमान होने चाहिए ताकि अन्य उसका अनुसरण करे। उसमे स्टाफ, छात्रो, माता-पिता तथा समुदाय को उत्साहित करने, निदेशन, सचालन तथा नेतृत्व करने की क्षमता होनी चाहिए। जब कभी और जहाँ भी मतभेद उत्पन्न होते है, उसे उनका समाधान करना होता है, उसे एकात्मकता उत्पन्न करनी होती है और इस प्रकार स्टाफ, छात्रो तथा समुदाय की शक्तियो तथा प्रतिभाओ को स्कूल की बेहतरी के लिए कार्य मे लाना होता है। सगठन, प्रबन्धन एव प्रशासन मे नेतृत्व को आवश्यक माना गया है क्योकि इसके बिना समूह का कार्य आगे नही बढ़ सकता। जब नेतृत्व लोकतात्रिक विधि से कार्य करता है तो प्राधिकार का लोप हो जाता है और बिना किसी भय अथवा पक्षपात के मुक्त विचार-विमर्श होता है।

8. **समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Co-ordination)—यदि स्कूल मे लोकतन्त्र की सफलता निश्चित बनानी है तो सगठन, प्रबन्धक एव प्रशासक को समन्वय प्राप्ति का ज्ञान होना चाहिए। उसे स्टाफ के सदस्यो की गतिविधियो का समन्वय केबिनेट (Cabinet) के द्वारा अथवा नियोजन समिति अथवा प्रभाग परिषद (Faculty Council) द्वारा करना चाहिए। समन्वय का सिद्धान्त समस्त स्कूल प्रोग्रामो के लिए प्रकाश स्तम्भ अथवा मापनदण्ड के रूप मे प्रयोग किया जाना चाहिए।

9. **लचीलेपन का सिद्धान्त** (Principle of Flexibility)—स्कूल सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक को लचीला होना चाहिए। नीति मे परिवर्तन अथवा दृष्टिकोण मे परिवर्तन के लिए इसे सदा तैयार रहना चाहिए यदि इस प्रकार के परिवर्तन से बेहतर परिणामो की आशा हो। अच्छे परिवर्तन के लिए और परिवर्तन क्यो चाहिए, इस पर अडिग रहना चाहिए। एक लोकतात्रिक प्रबन्धक अपने कार्य मे कठोर दृष्टिकोण नही अपनाता। वह सदा परिवर्तन के लिए तैयार रहता है। विगत अनुभवो के सदर्भ मे वह अपनी कार्यविधि की योजना को सदा परिष्कृत करने के लिए तत्पर रहता है।

10. **कार्यकुशलता का सिद्धान्त** (Principle of Efficiency)—स्कूल सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक को स्टाफ के सदस्यो की रुचियो, योग्यताओ तथा प्रवृत्तियो को ध्यान मे रखकर कार्य का वितरण करना चाहिए। इसके द्वारा उसे उपयुक्त व्यक्ति, उपयुक्त स्थानो पर तथा उपयुक्त विधि से एव उपयुक्त समय पर नियुक्त करने मे सहायता मिलेगी।

11. **आशावाद का सिद्धान्त** (Principle of Optimism)—स्कूल सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक को अपने दृष्टिकोण मे मौलिक रूप से आशावादी होना चाहिए तथा अपनी नीतियो एव प्रणालियो मे सरचनात्मक होना चाहिए। उसे अपने प्रोग्रामो की प्रभाविता मे पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उसे निराशावाद तथा अविश्वास से ग्रस्त नही होना चाहिए। उसे सदेहशील नही होना चाहिए। वह जो कुछ करता है, उसमे उसे विश्वास होना चाहिए। आशावादी दृष्टिकोण के बलबूते पर ही दूसरे तहेदिल से आगे आएँगे और कार्य करेगे न कि बेदिली से।

12. **स्टाफ की वृत्तिक प्रगति का सिद्धान्त** (Principle of Professional Growth of the Staff)—सगठनकर्ता, प्रबन्धक एव प्रशासक की अधिकाश सफलता उसके सहयोगियो तथा अधीनस्थो की कुशलता पर निर्भर करती है। इसलिए, उसे अपने स्टाफ की वृत्तिक प्रगति मे रुचि लेनी चाहिए ताकि वे सफलतापूर्वक अपने कर्तव्यो का पालन कर सकें। वृत्तिक प्रगति एक सतत प्रक्रिया है। इसलिए स्टाफ

के सदस्यों की वृत्तिक प्रगति में वृद्धि करने हेतु विधियों एवं साधनों की खोज करते रहना चाहिए। अध्यापकों को ज्ञान में वृद्धि करने के अवसर प्रदान करते रहना चाहिए। इसे उन्हें कार्यशालाओं तथा सेमीनारों में भाग लेकर प्राप्त किया जा सकता है तथा विचार-विमर्श से समूहों का निर्माण करके तथा अध्यापकों के प्रयोग के लिए पुस्तकालय में पुस्तकों की पूर्ति करके पूर्ण किया जा सकता है। उन्हें नवीन विचारों तथा प्रयोगों को सीखने तथा प्राप्त करने के लिए सदैव तत्पर रखा जाना चाहिए। उन्हें पुरातन प्रवृत्तियों के साथ चिपटे रहने की इच्छा से छुटकारा दिलाना चाहिए तथा किसी भी सुधार का स्वागत करना चाहिए। उन्हें कार्यालय में शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध की जानी चाहिए तथा प्रभावी अनुवर्त कार्यक्रम के लिए प्रबन्ध होना चाहिए।

13. **सापेक्ष मूल्यों का सिद्धान्त** (Principle of Relative Values)—समस्त निर्णय सापेक्ष मूल्यों के आधार पर लिए जाने चाहिए। स्कूल का कल्याण अथवा बहुसख्यक छात्रों का कल्याण अत्यधिक महत्वपूर्ण निर्णायक कारक होना चाहिए। थोड़े कल्याण को अधिक कल्याण के सम्मुख घुटने टेक देने चाहिए।

3.2 : शैक्षिक प्रशासन के कार्य
(FUNCTIONS OF EDUCATIONAL ADMINSTRATIONS)

बी सीयर्स (B Sears) ने अपनी पुस्तक 'दी नेचर ऑफ दी एडमिनिस्ट्रेटिव प्रोसेस' *(The Nature of the Administrative Process)* में शिक्षा की प्रशासनिक प्रक्रिया के लिए पाँच क्रियाओं को आवश्यक माना है। वे इस प्रकार है—

1. नियोजन (Planning), 2. सगठन (Organization), 3. निर्देशन (Direction), 4. समन्वय (Co-ordination), 5. नियन्त्रण (Control)।

हेगमन ने उपर्युक्त घटकों में नायकत्व (Leadership), ध्येय आदि को जोड़ा है। अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ स्कूल एडमिनिस्ट्रेटर्स द्वारा प्रकाशित 'Yearbook' में शिक्षा की प्रशासनिक प्रक्रिया में निम्नलिखित कार्यकलापों को अति महत्वपूर्ण माना है—

1. नियोजन (Planning), 2. प्रावधान करना (Allocation), 3. उत्प्रेरण (Stimulation or Motivation), 4. समन्वय (Co-ordination), 5. मूल्याकन (Evaluation)।

विभिन्न विचारकों द्वारा बताये गये कार्यकलापों को सश्लेषित और विश्लेषित करने पर शिक्षा की प्रशासनिक प्रक्रिया में निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है—

1. निर्णयन (Decision Making), 2. नियोजन (Planning), 3. सगठन (Organization), 4. सम्प्रेषण (Communication), 5. निर्देशन करना (Directing), 6. समन्वयन (Co-ordination), 7. रिपोर्ट तैयार करना (Reporting), 8. बजट बनाना (Budgeting), 9. मूल्याकन (Evaluation)।

1. **निर्णयन** (Decision Making)—सभी सगठनों में किसी कार्य के सम्पादन या क्रिया के आयोजन के सम्बन्ध में निर्णय करना होता है। इन्हीं निर्णयों के आधार पर सगठन में विभिन्न क्रियाकलापों व गतिविधियों का सचालन होता है। विद्यालय-प्रशासन में प्रशासक को नित्यप्रति ऐसे निर्णय लेने होते है जो रूटीन टाइप के होते है। इन निर्णयों को लेने में उसे अधिक सोचना नहीं पड़ता है क्योंकि ये निर्णय पिछले निर्णयों या पिछली नीतियों या निर्धारित नियमों पर आधारित होते है, परन्तु प्रशासक को सर्वश्रेष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के लिए निर्णयन की प्रक्रिया में निम्न पदों को अपनाना चाहिए—

1. उद्देश्य व लक्ष्यों का स्पष्ट ज्ञान।

2 समस्या जिस पर निर्णय लिया जाना है से सम्बन्धित सूचनाएँ मत विचार आदि का सकलन।

3 सकलित तथ्यो आँकड़ो तथा सूचनाओ को विश्लेषित करना समझना तथा निर्णय लेना।

4 विश्लेषण तथा निर्णयन के आधार पर उपलब्ध विकल्पो का चयन करना।

5 सभी उपलब्ध विकल्पो का उद्देश्यो की पूर्ति के दृष्टिकोण से मूल्याकन करना।

6 उस विकल्प का चयन करना जो अधिक निश्चित ढग से उद्देश्यो या लक्ष्यो की प्राप्ति मे अर्थपूर्ण हो सकता है।

2. नियोजन (Planning)–नियोजन का सामान्य अर्थ किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए जाने वाले कार्य, उनकी कार्य-प्रणाली और सहयोगी व्यक्तियो एव परिस्थितियो तथा सहायक सामगी व वस्तुओ की एक सारगर्भित रूपरेखा बनाना है। इस प्रकार की रूपरेखा निर्धारित किये बिना कोई भी कार्य पूर्णत सफल नही हो सकता है। यदि किसी प्रकार का पूर्व-निर्धारण नही किया जायेगा तो लक्ष्य तक पहुँचने के पहले ही भटक जाने की सम्भावना अधिक रहेगी। शैक्षिक नियोजन–एक प्रगतिशील प्रक्रिया है। इसमे न केवल वर्तमान का ध्यान रखना होता है, वरन् भविष्य को भी दृष्टिगत रखना पड़ता है। योजना बनाने मे अतीत के निर्देशो एव अनुभवो से भी लाभ उठाना अनिवार्य है और व्यक्ति एव समाज या समुदाय अथवा सस्था-विशेष की आवश्यकताओ, सिद्धान्तो, आदर्शों तथा उसके साधनो आदि को भी ध्यान मे रखना पड़ेगा।

नियोजन करते समय कुछ ऐसी विचारणीय बाते है जिन्हे हम भुला नही सकते है यथा–

1 हमारे समक्ष नियोजन का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए, अर्थात् जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना बनाई जाय वह लक्ष्य पूर्णत स्पष्ट एव निश्चित हो।

2 उद्देश्य-निर्धारण के उपरान्त उसकी पूर्ति के लिए किए जाने वाले कार्यों की विस्तृत सूची बना लेनी चाहिए।

3 इसके साथ ही यह भी निश्चित करना चाहिए कि ये विविध कार्य किन प्रणालियो एव प्रविधियो द्वारा सम्पन्न किए जा सकते है।

4 इन प्रविधियो के निर्धारण के उपरान्त उसके कार्यान्वयन मे सहायक सामगी का चयन एव वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

योग्य प्रशासक को नियोजन करते समय ऊपर वर्णित विभिन्न बातो का समुचित समायोजन करना चाहिए। इतना सब कर लेने के उपरान्त योजना और उसके कार्य के मूल्याकन या परिणाम पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। यदि परिणाम लक्ष्य से न्यून या उसके विपरीत प्रतीत हो अथवा किन्ही अप्रत्याशित विभिन्न परिस्थितियो के कारण योजना मे बाद मे कोई परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत हो, तो योजना मे इतना लचीलापन अवश्य रखना चाहिए कि उसमे सशोधन, परिवर्तन अथवा परिवर्द्धन किया जा सके।

नियोजन करते समय यह तथ्य भी नही भुलाया जाना चाहिए कि योजना का आधार लोकतन्त्रीय हो जिसके अनुसार, उसके निर्माण के समय सहयोगियो को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने मौलिक विचारो को अभिव्यक्त करने का अवसर मिले।

ईलियट तथा **मेरिल** ने विद्यालय योजना के निर्माण मे अग्रलिखित बातो पर ध्यान देने के लिए बल दिया है–

1 विद्यालय की शैक्षिक आवश्यकताओ व उपलब्ध ससाधनो के सन्दर्भ मे उद्देश्यो का निर्धारण।

2. समुदाय-विशेष मे विद्यालय से अपेक्षाएँ तथा शिक्षा की आवश्यकता।
3. विद्यालय के विशिष्ट कार्यक्रमो तथा गतिविधियो का निर्धारण।
4. निर्धारित कार्यक्रमो की प्राप्ति हेतु कार्य इकाइयो का निर्माण जिससे लक्ष्यो की प्राप्ति हो सके।
5. सम्पूर्ण विमर्शित योजना को व्यवहार मे लाना।
6. सतत् रूप से किये जाने वाले व्यवहारो तथा कार्यों का मूल्याकन।
7. उपर्युक्त के आधार पर पुन नियोजन की सम्भावनाओ को ध्यान मे रखना।

3. **सगठन** (Organization)—प्रशासन मे सगठन मूलभूत कार्य है। **जे. बी. सीयर्स** का कथन है—"यह कार्य करने की एक मशीन है जिसका निर्माण व्यक्तियो, वस्तुओ, धारणाओ, प्रतीको, स्वरूपो, नियमो, सिद्धान्तो के द्वारा या प्राय इन सबके सयोग से हो सकता है। मशीन स्वत ही कार्य कर सकती है या इसका सचालन मानवीय निर्णय एव इच्छा के द्वारा किया जा सकता है। सगठन के अन्तर्गत दो प्रकार की अवस्थाएँ निहित है—मानवीय तथा भौतिक। मानवीय तत्वो का सगठन कक्षाओ, समितियो, शिक्षक-वर्ग, अन्य कर्मचारियो के वर्गों मे किया जा सकता है। भौतिक तत्वो के अन्तर्गत भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय एव अन्य शैक्षिक सामग्री आदि की सुव्यवस्था पर ध्यान दिया जाता है। इन दोनो तत्वो के अतिरिक्त विचारो, सिद्धान्तो एव धारणाओ से भी विद्यालय- पद्धतियाँ, पाठ्यक्रम, समय-तालिका आदि प्रभावित होती है। इस प्रकार सगठन द्वारा विभिन्न तत्वो को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है जिससे सम्पूर्ण कार्यक्रम को उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सरलता से क्रियान्वित किया जा सके।

सगठन के स्वरूप दो प्रकार के होते है—**प्रथम**—औपचारिक, **द्वितीय**—अनौपचारिक। औपचारिक सगठन मे कार्यकर्ता, सहायक, पर्यवेक्षक, अधिकारी आदि व्यक्तियो का एक पदानुक्रम होता है। वे अपने कार्य तथा दायित्व के आधार पर वरिष्ठ या अधीनस्थ की श्रेणी मे विभक्त रहते है। इनमे सगठनात्मक सम्बन्ध रहते है। इनमे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए आदेशो तथा सूचनाओ के आदान-प्रदान की सचार व्यवस्था रहती है।

अनौपचारिक सगठन मे व्यक्तियो के बीच अधिकार या कार्य के आधार पर सम्बन्ध नही होते। इनके बीच सम्बन्धो का स्वरूप व्यक्तिगत व व्यक्तित्व के आधार पर होता है। ये सम्बन्ध रुचि, कार्य अभिवृत्ति, विचार, विश्वास और मान्यताओ के आधार पर बनते है। **चेस्टर बरनार्ड** के अनुसार, "प्रत्येक औपचारिक सगठन मे अनौपचारिक सगठन व्याप्त रहता है। **प्रथम** (औपचारिक) उसकी व्यवस्था तथा सक्षमता के लिए और **द्वितीय** (अनौपचारिक) उसकी जीवन शक्ति के लिए आवश्यक होता है।"

4. **सम्प्रेषण** (Communication)—सम्प्रेषण वह व्यवस्था है जिसमे आदेश, सूचनाएँ, विचार, प्रश्न आदि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाये जाते है। औपचारिक सगठन मे इसका एक निश्चित स्वरूप होता है। सगठन मे दायित्व व पदो का जो क्रम होता है, उसके अनुसार, ही सम्प्रेषण की प्रक्रिया कार्य करती है। शाला मे सम्प्रेषण त्रिध्रुवीय होता है—1. ऊपर से नीचे की ओर, 2. समानान्तर तथा 3. नीचे से ऊपर की ओर। प्रथम मे सन्देश, सूचनाएँ, आदेश आदि उच्च अधिकारियो द्वारा अधीनस्थो तक प्रसारित किये जाते है। द्वितीय मे, शिक्षक-शिक्षक, कर्मचारी-कर्मचारी समान स्तर पर रहते हुए विचार को प्रसारित करते है। तृतीय मे, शिक्षको से प्राचार्य की ओर प्रेषित किये जाने वाले सन्देश, विचार, मत, सुझाव आदि आते है। अत सम्प्रेषण वह साधन है जिसमे सस्था या सगठन सगठित होता है।

5. **निर्देशन करना** (Directing)—निर्देशन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए जे. बी. सीयर्स ने लिखा है—"प्रशासन मे निर्देशन वह अग है जो निर्णय को प्रभावित करता है, कार्य करने के लिए सूचना देता है तथा इस बात का भी सकेत देता है कि कार्य को किस प्रकार करना है और इसको कब प्रारम्भ एव समाप्त करना है।"

"Direction in administration is the part that effects the decision, gives the signal to act, indicates what the action is to be and when it is to start and stop"

–**J. B. Sears** *The Nature of Administrative Process*

प्रशासन मे मार्गदर्शन या नेतृत्व ही आधार है। सफल नेतृत्व या पथ-प्रदर्शन के अभाव मे सम्पूर्ण योजना एव सगठन व्यर्थ हो जाता है। निर्देशन के अन्तर्गत तीन बाते महत्व की है–निर्णय करना उन निर्णयो को घोषित करना तथा निर्णयो को व्यवहार मे लाना। इस प्रकार निर्देशन सरल कार्य नही है। इसके लिए प्रशासक मे उच्च स्तर की योग्यता, ज्ञान, नेतृत्व-शक्ति, दूरदर्शिता, अनुभव विवेक आदि गुणो का होना परमावश्यक है। सफल सचालन के लिए मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता का होना बहुत आवश्यक है। यदि नेता मे इस गुण का अभाव है तो वह अपनी योजना का सचालन सफलतापूर्वक नही कर सकता है।

एक कुशल नेता को अपने साथियो के परामर्श से ही किसी विषय पर निर्णय लेना चाहिए। वह अपने विचारो को इनके सम्मुख ऐसे ढग से प्रस्तुत करे जिससे कि उसके साथी उन विचारो को दूसरे के विचार न मानकर अपने विचार समझे। इस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना ही सचालन की सफलता है।

6. समन्वय स्थापित करना (Co-ordination)–प्रत्येक सगठन मे दो प्रकार के ससाधन जुड़े होते है–भौतिक ससाधन तथा मानवीय ससाधन। भौतिक ससाधनो मे भवन, उपकरण, साज-सज्जा आदि आते है। मानवीय ससाधनो मे प्राचार्य एव अन्य अधिकारी, शिक्षक, कर्मचारी, छात्र आदि आते है। प्रशासन का सबसे बड़ा कार्य यह है कि इन ससाधनो की शक्तियो का इस प्रकार न्यायोचित, सार्थक तथा मितव्ययतापूर्ण प्रयोग करे जिससे सगठन के निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति हो सके। इसके लिए प्रशासन इनके मध्य आश्रितता और अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करे। इन ससाधनो के उचित समन्वय से प्रशासन श्रम एव शक्ति दोनो के अपव्यय एव पारस्परिक सघर्ष को रोकता है।

7. रिपोर्ट तैयार करना (Reporting)–शिक्षा-प्रशासन की प्रक्रिया मे रिपोर्ट तैयार करने का भी अपना महत्व है। शिक्षा प्रशासन को सगठन के सम्पूर्ण कार्य का अवलोकन करके उसके सम्बन्ध मे रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

8. बजट बनाना (Budgeting)–बजट बनाने के अर्थ को स्पष्ट करते हुए **डॉ. आर. सी. शर्मा** ने लिखा है कि शैक्षिक आवश्यकताओ की सूची बनाना तथा उन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कार्यक्रम तैयार करना और इन कार्यक्रमो को वित्तीय पदो मे अनुवादित करना ही बजट बनाना (Budgeting) कहलाता है।

9. मूल्यांकन (Evaluation)–मूल्याकन भी प्रशासन की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण तत्त्व है। कोई भी कार्य तब तक पूर्ण नही माना जा सकता है, जब तक उसके परिणामो का उचित प्रकार से मूल्याकन न कर लिया गया हो। मूल्याकन द्वारा हमे इस बात का ज्ञान होता है कि हमने निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति किस सीमा तक की है। इसके द्वारा हम यह भी जान लेते है कि अमुक कार्य मे क्या दोष है और किन कारणो से हम उसमे अभीष्ट सफलता प्राप्त नही कर सके। मूल्याकन के आधार पर हम अपने आगे के उद्देश्यो एव विधियो का निर्धारण कर सकते है। प्रशासन एक गतिशील प्रक्रिया है। इसलिए, इसमे निरन्तर प्रगति होनी चाहिए। प्रगति के लिए हमे अपने कार्य का समय-समय पर मूल्याकन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव मे हम अपने सगठन या सस्था को सर्वोत्तम स्वरूप प्रदान नही कर सकते है।

साराश रूप मे कहा जा सकता है कि शिक्षा प्रशासन मे शिक्षा-प्रक्रिया की समुचित व्यवस्था करना निहित है। इसके सचालन के लिए प्रशासक को प्रशासन प्रक्रिया के विभिन्न स्तरो पर ध्यान देना

परमावश्यक है। यदि वह शिक्षा प्रशासन की प्रक्रिया के इन स्तरो पर समुचित ध्यान नही देगा तो वह प्रशासन मे सफलता प्राप्त करने मे असमर्थ रहेगा। साथ ही शिक्षा प्रशासन की सफलता उसके नेतृत्व तथा निरीक्षण मे दक्षता आदि गुणो पर भी निर्भर करती है। चाहे उसकी योजना कितनी ही अच्छी क्यो न हो, जब तक वह उसको कार्यान्वित करने मे अपने सफल नेतृत्व का परिचय नही देगा और उसका समय-समय पर निरीक्षण नही करेगा तब तक वह सफल नही हो सकेगा।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1 शैक्षिक प्रशासन के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2 शैक्षिक प्रशासन की प्रक्रिया मे कार्यों को किस प्रकार किया जाता है? वर्णन कीजिए।
3 शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 शैक्षिक प्रशासन की प्रक्रिया मे सगठन किस प्रकार कार्य करता है? स्पष्ट कीजिए।
2 शैक्षिक प्रशासन मे बजट की प्रक्रिया किस प्रकार होती है? स्पष्ट कीजिए।
3 शैक्षिक प्रशासन के दो सिद्धान्तो को बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 शैक्षिक प्रशासन का सिद्धान्त है–
(अ) लचीलेपन का सिद्धान्त (ब) कार्यकुशलता का सिद्धान्त
(स) नेतृत्व का सिद्धान्त (द) उपरोक्त सभी **उत्तर**–(द)

2 दी नेचर ऑफ दी एडमिनिस्ट्रेटिव प्रोसेस' मे शिक्षा की प्रशासनिक प्रक्रिया के स्तर थे–
(अ) पाँच (ब) दो
(स) चार (द) एक **उत्तर**–(अ)

3 शैक्षिक प्रशासन मे सगठन होते है–
(अ) औपचारिक (ब) अनौपचारिक
(स) (अ) व (ब) दोनो (द) इनमे से कोई नही। **उत्तर**–(स)

■■

अध्याय

4

शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त एवं शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन में अन्तर

[THEORIES OF EDUCATIONAL ADMINISTRATION AND DIFFERENCES BETWEEN EDUCATIONAL ADMINISTRATION AND MANAGEMENT]

4.1 : शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त (THEORIES OF EDUCATIONAL ADMINSTRATION)

शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्त निम्नलिखित है–

4.1.1 फ्रेडरिक टेलर का सिद्धान्त (Theory of Frederick Taylor's)

शैक्षिक प्रशासन का सिद्धान्त देने वालो मे से फ्रैडरिक विनसलो टेलर का सिद्धान्त प्रमुख है। फ्रैडरिक टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त दिया। उन्होने अपने सिद्धान्त मे कुछ तथ्य बताये। जो निम्नलिखित है–

1. वैज्ञानिक ढाँचा न कि अँगूठे का नियम–टेलर के अनुसार, वैज्ञानिक प्रबधन मे सगठनात्मक ज्ञान के आधार पर कर्मचारियो के कार्य, निष्पादन कार्य मे लगने वाले समय तथा वेतन का मापन होना चाहिये न केवल अनुमान के आधार पर।

2. समूह क्रियाओं में समन्वय न कि स्वच्छन्दता–टेलर के अनुसार, समूह के समस्त सदस्यो को अपनी समन्वय भाव का 'give and take' के आधार पर प्रयास करना चाहिये।

3. संसाधनों का उचित प्रयोग–टेलर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने हेतु निचले स्तर की अकुशलता एव अपव्यय को समाप्त कर ससाधनो के अधिकतम सम्भावित उपयोग पर जोर देते है।

4. प्रदर्शन आधारित वेतन व्यवस्था–टेलर अपने सिद्धान्त मे कर्मचारी कल्याण व उत्पादन कुशलता दोनो को समान महत्व देते थे। उत्पादन बढ़ाने के लिये वे प्रदर्शन आधारित वेतन व्यवस्था अपनाने पर जोर देते थे।

4.1.1.1 टेलर के सिद्धान्त के मुख्य तत्व (Essential Elements of Taylor's Theory)

1. वैज्ञानिक क्रिया नियोजन (Scientific Task Planning)–वैज्ञानिक क्रिया, कार्य की वह मात्रा है, जिसे एक औसत कर्मचारी एक सामान्य कार्य परिस्थिति मे प्रदर्शित कर सकता है। अत प्रबधन द्वारा कौन-सा कार्य कब, कहाँ, कैसे और किसके द्वारा किया जाना है, पहले से ही निश्चित कर लेना

चाहिये। वैज्ञानिक क्रिया का अतिम लक्ष्य यह देखना है कि कार्य तार्किक क्रम मे अधिकतम कुशलता का प्रसार करने वाला होना चाहिये।

2. **समय एव गति अध्ययन** (Time and Motion Studies)—टेलर द्वारा समय एव गति का अध्ययन कर, इस विचार को ध्यान मे रखते हुए जोर दिया गया है कि कार्य के समय तथा अनुत्पादक क्रियाओ मे कमी लायी जा सके। एक कार्य को करने मे श्रमिको के द्वारा लिये जाने वाले समय को रिकॉर्ड कर, उस आधार पर एक समय मानक का विकास किया जाये। समय मानक वह समय काल है, जिसमे एक औसत श्रमिक एक कार्य को पूरा करने मे लेता है। गति अध्ययन एक कार्य को करने के लिये की जाने वाली विभिन्न गतियो मे से एक उत्तम गति क्रम का चयन करने के लिये किया जाता है।

3. **मानकीकरण** (Standardization)—वैज्ञानिक प्रबन्धन के अन्तर्गत कार्य, सामग्री, क्रिया-विधि, गुणवत्ता, समय लागत एव कार्य-दशा आदि के लिये पहले से ही मानक तय कर लिये जाने चाहिये। मानकीकरण उत्पादन प्रक्रिया को सरल बनाने के लिये ससाधनो के अनावश्यक दुरुपयोग को कम करने एव कार्य की गुणवत्ता मे सुधार आदि मे सहायक होता है।

4. **भिन्नात्मक वेतन व्यवस्था** (Differential Piece Rate System)—कर्मचारियो को प्रेरित करने के लिये वैज्ञानिक प्रबन्धन मे भिन्नात्मक वेतन व्यवस्था को अपनाया गया। अर्थात् वेतन कार्य उत्पादन के अनुसार, देने की अनुशशा की गई। **टेलर** के अनुसार, "कर्मचारियो के प्रदर्शन स्तर के आधार पर वेतन निर्धारित किये जाने चाहिये। इस व्यवस्था मे एक कर्मचारी जो समय सीमा मे एक सामान्य कार्य को पूरा करता है, उसी समय सीमा मे दूसरे कर्मचारी द्वारा कार्य न पूरा करने की दशा मे पहले कर्मचारी को तुलनात्मक रूप मे अधिक ऊँची दर से वेतन दिया जाना चाहिये। इस प्रकार समान कार्य करने वालो के वेतन मे उनके प्रदर्शन के अनुरूप अन्तर रखा जाना चाहिये।"

5. **प्रकार्यात्मक विशेषज्ञों का उपयोग** (Functional Foremanship)—उत्तम उत्पादन नियत्रण प्राप्ति के दृष्टिकोण से टेलर ने प्रकार्यात्मक विशेषज्ञो के उपयोग की नीति अपनाने की बात की। उनके अनुसार, विभिन्न घटको मे विभाजित उद्यम मे प्रत्येक इकाई उस कार्य विशेष से सम्बन्धित विशेषज्ञ के नेतृत्व मे क्रियान्वित की जानी चाहिये। ये विशेषज्ञ अपने क्षेत्र मे नियोजन क्रिया का प्रयोग करते है और कर्मचारियो को अपनी विशेष सलाह देते है। साथ ही कर्मचारियो से यह आशा की जाती है कि वे विशेषज्ञ की सलाह मानकर तथा अनुशासन मे रहकर क्रिया करे।

4.1.1.2 आलोचना (Criticism)—टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की निम्न कमियो के आधार पर आलोचना की जाती है—

1. वैज्ञानिक प्रबन्धन को दो उद्देश्य—कर्मचारी उत्पादन मे वृद्धि, कर्मचारियो के आर्थिक कल्याण मे सुधार पर आधारित होती है। यह प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति मे तो सफल रहता है, परन्तु प्रबन्धन द्वारा बढ़ी हुई उत्पादकता का लाभ कर्मचारियो के मध्य न बाँटने के कारण द्वितीय उद्देश्य की प्राप्ति मे असफल रहता है।

2. प्रतिदिन कर्मचारियो द्वारा एक ही प्रकार की क्रिया कराये जाने एव निरन्तर कार्य मे लगे रहने के कारण कर्मचारियो को एक मशीनी यत्र के रूप मे देखा जाने लगता है। यह मानवीय पक्ष का सही अदाज करती है।

3. वैज्ञानिक प्रबन्धन, कर्मचारियो द्वारा मशीनो की तरह कार्य करने एव भिन्नात्मक वेतन व्यवस्था के कारण अमानवैज्ञानिक माना जाता है।

4 यह सिद्धान्त असामाजिक है क्योकि कर्मचारी केवल आर्थिक यत्र के रूप मे प्रयोग मे लाये जाते है।

उक्त आलोचनाओ के बावजूद टेलर द्वारा दिया गया वैज्ञानिक प्रबन्धन का सिद्धान्त, प्रबन्धन के क्षेत्र मे एक विशिष्ट स्थान रखता है। क्योकि सर्वप्रथम इसी सिद्धान्त द्वारा कार्य नियोजन वैज्ञानिक विधियो के प्रयोग, समय, गति, अध्ययन नियोजन का कार्यान्वयन मे पृथक्कीकरण, कठोर अनुशासन कर्मचारियो के सकारात्मक प्रयासो को पुरस्कृत करना आदि प्रत्ययो का प्रयोग कर नियमबद्ध व अनुशासित प्रबन्धन की शुरुआत हुई।

4.1.2 लूथर गुलिक का सिद्धान्त (Theory of Luther-Gullick)

लूथर गुलिक ने सन् 1937 मे "Papers on the Science of Administration" नामक पुस्तक का सपादन किया जो प्रशासन के नियमो पर सर्वाधिक प्रभावशाली कृति है। उनहोने प्रशासन के सात कार्य बताये। इन कार्यो के लिये "POSDCORB" (पोस्ट कोर्ब) शब्द का प्रयोग किया। इस चिह्न का प्रत्येक शब्द प्रशासन के कार्यों का सबोधन करता है। ये कार्य निम्नलिखित है–

1. **नियोजन** (P-Planning)–यह किसी सघ का एक प्रमुख एव सर्वोपरि कार्य है। नियोजन का अर्थ होता है निर्धारित लक्ष्यो कि प्राप्ति हेतु उपलब्ध वैकल्पिक नीतियो, विधियो, एव कार्यक्रमो मे से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना है।

2. **सगठन** (O-Organizing)–इसके अतर्गत नियोजन को कार्य रूप मे परिणित करने के लिये क्रियाओ का निर्धारण करना, उन्हें विभिन्न भागो मे विभक्त करना, विशिष्ट व्यक्ति समूह का सौपना तथा उनके मध्य पारस्परिक सबधो को परिभाषित करना आदि सभी शामिल है।

3. **नियुक्तियाँ** (S-Staffing)–स्टाफिग से तात्पर्य प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियो के क्रियान्वयन हेतु योग्य एव कर्मठ व्यक्तियो की नियुक्ति से है। इसके अतर्गत पदाधिकारियो/कर्मचारियो का चयन, उनकी भर्ती, मूल्याकन एव प्रशिक्षण शामिल है जिससे कि कार्य शक्ति सस्था/सगत के उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहयोग दे सके तथा कार्य निष्पादन के दौरान अधिकतम सतोष प्राप्त हो सके।

4. **निर्देशन** (D-Directing)–निर्देशन से आशय नियत सिद्धान्त एव नीतियो के अनुसार, किसी कार्य के क्रियान्वयन की समुचित देखभाल करना ही निर्देशन कहा जाता है। इसके अतर्गत आदेश देना, निरीक्षण करना, मार्गदर्शन, अभिप्रेरित करना आदि शामिल है।

5. **समन्वय** (C-Coordinating)–यह प्रशासन का वह कार्य है जो किसी सगठन के विभिन्न विभागो, सदस्यो तथा उनके समूहो मे इस प्रकार एकीकरण स्थापित करता है की न्यूनतम लागत पर वाछित उद्देश्यो की प्राप्ति की जा सके।

6. **रिपोर्ट तैयार करना** (R-Reporting)–इसके अतर्गत प्रशासक अपने सगठन मे हुये कार्यों या उसकी उपलब्धियो का विवरण तैयार करता है तथा अपने उच्चाधिकारियो को इसकी जानकारी समय–समय पर देता रहता है।

7. **बजट बनाना** (B-Budgeting)–इसके अतर्गत एक निश्चित समय सीमा के अतर्गत राजस्व तथा खर्चों का लेखा–जोखा तैयार किया जाता है।

4.1.2.1 प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनायें (Criticisms of Administrative Theory)–प्रशासनिक विचारधरा के अनुयायियो ने ही सर्वप्रथम प्रशासन को एक प्रक्रिया के रूप मे बताया। इस विचारधारा ने सभी सगठनो पर लागू होने वाले सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया। ये नियम आज भी सार्थक है, परन्तु इसकी आलोचना अगलिखित बिन्दुओ पर हुई है–

(i) यह विचारधारा प्रशासन के सिर्फ उच्च स्तरो पर ही ध्यान देती है।

(ii) यह सिर्फ सगठन के औपचारिक स्वरूप की व्याख्या करती है।

(iii) व्यवहारवादियों ने इसे यान्त्रिक बताते हुये कहते है कि इसमे मानवीय पहलुओ को नकार दिया गया है। यह विचारधारा मानव रहित सगठन की कल्पना करती है।

(iv) यह किसी सगठनात्मक व्यवहार की गत्यात्मकता की व्याख्या नही करती है।

(v) यह पर्याप्त सत्यापन के बिना ही सर्वव्यापी नियमो पर बल देती है।

(vi) यह किसी सगठन को बद व्यवस्था के समान समझती है।

4.1.3 मानवीय सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Human Relations)

मानवीय सम्बन्ध से आशय किसी सगठन मे कार्यरत कर्मचारियो के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनके हितो को सामान्य हितो के साथ एकीकृत करने से है। यह विचारधारा मानव को सिर्फ उत्पादन का साधन न मानकर उनके साथ मानवीय आधार पर व्यवहार करने पर बल देती है। प्रशासन सम्बन्धी विश्लेषण का यह दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित है कि किसी प्रशासक का प्रमुख कार्य लोगो के साथ तथा उनके द्वारा काम करवाना है। अत किसी सगठन मे परस्पर वैयक्तिक सबधो का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए।

(i) मेयर—मानवीय सबध, व्यक्तियो के साथ व्यक्तिगत एव सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।

(ii) जोसेफ एल मेसी—मानवीय सबध, अभिप्रेरणा की प्रक्रिया है जो उद्देश्यो मे सतुलन स्थापित करती है तथा जिसका लक्ष्य अधिकतम मानवीय सतुष्टि प्राप्त करना तथा सगठन के उद्देश्यो की पूर्ति व सहयोग करना होता है।

(iii) रोबर्ट साल्टन स्टाल—कार्यरत व्यक्तियो का अध्ययन ही मानवीय सबध है।

उपर्युक्त सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि मानवीय सबध किसी सगठन मे कार्य करने वाले व्यक्तियो का अध्ययन करता है। इसका उद्देश्य व्यक्तियो के व्यवहार को समझना, मानवीय आवश्यकताओ की पूर्ति द्वारा सतुष्टि प्रदान करना है ताकि वे सगठन को अपने लक्ष्यो की प्राप्ति मे सहयोग दे सके।

कार्य क्षमता को ही महत्त्व देने वाला सप्रदाय मानव को केवल यत्र ही मानकर चलता था इसके विरोध मे इस सप्रदाय का जन्म हुआ इसके लेखको मे मेरी पार्कर फोलेट 1940 तथा एल्टन मेयो 1939–45 तथा क्रित्ज रोथिलिसबर्जर एव डिक्सन 1939 का नाम प्रमुख है।

मेरी पार्कर फोलेट के अनुसार "प्रशासन की श्रेष्ठता तभी मानी जाती है जबकि सभी मतभेद बातचीत तथा सहयोग से सुलझाए जाते है।"

मानवीय सबधो पर बल देने वाले सप्रदाय के विद्वानो के अनुसधान के निष्कर्ष यह थे कि सगठन की अधिकाश समस्याओ का समाधान मानवीय सबधो मे नीहित है ना कि तकनीकी प्रक्रिया मे पुन मेयो तथा उसके सहयोगियो ने भौतिक कारको की तुलना मे मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारक अधिक महत्वपूर्ण पाए गए। इस सप्रदाय के अनुसार सगठन के लक्ष्य और उद्देश्यो के साथ-साथ सगठन मे कार्य करने वाले व्यक्तियो की आवश्यकता की पूर्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण मानी जानी है सगठन के सभी कार्यों मे चाहे व नीति निर्धारण का हो अथवा योजना निर्माण कार्यकर्ताओ की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है।

मानवीय सबधो पर आधारित जनतत्रीय प्रशासन मे **याच** (1949) ने शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र मे निम्नलिखित सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है–

1 जनतंत्र मुख्यत मानवीय सबधो पर आधारित है। यह शिक्षको और विद्यार्थियो के साथ कार्य करने मे मुख्य रूप से ध्यान मे रखा जाना चाहिए।

2 मानवीय सबधो की एक छोटी-सी समस्या भी व्यापक आधार रखती है।

3 सामान्य विद्यालय जनतत्रीय कार्य के लिए स्वाभाविक एव आदर्श इकाई होती है।

4 प्रधानाध्यापक सकाय को देने की दृष्टि से सबसे आदर्श स्थिति मे होता है।

5 अच्छे परिणामो के लिए सकाय के जटिल सामाजिक समूह के साथ कार्य करने मे प्रशासक को अधिक कुशलता के साथ व्यवहार करना चाहिए।

6 प्रधान का प्रमुख दायित्व समूह मे परस्पर व्यवहार के अवसर प्रदान करना है।

7 उन व्यक्तियो को जो निर्णय से प्रभावित हो निर्णय प्रक्रिया मे सम्मिलित करना आवश्यक है।

बाद के अनुसधान इस निष्कर्ष पर पहुचे कि मानवीय सबधो पर विशेष बल यथा निर्णय प्रक्रिया मे सहभागिता, प्रशासन के विकेंद्रीकरण, अधिकारो के विकेंद्रीकरण आदि का परिणाम विपरीत होता है। **मेकनायर** 1957 तथा **हिटे** 1959 ने इसे काफी कमजोर दृष्टिकोण बताया जिससे सगठन विपरीत रूप से प्रभावित होता है। कुछ अन्य अनुसधानकर्ताओ जैसे वुगस 1959 ने पाया कि आवश्यक नही कि अच्छे मानवीय सबधो से मनोबल ऊँचा रहे तथा उत्पादन ऊँची ही हो। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि जिस तरह केवल अधिक दक्षता पर सगठन के लक्ष्यो को प्राप्त करना सभव नही है ठीक उसी प्रकार के मानवीय हितो की चिंता करके सगठन के लक्ष्यो को तिलाजलि देना भी उचित नही हो सकता है। दोनो दृष्टिकोण मे समन्वय हो जिससे व्यक्तित्व सगठन दोनो के लक्ष्यो की पूर्ति हो दोनो मे सामजस्य हो तभी प्रभावी प्रशासन कहा जा सकता है।

4.2 : प्रबन्धन की अवधारणा (CONCEPT OF MANAGEMENT)

उद्योग, व्यापार तथा शिक्षा जैसे क्षेत्रो मे प्रबन्धन का अपना महत्व है। प्रबन्धन के द्वारा समस्त मानवीय एव भौतिक ससाधनो की व्यवस्था तथा उनका अधिकतम उपयोग किया जाता है। इससे कार्यप्रणाली मे गति आती है, ससाधनो का मितव्ययतापूर्ण उपयोग होता है तथा उद्देश्यो की पूर्ति सहजता के साथ हो जाती है। प्रबन्धन ही वह तत्व है जिसके द्वारा हम पूर्व-निर्धारित लक्ष्यो को कम-से-कम समय तथा परिश्रम के साथ प्राप्त कर सकते है। उद्योगो मे प्रबन्धन को इसी अर्थ मे लिया जाता है किन्तु डेविस ने इसका प्रयोग उद्योगो से लेकर शिक्षण तथा अधिगम के क्षेत्र मे भी किया। इस प्रकार प्रबन्धन या व्यवस्था प्रत्यय का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ। प्रबन्धन के द्वारा शिक्षण तथा अधिगम के लिये न केवल मानवीय तथा भौतिक ससाधनो की व्यवस्था भी की जाती है अपितु उनमे इस प्रकार परस्पर समन्वय किया जाता है जिससे वाछित उद्देश्यो की सहज ही प्राप्ति हो सके।

प्रबन्धन के द्वारा ही हम विभिन्न अधिकारियो तथा व्यक्तियो के उत्तरदायित्व तथा उनके स्थिति-क्रम (Hierarchy) का निर्धारण भी करते है। प्रबन्ध किसी भी सगठन – चाहे वह औद्योगिक जगत से सम्बन्धित हो या शिक्षा-जगत से – का मस्तिष्क कहलाता है। यही नीति-निर्धारण का कार्य करता है तथा उनके क्रियान्वयन की व्यवस्था करता है। यही भविष्य के लिये योजना निर्माण का भी कार्य करता है। कहा भी गया है कि "प्रबन्धन सतत् निर्णय-निर्माण मे लगा रहता है तथा उनके क्रियान्वयन के प्रयास करता है।"

"Management of any organisation takes decisions continuously and that the decisions are implemented to achieve the goals."

शिक्षा के क्षेत्र मे जब से तकनीकी (Technology) का प्रवेश हुआ है तब से शिक्षा के क्षेत्र मे प्रबन्धन का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। फलत: प्रबन्धन में अब शिक्षा के कार्यों तथा क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाने लगा है। **स्काट** के अनुसार, विवादों को (To minimise the conflicts) ही प्रबन्धन का अन्तिम उद्देश्य है। प्रबन्धन के द्वारा निरस्त किया जाता है। नियोजन के कारण हम शिक्षण मे अनिश्चितता तथा अस्पष्टता को दूर कर तथा उद्देश्यो मे स्पष्टता तथा सोद्देश्यता लाते है। इससे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अधिक उद्देश्यपरक बनती है। शिक्षक एक नेता होता है। प्रबन्धन हमे नेता के कार्य, गुण तथा अवगत कराता है। प्रबन्धन से नेता की कार्य-दक्षता में वृद्धि होती है। "प्रबन्धन मे केवल शामिल नही है अपितु इसमें वैज्ञानिक चिन्तन, व्यवस्थापन, दिशा-निर्देशन तथा नियन्त्रण शामिल होते है।"

"Managing is no more restricted to the more exercise of authority involves scientific thinking and deciding and thoughtful organisation, direction control to ensure better results."

सक्षेप में, इस प्रकार हम कह सकते है, कि प्रबन्धन—नियोजन, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित होता है।

"Management is mainly concerned with planning, execution and review."

कुछ विद्वान प्रबन्धन को दूसरो से कार्य कराने की कला (The art of getting things done through others) मानते है। यह प्रबन्धन की अत्यन्त ही सकीर्ण एव अपर्याप्त परिभाषा है।

हेरोल्ड सोन्ट्ज (Harold Koontz) के अनुसार, "प्रबन्धन औपचारिक रूप से गठित समूहो से कार्य कराने की कला है। यह ऐसा वातावरण निर्मित करने की कला है जिसमें भावना के साथ व्यक्तिगत स्तर पर उत्तम कार्य सम्पादित करता है। यह कार्य-प्रणाली मे हटाकर उद्देश्य प्राप्ति के लिये अधिकतम दक्षता वृद्धि करने की कला है।"

"Management is the art of getting things done through and with people in organised groups. It is the art of creating an environment in which people can as individuals and yet cooperate towards attainment of group goals. It is the removing blocks to such performance, a way of optimizing efficiency in goals."

मैकफारलैण्ड (McFarland) के अनुसार, "प्रबन्धन आधारभूत समन्वय तथा सहकार जिसमे सगठित प्रयास सम्मिलित रहते है।"

"Management is the fundamental integrating and operating mechanism of organised efforts."

जार्ज टेरी (George Terry) के अनुसार, "पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए मानव तथा अन्य ससाधनो का उपयोग करने की सुनिश्चित प्रक्रिया है।"

"Management is a distinct process performed to determine and accomplish objectives by the use of human beings and the resources."

4.3 : प्रबन्धन की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF MANAGEMENT)

उपरोक्त परिभाषाओं तथा प्रबन्धन की व्याख्या का विश्लेषण करने पर हम पाते है कि प्रबन्धन में
यलिखित विशेषताएँ प्रमुख रूप से उभरकर आती है–

1. प्रबन्ध सोद्देश्य प्रक्रिया है (Purposeful Process)—प्रबन्धन एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। प्रबन्धन
ा कोई-न-कोई उद्देश्य होता है। इसका उद्देश्य सरल, सुगम तथा प्रभावी रूप से किसी कार्य को
र्व-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना है। प्रबन्धन का अस्तित्व इसलिये है क्योंकि यह वांछित उद्देश्यों की
प्ति का प्रभावी साधन है।

2. प्रबन्धन से कार्य की सफलता बढ़ती है (Brings Success of Actions)—प्रबन्धन का
न्द्र बिन्दु सफल कार्यों का आयोजन करना है। प्रबन्धन की सहायता से यह जानना सरल होता है कि
हाँ से कार्य प्रारम्भ किया जाये, कौन से ससाधन जुटाये जायें, उनका सर्वोत्तम उपयोग कैसे हो तथा
ार्यों को सफलता कैसे मिले ?

3. सार्वभौमिकता (Universality)—प्रबन्धन मे सार्वभौमिकता होती है। यही कारण है कि प्रत्येक
श, समाज, परिवार तथा उपक्रम मे किसी-न-किसी रूप मे प्रबन्धन की आवश्यकता पड़ती है।

4. यह समन्वित प्रक्रिया है (It is an Integrative Process)—प्रबन्धन का मूल मन्त्र सभी
नवीय एव भौतिक ससाधनों का इस प्रकार समन्वय (Integration) करना है कि उससे अधिकतम
रिणाम प्राप्त हो सकें। ये सभी ससाधन प्रबन्धकर्ताओं को उपलब्ध कराये जाते है। प्रबन्धकर्ता अपने
ान, अनुभव, शिक्षा तथा दर्शन का प्रयोग कर कार्य-सम्पादन कराते है।

5. प्रबन्धन क्रिया आधारित होता है (Activity Based)—प्रबन्धन क्रिया-आधारित होता है।
बन्धन मे प्रबन्धकर्ताओं को विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित विविध कार्य करने होते है। प्रबन्धक-मण्डल ही
भिन्न कर्मचारियों से इन कार्यों को सम्पादित कराता है। प्रबन्धक-मण्डल ही उपक्रम के समस्त कार्यों
लिये उत्तरदायी होता है।

6. प्रबन्धन बहु-आयामी होता है (Inter-Disciplinary)—प्रबन्धन का कोई एक क्षेत्र नहीं होता
। प्रबन्धन के अनेक क्षेत्र, कार्य तथा आयाम होते है। प्रबन्धन मे ही मानवशास्त्र, समाजशास्त्र,
ोविज्ञान, विज्ञान तथा ऐसे ही अन्य विषयों के सिद्धान्तों का प्रयोग करना पड़ता है।

4.4 : शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ (MEANING OF EDUCATIONAL MANAGEMENT)

शैक्षिक प्रबन्धन या शिक्षा मे प्रबन्ध वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति
लिए ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जाती है जिनमे मानवीय ससाधन अपनी योग्यता तथा क्षमता का
र्शन कर सकें। शिक्षा मे प्रबन्ध शिक्षा का [illegible] अग है। शिक्षा दर्शन शिक्षा के [illegible]
रता है। शिक्षा मनोविज्ञान, अध्ययन एव [illegible] के सिद्धान्तों का स्थिर करता है। [illegible]
म्बन्धित बातों को कार्यरूप मे [illegible] प्रबन्धन एक [illegible] है [illegible]
या संस्थाओं के सचालन हेतु शैक्षिक [illegible] अत्यन्त आवश्यक है। [illegible]
र मे व्यवस्था की यह प्रक्रिया प्रबन्ध [illegible] शिक्षा के क्षेत्र मे यह प्रक्रि
प्रशासन की प्रक्रिया मे व्यक्ति अपन [illegible] अपनी भूमिका को नि
न्धन तथा प्रशासन को [illegible] दलित अवस्था मे

व्यवसाय के क्षेत्र मे प्रयुक्त किया जाता है। प्रबन्धन एक
सचालन, निर्देशन, नियन्त्रण तथा समन्वय करता है। इसलिए,
तत्वो मे समन्वय स्थापित करता है—

(i) मानव, (ii) मशीन (उपकरण), (iii) माल (शैक्षिक प्रक्रिया
तथा मानवीय नियोजन), (v) प्रबन्ध (समन्वय) तथा (vi) सग
कर्मचारी, छात्र, अभिभावक आदि साधन)।

सार रूप मे हम कह सकते है—

प्रबन्धन—निर्धारण, निर्देशन तथा मार्गदर्शन करता है।

प्रशासन—नीतियो को कार्य रूप प्रदान करता है और कुशलत
बल देता है।

संगठन—यह इच्छित तथा नियत उद्देश्यो की प्राप्ति का माध्यम

4.5 : शैक्षिक प्रबन्धन के आयाम
(DIMENSIONS OF EDUCATIONAL MANAG

शैक्षिक प्रबन्धन या शिक्षा मे प्रबन्ध के विभिन्न आयाम इस प्रकार

1. शैक्षिक प्रबन्ध शिक्षा के विभिन्न साधनो मे समन्वय करता है।
नियोजन प्रक्रिया, सगठन प्रक्रिया, निर्देशन तथा नियन्त्रण के द्वारा निर्धारि
ससाधन सयोजन है।

2. शैक्षिक प्रबन्ध मे समूह निहित होते है जो अपनी-अपनी भूमिका
3. प्रबन्ध मूल रूप से वह क्रिया है जो कार्य का सम्पादन कराती है।
ससाधन, भौतिक ससाधन तथा निष्पत्ति से होता है।
4. प्रबन्ध एक रासायनिक क्रिया है।
5. प्रबन्ध का दायित्व कार्य कराना है।
6. शैक्षिक प्रबन्ध एक अदृश्य कौशल है।
7. प्रबन्ध एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है।
8. प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है।

4.6 : शैक्षिक प्रबन्धन की आवश्यकता
(NEED OF EDUCATIONAL MANAGEMENT)

शैक्षिक कार्यक्रमो, नीतियो, योजनाओ को लागू करने मे शैक्षिक प्रबन्धन की
जिसे अग प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

1. प्रशासनिक दृष्टि से

(i) शिक्षा की नीतियो को निर्धारित करने, निर्मित करने, क्रियान्वित करने, निरी
मूल्याकन हेतु।

(ii) शिक्षा के क्षेत्र मे नियोजित मानवीय ससाधन तथा भौतिक ससाधनो के
सन्तुलन तथा अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए, क्रियाशील बनाये रखने मे

(iii) शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों आदि की प्राप्ति में सहयोग हेतु।

(iv) शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन रोकने हेतु।

(v) बदलती नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक परिस्थितियों में समायोजन हेतु।

(vi) शिक्षा, विद्यार्थी और शिक्षकों के मध्य परस्पर सामजस्य एवं उत्प्रेरण हेतु।

(vii) शासन, प्रशासन, शिक्षा विभाग तथा अन्य विभागों के मध्य समन्वयन एवं सचार हेतु।

(viii) संविधान में उल्लिखित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु एवउचित वातावरण निर्मित करने हेतु।

जेम्स लुण्डे के अनुसार, "प्रबन्धन मुख्य रूप से किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए प्रयासों को नियोजित, समन्वित, अभिप्रेरित एवं नियन्त्रित करने की कला है।"

2. विद्यालय के व्यवस्थापन की दृष्टि से

(i) शिक्षक तथा छात्र दोनों की उपलब्धियों में वृद्धि करने हेतु।

(ii) विद्यालय में उपस्थित सभी ससाधनों के अधिकाधिक उपयोग करने एवं लाभ प्राप्त करने के लिए।

(iii) शिक्षा से सम्बन्धित अधिकारियों, कर्मचारियों, प्राचार्यों तथा शिक्षकों को समन्वित एवं निर्देशित करने के लिए।

(iv) विद्यालय का वातावरण लोकतन्त्रात्मक, विकासात्मक, आधुनिक प्रगतिशील बनाये रखने के लिए।

(v) विद्यालय का पाठ्यक्रम—अनुशासन, शैक्षिक नीति को लागू करने तथा अद्यतन बनाने के लिए।

3. विद्यार्थियों के विकास की दृष्टि से

(i) वैयक्तिक भिन्नता, आर्थिक विषमता, सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर सबके विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए।

(ii) आवश्यक भौतिक ससाधन, मानव ससाधन, अवस्थापना सुविधा उपलब्ध कराने हेतु।

4.7 : शैक्षिक प्रबन्धन की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF EDUCATIONAL MANAGEMENT)

शैक्षिक प्रबन्धन की विशेषताओ को निम्न प्रकार दर्शाया गया है—

1. यह परिवर्तनशील है।
2. प्रबन्धन का गुण व्यक्तिगत तौर पर जन्मजात होता है और उपयुक्त प्रशिक्षण द्वारा अर्जित भी किया जाता है।
3. प्रबन्धन की प्रक्रिया एक कला और विज्ञान दोनों है।
4. यह एक सकारात्मक, सृजनात्मक प्रक्रिया है।
5. यह एक व्यवसाय एवं सामाजिक उत्तरदायित्व भी है।
6. प्रबन्धन एक प्रणाली के रूप में भी है।
7. यह उद्देश्यों को निश्चितता के साथ प्राप्त करने में सहयोगी है।

4.8 : शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF EDUCATIONAL MANAGEMENT)

शैक्षिक प्रबन्धन किन सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये, इस सम्बन्ध में विभिन्न व्यक्तियों ने अलग-अलग मत व्यक्त किये है। कुछ विद्वान केवल तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं तो कुछ सात

का। सिद्धान्तो की सबसे बड़ी और व्यापक सूची **एडमान्सन, रोमर** तथा **बेकन** ने अपनी पुस्तको मे दी है। इन विद्वानो के अनुसार, शैक्षिक प्रबन्धन मे निम्न पन्द्रह सिद्धान्तो का समावेश होना चाहिये–

1. **स्वास्थ्य, सामाजिक कौशल व चरित्र का विकास**–शिक्षा का प्रबन्धन इस प्रकार करना चाहिये जिससे शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य कर रहे सभी कर्मचारियो व शिक्षा से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित सभी छात्रो के स्वास्थ्य की उन्नति हो तथा उनमे सामाजिक कौशल तथा चरित्र का विकास हो।

2. **पाठ्यक्रम एक साधन बनाया जाये**–प्रबन्धन को सदैव ध्यान रखना चाहिये कि पाठ्यक्रम केवल एक साधन है, जिससे शिक्षा के महान् उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है। पाठ्यक्रम कोई एक साध्य नही है। अत पाठ्यक्रम को एक साधन के रूप मे प्रयुक्त किया जाये न कि एक साध्य के रूप मे हो।

3. **व्यक्तित्व निर्माण**–प्रबन्धन को चाहिये कि वह अपने अध्यापको, छात्रो तथा कर्मचारियो के सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करे तथा निर्माण हो जाने पर उसका सरक्षण करे। व्यक्तित्व निर्माण तथा सरक्षण के कार्य मे प्रशासन को व्यक्तिगत विभिन्नताओ का सदैव ध्यान रखना पड़ेगा।

4. **साधनों का सदुपयोग**–शिक्षा सस्था की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वह समय, शक्ति, मानवीय तथा भौतिकी साधनो का किस सीमा त प्रभावपूर्ण ढग से सदुपयोग करती है। अत प्रशासन को इस सिद्धान्त का भी पालन करना आवश्यक हो जाता है।

5. **समन्वय**–सस्था की उन्नति कर्मचारियो के कार्यों पर निर्भर करती है। यदि ये कार्य समुचित ढग से किये जाये तो उन्नति अच्छी होती है तथा कार्य सुव्यवस्थित होते है। कार्यों एव प्रयासो मे समन्वय स्थापित करने से साधन, श्रम व समय की भी बचत होती है।

6. **प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण**–प्रबन्धन कभी भी निरकुश नही होना चाहिये और न प्रबन्धन को सभी कार्यक्रम एव नीतियो का निर्धारण अपने आप ही कर लेना चाहिये। प्रशासन तभी सफल हो सकता है जब वह अन्य कर्मचारी-वर्ग का पूर्ण सहयोग प्राप्त करे। जब प्रशासक ऐसा करता है तो प्रशासनिक समस्याओ की मात्रा भी घट जाती है, सस्था का वातावरण बड़ा ही सौहार्दपूर्ण हो जाता है तथा सस्था के उद्देश्य शीघ्र ही प्राप्त हो जाते है।

7. **विकेन्द्रीकरण**–प्रबन्धन को चाहिये कि वह सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके अधिक-से-अधिक उत्तरदायित्व–योग्यताओ एव क्षमताओ के अनुकूल अपने कर्मचारियो को कार्य दे। उत्तरदायित्व प्रदान करने मे किसी भी प्रकार का पक्षपात हानिकारक होता है। प्रबन्धन केवल उत्तरदायित्व देकर ही अपना कार्य पूरा नही कर लेता है, यह भी आवश्यक है कि वह उत्तरदायित्वो के हस्तान्तरण के साथ-ही-साथ उनसे सम्बन्धित अधिकार भी सम्बन्धित कर्मचारी को दे दे।

8. **व्यक्तिगत विशेषताओं का अध्ययन**–उत्तरदायित्व प्रदान करने एव सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिये यह आवश्यक है कि प्रबन्धन अपने कर्मचारियो की व्यक्तिगत विशेषताओ का अध्ययन करके उनकी रुचियो, योग्यताओ, अभिव्यक्तियो, सीमाओ तथा कमियो का अध्ययन करे फिर उनके अनुसार, कार्य-विभाजन करे।

9. **अनावश्यक आवृत्तियों पर नियन्त्रण**–इसका प्रमुख कार्य है कि उसके कर्मचारी किन्ही कार्यों की अनावश्यक रूप से आवृत्ति न करे, उनके निर्णय एव नीतियाँ इस प्रकार की हो कि एक उद्देश्य को एक बार मे ही प्राप्त कर लिया जाये। यदि इसके लिये एक ही कार्य को बार-बार करना पड़े तो व्यर्थ ही धन, श्रम व समय नष्ट होगा। कुशल प्रशासन अनावश्यक आवृत्तियो को रोककर धन व समय की बचत करता है।

10. **प्राथमिकता प्रदान करना**–प्रबन्धन को अनेक कार्य करने पड़ते है। इनमे से कुछ कार्य अधिक आवश्यक होते है, कुछ अपेक्षाकृत कम आवश्यक होते है। कभी-कभी कार्य की आवश्यकता की

तीव्रता समयानुसार घटती-बढ़ती रहती है। कुशल प्रशासन के लिये यह आवश्यक है कि वह कार्य की आवश्यकता की तीव्रता को समझे और तीव्र आवश्यकता वाले कार्यों को प्राथमिकता प्रदान करे।

11. सम्पूर्ण विद्यालय का हित सर्वोपरि—यह आवश्यक सिद्धान्त है कि वह सम्पूर्ण विद्यालय के हित को सर्वोपरि स्थान प्रदान करे।

12. कर्मचारियों की व्यावसायिक उन्नति—अपने विभिन्न कार्यकर्त्ताओ की व्यावसायिक उन्नति करने के समुचित अवसर प्रदान करना शैक्षिक प्रबन्धन का प्रमुख सिद्धान्त है। दीर्घकाल मे यह सिद्धान्त लाभप्रद ही रहता है क्योकि व्यावसायिक उन्नति से कार्यकर्त्ताओ की दक्षता मे वृद्धि होती है।

13. शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों का परिपालन—शैक्षिक प्रबन्ध तभी सफल हो सकता है जब वह प्रचलित शिक्षा दर्शन के सिद्धान्त के अनुकूल हो। शैक्षिक प्रबन्ध को अपनी नीतियाँ, कार्यक्रम तथा योजनाएँ स्वीकृत शिक्षा दर्शन के आधार पर ही बनानी चाहिये।

14. सार्वजनिक सम्बन्ध की स्थापना—शैक्षिक प्रबन्ध का एक सिद्धान्त यह भी है कि वह समाज के साथ अधिक-से-अधिक सम्बन्ध स्थापित करे। इसमे से शैक्षिक प्रबन्ध को समाज की शैक्षिक आवश्यकताओ का आभास होगा, समाज के दर्शन, नीतियो तथा कठिनाइयो का ज्ञान होगा तथा समाज मे शिक्षा तथा विद्यालय का प्रसार होगा।

15. आशावादी दृष्टिकोण—प्रबन्धन को सदैव आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। निराशावादी दृष्टिकोण से निराशा एव असफलताएँ ही हाथ लगती है तथा अकर्मण्यता बढ़ती है। इसके विपरीत आशावादी दृष्टिकोण से सफलताएँ आती है तथा रचनात्मक कार्य होते है। प्रबन्धन को रचनात्मक नीतियाँ अपनानी चाहिये।

4.9 : 'शैक्षिक प्रशासन' तथा 'प्रबन्धन' में अन्तर (DIFFERENCE BETWEEN EDUCATIONAL ADMINISTRATION AND MANAGEMENT)

'प्रशासन' तथा 'व्यवस्थापन' को समानार्थी रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। प्राय 'शिक्षा प्रशासन' (Educational Administration) के लिए 'शिक्षा व्यवस्थापन' (Educational Management) और 'शिक्षा प्रशासक' (Educational Administrator) के लिए 'शिक्षा व्यवस्थापक' (Educational Manager) का प्रयोग करते है, परन्तु 'प्रशासन' और 'व्यवस्थापन' मे सूक्ष्म अन्तर है। इस अन्तर को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है—

प्रशासन	प्रबन्ध या व्यवस्थापन
1 शैक्षिक प्रशासन एक साधन है जो सगठन के उद्देश्यो, नीतियो तथा मार्गदर्शक सिद्धान्तो का निर्धारण करता है।	1 शैक्षिक प्रबन्ध वह साधन है जिसका सम्बन्ध सचालको या गवर्नरो के बोर्ड द्वारा निर्धारित उद्देश्यो एव लक्ष्यो की प्राप्ति से है।
2 शैक्षिक प्रशासन वह पदावली (Term) है जिसका प्रयोग सार्वजनिक मामलो—कानून तथा व्यवस्था, नागरिक सस्थाओ आदि के प्रशासन के लिए किया जाता है।	2 शैक्षिक प्रबन्ध नामक पदावली का प्रयोग कम्पनी, कारखाने फर्म आदि के सचालन के लिए किया जाता है।
3 शैक्षिक प्रशासन नियमो तथा विनियमो से सम्बन्धित है। इसमे कागजी कार्यवाही पर अधिक बल दिया जाता है।	3 शैक्षिक प्रबन्ध उद्देश्यो एव लक्ष्यो से सम्बन्धित है। इस कारण इसमे परिणामो (results) पर अधिक बल दिया जाता है।

4 शैक्षिक प्रशासन नियमो पर बल देने के कारण कठोर तथा परम्परागत होता है।	4 शैक्षिक प्रबन्ध परिणामो पर बल देने के कारण प्रगतिशील-नवीनतायुक्त (Innovative) तथा कल्पनाशील (Imaginative) होता है।
5 शैक्षिक प्रशासन मे परिणाम आसानी से नही मापे जा सकते है।	5 शैक्षिक प्रबन्ध मे परिणामो को सुविधापूर्वक माप जा सकता है।
6 शैक्षिक प्रशासन एक प्रक्रिया है जो निर्णयो से सम्बन्धित है जिसमे नियोजन, सगठन, कर्मचारियो की नियुक्ति, सचालन, समन्वय, प्रतिवेदन लेखन, बजट बनाना तथा मूल्याकन से सम्बन्धित क्रियाएँ निहित है।	6 शैक्षिक प्रबन्ध भी एक प्रक्रिया है जो निर्णयो से सम्बन्धित है जिसमे नियोजन, सगठन, कर्मचारियो की नियुक्ति, सचालन, समन्वय, प्रतिवेदन लिखना, बजट बनाना तथा मूल्याकन से सम्बन्धित क्रियाएँ निहित है।
7 शैक्षिक प्रशासन का सम्बन्ध भौतिक तथा मानवीय प्रयासो के समन्वय से है।	7 शैक्षिक प्रबन्ध का सम्बन्ध व्यक्ति तथा वस्तु दोनो से है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. शैक्षिक प्रशासन के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए।
2. शैक्षिक प्रबन्धन का क्या अर्थ है? इसकी विशेषताओ का वर्णन कीजिए।
3. शैक्षिक प्रबन्धन की आवश्यकता क्यो पड़ती है? वर्णन कीजिए।
4. शैक्षिक प्रबन्धन के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. शैक्षिक प्रबन्धन के आयामो को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रशासन एव प्रबन्धन मे क्या अन्तर है। स्पष्ट कीजिए।
3. शैक्षिक प्रशासन के किसी एक सिद्धान्त को सक्षेप मे स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. "प्रबन्धन नियोजन प्रक्रिया, सगठन प्रक्रिया, निर्देशन तथा नियन्त्रण के द्वारा निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त करने का ससाधन सयोजन है।" किसका कथन है ?

   (अ) सिस्क (ब) टेलर

   (स) मेसीय (द) इनमे से कोई नही **उत्तर**–(अ)

2. शैक्षिक प्रबन्धन का सिद्धान्त है–

   (अ) समन्वय (ब) व्यक्तित्व निर्माण

   (स) आशावादी (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

अध्याय

5

विद्यालय प्रबन्धन : अवधारणा, विशेषताएँ आवश्यकताएँ, क्षेत्र एवं समस्याएँ

[SCHOOL MANAGEMENT : CONCEPT, CHARACTERISTIC, NEED, SCOPE AND PROBLEMS]

5.1 : विद्यालय का अर्थ (MEANING OF SCHOOL)

विद्यालय शब्द की उत्पत्ति एक ग्रीक शब्द *'Skhole'* से हुई है। इस शब्द का अर्थ है– अवकाश (Leisure)। प्राचीन यूनान (Greece) में अवकाश के स्थानों को ही विद्यालय के नाम से पुकारा जाता था। अवकाश शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए **ए. एफ. लीच** (A. F. Leach) ने लिखा है, "वाद-विवाद या वार्ता के स्थान जहाँ एथेन्स (Athens) के युवक अपने अवकाश के समय को खेल-कूद, व्यायाम और युद्ध के प्रशिक्षण में व्यतीत करते थे, धीरे-धीरे दर्शन तथा उच्च कक्षाओं के विद्यालयों में बदल गये। एकेडमी (Academy) के सुन्दर बागों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाश के माध्यम से विद्यालय का विकास हुआ।"

5.2 : विद्यालय की आवश्यकता (NEED OF SCHOOL)

विद्यालय एक सामाजिक संस्था के रूप में : विद्यालय समाज का निर्माता – भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66 ने अनुभव किया कि "भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारा विश्वास है कि यह कोई चमत्कारोक्ति नहीं है। विज्ञान और शिल्पज्ञान पर आधारित इस दुनिया में शिक्षा ही लोगों की खुशहाली, कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करती है। हमारे विद्यालयों और कॉलेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता और संख्या पर ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उस महत्वपूर्ण कार्य की सफलता निर्भर करेगी जिसका प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना है।"

विद्यालय समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था है। इस संस्था द्वारा ही समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। विद्यालय एक ऐसा दर्पण है जिससे समाज के ठीक स्वरूप का पता चलता है। विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ पर कल के नागरिक जिनके कन्धों पर समाज तथा राष्ट्र का भावी भार है, शिक्षा

प्राप्त करते है विद्यालय बच्चो के लिये इस प्रकार के वातावरण की सृष्टि करता है जिससे
अच्छे नागरिक बन सकें अपने तथा समाज के जीवन को सुखमय बना सकें। विद्यालय
आधार विचार तथा चरित्र पर बहुत-ही महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

जॉन ड्यूवी (*John Dewey*) ने कहा है "जो कुछ सबसे श्रेष्ठ और बुद्धिमान माता-पि
बालक के लिये चाहते है वही समाज अपने बालको के लिये चाहता है। हमारे विद्यालयों के
अन्य आदर्श सकुचित और अधिय है और यदि इस पर व्यवहार किया जाये तो यह हमारे
नष्ट करेगा।

एच. जी. वेल्स (*H. G. Wales*) का कहना है "ऐसा समाज बिगड़ा हुआ समाज ही मान
जिसके विद्यालय सुचारू रूप से नही चलाये जाते। दूसरे शब्दो मे विद्यालय ही समाज की उन्न
अवनति का सूचक है।

5.3 : विद्यालय प्रबन्धन की अवधारणा एवं अर्थ (MEANING AND CONCEPT OF SCHOOL MANAGEMENT)

प्रबन्धन की उपरोक्त परिभाषाओं के सन्दर्भ में 'विद्यालय प्रबन्धन' को इस प्रकार परिभाषि
जा सकता है– विद्यालय प्रबन्धन एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसका कार्य विद्यालय के मानवीय एव
ससाधनो को ऐसी गतिशील सगठन इकाइयो मे परिवर्तित करना है जिसके द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति
प्रकार से कार्य किया जा सके कि जिनके लिये प्रबन्ध किया जा रहा है अर्थात् शिक्षार्थियो के लि
सन्तुष्टि प्राप्त हो सके तथा जो कार्य वह कर रहे है, उनमें उच्च नैतिक स्तर बनाये रख
उत्तरदायित्व निभाने की भावना भी बनी रहे।

प्रत्येक सस्था के अपने आदर्श, लक्ष्य और उद्देश्य होते है और उनकी सफलतापूर्वक प्राप्ति ह
ही उचित प्रबन्धन की आवश्यकता होती है। विद्यालय एक महत्वपूर्ण सामाजिक सस्था है। अत
एक सुसगठित प्रबन्धात्मक व्यवस्था होती है। किसी प्रभावशाली प्रबन्ध के अभाव मे विद्यालय
दुर्व्यवस्था एव सभ्रान्ति फैल जाने की सम्भावना बनी रहती है। एक प्रभावशाली प्रबन्ध विद्यालय म
व्यवस्था करने मे सक्षम रहता है। यह उचित व्यक्तियो को उचित समय में, उचित स्थान पर उचि
से रखता है। इसके अन्तर्गत है–

1. **शिक्षाविदो द्वारा बनाये गये लक्ष्यों की निष्ठापूर्वक पूर्ति**—शिक्षा को लोकतन्त्र में प्रजात
आदर्शों की शर्तें पूरी करनी होती है। शैक्षिक प्रबन्ध को सामाजिक कूटनीतिज्ञ के रूप में देखा जा
है, लेकिन इसे क्रियाविधिमूलक रूप मे नहीं लेना चाहिये। विद्यालय प्रबन्ध के लक्ष्यों को पी. सी
(*P. C. Wren*) ने वर्णित किया है। उनके अनुसार– "छात्र के लाभ हेतु, उसकी मन शक्ति के प्रशि
उसकी सामान्य दृष्टि विस्तृत करने, उनके मस्तिष्क को उन्नतिशील बनाने, चरित्र का निर्माण
शक्ति देने और उसे अपने समाज एव राज्य के प्रति कर्तव्य का अनुभव कराने आदि के लि
विद्यालय को सगठित किया जाये। यही एक उद्देश्य है जिसके लिये छात्र को तैयार किया जाये
उसे माध्यमिक परीक्षा के लिये तैयार कराने हेतु।"

2. **मिल-जुलकर रहने की कला सिखाना**—विद्यालय जीवन को इस प्रकार सगठित करना
जिससे बच्चे एक साथ रहने की कला को ग्रहण करने के लिये तैयार हों। विद्यालय का
सामुदायिक जीवन होता है। अत बालक उसे एक उत्तम नागरिकता प्रशिक्षण क्षेत्र के रूप में ले
3. **विद्यालय-सम्बन्धी गतिविधियों एवं कार्यों का सचालन तथा संयोजन**—शिक्षाशास्त्रियो
प्रतिपादित उद्देश्यो एव मन्तव्यों को परिपक्व रूप देने के लिये यह अति आवश्यक है कि वि

योजनाओ तथा प्रक्रियाओ का सचालन इस प्रकार से किया जाये कि उचित व्यक्ति को सुयोग्य एव समुचित स्थान मिल सके जिसके परिणामस्वरूप कार्य समयानुसार सम्पादित होता रहे।

4. विद्यालय में सहयोग की भावना लाना तथा जटिल कार्यों की सुलभता—सहयोग की भावना का विद्यालय प्रबन्धन मे अपना ही स्थान है। मानवीय स्तर पर शिक्षा-प्रबन्धन का सम्बन्ध बालको अभिभावको एव शिक्षको के साथ-साथ नियुक्तिकर्ता एव समाज से भी होता है। साधनो के स्तर पर इसका सम्बन्ध सामग्री एव उसके उपयोग से होता है। साथ ही सिद्धान्तों, परम्पराओ, नियमो एव कानून आदि से भी इसका सीधा सम्बन्ध जुड़ा हुआ होता है। प्रबन्धन को ही विद्यालय सम्बन्धी अन्य प्रकार की समस्याओ का समाधान भी करना होता है। विद्यालय प्रबन्धन अपने सकारात्मक रूप से कार्यक्रम को एक विशेष दिशा प्रदान कर, जटिल कार्य को सुलभ बनाकर परिणामो-मुखी प्रकट करता है।

5. विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र के रूप में बनाना—विद्यालय मे इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये जिनके द्वारा छात्र तथा अभिभावक यह अनुभव करे कि विद्यालय उनकी अपनी सस्था है तथा विद्यालय समाज-सेवा का केन्द्र है।

6. शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग तथा अनुसधान के लिये समुचित व्यवस्था करना—वर्तमान युग मे समाज की प्रगतिशीलता दिन-प्रतिदिन विकसित हो रही है। प्रबन्धको का कर्तव्य है कि शिक्षाशास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित नवीन विचारो, धारणाओ एव प्रयोगो को ध्यान मे रखते हुए विद्यालय की विशेष परिस्थिति के अनुसार, उनकी उपयोगिता को परखे तथा समयानुकूल परिवर्तन करके लाभ उठाये। शिक्षा सम्बन्धी प्रक्रियाओ के समय-समय पर सशोधन होने के साथ-साथ यदि समीक्षा भी होती रहे तो यह अधिक श्रेयस्कर रहता है।

परिवर्तन प्रकृति का अन्तिम नियम है। विद्यालय की कार्य-पद्धति एव अवधारणा विशेष सस्कृति एव परम्परा पर आधारित होनी चाहिये। न तो शिक्षा-प्रणाली और न ही इसका प्रबन्ध आयात किया जाना चाहिये। प्रमाणित एवं प्रभावशाली बनाने के लिये उन्हे देशज होना चाहिये। पिछले वर्षों मे हमारे देश मे क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। इसी प्रकार हमारे विद्यालय प्रबन्ध की कार्य-पद्धति एव लक्ष्यों को भी आवश्यकताओ के अनुरूप परिवर्तित होना चाहिये।

5.4 : विद्यालय प्रबन्धन की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF SCHOOL MANAGEMENT)

विद्यालय प्रबन्धन की विशेषताएँ निम्नलिखित है—

1. प्रक्रिया (Process)—विद्यालय प्रबन्धन एक प्रक्रिया है। यह निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए एक गतिशील प्रक्रिया है। प्रक्रिया के रूप में इसके अन्तर्गत, 1. नियोजन (Planning), 2. सगठन (Organising), 3. प्रशासन (Administration), 4. समन्वय (Co-ordination), 5. निर्देशन (Guidance), 6. नियन्त्रण (Controlling), 7. कर्मचारियो की व्यवस्था (Staffing), 8. सम्पादन (Executing), 9. मूल्याकन (Evaluation), 10. प्रोत्साहन अथवा अभिप्रेरणा (Encouraging or motivating), 11. नेतृत्व (Leadership) तकनीकें शामिल है।

2. उद्देश्यपूरक प्रक्रिया (Mission-oriented Process)—विद्यालय प्रबन्धन उद्देश्यपूरक प्रक्रिया है। विद्यालय प्रबन्धन उद्देश्य-केन्द्रित होता है। यह विद्यालय के लक्ष्यों की प्राप्ति का एक साधन है, न कि स्वय मे कोई लक्ष्य। अत: यह विद्यालय के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है और इसी मे सलग्न रहता है।

3. सतत् प्रक्रिया (Continuous Process)—विद्यालय प्रबन्धन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। यह सतत् चलती रहती है। परिणामों के पश्चात् उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास। इसे जारी रखता है।

4. मानवीय प्रक्रिया (Human Process)—विद्यालय प्रबन्धन मानवीय प्रक्रिया है। यह का विकास है, न कि वस्तुओं का निर्देशन। विद्यालय प्रबन्धन में मानवों द्वारा मानवों को जाता है।

5. सामाजिक प्रक्रिया (Social Process)—विद्यालय प्रबन्धन एक सामाजिक प्रक्रिया सामाजिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर समूह के सभी सदस्यों को अभिप्रेरित करना पड़ता का समूह समाज का निर्माण करता है।

6. समन्वित प्रक्रिया (Integrated Process)—विद्यालय प्रबन्धन के अन्तर्गत दो तत्व आते हैं—1. मानवीय ससाधन (Human Resources), 2. भौतिक संसाधन (Material Resources) दोनों की आवश्यकता होती है, परन्तु मानवीय संसाधन का प्रबन्धन अधिक महत्वपूर्ण है। मानवीय तत्वों को संचालित करता है और मानवीय श्रम भौतिक संसाधनों को। अत: प्रबन्धन का सर्वोत्तम प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि करने का प्रयत्न करता है।

7. व्यावहारिक प्रक्रिया (Practical Process)—प्रबन्धन मूल रूप से व्यावहारिक प्रक्रिया कार्य का सम्पादन करती है। इसका सम्बन्ध मानवीय संसाधन, भौतिक संसाधन तथा निष्पत्ति है। प्रबन्धन व्यक्तियों से काम लेने की क्रिया है।

8. उद्देश्यपूर्ण क्रिया (Goal-oriented Activity)—विद्यालय प्रबन्धन किसी उद्देश्य की लिए किया जाता है। छात्रों को शिक्षा देने के उद्देश्य से स्थान, सामान, कर्मचारियों, उपकरण व्यवस्था की जाती है। इन सबका उद्देश्य, लक्ष्य प्राप्त करना होता है।

9. सार्वभौमिक प्रक्रिया (Universal Process)—प्रबन्धन एक सार्वभौमिक क्रिया है। यह भी कार्य को समुचित दिशा देने में सदा सहयोगी रहा है और यह सार्वभौमिक है। नियोजन नियन्त्रण एवं निर्देशन आदि सभी सार्वभौमिक प्रकृति के कार्य हैं। ये सभी प्रकार के विद्यालयों और संस्थाओं में कार्यशील हैं।

10. अन्त:अनुशासन उपागम (Inter-disciplinary Approach) विद्यालय प्रबन्धन अन्त -अनुशासनात्मक उपागम है। यह किसी विशेष विद्या से सम्बन्धित नहीं होता है। इसमें शिक्षा समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र विषयों के सिद्धान्तों को प्रयोग करने की आवश्यकता होती

11. अदृश्य कौशल (Intangible Skill)—विद्यालय प्रबन्धन एक अदृश्य कौशल है। विद्या प्रबन्धन कोई दिखाई देने वाला तत्व नहीं है। यह एक अदृश्य शक्ति होती है जो साधनों के उपयोग में सहयोग देती है। कार्य की सफलता और असफलता पर ही इसकी कुशलता का होता है।

12. गत्यात्मक (Dynamic)—विद्यालय प्रबन्धन गत्यात्मक है। विद्यालय प्रबन्धन शैक्षिक का गतिशील एवं जीवनदायक तत्त्व है। इसके अभाव में साधन मात्र साधन बनकर रह जाते हैं

13. दायित्व (Responsibility)—प्रबन्धन का दायित्व कार्य कराना है। विद्यालय प्रबन्धक कराता है। प्रधानाचार्य स्वय बहुत-कम पढ़ाते है, किन्तु प्रत्येक अध्यापक से कार्य लेते है और शिक्षक कर्मचारियों (Non-teaching Staff) द्वारा शैक्षिक सुविधाएँ जुटाने एवं वातावरण को कराने में सहयोग लेते है।

14. अधिकार व्यवस्था (Authority)—प्रबन्धन अधिकार के रूप में प्रयुक्त होता है। विद्यालय क्षेत्र में, प्रबन्धक तथा प्रबन्धित दो वर्ग होते है। प्रबन्धक वर्ग के अधिकार अधिक होते है और वे अपने अधीनस्थों से कार्य लेते है। प्रबन्धित भी उच्च, मध्यम एव पर्यवेक्षीय स्तर के होते है। सभी के अपने पदों के अनुरूप अधिकार होते है तथा भूमिकाएँ होती है। ये अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन करते है। ये समन्वय, नियन्त्रण एव नेतृत्व करते है।

15. कार्य संस्कृति (Work Culture)—विद्यालय प्रबन्धन को अधिकार सत्ता की प्रणाली माना जाता है, क्योंकि प्रबन्धक कार्य निष्पादन हेतु आदेश-निर्देशन देते है, कार्य प्रगति का मूल्याकन करते है, नियम-विनियम बनाते है तथा अधीनस्थों का नेतृत्व करते है। इसलिए, इसे कार्य संस्कृति का नाम भी दिया जाता है।

16. कार्यात्मक अवधारणा (Functional Concept)—1. संकुचित अवधारणा (Narrow Concept) के अनुसार, विद्यालय प्रबन्धन दूसरो से कार्य कराने की युक्ति है। 2. व्यापक अवधारणा (Broader Concept) के अनुसार, विद्यालय प्रबन्धन अन्य लोगों के द्वारा तथा उनके साथ मिलकर कार्य करना है। यह प्रबन्धन की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept) है। इस अवधारणा के अनुसार, प्रबन्धन एक कार्यात्मक इकाई है जिसके माध्यम से योजना बनाना, संगठन की व्यवस्था करना, निर्देश देना, समन्वय करना तथा नियन्त्रण करना इत्यादि किया जाता है।

17. सामूहिक सहभागिता अवधारणा (Group Participation Concept)—इस अवधारणा के अनुसार, निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सामूहिक प्रयासों को व्यवस्थित करना होगा। एक अकेला व्यक्ति कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता तथा सहभागिता द्वारा समूह मे मधुर सम्बन्ध स्थापित करने होंगे।

18. नेतृत्व रूपी धारणा (Leadership Concept)—अवधारणा के अनुसार, विद्यालय प्रबन्धन एक नेतृत्व है। नेतृत्व के माध्यम से सम्पूर्ण संगठन में कुशलता, सन्तुलन एव निरन्तरता की सम्भावना बनती है। कुशल नेतृत्व द्वारा ही शिक्षा मे गुणवत्ता (Quality) लायी जा सकती है।

19. कलात्मक एवं वैज्ञानिक अवधारणा (Artistic and Scientific Concept)—विद्यालय प्रबन्धन कला भी है और विज्ञान भी। यह एक ओर प्रबन्धको को अपनी प्रबन्धकीय कला एव कुशलताएँ प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करता है और दूसरी ओर उन्हें वैज्ञानिक ढग, पद्धति एव प्रबन्धन विज्ञान अपनाकर हर सम्भव ढंग से योजना तैयार करना, इसे लागू करना एव प्रणाली को नियन्त्रित करना होता है।

5.5 : विद्यालय प्रबन्धन का स्वरूप (NATURE OF SCHOOL MANAGEMENT)

विद्यालय प्रबन्धन का स्वरूप निम्न है—

1. कला तथा विज्ञान (Art and Science)—प्रबन्धन एक कला तथा विज्ञान है। यह औपचारिक रूप मे संगठित समूहो मे व्यक्तियो द्वारा मिलकर कार्य करने की कला है। प्रबन्धन को मुख्य रूप से किसी विशिष्ट लक्ष्य के लिए प्रयासो के नियोजित, समन्वित, अभिप्रेरित एव नियन्त्रित करने की कला एवं विज्ञान भी कहा गया है। प्रबन्धन वैज्ञानिक ढग से किया जाता है।

2. अध्ययन क्षेत्र (Discipline)—प्रबन्धन एक अध्ययन क्षेत्र है। यह ज्ञान का एक विभाग है। इसमें विशेष कार्यों को पूरा किया जाता है।

3. संगठित कार्य (Organised Work)—प्रबन्धन मे व्यक्ति और कार्यकर्ता समूह मे संगठित रूप से कार्य करते है। सामूहिक क्रियाओं को बढ़ावा मिलता है।

(iv) विद्यालय को प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक स्तरों में विभाजित करना तथा प्रत्
स्तर पर पर्यवेक्षकों के उत्तरदायित्व का निर्धारण करना।

(v) समुदाय, कार्यालय-स्टाफ, प्रधानाचार्य, उप-प्रधानाचार्य, अभिभावक आदि से समुचित सम्
लेने के लिये विद्यालय-स्टाफ को जिम्मेदारी सौंपना।

(vi) समन्वयात्मक एव नियत्रण-क्रियाओं के लिये, नियमित सम्मेलनों तथा रिपोर्ट प्रणाली
आधार तैयार करना।

3. अभिप्रेरणा (Motivation)—अगर हम यह चाहते है कि लोग उचित दिशा में चले और उ
जो आशा की जाती है वही करें तो अभिप्रेरणा इसमें मुख्य भूमिका अदा करती है। यदि कक्षा के कमरे
अध्यापक कोई कार्य सतोषजनक ढग से पूरा कराना चाहता है तो अध्येताओं को पर्याप्त रूप
अभिप्रेरित करना अत्यन्त अनिवार्य है। अध्यापक को कम रुचि वाले छात्रों को ही अभिप्रेरित नहीं करना
है बल्कि छात्रों की रुचि को भी पोषित करना है जो पहले से ही प्रेरित है। अध्यापक इन उद्देश्यों को निम्
उपायों द्वारा प्राप्त कर सकता है—

(i) लक्ष्य एवं उद्देश्यो को परिभाषित करना।

(i) कमियाँ ढूँढने की बजाय अध्येताओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना।

(ii) सकारात्मक पुनर्बलीकरण जैसे प्रशंसा एव प्रोत्साहन।

(iii) कक्षा मे होने वाली शैक्षिक एव गैर-शैक्षिक क्रियाकलापों को सुसगत, सार्थक एवं आनन्ददायक
बनाना।

(iv) नियत कार्य एवं परियोजना-कार्य का आबटन छात्रों की अत शक्ति एवं योग्यताओं
अनुसार प्रदान करना ताकि वे अपने वैयक्तिक गति के अनुसार, कार्य कर सकें।

(v) छात्रों का सामूहिक परिचर्चा एवं अन्य ऐसी क्रियाओं मे समावेश कराना जिनमे सहयोग
सम्प्रेषण एवं सहभागिता की आवश्यकता पड़ती है।

(vi) छात्रों की शंकाओं एवं समस्याओं का उत्साहवर्धक तरीके से समाधान करना।

(vii) अध्यापन-अधिगम विधि को ऐसा प्रायोगिक रूप देना जिससे कि अध्येता कक्षा के कमरे
बाहर होने वाली गतिविधियों से उसका तालमेल स्थापित कर सके।

4. नियत्रण (Control)—नियत्रण मे कार्य-निष्पादन के परिमापन एव परिवीक्षण और परिणाम
की योजनाओं के साथ तुलना करते हुए जब आवश्यकता पड़े तब सुधारात्मक क्रियाओं को अपनाना
सम्मिलित है। यह दर्शाता है कि किस सीमा तक उद्देश्यो की प्राप्ति हुई है और किस सीमा तक योजनाओं
से विचलन हुआ है। नियत्रण का आधार परिमापन है। यह क्या होना चाहिये कि तुलना मे क्या हो रहा
है की ठीक-ठीक सूचना एव पुनर्निवेश पर आधारित है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि नियत्रण का
सम्बन्ध नियोजन और कार्य-निष्पादन के बीच पाये जाने वाले अतर से है।

एक अध्यापक के नाते, आपके नियत्रण मे होने वाले समग्र कार्य के लिये आपको पूर्ण दायित्व
सौंपा जायेगा। आप उस दायित्व को और आगे किसी को सौंप नहीं सकते। वास्तव मे आपकी कक्षा के
कमरे मे और आसपास घटित होने वाली सभी घटनाओं के लिये आपको ही प्रयास और परिवीक्षण करना
है।

अपने छात्रों के परिवीक्षण-परिणामों का ध्यान रखने की मुख्य जिम्मेदारी आपकी ही रहेगी।
प्रभावकारी नियत्रण के लिये अध्यापको को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होता है—

(i) वे क्या उद्देश्य प्राप्त करना चाहते है—इसका नियोजन।

(ii) जितना प्राप्त हो गया है—उसका सतत् परिमापन।

(iii) नियोजन और वास्तविक प्राप्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

(iv) विचलन न होने देने के लिये सामूहिक उपाय करना।

(v) कार्य-निष्पादन में सुधार के लिये कदम उठाना।

5.7 : विद्यालय प्रबन्धन का क्षेत्र (SCOPE OF SCHOOL MANAGEMENT)

विद्यालय प्रबन्धन का क्षेत्र व्यापक है। इसके अन्तर्गत विद्यालय, समाज, शासन स्तर, नीति निर्धारण स्तर पर सम्पन्न होने वाले सभी कार्य आ जाते है। सक्षेप मे विद्यालय प्रबन्धन के क्षेत्र (Scope) निम्नलिखित है—

1. विद्यालय के उद्देश्यो का निर्धारण।
2. विद्यालय का सगठन तैयार करना।
3. विद्यालय के सचालन हेतु नीति, नियम, योजना तैयार करना।
4. विद्यालय के मानव ससाधन एव भौतिक ससाधनो की व्यवस्था करना।
5. विद्यालय के विकास हेतु प्रबन्धन का कार्य करना।
6. शैक्षिक व्यवस्था के सुचारु, नियमित सचालन की व्यवस्था करना।
7. वित्तीय ससाधन जुटाना एव उचित रूप से वितरण करना।
8. भौतिक एव मानव ससाधन में आवश्यकतानुसार विकास करना।
9. विद्यालय के कार्यालय द्वारा लेखा प्रबन्धन, आय-व्यय प्रबन्धन।
10. विद्यालय की आवश्यकता एव कमी के अनुसार, प्रबन्धन।
11. अनुशासन एव प्रगति सम्बन्धी तथ्यो का सकलन एव सम्बन्धित विभाग/कर्मचारी तक सूचना सम्प्रेषण करना।
12. विद्यालय के कर्मचारियो का वेतन, भत्ते, सुविधाओं, प्रोन्नति आदि के बारे मे सजग रहना कार्य करना।
13. शिक्षकों, कर्मचारियों, छात्रो के स्वास्थ्य का ध्यान रखना।
14. विद्यालय मे शक्ति/पावर का उचित बँटवारा करना तथा समय-समय पर अधिकार एव कर्तव्यो मे समन्वय रखना।
15. सस्था के किसी कर्मचारी द्वारा अपेक्षाकृत सराहनीय कार्य करने पर पुरस्कार प्रोत्साहन प्रदान करना। अपेक्षानुरूप कार्य न करने पर दण्ड का प्रावधान करना।
16. छात्रो के अभिभावको, समाज के सम्भ्रान्त नागरिको, शासन स्तर के अधिकारियों, कर्मचारियो से सम्पर्क एव अच्छा सम्बन्ध बनाये रखना।
17. समय-समय पर सरकार की नीतियो, योजनाओं, कार्यक्रमो के अनुरूप विद्यालय का सचालन सुनिश्चित करना।

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध मे **टेलर** महोदय ने स्पष्ट किया है— वैज्ञानिक प्रबन्धन के आधारभूत सिद्धान्त हमारे साधारण से साधारण व्यक्तिगत कार्यों से लेकर विशाल निगमो के कार्यों तक मे लागू होते है।

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र को शैक्षिक क्रिया के आधार पर निम्नलिखित कार्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. योजना प्रबन्धन, 2. विकास प्रबन्धन, 3. उत्पादन प्रबन्धन, 4. परिवहन प्रबन्धन, 5. वितरण प्रबन्धन, 6. सेवा प्रबन्धन, 7. क्रय प्रबन्धन, 8. संस्थापन प्रबन्धन, 9. कार्यालय प्रबन्धन।

इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. **योजना प्रबन्धन** (Planning Management)–विद्यालय के समस्त कार्य, उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में योजनानुसार सम्पादित हो, इसके लिए कार्य से पूर्व सुविचारित स्पष्ट योजना (Good planning) की आवश्यकता होती है। इसमें विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए। दक्ष लोगों की टीम के द्वारा बनायी गयी योजना निश्चित ही कार्य को उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

2. **विकास प्रबन्धन** (Development Management)–विद्यालय के स्तर को उन्नत करने, गुणवत्ता विकास, कक्षाओं की मान्यता, विषयों में वृद्धि, कक्षाकक्ष का निर्माण, शिक्षकों-कर्मचारियों की संख्या एवं दक्षता में आवश्यकता एवं माँग के अनुसार–विकास करना, आधुनिकता को दृष्टि में रखकर, वर्तमान संसाधनों को नवीनता एवं आधुनिकता में परिवर्तित करना विकास प्रबन्धन का अंग है।

3. **उत्पादन प्रबन्धन** (Management of Production)–किसी भी फैक्ट्री, कम्पनी या निर्माण संस्था के द्वारा उत्पादित सामान (Product) निश्चित/निर्धारित मानक एवं गुणवत्ता के होने चाहिए, तभी बाजार में उसकी (गुणवत्ता के आधार पर) माँग बनी रहेगी। इसी से उस संस्थान या फैक्ट्री का महत्व जाना जाता है, उसकी पहचान बनती है। अतः विद्यालय भी वह सामाजिक-शैक्षणिक स्थल है जहाँ उत्पाद के रूप में अच्छे गुणवान, स्वस्थ, छात्रों को उत्पादित किया जाता है। यही छात्र समाज में विभिन्न जिम्मेदारियों/कार्यों/दायित्वों का निर्वहन करते हैं। अतः विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय से पढ़कर निकलने वाले छात्र देश/राष्ट्र के निर्धारित मानकों, गुणवत्ता के अनुरूप हों। इसके लिए उसे समय-समय पर स्वयं गुणवत्ता की जाँच कराते/करते रहना चाहिए। इस व्यवस्था को स्थापित करने को गुणवत्ता प्रबन्धन (Quality management) या उत्पादन प्रबन्धन कहते हैं।

4. **परिवहन प्रबन्धन** (Transportation of the School Children and Staff)–विद्यालय में अब दूर-दूर क्षेत्रों से छात्र/छात्राओं को लाने तथा वापस उनके घरों तक सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था भी विद्यालय प्रबन्धन को उपलब्ध करानी होती है। इससे जहाँ एक ओर विद्यालय की छात्र संख्या में वृद्धि होती है, उसकी उपलब्धियों का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक विद्यार्थी दुर्गम क्षेत्रों या दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करने वाले विद्यार्थी भी विद्यालय की सेवा से लाभान्वित हो पाते हैं। दुर्गम क्षेत्रों या सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के समय से उपलब्ध न होने के कारण अभिभावक अपनी लड़कियों को या छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में असुविधा महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते हैं। जबकि यदि विद्यालय की अपनी निजी परिवहन व्यवस्था है तो इससे छात्र, छात्रों के अभिभावकों की चिन्ता कम हो जाती है। छात्र, विद्यालय के कर्मचारी समय पर विद्यालय पहुँच जाते हैं पर वापस जाने के लिए जल्दबाजी या चिन्ता न होने के कारण वे अपने कार्यों या दायित्वों का अधिक जिम्मेदारी से निर्वहन करते हैं। अतः वाहनों का रख-रखाव, ईंधन की व्यवस्था, छात्रों से शुल्क संग्रहण की व्यवस्था, छात्रों को विभिन्न मार्गों से लाने तथा घर पहुँचाने की सुनिश्चित व्यवस्था करना प्रबन्धन का दायित्व हो जाता है। इससे न केवल विद्यालय का अनुशासन सुदृढ़ होता है, बल्कि उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायता है, विद्यालय की विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है।

5. **वितरण प्रबन्धन** (Distribution Management)–संस्था के विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन एवं कार्यों हेतु आवश्यक संसाधनों की सुविधाओं का वितरण आवश्यकतानुसार समान ढंग से किया जाना चाहिए। इससे सभी कर्मचारियों में संस्था के प्रति समर्पण एवं निष्ठा का भाव रहता है, वहीं आपसी

ईर्ष्या एवं स्पर्द्धा से बचा जा सकता है। सभी कार्मिकों में समान रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति को बढ़ा मिलता है।

6. सेवा वर्ग का प्रबन्धन (Personnel Management)—विद्यालय की प्रबन्धन समिति अध्यापक एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, पद की भूमिका, वेतन की व्यवस्था, प्रोन्नति की व्यवस्था सुनिश्चित करती है। यह कार्य भी विद्यालय के अन्तर्गत उचित रीति से, पक्षपातविहीन (निष्पक्ष) रूप से, योग्यता अनुसार किया जाना चाहिए। समय-समय पर कर्मचारियों को मिलने वाले सेवा सम्बन्धी लाभ दिला प्रबन्धन का दायित्व है।

7. क्रय प्रबन्धन (Purchasing Management)—विद्यालय में विभिन्न कार्यों हेतु भौतिक संसाधन की आवश्यकता पड़ती है, यथा—फर्नीचर, कुर्सी, मेज, अलमारी, अन्य उपकरण, स्टेशनरी, खेलकूद सामान, कार्यालय की साज-सज्जा हेतु आवश्यक सामग्री आदि। इन्हें बाजार से खरीदना तथा सुनिश्चित करना कि खरीदी गयी सामग्री उचित मूल्य एवं उचित गुणवत्ता की है, यह कार्य विद्या प्रबन्धन को करना होता है।

8. संस्थापन प्रबन्धन (Establishment Management)—संस्थान के लिए आवश्यक भ भवन, मैदान, आय के सुनिश्चित स्रोत, निर्माण कार्य आदि संस्थापना या अवस्थापना प्रबन्धन अन्तर्गत आते हैं।

9. कार्यालय प्रबन्धन (Management of Office of the School)—विद्यार्थियों, शिक्षकों अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित लेखा रखने तथा व्यवस्थित करने हेतु सुव्यवस्थित कार्यालय आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों के प्रत्येक वर्ष के प्रवेश के रजिस्टर, प्रमाण-पत्रों के निर्गमन की रिकॉर्ड, विद्यालय से स्थानान्तरित होने वाले छात्रों का लेखा (T.C.), छात्रवृत्ति से सम्बन्धित शिक्षकों के सेवा, वेतन, भत्तों से सम्बन्धित लेखों को व्यवस्थित रखने के लिए कार्यालय की आवश्य होती है। शासन के आदेशों-निर्देशों के अनुपालन की सूचना, जिला तथा अन्य विभागों, यथा—समाज कल्याण, बैंक आदि के कार्यों का समन्वयन एवं प्रबन्धन, प्रबन्धन को करना होता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रबन्धन का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक है इसमें दे आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति का नियोजन आदि शामिल हैं। प्रबन्धन के सन्दर्भ में हेनरी का यह कथन सर्वथा उचित है—"प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य व्यवसाय, धर्म, युद्ध या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।"

विद्यालय के अच्छे प्रबन्धन कौशल से प्रबन्धक, संस्था को घोषित उद्देश्यों की ओर ले में सफल होता है। देश, समाज और राष्ट्र की सेवा में संस्था अपनी सार्थक भूमिका अदा करता है निकलने वाले छात्र या उत्पाद भी समाज में अपनी उपादेयता या गुणवत्ता सिद्ध करके गौरवान्वित करते हैं।

5.8 : विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता
(NEED OF SCHOOL MANAGEMENT)

शैक्षिक कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं को लागू करने में विद्यालय प्रबन्धन की आवश्य है, जिसे निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है—

1. प्रशासनिक दृष्टि से : प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

(i) शिक्षा की नीतियों को निर्धारित करने, निर्मित करने, क्रियान्वित करने, निरीक्षण मूल्यांकन हेतु।

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र को शैक्षिक क्रिया के आधार पर निम्नलिखित कार्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है

1. योजना प्रबन्धन, 2. विकास प्रबन्धन, 3. उत्पादन प्रबन्धन, 4. परिवहन प्रबन्धन, 5. वितरण प्रबन्धन, 6. सेवा प्रबन्धन, 7. क्रय प्रबन्धन, 8. संस्थापन प्रबन्धन, 9. कार्यालय प्रबन्धन।

इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

1. **योजना प्रबन्धन** (Planning Management)—विद्यालय के समस्त कार्य, उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में योजनानुसार सम्पादित हों। इसके लिए कार्य से पूर्व सुविचारित स्पष्ट योजना (Good planning) की आवश्यकता होती है। इसमें विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए। दक्ष लोगों की टीम के द्वारा बनायी गयी योजना निश्चित ही कार्य को उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

2. **विकास प्रबन्धन** (Development Management)—विद्यालय के स्तर को उन्नत करने, गुणवत्ता विकास, कक्षाओं की मान्यता, विषयों में वृद्धि, कक्षाकक्ष का निर्माण, शिक्षकों-कर्मचारियों की संख्या एवं दक्षता में आवश्यकता एवं माँग के अनुसार—विकास करना, आधुनिकता को दृष्टि में रखकर, वर्तमान संसाधनों को नवीनता एवं आधुनिकता में परिवर्तित करना विकास प्रबन्धन का अंग है।

3. **उत्पादन प्रबन्धन** (Management of Production)—किसी भी फैक्ट्री, कम्पनी या निर्माण संस्था के द्वारा उत्पादित सामान (Product) निश्चित/निर्धारित मानक एवं गुणवत्ता के होने चाहिए, तभी बाजार में उसकी (गुणवत्ता के आधार पर) माँग बनी रहेगी। इसी से उस संस्थान या फैक्ट्री का महत्व जाना जाता है, उसकी पहचान बनती है। अतः विद्यालय भी वह सामाजिक-शैक्षणिक स्थल है जहाँ उत्पाद के रूप में अच्छे गुणवान, स्वस्थ, छात्रों को उत्पादित किया जाता है। यही छात्र समाज में विभिन्न जिम्मेदारियों, कार्यों/दायित्वों का निर्वहन करते हैं। अतः विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय से पढ़कर निकलने वाले छात्र देश/राष्ट्र के निर्धारित मानकों, गुणवत्ता के अनुरूप हों। इसके लिए उसे समय-समय पर स्वयं गुणवत्ता की जाँच कराते/करते रहना चाहिए। इस व्यवस्था को स्थापित करने को गुणवत्ता प्रबन्धन (Quality management) या उत्पादन प्रबन्धन कहते हैं।

4. **परिवहन प्रबन्धन** (Transportation of the School Children and Staff)—विद्यालय में अब दूर-दूर क्षेत्रों से छात्र/छात्राओं को लाने तथा वापस उनके घरों तक सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था भी विद्यालय प्रबन्धन को उपलब्ध करानी होती है। इससे जहाँ एक ओर विद्यालय की छात्र संख्या में वृद्धि होती है, उसकी उपलब्धियों का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक विद्यार्थी या ग्रामीण क्षेत्रों या दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करने वाले विद्यार्थी भी विद्यालय की सेवा से लाभान्वित हो जाते हैं। दुर्गम क्षेत्रों या सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के समय से उपलब्ध न होने के कारण अभिभावक अपनी लड़कियों को या छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में असुविधा महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते हैं। जबकि यदि विद्यालय की अपनी निजी परिवहन व्यवस्था है तो इससे छात्र, छात्राओं, अभिभावकों की चिन्ता कम हो जाती है। छात्र, विद्यालय के कर्मचारी समय पर विद्यालय पहुँच जाते हैं, घर वापस जाने के लिए जल्दबाजी या चिन्ता न होने के कारण वे अपने कार्यों या दायित्वों का अधिक जिम्मेदारी से निर्वहन करते हैं। अतः वाहनों का रख-रखाव, ईंधन की व्यवस्था, छात्रों से शुल्क वसूलने की व्यवस्था, छात्रों को विभिन्न मार्गों से लाने तथा घर पहुँचाने की सुनिश्चित व्यवस्था करना प्रबन्धन का दायित्व हो जाता है। इससे न केवल विद्यालय का अनुशासन सुदृढ़ होता है, बल्कि उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक है। विद्यालय की विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है।

5. **वितरण प्रबन्धन** (Distribution Management)—संस्था के विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन एवं कर्मियों के मध्य उचित संसाधनों की सुविधाओं का वितरण आवश्यकतानुसार समान ढंग से किया जाना चाहिए। इससे जहाँ कर्मचारियों में संस्था के प्रति समर्पण एवं निष्ठा का भाव रहता है, वहीं आपसी

ईर्ष्या एवं स्पर्द्धा से बचा जा सकता है। सभी कार्मिकों में समान रूप से [illegible] मिलता है।

6. सेवा वर्ग का प्रबन्धन (Personnel Management) विद्यालय का प्रबन्ध [illegible] एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, पद की भूमिका, वेतन की व्यवस्था [illegible] है। यह कार्य भी विद्यालय के अन्तर्गत उचित रीति से, पक्षपातविहीन [illegible] अनुसार किया जाना चाहिए। समय-समय पर कर्मचारियों [illegible] प्रबन्धन का दायित्व है।

7. क्रय प्रबन्धन (Purchasing Management) विद्यालय [illegible] की आवश्यकता पड़ती है, यथा—फर्नीचर, कुर्सी [illegible] सामान, कार्यालय की साज-सज्जा हेतु आवश्यक सामग्री [illegible] सुनिश्चित करना कि खरीदी गयी सामग्री उचित मूल्य [illegible] प्रबन्धन को करना होता है।

8. संस्थापन प्रबन्धन (Establishment Management) [illegible] भवन, मैदान, आय के सुनिश्चित स्रोत, निर्माण कार्य आदि [illegible] अन्तर्गत आते हैं।

9. कार्यालय प्रबन्धन (Management of Office of the [illegible] अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित लेखा रखने तथा व्यवस्थित [illegible] आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों के प्रत्येक वर्ष के प्रवेश के सम्बन्ध में [illegible] रिकॉर्ड, विद्यालय से स्थानान्तरित होने वाले छात्रों का लेखा [illegible] शिक्षकों के सेवा, वेतन, भत्तों से सम्बन्धित लेखों को व्यवस्थित रखने [illegible] होती है। शासन के आदेशों-निर्देशों के अनुपालन की सूचना जिला [illegible] समाज कल्याण, बैंक आदि के कार्यों का समन्वयन एवं प्रबन्धन प्रबन्धन [illegible]

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रबन्धन का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक [illegible] आवश्यकता, ससाधन, मानव शक्ति का नियोजन आदि शामिल है। प्रबन्धन [illegible] का यह कथन सर्वथा उचित है—"प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो व्यापार, [illegible] धर्म, युद्ध या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।"

विद्यालय के अच्छे प्रबन्धन कौशल से प्रबन्धक, सस्था को घोषित उद्देश्यों की [illegible] में सफल होता है। देश, समाज और राष्ट्र की सेवा में संस्था अपनी सार्थक भूमिका अदा [illegible] निकलने वाले छात्र या उत्पाद भी समाज में अपनी उपादेयता या गुणवत्ता सिद्ध [illegible] गौरवान्वित करते हैं।

5.8 : विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता (NEED OF SCHOOL MANAGEMENT)

शैक्षिक कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं को लागू करने में विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता [illegible] है, जिसे निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है—

1. प्रशासनिक दृष्टि से : प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

(i) शिक्षा की नीतियों को निर्धारित करने, निर्मित करने, क्रियान्वित करने, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन हेतु।

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र को शैक्षिक क्रिया के आधार पर निम्नलिखित कार्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. योजना प्रबन्धन, 2. विकास प्रबन्धन, 3. उत्पादन प्रबन्धन, 4. परिवहन प्रबन्धन, 5. वितरण प्रबन्धन, 6. सेवा प्रबन्धन, 7. क्रय प्रबन्धन, 8. संस्थापन प्रबन्धन, 9. कार्यालय प्रबन्धन।

इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. योजना प्रबन्धन (Planning Management)–विद्यालय के समस्त कार्य, उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में, योजनानुसार सम्पादित हों, इसके लिए कार्य से पूर्व सुविचारित स्पष्ट योजना (Good planning) की आवश्यकता होती है। इसमें विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए। दक्ष लोगों की टीम के द्वारा बनायी गयी योजना निश्चित ही कार्य को उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

2. विकास प्रबन्धन (Development Management)–विद्यालय के स्तर को उन्नत करने, गुणवत्ता विकास, कक्षाओं की मान्यता, विषयों में वृद्धि, कक्षाकक्ष का निर्माण, शिक्षकों-कर्मचारियों की संख्या एवं दक्षता में आवश्यकता एवं माँग के अनुसार–विकास करना, आधुनिकता को दृष्टि में रखकर, वर्तमान संसाधनों को नवीनता एवं आधुनिकता में परिवर्तित करना विकास प्रबन्धन का अंग है।

3. उत्पादन प्रबन्धन (Management of Production)–किसी भी फैक्ट्री, कम्पनी या निर्माण संस्था के द्वारा उत्पादित सामान (Product) निश्चित/निर्धारित मानक एवं गुणवत्ता के होने चाहिए, तभी बाजार में उसकी (गुणवत्ता के आधार पर) माँग बनी रहेगी। इसी से उस संस्थान या फैक्ट्री का महत्व जाना जाता है, उसकी पहचान बनती है। अतः विद्यालय भी वह सामाजिक-शैक्षणिक स्थल है जहाँ उत्पाद के रूप में अच्छे गुणवान, स्वस्थ, छात्रों को उत्पादित किया जाता है। यही छात्र समाज में विभिन्न जिम्मेदारियों/कार्यों/दायित्वों का निर्वहन करते हैं। अतः विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय से पढ़कर निकलने वाले छात्र देश/राष्ट्र के निर्धारित मानकों, गुणवत्ता के अनुरूप हों। इसके लिए उसे समय-समय पर स्वयं गुणवत्ता की जाँच कराते/करते रहना चाहिए। इस व्यवस्था को स्थापित करने को गुणवत्ता प्रबन्धन (Quality management) या उत्पादन प्रबन्धन कहते हैं।

4. परिवहन प्रबन्धन (Management of Transportation of School Children and Staff)–विद्यालय में

4. परिवहन प्रबन्धन (Transportation of the School Children) अब दूर-दूर क्षेत्रों से छात्र/छात्राओं को लाने तथा वापस उनके घरों तक सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था भी विद्यालय प्रबन्धन को उपलब्ध करानी होती है। इससे जहाँ एक ओर विद्यालय की छात्र संख्या में वृद्धि होती है, उसकी उपलब्धियों का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक विद्यार्थी या ग्रामीण क्षेत्रों या दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करने वाले विद्यार्थी भी विद्यालय की सेवा से लाभान्वित हो जाते हैं। दुर्गम क्षेत्रों या सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के समय से उपलब्ध न होने के कारण अभिभावक अपनी लड़कियों को या छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में असुविधा महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते हैं। जबकि यदि विद्यालय की अपनी निजी परिवहन व्यवस्था है तो इससे छात्र, छात्राओं, अभिभावकों की चिन्ता कम हो जाती है। छात्र, विद्यालय के कर्मचारी समय पर विद्यालय पहुँच जाते हैं, घर वापस जाने के लिए जल्दबाजी या चिन्ता न होने के कारण वे अपने कार्यों या दायित्वों का अधिक जिम्मेदारी से निर्वहन करते हैं। अतः वाहनों का रख-रखाव, ईंधन की व्यवस्था, छात्रों से शुल्क वसूलने की व्यवस्था, छात्रों को विभिन्न मार्गों से लाने तथा घर पहुँचाने की सुनिश्चित व्यवस्था करना प्रबन्धन का दायित्व हो जाता है। इससे न केवल विद्यालय का अनुशासन सुदृढ़ होता है, बल्कि उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक है। विद्यालय की विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है।

5. **वितरण प्रबन्धन** (Distribution Management)—संस्था के विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र को शैक्षिक क्रिया के आधार पर निम्नलिखित कार्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. योजना प्रबन्धन, 2. विकास प्रबन्धन, 3. उत्पादन प्रबन्धन, 4. परिवहन प्रबन्धन, 5. वितरण प्रबन्धन, 6. सेवा प्रबन्धन, 7. क्रय प्रबन्धन, 8. संस्थापन प्रबन्धन, 9. कार्यालय प्रबन्धन।

इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. योजना प्रबन्धन (Planning Management)–विद्यालय के समस्त कार्य, उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में योजनानुसार सम्पादित हों इसके लिए कार्य से पूर्व सुविचारित स्पष्ट योजना (Good planning) की आवश्यकता होती है। इसमें विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए। दक्ष लोगों की टीम के द्वारा बनायी गयी योजना निश्चित ही कार्य को उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

2. विकास प्रबन्धन (Development Management)–विद्यालय के स्तर को उन्नत करना, गुणवत्ता विकास, कक्षाओं की मान्यता, विषयों में वृद्धि, कक्षाकक्ष का निर्माण, शिक्षकों-कर्मचारियों की संख्या एवं दक्षता में आवश्यकता एवं माँग के अनुसार–विकास करना, आधुनिकता को दृष्टि में रखकर, वर्तमान संसाधनों को नवीनता एवं आधुनिकता में परिवर्तित करना विकास प्रबन्धन का अंग है।

3. उत्पादन प्रबन्धन (Management of Production)–किसी भी फैक्ट्री, कम्पनी या निर्माण संस्था के द्वारा उत्पादित सामान (Product) निश्चित/निर्धारित मानक एवं गुणवत्ता के होने चाहिए, तभी बाजार में उसकी (गुणवत्ता के आधार पर) माँग बनी रहेगी। इसी से उस संस्थान या फैक्ट्री का महत्व जाना जाता है, उसकी पहचान बनती है। अत: विद्यालय भी वह सामाजिक-शैक्षणिक स्थल है जहाँ उत्पाद के रूप में अच्छे गुणवान, स्वस्थ, छात्रों को उत्पादित किया जाता है। यही छात्र समाज में विभिन्न जिम्मेदारियों/कार्यों/दायित्वों का निर्वहन करते हैं। अत: विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय से पढ़कर निकलने वाले छात्र देश/राष्ट्र के निर्धारित मानकों, गुणवत्ता के अनुरूप हों। इसके लिए उसे समय-समय पर स्वयं गुणवत्ता की जाँच कराते/करते रहना चाहिए। इस व्यवस्था को स्थापित करने को गुणवत्ता प्रबन्धन (Quality management) या उत्पादन प्रबन्धन कहते हैं।

4. परिवहन प्रबन्धन (Transportation of the School Children and Staff)–विद्यालय में अब दूर-दूर क्षेत्रों से छात्र/छात्राओं को लाने तथा वापस उनके घरों तक सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था भी विद्यालय प्रबन्धन को उपलब्ध करानी होती है। इससे जहाँ एक ओर विद्यालय की छात्र संख्या में वृद्धि होती है, उसकी उपलब्धियों का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक विद्यार्थी या ग्रामीण क्षेत्रों या दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करने वाले विद्यार्थी भी विद्यालय की सेवा से लाभान्वित हो जाते हैं। दुर्गम क्षेत्रों या सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के समय से उपलब्ध न होने के कारण अभिभावक अपनी लड़कियों को या छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में असुविधा महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते हैं। जबकि यदि विद्यालय की अपनी निजी परिवहन व्यवस्था है तो इससे छात्र, छात्राओं, अभिभावकों की चिन्ता कम हो जाती है। छात्र, विद्यालय के कर्मचारी समय पर विद्यालय पहुँच जाते हैं, घर वापस जाने के लिए जल्दबाजी या चिन्ता न होने के कारण वे अपने कार्यों या दायित्वों का अधिक जिम्मेदारी से निर्वहन करते हैं। अत: वाहनों का रख-रखाव, ईंधन की व्यवस्था, छात्रों से शुल्क वसूलने की व्यवस्था, छात्रों को विभिन्न मार्गों से लाने तथा घर पहुँचाने की सुनिश्चित व्यवस्था करना प्रबन्धन का दायित्व हो जाता है। इससे न केवल विद्यालय का अनुशासन सुदृढ़ होता है, बल्कि उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक है। विद्यालय की विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है।

5. वितरण प्रबन्धन (Distribution Management)–संस्था के विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन एवं कर्मियों के मध्य उचित संसाधनों की सुविधाओं का वितरण आवश्यकतानुसार समान ढंग से किया जाना चाहिए। इससे जहाँ कर्मचारियों में संस्था के प्रति समर्पण एवं निष्ठा का भाव रहता है, वहीं आपसी

ईर्ष्या एवं स्पर्द्धा से बचा जा सकता है सभी कार्मिकों को समान रूप से कार्य करने का उचित अवसर मिलता है।

6. सेवा वर्ग का प्रबन्धन (Personnel Management) – विद्यालय की प्रबन्धन समिति [illegible] एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, पद की भूमिका, वेतन की व्यवस्था [illegible] की व्यवस्था सुनिश्चित करना है। यह कार्य भी विद्यालय के अन्तर्गत उचित रीति से पक्षपातविहीन (निष्पक्ष रूप से नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए। समय-समय पर कर्मचारियों को मिलने वाले सेवा सम्बन्धी लाभ विद्यालय प्रबन्धन का दायित्व है।

7. क्रय प्रबन्धन (Purchasing Management) – विद्यालय में विभिन्न कार्यों हेतु [illegible] की आवश्यकता पड़ती है, यथा – फर्नीचर, कुर्सी मेज, अलमारी, [illegible] सामान, कार्यालय की साज-सज्जा हेतु आवश्यक सामग्री आदि। [illegible] सुनिश्चित करना कि खरीदी गयी सामग्री उचित मूल्य पर [illegible] प्रबन्धन को करना होता है।

8. संस्थापन प्रबन्धन (Establishment Management) – [illegible] भवन, मैदान, आय के सुनिश्चित स्रोत, निर्माण कार्य आदि [illegible] अन्तर्गत आते हैं।

9. कार्यालय प्रबन्धन (Management of Office of the [illegible]) – [illegible] अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित लेखा रखने तथा व्यवस्थित करने [illegible] आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों के प्रत्येक वर्ष के प्रवेश के रजिस्टर, प्रमाण-पत्र [illegible] रिकॉर्ड, विद्यालय से स्थानान्तरित होने वाले छात्रों का लेखा (T.C.), छात्रवृत्ति से सम्बन्धित लेखा, शिक्षकों के सेवा, वेतन, भत्तों से सम्बन्धित लेखों को व्यवस्थित रखने के लिए कार्यालय की [illegible] होती है। शासन के आदेशों-निर्देशों के अनुपालन की सूचना, जिला तथा [illegible] समाज कल्याण, बैंक आदि के कार्यों का समन्वयन एवं प्रबन्धन प्रबन्धन का [illegible]

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रबन्धन का विषय-क्षेत्र [illegible] आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति का नियोजन आदि शामिल हैं। प्रबन्धन के सम्बन्ध में हेनरी फेयोल का यह कथन सर्वथा उचित है – "प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, धर्म, युद्ध या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।"

विद्यालय के अच्छे प्रबन्धन कौशल से प्रबन्धक, संस्था को घोषित उद्देश्यों की [illegible] में सफल होता है। देश, समाज और राष्ट्र की सेवा में संस्था अपनी सार्थक भूमिका [illegible] निकलने वाले छात्र या उत्पाद भी समाज में अपनी उपादेयता या गुणवत्ता सिद्ध [illegible] गौरवान्वित करते हैं।

5.8 : विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता (NEED OF SCHOOL MANAGEMENT)

शैक्षिक कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं को लागू करने में विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता [illegible] है, जिसे निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है –

1. प्रशासनिक दृष्टि से : प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है –

(i) शिक्षा की नीतियों को निर्धारित करने, निर्मित करने, क्रियान्वित करने, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन हेतु।

विद्यालय प्रबन्धन के विषय-क्षेत्र को शैक्षिक क्रिया के आधार पर निम्नलिखित कार्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. योजना प्रबन्धन, 2. विकास प्रबन्धन, 3. उत्पादन प्रबन्धन, 4. परिवहन प्रबन्धन, 5. वितरण प्रबन्धन, 6. सेवा प्रबन्धन, 7. क्रय प्रबन्धन, 8. संस्थापन प्रबन्धन, 9. कार्यालय प्रबन्धन।

इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. योजना प्रबन्धन (Planning Management)–विद्यालय के समस्त कार्य, उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में, योजनानुसार सम्पादित हो, इसके लिए कार्य से पूर्व सुविचारित स्पष्ट योजना (Good planning) की आवश्यकता होती है। इसमें विशेषज्ञों की सहायता ली जानी चाहिए। दक्ष लोगों की टीम के द्वारा बनायी गयी योजना निश्चित ही कार्य को उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

2. विकास प्रबन्धन (Development Management)–विद्यालय के स्तर को उन्नत करने, गुणवत्ता विकास, कक्षाओं की मान्यता, विषयों में वृद्धि, कक्षाकक्ष का निर्माण, शिक्षकों-कर्मचारियों की संख्या एवं दक्षता में आवश्यकता एवं माँग के अनुसार–विकास करना, आधुनिकता को दृष्टि में रखकर, वर्तमान संसाधनों को नवीनता एवं आधुनिकता में परिवर्तित करना विकास प्रबन्धन का अंग है।

3. उत्पादन प्रबन्धन (Management of Production)–किसी भी फैक्ट्री, कम्पनी या निर्माण संस्था के द्वारा उत्पादित सामान (Product) निश्चित/निर्धारित मानक एवं गुणवत्ता के होने चाहिए, तभी बाजार में उसकी (गुणवत्ता के आधार पर) माँग बनी रहेगी। इसी से उस संस्थान या फैक्ट्री का महत्व जाना जाता है, उसकी पहचान बनती है। अतः विद्यालय भी वह सामाजिक-शैक्षणिक स्थल है जहाँ उत्पाद के रूप में अच्छे गुणवान, स्वस्थ, छात्रों को उत्पादित किया जाता है। यही छात्र समाज में विभिन्न जिम्मेदारियों/कार्यों/दायित्वों का निर्वहन करते हैं। अतः विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय से पढ़कर निकलने वाले छात्र देश/राष्ट्र के निर्धारित मानकों, गुणवत्ता के अनुरूप हों। इसके लिए उसे समय-समय पर स्वयं गुणवत्ता की जाँच कराते/करते रहना चाहिए। इस व्यवस्था को स्थापित करने को गुणवत्ता प्रबन्धन (Quality management) या उत्पादन प्रबन्धन कहते हैं।

4. परिवहन प्रबन्धन (Transportation of the School Children and Staff)–विद्यालय में अब दूर-दूर क्षेत्रों से छात्र/छात्राओं को लाने तथा वापस उनके घरों तक सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था भी विद्यालय प्रबन्धन को उपलब्ध करानी होती है। इससे जहाँ एक ओर विद्यालय की छात्र संख्या में वृद्धि होती है, उसकी उपलब्धियों का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर अधिक-से-अधिक विद्यार्थी या ग्रामीण क्षेत्रों या दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करने वाले विद्यार्थी भी विद्यालय की सेवा से लाभान्वित हो जाते हैं। दुर्गम क्षेत्रों या सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था के समय से उपलब्ध न होने के कारण अभिभावक अपनी लड़कियों को या छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में असुविधा महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते हैं। जबकि यदि विद्यालय की अपनी निजी परिवहन व्यवस्था है तो इससे छात्र, छात्राओं, अभिभावकों की चिन्ता कम हो जाती है। छात्र, विद्यालय के कर्मचारी समय पर विद्यालय पहुँच जाते हैं, घर वापस जाने के लिए जल्दबाजी या चिन्ता न होने के कारण वे अपने कार्यों या दायित्वों का अधिक जिम्मेदारी से निर्वहन करते हैं। अतः वाहनों का रख-रखाव, ईंधन की व्यवस्था, छात्रों से शुल्क वसूलने की व्यवस्था, छात्रों को विभिन्न मार्गों से लाने तथा घर पहुँचाने की सुनिश्चित व्यवस्था करना प्रबन्धन का दायित्व हो जाता है। इससे न केवल विद्यालय का अनुशासन सुदृढ़ होता है, बल्कि उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक है। विद्यालय की विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है।

5. वितरण प्रबन्धन (Distribution Management)–संस्था के विभिन्न कार्यों का उचित विभाजन एवं कर्मियों के मध्य उचित संसाधनों की सुविधाओं का वितरण आवश्यकतानुसार समान ढंग से किया जाना चाहिए। इससे जहाँ कर्मचारियों में संस्था के प्रति समर्पण एवं निष्ठा का भाव रहता है, वहीं आपसी

ईर्ष्या एवं स्पर्द्धा से बचा जा सकता है। सभी कार्मिकों में समान रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

6. सेवा वर्ग का प्रबन्धन (Personnel Management)—विद्यालय की प्रबन्धन समिति अध्यापकों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, पद की भूमिका, वेतन की व्यवस्था, प्रोन्नति की व्यवस्था सुनिश्चित करती है। यह कार्य भी विद्यालय के अन्तर्गत उचित रीति से, पक्षपातविहीन (निष्पक्ष) रूप से, योग्यता के अनुसार किया जाना चाहिए। समय-समय पर कर्मचारियों को मिलने वाले सेवा सम्बन्धी लाभ दिलाना प्रबन्धन का दायित्व है।

7. क्रय प्रबन्धन (Purchasing Management)—विद्यालय में विभिन्न कार्यों हेतु भौतिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, यथा—फर्नीचर, कुर्सी, मेज, अलमारी, अन्य उपकरण, स्टेशनरी, खेलकूद के सामान, कार्यालय की साज-सज्जा हेतु आवश्यक सामग्री आदि। इन्हें बाजार से खरीदना तथा यह सुनिश्चित करना कि खरीदी गयी सामग्री उचित मूल्य एवं उचित गुणवत्ता की है। यह कार्य विद्यालय प्रबन्धन को करना होता है।

8. संस्थापन प्रबन्धन (Establishment Management)—संस्थान के लिए आवश्यक भूमि, भवन, मैदान, आय के सुनिश्चित स्रोत, निर्माण कार्य आदि संस्थापना या अवस्थापना प्रबन्धन के अन्तर्गत आते हैं।

9. कार्यालय प्रबन्धन (Management of Office of the School)—विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित लेखा रखने तथा व्यवस्थित करने हेतु सुव्यवस्थित कार्यालय की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों के प्रत्येक वर्ष के प्रवेश के रजिस्टर, प्रमाण-पत्रों के निर्गमन आदि का रिकॉर्ड, विद्यालय से स्थानान्तरित होने वाले छात्रों का लेखा (T.C.), छात्रवृत्ति से सम्बन्धित लेखे, शिक्षकों के सेवा, वेतन, भत्तों से सम्बन्धित लेखों को व्यवस्थित रखने के लिए कार्यालय की आवश्यकता होती है। शासन के आदेशों-निर्देशों के अनुपालन की सूचना, जिला तथा अन्य विभागों, यथा—शिक्षा, समाज कल्याण, बैंक आदि के कार्यों का समन्वयन एवं प्रबन्धन, प्रबन्धन को करना होता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रबन्धन का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक है। इसमें देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति का नियोजन आदि शामिल हैं। प्रबन्धन के सन्दर्भ में हेनरी फेयोल का यह कथन सर्वथा उचित है—"प्रबन्धन एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध या जनकल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।"

विद्यालय के अच्छे प्रबन्धन कौशल से प्रबन्धक, संस्था को घोषित उद्देश्यों की ओर अग्रसर करने में सफल होता है। देश, समाज और राष्ट्र की सेवा में संस्था अपनी सार्थक भूमिका अदा करती है। इससे निकलने वाले छात्र या उत्पाद भी समाज में अपनी उपादेयता या गुणवत्ता सिद्ध करके संस्था को गौरवान्वित करते हैं।

5.8 : विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता (NEED OF SCHOOL MANAGEMENT)

शैक्षिक कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं को लागू करने में विद्यालय प्रबन्धन की आवश्यकता होती है, जिसे निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है—

1. प्रशासनिक दृष्टि से : प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

(i) शिक्षा की नीतियों को निर्धारित करने, निर्मित करने, क्रियान्वित करने, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन हेतु।

(ii) शिक्षा के क्षेत्र मे नियोजित मानवीय ससाधन तथा भौतिक संसाधनों के मध्य समन्वय, सन्तुलन तथा अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए, क्रियाशील बनाये रखने में।

(iii) शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यो, आदर्शों, सिद्धान्तों आदि की प्राप्ति मे सहयोग हेतु।

(iv) शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन रोकने हेतु।

(v) बदलती नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक परिस्थितियों में समायोजन हेतु।

(vi) शिक्षा, विद्यार्थी और शिक्षकों के मध्य परस्पर सामंजस्य एवं उत्प्रेरण हेतु।

(vii) शासन, प्रशासन, शिक्षा विभाग तथा अन्य विभागों के मध्य समन्वयन एवं संचार हेतु।

(viii) संविधान मे उल्लिखित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु, उचित वातावरण निर्मित करने हेतु।

जेम्स लुण्डे के अनुसार, ''प्रबन्धन मुख्य रूप से किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए प्रयासों को नियोजित, समन्वित, अभिप्रेरित एवं नियन्त्रित करने की कला है।''

2. विद्यालय के व्यवस्थापन की दृष्टि से—विद्यालय के व्यवस्थापन की दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

(i) शिक्षक तथा छात्र दोनों की उपलब्धियों मे वृद्धि करने हेतु।

(ii) विद्यालय में उपस्थित सभी संसाधनों के अधिकाधिक उपयोग करने एवं लाभ प्राप्त करने के लिए।

(iii) शिक्षा से सम्बन्धित अधिकारियों, कर्मचारियों, प्राचार्यों तथा शिक्षकों को समन्वित एवं निर्देशित करने के लिए।

(iv) विद्यालय का वातावरण लोकतन्त्रात्मक, विकासात्मक, आधुनिक प्रगतिशील बनाये रखने के लिए।

(v) विद्यालय का पाठ्यक्रम, अनुशासन, शैक्षिक नीति को लागू करने, अधुनातन बनाने के लिए।

3. विद्यार्थियों के विकास की दृष्टि से—विद्यार्थियों के विकास की दृष्टि से आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

(i) वैयक्तिक भिन्नता, आर्थिक विषमता, सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर सबके विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए।

(ii) आवश्यक भौतिक संसाधन, मानव संसाधन, अवस्थापना सुविधा उपलब्ध कराने हेतु।

5.9 : विद्यालय प्रबन्धन का महत्व
(IMPORTANCE OF SCHOOL MANAGEMENT)

विद्यालय प्रबन्धन के महत्व को स्पष्ट करते हुए **प्रो. रॉबिन्सन** ने कहा है—''कोई भी संस्था या व्यवसाय स्वयमेव नहीं चल सकते, चाहे वह संवेग (गतिशील) की स्थिति में ही क्यों न हों। उनको चलाने के लिए उद्दीपन (Stimulus) की आवश्यकता होती है। जिस तरह मानव देह मस्तिष्क के अभाव में हाड़-माँस का एक लोथड़ा मात्र होती है, उसी प्रकार प्रबन्ध के अभाव में सभी साधन भी निष्क्रिय होते हैं।''

वर्तमान समय में विद्यालय प्रबन्धन का महत्व बढ़ता जा रहा है। विद्यालयों के आकार-प्रकार, सुविधा, तकनीक में काफी परिवर्तन हुए हैं। जहाँ विद्यालय कुछ कमरों, सीमित संसाधनों एवं गिने-चुने शिक्षकों के रूप में होते थे, वहीं अब विद्यालय बहुमंजिली इमारतों, सुसज्जित कमरों, आधुनिक उपकरणों, संचार साधनों, क्लोज सर्किट, टी. वी. कैमरों से युक्त होते जा रहे हैं। जहाँ पहले शिक्षक कुछ पुस्तकों को मात्र पढ़ा देना अपना कार्य समझते थे, वहीं अब आधुनिक विद्यालयों के शिक्षक प्रोजेक्टर, प्रजेण्टेशन, इण्टरनेट सर्च आदि का उपयोग कर शिक्षा को ग्लोबल बना रहे हैं। अब विद्यालयों की

प्रयोगशालाएँ एवं पुस्तकालय भी आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित हो रहे हैं। ऐसे में निश्चित ही अब विद्यालय की व्यवस्था को संचालित करना सरल कार्य नहीं है। विद्यालय को राष्ट्रीय नीति, सामाजिक आवश्यकता एवं माँग के अनुसार–संचालित करना, आर्थिक रूप से विद्यालय को सुदृढ करना, मानव शक्ति और भौतिक संसाधनों में सन्तुलन स्थापित करना, पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण, समाज एवं बाजार की माँग के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा में विद्यालय का स्थान बनाये रखना चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसे मात्र कुछ व्यक्तियों के द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता। इसके लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों, योग्य एवं कुशल प्रबन्धकों, निर्देशकों, नीति निर्धारकों, विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित, अनुभवी, समर्पित, निष्ठावान शिक्षकों की आवश्यकता होती है। विभिन्न कार्यों में निपुण तकनीशियनों; जैसे–बिजली, इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर आदि के कर्मियों की भी आवश्यकता विद्यालय को होती है। इन सब कार्यों को निरन्तरता एवं दक्षता के साथ सम्पन्न करने के लिए एक कुशल सदस्यों की 'टीम' जिसे प्रबन्धक द्वारा निर्देशित एवं नियन्त्रित किया जाये, की आवश्यकता होती है। इन सब कार्यों को योजनाबद्ध ढग से सचालित, नियन्त्रित एवं शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण करना ही सफल प्रबन्धन का उदाहरण है।

संक्षेप में विद्यालय प्रबन्धन के महत्व को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. विद्यालय के उद्देश्यों एवं नीतियों का निर्धारण करने में।

2. देश की राष्ट्रीय शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन में।

3. शैक्षिक नवाचार, आधुनिकीकरण एवं तकनीकों के अनुप्रयोग में।

4. विद्यालय एवं समाज के मध्य समन्वय तथा समरसता स्थापित करने में, समाज एवं शासन के मध्य एक सम्बन्ध सेतु स्थापित करने में।

5. विद्यालय में समूह के रूप में, लोकहित में कार्य करने, नेतृत्व क्षमता के विकास करने एवं सामुदायिक जीवन के केन्द्र के रूप में विद्यालय को विकसित करने।

6. शैक्षिक गुणात्मकता उन्नयन करने में।

7. विद्यालय कर्मचारियों, शिक्षकों, शिक्षणेत्तर कर्मियों के मध्य उचित सामंजस्य, समन्वयन स्थापित करने में, नियन्त्रण एवं निर्देशन प्रदान करने में।

8. विद्यालय को जनतांत्रिक भावना के अनुरूप संचालित करने में।

BRARY

5.10 : विद्यालय प्रबन्धन की समस्याएँ
(PROBLEMS OF SCHOOL MANAGEMENT)

किसी भी संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रशासन की आवश्यकता होती है। प्रशासन का अर्थ है–समस्त मानवीय एवं भौतिक तत्वों को इस प्रकार से संगठित एवं व्यवस्थित करना जिससे शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। प्रशासन संस्था की धुरी होती है। उचित एवं कुशल प्रशासन के बिना समस्त साधनों के उपलब्ध होने के बावजूद शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। विद्यालय प्रबन्धन में कुछ ऐसी समस्याएँ या बाधाएँ निम्नलिखित हैं–

1. परीक्षा की समस्या (Problem of Examination)–विद्यालयों में आन्तरिक परीक्षाओं की व्यवस्था करना भी एक समस्या है। परीक्षा का क्या रूप हो? परीक्षा में अधिक-से-अधिक निष्पक्षता किस प्रकार लाई जाए? परीक्षा में कक्षोन्नति का क्या आधार रखा जाए? ये सब आन्तरिक प्रशासन के लिए एक समस्या है।

2. मार्ग–निर्देशन के अभाव की समस्या (Problems of lack of Guidance)–आज की शिक्षा बाल–केन्दित शिक्षा है अर्थात् आज हम इस बात पर बल देते है कि बालक को उसकी रुचि, योग्यता एव क्षमता के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए, परन्तु जब विविध पाठ्यक्रमो का प्रश्न आता है तो चयन की समस्या उठ खड़ी होती है। उचित मार्ग दर्शन प्रदान करने के लिए विद्यालय में विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होती है, परन्तु बहुत-कम विद्यालयो मे इस सुविधा की व्यवस्था उपलब्ध होती है।

3. शिक्षको में पारस्परिक विद्वेष की समस्या (Problem of Mutal Animosity Among Teachers)–आजकल शिक्षको मे भी परस्पर मैत्रीपूर्ण तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध नहीं होते। उनमें आपसी विद्वेष उत्पन्न होता जा रहा है। कभी–कभी तो शिक्षक विद्यार्थियों को भी अपने दलों में आकृष्ट कर उन्हें अपने स्वार्थपूर्ति का साधन बना लेते है। इससे भी विद्यालयों में अनुशासनहीनता और अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

4. उपयुक्त भवन तथा क्रीड़ास्थल की समस्या (Problem of Playground and Suitable Building)–आन्तरिक प्रशासन की एक और समस्या उपयुक्त भवन तथा क्रीड़ास्थल से सम्बन्धित है। बहुत-कम विद्यालय ऐसे है जो उपयुक्त स्थान पर स्थित है और उनके पास विशाल क्रीड़ास्थल है। शहरों में तो बहुत कम विद्यालय ऐसे है जिनके पास खेल के मैदान हों। स्थान के अभाव में विद्यालय में पाली–प्रथा (Shift System) शुरु हो गयी है जिसने विद्यालयों को कारखाने जैसा रूप प्रदान कर दिया है। ऐसी स्थिति मे अनेक समस्याएँ एवं अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे प्रशासन में बाधा आती है।

5. विद्यालय एवं समाज में सामंजस्य की समस्या (Problem of Harmony in School and Society)–आज विद्यालय और समाज एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। दोनों के बीच एक खाई-सी उत्पन्न हो गयी है जिसे पाटा जाना अत्यन्त आवश्यक है। विद्यालय और समाज के सहयोग के बिना शिक्षा कार्य का संचालन सही प्रकार से नहीं हो सकता। अतः इस दूरी को कम करके दोनों के बीच सामजस्य स्थापित किया जाना आवश्यक है।

6. वित्तीय समस्या (Finance Problems)–विद्यालय प्रशासन में वित्त अर्थात् धन की समस्या भी एक आम समस्या है। धन के अभाव में, अनेक छात्र–हितकारी कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते। विद्यालय के सम्मुख अनेक योजनाएँ होती है, परन्तु उन्हे क्रियान्वित करने के लिए वित्त उपलब्ध कराना भी प्रशासन के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है।

7. बढ़ते हुए कार्यालय कार्य की समस्या (Problem of Increasing Office Work)–आज कार्यालय का कार्य भी दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। आज विद्यालय प्रशासक के पास कार्यालय के ही इतने झझट होते हैं, इतना (Table Work) होता है कि न तो वह अन्य साहित्यिक गतिविधियों में हिस्सा ले पाता है और न ही अध्यापन का कार्य भली प्रकार से सम्पन्न करा पाता है।

8. अनुशासनहीनता (Indiscipline)–विद्यार्थियो में निरन्तर बढ़ती हुई अनुशासनहीनता आन्तरिक प्रशासन की एक गम्भीर समस्या है। कभी–कभी इस समस्या को विकट रूप प्रदान करने में हमारे आन्तरिक एवं बाह्य प्रशासनाधिकारी भी उत्तरदायी होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों की उचित माँगों को समय-समय पर पूरा किया जाए। सहानुभूतियों एवं सद्व्यवहार से भी इस समस्या का समाधान काफी हद तक सम्भव हो सकता है।

9. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संचालन की समस्या (Problem of Conducting Co-curricular Activities)–पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संचालन के लिए विद्यालय में समस्त सुविधाएँ

उपलब्ध नहीं होती। अक्सर विद्यालयों के पास खेल के मैदान तथा अन्य आवश्यक सामान का अभाव होता है जिससे कि इन क्रियाओं की व्यवस्था करना एक समस्या हो जाती है।

उपरोक्त विवेचना के बाद हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि शिक्षा प्रशासक को प्रशासन मे आने वाली समस्याओं का निराकरण करते हुए विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों को कुशलता एव दक्षता के साथ संचालित करना चाहिए। विद्यालय–प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य विद्यालय मे श्रेष्ठ व स्वच्छ वातावरण का निर्माण करना तथा शिक्षा से सम्बन्धित सभी क्रियाकलापों और गतिविधियो को नियोजित एव संगठित के रूप से संचालित करना है जिससे कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समुचित एव सर्वांगीण विकास हो सके, वो देश के उपयोगी नागरिक बन सकें और देश को उन्नतिशील बनाने मे अपना योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. विद्यालय प्रबन्धन का अर्थ स्पष्ट करते हुए विद्यालय के लिए इसके महत्व का वर्णन कीजिए।
2. विद्यालय प्रबन्धन की विभिन्न विशेषताएँ विस्तारपूर्वक बताइये।
3. प्रबन्धन का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्व है तथा विद्यालय के विकास में इसका क्या योगदान है ? स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. विद्यालय प्रबन्धन के कार्यों को बताइये।
2. विद्यालय प्रबन्धन के क्षेत्र को बताइये।
3. विद्यालय प्रबन्धन में संगठन के महत्व की विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. विद्यालय प्रबन्धन की विशेषताएँ हैं–

   (अ) उद्देश्यपूरक प्रक्रिया (ब) समन्वित प्रक्रिया

   (स) व्यावहारिक प्रक्रिया (द) उपरोक्त सभी उत्तर–(द)

2. विद्यालय प्रबन्धन के कार्य हैं–

   (अ) योजना (ब) संगठन

   (स) अभिप्रेरणा (द) उपरोक्त सभी उत्तर–(द)

3. 'स्कूल' शब्द की उत्पत्ति हुई है–

   (अ) ग्रीक (ब) यूनानी

   (स) अंग्रेजी (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर–(अ)

अध्याय
6

भारतीय शिक्षा आयोग, 1882
[INDIAN EDUCATION COMMISSION, 1882]

सन् 1854 में घोषित वुड के घोषणा पत्र का भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा। इसके उपरान्त यह व्यवस्था समुचित रूप से लगभग 25 वर्ष तक चलती रही। इसी बीच भारतीय इतिहास में एक महान् घटना घटित हुई, जिसे 1857 की क्रान्ति के नाम से जाना जाता है, किन्तु इस क्रान्ति को अंग्रेजों ने अपनी दमनात्मक नीति द्वारा दबा दिया तथा धीरे-धीरे भारत में ब्रिटिश शासन सुदृढ़ हो गया।

1854 के घोषणा पत्र में घोषित शिक्षा नीति के विरुद्ध, भारतीय तथा इंग्लैण्ड में ईसाई मिशनरियां परिवर्तन की मांग कर रही थीं। इन ईसाई मिशनरियों ने इंग्लैण्ड में 'जनरल काउन्सिल ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया' संस्था का गठन किया तथा 1880 में नियुक्त भारत के गवर्नर जनरल लार्ड रिपन पर शिक्षा नीति में परिवर्तन हेतु दबाव डालने लगे, इस पर रिपन ने उन्हें भारतीय शिक्षा नीति पर पुनर्विचार करने का आश्वासन दिया। वास्तव में वुड द्वारा घोषित शिक्षा नीति, अत्यधिक पुरानी (25 वर्ष) हो चुकी थी तथा यह अपेक्षित सफलता भी नहीं प्राप्त कर सकी थी।

अन्ततः लार्ड रिपन ने 3 फरवरी 1882 को 'भारतीय शिक्षा आयोग' का गठन किया। रिपन ने अपनी परिषद् के एक सदस्य सर विलियम हण्टर (Sir William Hunter) की अध्यक्षता में 20 सदस्यीय आयोग का गठन किया, इसमें 7 सदस्य भारतीय थे। इस आयोग को हण्टर कमीशन या भारतीय शिक्षा आयोग–1882 भी कहा जाता है।

हण्टर आयोग के अध्यक्ष सर विलियम हण्टर व सचिव बी. एल. राइस थे। इस आयोग में कुल 20 सदस्य थे, जिनमें 7 भारतीय भी थे। आयोग ने सम्पूर्ण देश के शैक्षिक कार्यकलापों व परिस्थितियों की जाच व गहन अध्ययन कर, मार्च, 1883 में 600 पन्नों का एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें शिक्षा के लगभग सभी स्तरों एव पक्षों पर महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ की गई थीं।

लार्ड रिपन ने नवीन शिक्षा नीति की घोषणा से पूर्व वुड के घोषणा पत्र की पूर्णतया समीक्षा करने के आदेश दिये। प्राथमिक शिक्षा की स्थिति में सुधार व विकास हेतु क्या उपाय किये जायें तथा सभी शैक्षिक पहलुओं पर सरकार की नीति को स्पष्ट करने के आदेश दिये।

6.1 : भारतीय शिक्षा आयोग के उद्देश्य
(AIMS OF INDIAN EDUCATION COMMISSION)

भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति का मुख्य उद्देश्य, 1854 में घोषित वुड के घोषणा पत्र की समीक्षा करना था तथा उसके क्रियान्वयन व परिणामों का अध्ययन करना था, किन्तु मुख्य रूप से हण्टर आयोग की नियुक्ति निम्नलिखित उद्देश्यों के लिये की गई–

1. सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य में प्रारंभिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करना।

2. प्राथमिक शिक्षा की अधिकाधिक उन्नति व प्रचार एवं विकास हेतु साधनों की खोज व उनकी उपलब्धता कराना।

6.2 : भारतीय शिक्षा आयोग के कार्य
(FUNCTIONS OF INDIAN EDUCATION COMMISSION)

आयोग को प्रमुख रूप से निम्नांकित कार्य सौंपे गये–

1. वुड घोषणा पत्र द्वारा घोषित शिक्षा नीति, 1854 का किस सीमा तक अनुपालन हुआ है तथा क्या परिवर्तन आवश्यक हैं ?

2. क्या वुड घोषणा पत्र की सिफारिशों को दुबारा दोहराया जा सकता है ?

3. प्राथमिक शिक्षा की उन्नति हेतु सुझाव देना।

4. माध्यमिक व उच्च शिक्षा से प्राथमिक शिक्षा तो बाधित नहीं हुई।

5. विद्यालयों की वर्तमान स्थिति क्या है तथा सुधार के क्या उपाय हैं ?

6. भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु मिशनरी स्कूलों की क्या भूमिका है व उस सम्बन्ध में सरकार की क्या नीति होनी चाहिये ?

7. सहायता अनुदान प्रणाली के सम्बन्ध में जांच करना व अपेक्षित सुधार हेतु सुझाव देना।

6.3 : हण्टर आयोग की सिफारिशें
(RECOMMENDATIONS OF HUNTER COMMISSION)

हण्टर आयोग–1882 में भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में, नई नीतियों के निर्माण हेतु अनेक संस्तुतियां की गईं जो निम्न वर्णित हैं–

वुड घोषणा पत्र पर विचार

हण्टर आयोग की स्थापना ही वुड घोषणा पत्र के स्थान पर नवीन नीतियों के निर्माण हेतु की गई थी। सभी भारतीय व ईसाई मिशनरियां 25 वर्ष पुरानी शिक्षा नीति के स्थान पर परिवर्तित व नवीन शिक्षा नीति की मांग कर रहे थे। हण्टर आयोग ने वुड डिस्पैच के प्रावधानों तथा सम्पूर्ण कार्य अवधि का गहन अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुचे कि जो भी संस्तुतियाँ 25 वर्ष पूर्व की गई थीं वे उचित थीं, किन्तु घोषणाओं का क्रियान्वयन सही ढंग से नहीं किया गया था। अत: आयोग ने इस नीति में परिवर्तन हेतु कुछ सुझाव दिये–

1. प्राथमिक शिक्षा के व्यापक प्रचार प्रसार हेतु उसके संचालन का कार्यभार नगर पालिकाओं तथा जिला परिषदों आदि स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा सम्पन्न हो।

2. माध्यमिक व उच्च शिक्षा का उत्तरदायित्व गैर-सरकारी संस्थाओं के अधीन हो।

3. सहायता अनुदान के नियम सरल, व्यवहारिक व उदार हों।

4. सहायता अनुदान के नियम से सभी शैक्षिक कर्मचारी व व्यक्ति अवगत हों।

5. सहायता अनुदान निश्चित समय सीमा मे व बिना किसी भेदभाव के वितरित हो।

6. विद्यालय के अध्यापको के वेतन व छात्रवृत्तियो के साथ ही विद्यालयों के भवन निर्माण, प्रयोगशाला व पुस्तकालय आदि हेतु भी अनुदान की समुचित व्यवस्था हो।

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Primary Education)

हण्टर कमीशन ने प्राथमिक शिक्षा की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन करके, इससे सम्बन्धित सभी विषयो पर व्यापक सुझाव दिये। आयोग ने स्थानीय निकायो, जिला परिषदों तथा नगरपालिकाओं को इग्लैण्ड की कन्ट्री काउन्सिल के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का भार सौंपा।

1. प्राथमिक शिक्षा की नीति (Policy of Primary Education)—प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे आयोग द्वारा एक निश्चित नीति का निर्माण किया गया—

(i) प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयोगी व जीवन के मूल्यों के अनुरूप हो।

(ii) प्राथमिक शिक्षा के प्रचार, प्रसार तथा व्यवस्था के लिये सरकार द्वारा प्रयास किये जायें।

(iii) शिक्षा को केवल पढ़ाई के रूप में न लेकर, सामान्य शिक्षा के रूप में लिया जाये ताकि बाल मन पर दबाव न पड़े।

(iv) शिक्षा छात्रो के सर्वांगीण विकास में सहायक हो।

(v) पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित किया जाये, ताकि छात्र अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

(vi) प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें (प्रान्तीय भाषायें) होनी चाहिये।

2. प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Primary Education)—आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये—

(i) जन शिक्षा का प्रसार

(ii) व्यवहारिक व सामान्य जीवन हेतु उपयोगी शिक्षा

(iii) स्वावलम्बन व आत्मनिर्भर छात्र, प्रदान करने वाली शिक्षा व्यवस्था

3. प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त (Administration & Finance of Primary Education)—प्राथमिक शिक्षा का कार्य भार आयोग ने स्थानीय निकायों पर डाल दिया तथा निम्न सुझाव दिये—

(i) प्राथमिक विद्यालयों का प्रशासन, स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं; जैसे—जिला परिषद् या नगर पालिका आदि के अधीन हो।

(ii) ये संस्थायें ही अपने-अपने क्षेत्र मे प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करेंगी, अध्यापकों की नियुक्ति करेंगी, वेतन का भुगतान तथा अन्य व्ययों का भुगतान करेंगी।

(iii) स्थानीय आवश्यकताओं और संसाधनों की आवश्यकता के अनुसार, आर्थिक सहायता की योजना बनायी जानी चाहिये।

(iv) विद्यालय के समस्त कार्यों का संचालन नियम व कानूनों के अनुसार ही किया जाये।

(v) प्राथमिक शिक्षा पर व्यय हेतु प्रान्तीय सरकारें कुल व्यय का 1/2 या 1/3 भाग अनुदान के रूप मे देंगी। बम्बई सरकार ने अधिक धनराशि स्थानीय निकायों में शिक्षा हेतु दी। बंगाल, पजाब, संयुक्त प्रान्त, आसाम, सेन्ट्रल प्रान्तों की, स्थानीय निकायों को शिक्षा हेतु प्रोत्साहित किया गया।

4. प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum)—आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर भी व्यापक रूप से विचार किया—

(i) पाठ्यक्रम के निर्धारण व निर्माण हेतु प्रान्तीय सरकारों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

(ii) प्राथमिक शिक्षा—प्रान्तीय भाषा, व्यवहार व समाज के अनुरूप हो।

(iii) अन्य विषयों में सामान्य विज्ञान, गणित, कृषि, प्राथमिक चिकित्सा, बहीखाता, भौतिक विज्ञान इत्यादि विषयों के सामान्य ज्ञान को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाये।

(iv) स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवहारिक शिक्षा, जैसे—कताई, बुनाई, सिलाई, पशुपालन इत्यादि की भी व्यवस्था की जाये।

5. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम (Medium of Primary Education)—शिक्षा के माध्यम से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव दिये गये—

(i) प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम परम्परागत प्रचलित स्थानीय भाषायें हो एवं इन भाषाओं के विकास हेतु प्रयत्न किये जायें।

(ii) प्रारंभिक शिक्षा को मातृभाषा द्वारा दिये जाने के सिद्धान्त का पालन करने का प्रयास किया जाये।

6. प्राथमिक शिक्षा हेतु शिक्षकों का प्रशिक्षण (Teacher's Training)—आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार हेतु प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया तथा निम्नलिखित सुझाव दिये—

(i) प्रशिक्षण विद्यालयों के रूप में कार्यरत नार्मल स्कूलों की सख्या मे वृद्धि की जाय।

(ii) प्रत्येक विद्यालय निरीक्षक के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र मे कम-से-कम एक नार्मल विद्यालय अवश्य हो।

(iii) नार्मल विद्यालयों के उपयुक्त संचालन हेतु धन का आवटन, प्रान्तीय कोषो द्वारा पहले ही करा जाय।

(iv) प्रत्येक निरीक्षक को अपने अधीन स्थित नार्मल स्कूल के सचालन पर विशेष ध्यान देना चाहिय।

7. प्राथमिक देशी अथवा स्वदेशी विद्यालयों को प्रोत्साहन (Encouragement of Indigenous Schools)—आयोग ने अपनी जांच के दौरान देखा कि देशी पाठशालाये अत्यन्त उत्साह व साहस से अस्तित्व में थीं। इसके अतिरिक्त मिशनरी विद्यालयों की आधुनिक शिक्षा प्रणाली के समक्ष भी यह विद्यालय संघर्षरत थे। अतः आयोग ने देशी विद्यालयो की दीन-हीन दशा का अध्ययन कर उन्हे प्रोत्साहन देने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये—

(i) देशी विद्यालयों के संचालन का कार्यभार, स्थानीय निकायों एवं विद्यालय परिषदों के अन्तर्गत हो।

(ii) स्वदेशी पाठशालाओं को सरकारी आर्थिक सहायता प्रदान की जाय।

(iii) इन विद्यालयों में भवन निर्माण तथा वेतनों के भुगतान हेतु सरकार द्वारा अनुदान की व्यवस्था की जाय।

(iv) स्वदेशी विद्यालयों को समस्त सुविधायें व अनुदान उपलब्ध कराकर उन्हें आधुनिक रूप दिया जाय।

(v) इन विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जायें।

(vi) इनके पाठ्यक्रम में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय।

(vii) शिक्षकों को प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया जाय।

(viii) पाठ्यक्रम में उपयोगी विषयों को सम्मिलित करने हेतु सुझाव दिये जायें।

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Secondary Education)

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे भी स्पष्ट नीति की घोषणा की। उसने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के सम्बन्ध मे अपनी नीति स्पष्ट करते हुये कहा था–

"सरकार का कर्तव्य प्रत्येक जिले मे एक माध्यमिक विद्यालय स्थापित करना है। इसके बाद इसके और अधिक प्रयास का दायित्व व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ देना चाहिये।"

हण्टर कमीशन की रिपोर्ट

1. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Secondary Education)–आयोग के प्रतिवेदन में माध्यमिक शिक्षा में निम्नलिखित उद्देश्य स्पष्ट किये गये–

(i) जीवन उपयोगी शिक्षा।

(ii) सामान्य जीवन हेतु सफल शिक्षा व्यवस्था।

(iii) उच्च शिक्षा मे प्रवेश हेतु, छात्रों की उपयुक्त तैयारी।

2. माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त (Finance and Adminstration of Secondary Education)–प्रशासन व वित्त से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

(i) माध्यमिक शिक्षा का सम्पूर्ण कार्यभार का संचालन कुशल एवं धनी/प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा किया जाय।

(ii) इन विद्यालयों में प्रशासन एवं प्रबन्धन हेतु दिशा-निर्देशन के लिये प्रत्येक जिले में एक सरकारी विद्यालय खोला जाये।

(iii) व्यक्तिगत प्रयासों से चलाये जा रहे माध्यमिक स्कूलों को सहायता अनुदान देने में किसी भी प्रकार का भेदभाव न करके उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाय।

3. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum)–आयोग ने पाठ्यक्रम पर विशेष रूप से विचार कर, निम्नलिखित सुझाव दिये–

(i) पाठ्यक्रम–पाठ्यक्रम के पहले भाग में अर्थात् अ-पाठ्यक्रम में साहित्यिक विषयों को स्थान दिया गया व अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित किया गया। यह पाठ्यक्रम उच्च शिक्षा के प्रति रुचि रखने वाले छात्रों के लिये था।

(ii) पाठ्यक्रम–यह पाठ्यक्रम जीवन उपयोगी पाठ्यक्रम था। इसमें विज्ञान, कृषि इत्यादि व्यावसायिक व रोजगारपरक विषयों को वरीयता प्रदान की गई। इसमें भी अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में रखा गया।

4. शिक्षा का माध्यम (Medium of Instruction)–माध्यम के सम्बन्ध में आयोग ने कोई स्पष्ट सुझाव नहीं दिये–

(i) इसमें परोक्ष रूप से वुड डिस्पैच में घोषित अंग्रेजी को ही माध्यम बनाये रखने का समर्थन किया गया।

5. शिक्षक प्रशिक्षण (Teacher's Training)–इससे सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव आयोग द्वारा दिये गये–

(i) शिक्षा के स्तर में सुधार हेतु माध्यमिक शिक्षा में भी प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया गया।

(ii) प्रशिक्षित शिक्षकों की पूर्ति के लिये शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना पर बल दिया गया।

6.3.3 उच्च शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Higher Education)

हण्टर आयोग ने चूंकि समस्त शैक्षिक पक्षों पर विचार किया था। इसलिये उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे भी उपयोगी सुझाव दिये, जो निम्नलिखित हैं–

1. उच्च शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Higher Education)–आयोग ने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये–

(i) उच्च ज्ञान की प्राप्ति।

(ii) विशिष्ट योग्यताओं का विकास।

(iii) कर्त्तव्यों का ज्ञान।

(iv) विशिष्ट शिक्षा द्वारा प्रत्येक विषय के विशेषज्ञों का निर्माण।

2. उच्च शिक्षा का प्रशासन तथा वित्त (Finance and Adminstration of Higher Education)–प्रशासन तथा वित्तीय परिप्रेक्ष्य में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

(i) उच्च शिक्षा हेतु महाविद्यालयों की स्थापना पर बल दिया गया।

(ii) उच्च शैक्षिक संस्थाओं तथा महाविद्यालयों के प्रशासन तथा वित्त का सम्पूर्ण प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी व्यक्तिगत संस्थाओं पर डाल दी गई।

(iii) पाठ्यचर्या को व्यापक बनाने का सुझाव दिया गया।

(iv) राजकीय महाविद्यालय केवल उन्हीं स्थानों पर खोले जायें, जहा उन्हे खोलने की आवश्यकता हो, मांग हो एवं जनता इस कार्य में असमर्थ हो।

3. शिक्षा का माध्यम (Medium of Education)–माध्यम के विषय मे कोई भिन्न सुझाव नहीं दिया गया अर्थात् परोक्ष रूप से अंग्रेजी को ही मान्यता दे दी गई।

4. शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum)–पाठ्यक्रम से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

(i) उच्च शिक्षा मे विषयों के चुनाव में छात्रों की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाय।

(ii) पाठ्यक्रम में अधिक-से-अधिक विषयों को सम्मिलित कर, पाठ्यक्रम का रूप व्यापक व सार्वभौम बनाया जाय।

(iii) पाठ्यविषयक ज्ञान के साथ-साथ धर्म, मानवता तथा नैतिकता का ज्ञान भी छात्रों को कराया जाय।

(iv) पाठ्यक्रम में, माध्यम अंग्रेजी को ही रखा गया।

5. प्राध्यापकों की नियुक्ति (Appointment of Teachers)–आयोग ने सुझाव दिया कि महाविद्यालयों में प्राध्यापकों की नियुक्ति करते समय यूरोपीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त भारतीयों को प्राथमिकता दी जाय।

6.3.4 स्त्री शिक्षा पर संस्तुतियाँ (Recommendations on Woman Education)

आयोग ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित संस्तुतियां कीं–

1. बालिकाओं की शिक्षा में वृद्धि करने हेतु पृथक् बालिका विद्यालयों के निर्माण की संस्तुति की गई।

2. बालिका विद्यालयों को सरकारी अनुदान देने की व्यवस्था की गई तथा अनुदान के नियम सरल व आसान बनाने की बात कही गई।

3. स्थानीय निकायों और प्रान्तीय कोषों द्वारा धन आवंटित करने की बात कही गई।

4. बालिकाओं की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई।

5. बालिकाओं की आवश्यकताओं के अनुसार, पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन किया गया।

6. बालिकाओं के लिये छात्रावासों का प्रबन्ध किया गया।

7. अध्यापन के क्षेत्र में बालिकाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय खोलने की सस्तुति की गई।

8. बालिका विद्यालयों के निरीक्षण हेतु, यथा संभव महिला निरीक्षकों की नियुक्ति की जाय।

9. माग व स्थान के महत्व के अनुसार, ही बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा की भी व्यवस्था की जानी चाहिये।

6.3.5 मुस्लिम शिक्षा पर संस्तुतियाँ (Recommendation About on Muslim Education)

उस समय मुसलमान वर्ग शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक पिछड़े थे। अतः आयोग ने उनकी शिक्षा के प्रसार हेतु निम्नलिखित संस्तुतियां कीं–

1. मुसलमान बच्चों की शिक्षा हेतु पृथक् विद्यालय खोले जायें।

2. मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र के विद्यालयों में, हिन्दुस्तानी के साथ फारसी को भी शिक्षा का माध्यम बनाने की संस्तुति की गई।

3. छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायें।

4. मुसलमान बच्चों की प्रगति की अलग से रिपोर्ट बनाकर उसका आंकलन किया जाय।

6.3.6 पिछड़े क्षेत्रों की शिक्षा पर सुझाव (Suggestions for Backward Areas)

भारत के अनेक क्षेत्र ऐसे थे जो अविकसित व पिछड़े थे। ये क्षेत्र शैक्षिक दृष्टि से भी अत्यन्त पिछड़े हुये थे। इसलिये, आयोग ने इन क्षेत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. स्थानीय निकायों द्वारा संचालित विद्यालयों में बिना भेदभाव के सभी को शिक्षा हेतु प्रवेश दिया जाय।

2. पिछड़े क्षेत्रों में सरकार द्वारा विद्यालय खोले जायें।

3. पिछड़ी जाति हेतु शिक्षा निःशुल्क हो।

4. छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान की जायें।

5. शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषायें हों।

6. आदिवासियों की शिक्षा हेतु विशेष व्यवस्था की जाय।

7. व्यवहारिक व जीवनोपयोगी शिक्षा पर बल दिया गया।

8. अध्यापन में भी इनकी सहभागिता के लिये विशेष प्रयास किये जायें।

6.3.7 धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions Related to Religious Education)

धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. सरकारी विद्यालयों में किसी भी मिशनरी अथवा हिन्दुस्तानी संस्था द्वारा धार्मिक शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये।

2. निजी स्तर पर प्रबन्धक की इच्छानुसार धार्मिक शिक्षा की छूट थी।

3. धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों में अनुदान देते समय उनकी शैक्षिक उपलब्धियों को देखा जाय।

6.3.8 मिशनरियों में शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Related to Missionary Education)

1. मिशनरी स्कूलों व भारतीय स्कूलों में सरकार द्वारा किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाय।

2. भारतीयों की शिक्षा का भार मिशनरियों पर न छोड़ा जाय।

3. सहायता अनुदान के सम्बन्ध में भी सभी प्रकार के विद्यालयों के प्रति सरकार द्वारा समान नीति का अनुपालन किया जाना चाहिये।

6.4 : भारतीय शिक्षा आयोग (1882) का मूल्यांकन [EVALUATION OF INDIAN EDUCATION COMMISSION (1882)]

अंग्रेजों ने हण्टर आयोग के गठन में पहली बार भारतीयों को भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया। इसके 20 सदस्यों में 7 सदस्य भारतीय थे। इन सदस्यों की उपस्थिति के कारण भारतीयों का प्रत्येक स्तर पर इस अयोग के सुझावों में समर्थन किया गया। यह वास्तव मे अत्यन्त विस्तृत रिपोर्ट थी, किन्तु फिर भी बारीकी से अध्ययन के उपरान्त, इसमें कई गुण व दोष विद्यमान थे–

1. हण्टर आयोग/भारतीय शिक्षा आयोग के गुण (Merits of Hunter Commission)–हण्टर आयोग/भारतीय शिक्षा आयोग के गुण निम्नलिखित रूप से हैं–

(i) हण्टर कमीशन ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उसने वुड घोषणा पत्र 1854 में वर्णित भारतीय समर्थित सुझावों को ही अपने आयोग में पुनः दोहराया।

(ii) इस आयोग ने वुड घोषणा पत्र की नीतियों के भलीभांति क्रियान्वयन पर विशेष बल दिया।

(iii) धार्मिक क्षेत्र में भेदभाव का अन्त करके, समान नीति अपनाकर आयोग द्वारा सराहनीय कार्य किया गया।

(iv) प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों पर छोड़कर, जन शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया।

(v) माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का भार कुशल और धनी व्यक्तियों पर डाल दिया गया। इससे भारतीयों में आत्मविश्वास का संचार हुआ।

(vi) सहायता अनुदान की शर्तों को सरल बनाने की संस्तुति की गई।

(vii) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विषयों को सम्मिलित करके, व्यापक स्वरूप प्रदान किया गया।

(viii) पाठ्यक्रम को दो भागों में विभाजित करके, लगभग प्रत्येक स्तर तथा वर्ग के छात्र की आवश्यकता का ध्यान रखा गया।

(ix) प्राथमिक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाकर, इसके विस्तृत प्रचार व प्रसार मे सहायता मिली।

(x) स्त्री शिक्षा, मुसलमानों की शिक्षा, पिछड़ी जाति की शिक्षा से सम्बन्धित विशेष रूप से सुझाव प्रस्तुत किये गये।

(xi) शिक्षक प्रशिक्षण को भी विशेष महत्व दिया गया।

(xii) स्त्रियों को अध्यापन के क्षेत्र में भागीदारी हेतु प्रोत्साहित किया गया।

(xiii) सभी स्तरों पर निःशुल्क शिक्षा व छात्रवृत्तियां प्रदान की गईं।

(xiv) व्यवहारिक शिक्षा व नैतिक शिक्षा के प्रसार पर भी आयोग द्वारा बल दिया गया।

2. हण्टर आयोग/भारतीय शिक्षा आयोग के दोष (Demerits in Hunter's Commission)–हण्टर आयोग/भारतीय शिक्षा आयोग के दोष अग्रलिखित रूप से हैं–

(i) शिक्षा आयोग ने 25 वर्ष पूर्व निर्मित वुड घोषणा पत्र की संस्तुतियों को ही लगभग दोहराया, जबकि 25 वर्षों मे देश की परिस्थितियो व आवश्यकताओं मे काफी अन्तर आ चुका था।

(ii) शिक्षा को पूर्णतया स्थानीय निकायो व व्यक्तिगत स्तर पर स्थापित करने से, शैक्षिक स्तर मे गिरावट आई।

(iii) इस आयोग ने अंग्रेजी भाषा व सस्कृति का वर्चस्व पूर्णतया बनाये रखा।

(iv) भारत की जनसंख्या के अनुपात मे धन का आवंटन अपर्याप्त रूप में किया गया।

(v) उच्च शिक्षा में शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु यूरोपीय विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को वरीयता प्रदान करके, भेदभाव की नीति अपनाई गई।

(vi) मुस्लिमों के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था से साम्प्रदायिकता व भेदभाव को बढ़ावा मिला।

(vii) अनुदान की शर्तों को पूर्णतया विस्तृत रूप में नहीं वर्णित किया गया।

(viii) व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित कोई विशेष संस्तुतियाँ नहीं की गईं।

(ix) पिछड़ी व निम्न जाति के लिये पृथक् विद्यालयों की स्थापना से जातिगत भेदभाव तथा वर्ग संघर्ष के बीज बो दिये गये।

(x) अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा के लिये कोई स्पष्ट सुझाव नही दिये गये।

6.5 : भारतीय शिक्षा आयोग का भारतीय शिक्षा नीति पर प्रभाव (IMPACT OF HUNTER COMMISSION ON INDIAN EDUCATION POLICY)

इस आयोग की संस्तुतियों ने भारतीय शिक्षा को व्यापक रूप से निम्न प्रकार प्रभावित किया–

1. सरकार द्वारा इसकी समस्त संस्तुतियों व सुझावों को अपनाकर इन्हीं के आधार पर आगे कार्य किया गया।

2. आयोग की संस्तुतियों के अनुसार, देश में महाविद्यालयों की संख्या मे वृद्धि होने लगी–1882 में पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना, 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना।

3. आयोग की संस्तुतियों पर मिशनरियों ने 37 कॉलेज व निजी प्रबन्धन ने 42 कॉलेज खोले।

4. माध्यमिक व उच्च शिक्षा संस्थाओं का कार्यभार व्यक्तिगत हाथो में देने से शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ, किन्तु इसके स्तर में गिरावट अवश्य आ गई।

5. व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा भारतीयों को भी समुचित रूप से वरीयता दी गई।

6. सरकार ने सहायता अनुदान की शर्तों को सरल बना दिया।

7. ईसाई मिशनरियों के प्रति भी समान नियम व शर्तें लागू की गईं व भेदभाव की नीति को त्यागकर समानता पर बल दिया।

8. इस आयोग की संस्तुतियों द्वारा कई दूरगामी प्रभाव पड़े–

(i) इस शिक्षा नीति के उपरान्त सीधे 1904 में लार्ड कर्जन ने नवीन शिक्षा नीति की घोषणा की।

(ii) प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर विद्यालयों व महाविद्यालयों की संख्या व छात्रों की संख्या में महान् वृद्धि हुई।

(iii) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी प्रसार हुआ; जैसे–1880 में बाल गंगाधर तिलक ने फरग्यूसन कॉलेज की स्थापना पूना मे की, 1886 मे लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज की

स्थापना (आर्य समाज द्वारा की), 1887 में कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विश्वविद्यालयों में विज्ञान की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गई, 1898 में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस में 'सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज' की स्थापना की।

अत: स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि हण्टर आयोग ने 25 वर्ष प्राचीन वुड घोषणा पत्र की ही नीति को अपनाया। यद्यपि हण्टर आयोग की संस्तुतियों व सुझावों से काफी परिवर्तन व लाभकारी परिणाम प्राप्त हुये, किन्तु यह भारत; जैसे—अत्यन्त विस्तृत भू-भाग के लिये लगभग नगण्य ही थे।

इस आयोग के सम्बन्ध में **ए. एन. बसु ने अपने** विचार प्रकट करते हुये कहा कि—" आयोग द्वारा प्राप्त कुल परिणाम इसके आकार के अनुरूप नहीं थे।"

इस प्रकार यह आयोग अपने उद्देश्यों को पूर्णतया प्राप्त करने में सफल न हो सका तथा केवल ऐतिहासिक महत्व मात्र ही प्राप्त कर सका।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. प्राथमिक शिक्षा या उच्च शिक्षा के विषय में सन् 1882 के भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों का वर्णन कीजिये और उनकी विवेचना कीजिये।
2. भारतीय शिक्षा आयोग, 1882 की प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित प्रमुख सस्तुतियों का उल्लेख कीजिये और भारत में प्राथमिक शिक्षा के भावी विकास पर उसके प्रभाव को बताइये।

   अथवा

   देश की प्राथमिक शिक्षा को सुधारने के लिये हंटर कमीशन द्वारा दिये गये सुझावों का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) का मूल्यांकन कीजिये और बताइये कि भारतीय शिक्षा के विकास में उसका क्या योगदान है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. हंटर आयोग के कार्य क्षेत्र पर प्रकाश डालिये।
2. भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) की मुख्य सिफारिशों का उल्लेख कीजिये।
3. हंटर कमीशन ने प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में क्या सुझाव दिये हैं ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया था—
   (अ) 3 फरवरी 1882 ई. को (ब) 3 मार्च 1883 ई. को
   (स) 23 अक्टूबर 1884 ई. को (द) 19 जुलाई 1854 ई. को **उत्तर**—(अ)
2. हण्टर आयोग के अध्यक्ष थे—
   (अ) सर विलियम हण्टर (ब) लार्ड रिपन
   (स) विलियम वुड (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**—(अ)
3. भारतीय शिक्षा आयोग में सदस्य थे—
   (अ) 20 (ब) 35
   (स) 25 (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**—(अ)

अध्याय

7

माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53

[SECONDARY EDUCATION COMMISSION, 1952-53]

माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक युग की देन स्वीकार किया जाता है। वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली मे शिक्षा के केवल दो स्तर थे—**प्राथमिक व उच्च**। भारत में माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात करने का श्रेय यूरोपीय मिशनरियों को प्राप्त है, जिन्होंने 18वीं शताब्दी के अन्त में इस देश के कुछ भागों में माध्यमिक विद्यालयो की स्थापना की। इन्हीं का अनुसरण करते हुए तथा इनसे प्रेरणा पाकर, 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में भी कुछ राष्ट्रप्रेमी भारतीयों ने उनके पद चिन्हों का अनुसरण करके माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य धनी भारतीयों की अंग्रेजी भाषा सीखने की माँग की पूर्ति करना था। अतः इस दिशा में, उन्हें प्रारम्भिक अवस्था में भारत में कुछ अंग्रेज शासकों से प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ।

यह आयोग स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित द्वितीय आयोग है, परन्तु माध्यमिक शिक्षा का यह पहला आयोग है। हालांकि स्वतन्त्रता के पूर्व भी, 1882 में माध्यमिक शिक्षा के विषय में हन्टर आयोग का गठन किया गया, जिसने माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे। सन् 1919 में सैडलर शिक्षा आयोग का गठन किया गया, जिसका कार्य माध्यमिक शिक्षा के प्रारूपों में परिवर्तन लाना था। अतः इस आयोग की सस्तुतियों के सम्पादन में माध्यमिक शिक्षा परिषदों (Secondary Education Councils) की स्थापना हुई। जाकिर हुसैन समिति ने माध्यमिक स्तर तक बुनियादी शिक्षा (Basic Education) की योजना प्रस्तुत की, जिसे सर्वप्रथम आचार्य नरेन्द्र देव शिक्षा समिति (1939), ने लागू किया और इस दिशा में प्रयास के रूप में इलाहाबाद में अध्ययन के प्रशिक्षण हेतु महाविद्यालय की स्थापना हुई। तत्पश्चात् 1949 में सार्जेन्ट शिक्षा प्रतिवेदन ने शिक्षा योजना की व्यापक योजना प्रस्तुत की, जिसे क्रियान्वित करने का भार, भारतीय शिक्षा सलाहकार **डॉ. ताराचन्द** पर आ गया। डॉ ताराचन्द ने शिक्षा विशेषज्ञों का एक आयोग बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। 1951 में शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने इस माँग को फिर दुहराया। इस समय तक माध्यमिक शिक्षा एकमार्गीय होने के कारण अत्यन्त विस्तृत हो जाने पर भी निरुद्देश्य प्राय. ही थी। अतः भारत सरकार ने 23 सितम्बर, 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति **डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर** की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया। अध्यक्ष के नाम पर इसे **मुदालियर कमीशन** भी कहते हैं। इस आयोग के सदस्य थे—

1. डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, उपकुलपति, मद्रास विश्वविद्यालय।
2. डॉ. जॉन क्रिस्टी-सदस्य।
3. डॉ. हंसा मेहता-सदस्य, कुलपति, बड़ौदा विश्वविद्यालय।
4. श्री केनेथ रस्ट विलियम-सदस्य, शिक्षा निदेशक, बड़ौदा।
5. डॉ. के. एल. श्रीमाली-सदस्य, प्राचार्य विद्याभवन, उदयपुर।
6. डॉ. के. जी. सैयेदेन-सदस्य, शिक्षा सचिव।
7. श्री जे. ए. तारा पोरवाला-सदस्य, निदेशक तकनीकी सस्थान, बम्बई।
8. श्री एम. टी. व्यास-सदस्य, प्राचार्य न्यूऐजा स्कूल, बम्बई।
9. श्री. ए. एन. वसु-सचिव, केन्द्रीय शिक्षा सस्थान, दिल्ली।

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य व कार्यक्षेत्र

1. माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु सभी पहलुओं की जाँच करना।

2. माध्यमिक शिक्षा के सभी पक्षों का आकलन करके उसके विकास एवं सुधार हेतु सुझाव देना जिसमें पाठ्यवस्तु की व्यवस्था एवं उद्देश्यों का प्रतिपादन करना, प्राथमिक, बेसिक तथा उच्चतर माध्यमिक में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना आदि सुझाव शामिल है।

3. माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अन्य समस्याओं का समाधान बताना।

7.1 : माध्यमिक शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ (RECOMMENDATIONS OF SECONDARY EDUCATION COMMISSION)

I. माध्यमिक शिक्षा का तात्कालिक स्वरूप (Existing Nature of Secondary Education)

आयोग ने विभिन्न राज्यों का दौरा करके माध्यमिक शिक्षा में व्याप्त दोषों का पता लगाया और 28 अगस्त, 1953 को 244 पृष्ठों एवं 14 अध्यायों की रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। माध्यमिक शिक्षा प्रणाली का तात्कालिक स्वरूप व उसमें व्याप्त **दोषों** का विवरण निम्न है–

1. माध्यमिक स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इसका पाठ्यक्रम छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुरूप न होने से इससे छात्रों का समुचित विकास सम्भव नहीं है।

2. शिक्षण विधियाँ एवं पाठ्यक्रम का प्रारूप छात्रों में अपेक्षित गुणों व व्यवहारों के विकास हेतु सक्षम नहीं है, क्योंकि यह पाठ्यक्रम छात्रों मे सहयोग, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, अनुशासन तथा आज्ञाकारिता; जैसे–गुणों का समावेश नहीं करता है।

3. माध्यमिक शिक्षा संकीर्ण व एकांगी होने के कारण भी छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर पाती है।

4. माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है।

5. माध्यमिक शिक्षा पर अंग्रेजी का आधिपत्य होने के कारण सभी छात्र, जो अंग्रेजी में विशेष योग्यता नहीं रखते हैं, विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में अक्षम रह जाते है।

6. माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली भी वैध व विश्वसनीय न होने के कारण, छात्रों की योग्यताओं का समुचित मूल्यांकन नहीं करती है। अत: यह दोष पूर्ण है।

7. माध्यमिक शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को जीविकोपार्जन हेतु सक्षम नहीं बनाती है, क्योंकि इस शिक्षा प्रणाली में जीवन सम्बन्धी कार्य प्रणाली तथा समस्याओं का बोध कराने की अपेक्षा पुस्तकीय ज्ञान को ही अधिक महत्व दिया जाता है।

8. माध्यमिक शिक्षा प्रणाली मे छात्रों का शिक्षक से निकट सम्पर्क न हो पाने के कारण छात्र गाइड, कुंजी, मॉडल पत्र आदि की सहायता से पढ़ने के कारण विषयों का शुद्ध ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते हैं, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

9. कक्षाओं मे शिक्षक तथा छात्र अनुपात अव्यावहारिक होता है। अतः शिक्षक छात्रों पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते।

10. विद्यालयों मे प्रयुक्त शिक्षण विधियाँ छात्रों में विचार स्वातंत्रय की भावना व स्वतः प्रेरणा की भावना विकसित करने में अक्षम है। अतः शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास के कारण योग्य छात्र इस व्यवसाय की ओर आकर्षित नहीं हो पा रहे है। शिक्षण पद्धति मुख्यतः रटने पर आधारित है और शिक्षा अत्यधिक परीक्षा केन्द्रित है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने उपर्युक्त दोषों का विवेचन इन पाँच वर्गों में किया है–

1. माध्यमिक शिक्षा अव्यावहारिक तथा भविष्य की तैयारी की दृष्टि से उपयोगी नहीं है।
2. छात्रों का सम्पूर्ण विकास करने में अक्षम है।
3. मातृभाषा को अनुदेशन (Instruction) में महत्व न दिये जाने के कारण शिक्षा का माध्यम उचित नही है।
4. माध्यमिक शिक्षा छात्रों में अपेक्षित गुणों का विकास करने में अक्षम है।
5. माध्यमिक शिक्षा द्वारा छात्रों में चारित्रिक गुणों का विकास नहीं हो पाता है।

II. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Secondary Education)

आयोग ने भारत में राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए–

1. लोकतन्त्रीय नागरिकता का विकास (Development of Democratic Citizenship)– माध्यमिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में लोकतन्त्रीय भावना का विकास करना होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति में सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने वाली हो। अतः माध्यमिक शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे अपने छात्रों में बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक गुणों का विकास करने हेतु, उनमें स्पष्ट चिन्तन (Clear Thinking) की योग्यता, बोलने व लिखने में स्पष्टता, समूह के साथ रहने की कला का विकास करने के साथ ही उनमें अनुशासन, सहयोग, सामाजिक संवेगशीलता व सहनशीलता के गुणों का विकास शिक्षा द्वारा करने में उनकी सहायता करें, उनमें सच्ची देश भक्ति की भावना व विश्व नागरिकता की भावना का विकास हो, जिससे वे राष्ट्र की समृद्धि में सहायता कर सकें।

2. व्यावसायिक कुशलता में उन्नति (Progress in Vocational Skill)–माध्यमिक शिक्षा को जीविकोपार्जन हेतु उपयोगी बनाने हेतु, इसका दूसरा उद्देश्य छात्रों में व्यावसायिक कुशलता का विकास करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षकों को अपने छात्रों की तकनीकी एवं व्यावसायिक कुशलता अथवा उत्पादकता की वृद्धि पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिससे वे राष्ट्र की समृद्धि में सहायता कर सकें और अन्ततः जीवन के सामान्य स्तर की उन्नति करने में सक्षम हो सकें। इस हेतु उनमें अग्र दृष्टिकोण पैदा करने की आवश्यकता है–

(i) काम के प्रति नया दृष्टिकोण (New Outlook) विकसित करना।

(ii) प्रत्येक स्तर पर तकनीकी कुशलता एवं निपुणता का विकास करना (Promotion of Technical Skill and Efficiency)।

3. व्यक्तित्व का विकास करना (Development of Personality)—माध्यमिक शिक्षा का तीसरा उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना होना चाहिए। इसके लिए शिक्षा का सगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्रों का साहित्यिक, कलात्मक और सास्कृतिक विकास हो। छात्र अपनी सांस्कृतिक विरासत को भली-भाँति समझ सकें और उसके विकास में आधारभूत योगदान दे सकें। इस हेतु पाठ्यक्रमों में कला, शिक्षा, संगीत, नृत्य; जैसे—विषयों तथा रोचक कार्यों (Hobbies) के विकास को सम्मानित स्थान प्रदान करना चाहिए।

4. नेतृत्व के गुणों का विकास हेतु शिक्षा (Education for Development of Leadership Qualities)—माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य व्यक्तियों को सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व के उत्तरदायित्व को वहन करने में समर्थ बनाने हेतु, उनमें नेतृत्व गुणों का विकास करना भी है। अत: शिक्षा द्वारा उन व्यक्तियों को नेतृत्व का प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए, जो अपने सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व संभालने की योग्यता रखते हैं।

III. माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन हेतु नवीन संगठनात्मक प्रारूप (New Organisational Pattern of Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के प्रारूप में परिवर्तन का सुझाव दिया है, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा बताये गये उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रही है। अत: माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन हेतु आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की होनी चाहिए और इसका प्रारम्भ प्राथमिक शिक्षा (जूनियर बेसिक) की कक्षा 5 उत्तीर्ण करने के बाद होना चाहिए अर्थात् यह शिक्षा 11 से 17 वर्ष तक की आयु के छात्र/छात्राओं को दी जानी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा की यह अवधि दो भागों में विभाजित की जानी चाहिए—

(i) 3 वर्ष तक जूनियर शिक्षा; (ii) 4 वर्ष तक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।

3. कक्षा 11 व 12 वाली वर्तमान इन्टरमीडिएट कक्षा के स्वरूप को बदलकर 11वीं कक्षा को हाईस्कूल तथा 12 वीं कक्षा को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए।

4. स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष का कर दिया जाना चाहिए और माध्यमिक कॉलेजों से विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए एक वर्ष का पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम रखा जाना चाहिए।

5. कक्षा 11 तक उत्तीर्ण छात्रों को विभिन्न व्यावसायिक व प्राविधिक संस्थानों में प्रवेश की अनुमति दी जानी चाहिए।

6. बहुउद्देशीय कॉलेजों/स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिए तथा इन स्कूलों में पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण किया जाना चाहिए, जिससे कि छात्र अपने उद्देश्यों, रुचियों और योग्यताओं के अनुसार, पाठ्यक्रम का चयन कर सकें।

7. ग्रामीण विद्यालयों में कृषि-शिक्षा का विशेष प्रबन्ध होना चाहिए और वहाँ उद्यान-कला, पशु-पालन एवं कुटीर उद्योगों की भी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

8. माध्यमिक विद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन की व्यवस्था की जानी चाहिए, इसके द्वारा विद्यालय के अनुशासन में सुधार के साथ छात्र का मूल्यांकन भी उचित रूप से हो सकेगा।

9. पर्याप्त संख्या में पॉलीटेक्निक और टेक्निकल विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए, जो कि या तो स्वतन्त्र रूप से स्थापित हों अथवा बहुउद्देशीय विद्यालयों से सम्बद्ध हों। ये विद्यालय यथा-सम्भव विभिन्न उद्योगो से सम्बन्धित कारखानो के पास होने चाहिए।

10. माध्यमिक स्तर पर कुछ विशेष आवासीय विद्यालय भी खोलें जायें, जिनमें बालकों को दोपहर का भोजन दिया जाए।

11. योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ भी दी जानी चाहिए।

12. नेत्रहीन व मूक-बधिर व्यक्तियों की शिक्षा के लिए भी विद्यालयों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

13. सरकार द्वारा उद्योगों पर उद्योग-शिक्षा कर लगाकर, इससे प्राप्त धन टेक्निकल शिक्षा के विस्तार पर व्यय करना चाहिए।

14. बालक बालिकाओं की शिक्षा में विशेष अन्तर की आवश्यकता न होने पर भी, बालिकाओं के लिए 'गृहविज्ञान' के अध्ययन की समुचित व्यवस्था आवश्यक रूप से होनी चाहिए।

15. पब्लिक स्कूलों को कुछ समय तक यथावत् चलने दिया जाये, परन्तु एक निश्चित अवधि के बाद उनका संगठन अन्य माध्यमिक विद्यालयों की भाँति कर दिया जाना चाहिए।

16. कृषि, इंजीनियरिंग और चिकित्सा आदि के उच्च शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश के लिए उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के बाद एक वर्षीय पूर्व व्यावहारिक पाठ्यक्रम संचालित किया जाना चाहिए।

IV. भाषाओं के अध्ययन हेतु सुझाव (Suggestion for Study of Languages)

1. भाषाओं के शिक्षण हेतु पाँच भिन्न भाषा समूहों पर विचार करना चाहिए-(i) मातृभाषा, (ii) प्रादेशिक भाषा यदि वह मातृभाषा न हो, (iii) संघीय, (Federal) भाषा, (iv) शास्त्रीय भाषायें-संस्कृत, अरबी, फारसी, लैटिन आदि (v) अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा।

2. माध्यमिक स्तर पर शिक्षण का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा हो।

3. विद्यालय पाठ्यक्रम में 'हिन्दी' अनिवार्य विषय होना चाहिए, क्योंकि यह केन्द्र की सरकारी (Official) भाषा है, पत्र-व्यवहार (Correspondence) की भाषा है तथा राष्ट्रीय एकता को दृढ़ता प्रदान करने में सहायक है।

4. इसके साथ ही आयोग ने पाठ्यक्रम में संस्कृत को भी उचित स्थान देने का सुझाव दिया है।

5. माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी एक अनिवार्य विषय बना रहना चाहिए, क्योंकि यह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा है और यदि राष्ट्रीय भावना से उत्तेजित होकर पाठ्यक्रम से अंग्रेजी को हटा दिया जाएगा तो उसका हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।

V. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum of Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने से पूर्व आयोग ने प्रचलित शिक्षा के पाठ्यक्रम में कुछ दोषों का उल्लेख किया है तथा इसे अनुचित, अवास्तविक अमनोवैज्ञानिक, संकीर्ण, पुस्तकीय व अप्रगतिशील बताते हुए इसका खंडन किया है। पाठ्यक्रम में निहित दोषों का उल्लेख इस प्रकार है–

1. यह पाठ्यक्रम शैक्षिक प्रवृत्ति की पुरानी विषयवस्तु तक ही सीमित होने के कारण समाज की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में सहायक नहीं है। अतः यह संकीर्ण धारणा पर आधारित (Narrowly Conceived) है।

2. वर्तमान पाठ्यक्रम पुस्तकीय व सैद्धान्तिक (Bookish and Theoretical) है तथा इसमें क्रियात्मक पक्ष की अपेक्षा सैद्धान्तिक एवं शैक्षणिक पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है।

3. पाठ्यक्रम में विषयों की भरमार के बावजूद पाठ्यसामग्री समृद्धशाली एवं महत्वपूर्ण नहीं है।

4. वर्तमान पाठ्यक्रम व्यक्तित्व भिन्नता पर आधारित न होने के कारण किशारों की विभिन्न आवश्यकताओं तथा योग्यताओं के अनुकूल नहीं है। हाईस्कूल के कोर्स में रखे गये कुछ 'ऐच्छिक विषय' (Optional Subjects) संकीर्ण तथा सीमित हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्यक्रम व्यापक आधार पर आधारित किया जाए, जिससे कि छात्रों की विभिन्न योग्यताओं को उनके अनुकूल वातावरण में विकसित किया जा सके।

5. वर्तमान पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक होने के साथ-ही-साथ परीक्षा केन्द्रित (Examination Centred) भी हैं।

6. वर्तमान पाठ्यक्रम में तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम का अभाव है।

पाठ्यक्रम निर्धारण में निहित दोषों को देखते हुए, माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं–

1. अनुभव की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of Totality of Experience),
2. विविधता व लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Variety and Flexibility),
3. समुदाय केन्द्रित का सिद्धान्त (Principle of Community Centred),
4. अवकाश का सिद्धान्त (Principle of Leisure),
5. सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Correlation).

VI. पाठ्यक्रम के विषय (Subjects of Curriculum)

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की अवधि को जिन दो स्तरों पर विभाजित किया है, उनके पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है–

1. मिडिल अथवा जूनियर हाईस्कूल के विषय–निम्न माध्यमिक पाठ्यक्रम में निम्न विषय रखे जायें-

(1) भाषायें, (2) समाज विज्ञान, (3) सामान्य विज्ञान, (4) गणित, (5) कला एवं संगीत, (6) शिल्प, (7) शारीरिक शिक्षा; पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान हो।

2. उच्च एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर के विषय–इस स्तर पर पाठ्यक्रम में विविधता होनी चाहिए। कुछ अनिवार्य विषय सभी के लिए होंगे–

(1) भाषायें, (2) सामान्य विज्ञान, (3) सामाजिक अध्ययन, (4) हस्त शिल्प।

इन विविध विषयों के अन्तर्गत निम्नांकित सात समूह होंगे–

(1) मानव विज्ञान, (2) विज्ञान, (3) प्राविधिक, (4) वाणिज्य, (5) कृषि विज्ञान, (6) ललित कलाएँ, (7) गृह विज्ञान।

इसके अतिरिक्त आयोग ने इस बात की भी सिफारिश की है कि माध्यमिक शिक्षा के उच्चतर स्तर पर पाठ्यक्रम के विषयों का विभिन्नीकरण (Diversification) किया जाना चाहिए, ताकि वे छात्रों की अभिरुचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस उद्देश्य से आयोग ने पाठ्यक्रम के विषयों का दो भागों में विभाजन किया है–(i) आन्तरिक विषय (Core Subjects), और (ii) वैकल्पिक विषय (Optional Subjects).

आन्तरिक विषय (Core Subjects)–

(1) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(2) निम्ननिखित में से चुनी जाने वाली कोई एक और भाषा–

(i) हिन्दी (उन छात्रों के लिए, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है)।

(ii) प्रारम्भिक अंग्रेजी (उन छात्रों के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन नही किया है)।

(iii) उच्च अंग्रेजी (उन छात्रो के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी का अध्ययन किया है)।

(iv) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

(v) अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा।

वैकल्पिक विषय समूह (Optional Subject Group)–मानव विज्ञान-(1) एक शास्त्रीय भाषा या अन्य में ली गई एक भाषा, (2) इतिहास, (3) भूगोल, (4) अर्थशास्त्र और नागरिकशास्त्र, (5) मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र, (6) गणित, (7) संगीत, (8) गृहविज्ञान।

इसी प्रकार पूर्व बताये गये सभी सात वर्गों में अलग-अलग विषयों का विवेचन किया गया है।

VII. शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में सुझाव (Suggestion Regarding Teaching Methods)

आयोग के अनुसार, उचित शिक्षण विधियों के अभाव में सर्वोत्तम पाठ्य क्रिया भी प्रभावी नहीं हो पाती है, तो कई बार प्रगतिशील शिक्षण विधियों के प्रयोग से असंतोषजनक व अमनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम को भी रोचक व प्रेरणादायक बनाया जा सकता है, परन्तु खेद की बात है कि आज भी हम परम्परागत तथा अनुपयोगी शिक्षण विधियों का प्रयोग कर रहे हैं, जिसके कारण प्रचलित शिक्षा दोषपूर्ण बनी हुई है। ये शिक्षण विधियाँ छात्रों में उचित दृष्टिकोण और मूल्यों का निर्माण न कर पाने से काम के प्रति अभिरुचि व लगाव उत्पन्न नहीं कर पातीं तथा इन यान्त्रिक विधियों द्वारा केवल रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इन शिक्षण विधियों के प्रयोग से स्वतन्त्र चिन्तन सम्भव नहीं है, जिसके कारण छात्रों में अध्ययन के प्रति अभिप्रेरणा का अभाव पाया जाता है। अतः सीखने व सिखाने की प्रक्रिया को वास्तविक रूप से प्रभावशाली व सफल बनाने के लिए शिक्षण विधियों में सार्थक परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षण विधियों से सम्बन्धित कुछ सुझाव निम्न हैं–

1. शिक्षण विधियाँ छात्रों में वांछित मूल्यों एवं दृष्टिकोणों का विकास करने में सक्षम होनी चाहिए। अतः इनका उद्देश्य केवल कुशलतापूर्वक सूचना प्रदान करना ही नहीं होना चाहिए।

2. शिक्षण विधियों द्वारा विद्यार्थियों में काम के प्रति वास्तविक लगाव (Real Attachment) उत्पन्न होना चाहिए, ताकि वे ईमानदारी के साथ कुशलतापूर्वक कार्य करने को इच्छुक हों।

3. शिक्षण विधियों में मौखिक बातों तथा रटने की प्रवृत्ति पर जोर देने की बजाय उद्देश्यपूर्ण एवं वास्तविक स्थिति पर बल दिया जाना चाहिए।

4. शिक्षण विधियों द्वारा विद्यार्थियों को विभिन्न समस्याओं के समाधान में प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग करने की योग्यता का विकास होना चाहिए तथा इनके व्यावहारिक उपयोग (Practical Application) के पर्याप्त अवसर भी दिये जाने चाहिए।

5. शिक्षण विधियाँ इस प्रकार प्रयुक्त की जायें कि वे छात्र को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति द्वारा ज्ञान प्रदान करने में सक्षम हों, उन्हें भी स्पष्ट चिन्तन व अभिव्यक्ति का अवसर मिलना चाहिए।

6. छात्रों में सामाजिक जीवन एवं सहयोगी कार्यों के गुणों के विकास हेतु, उन्हें समूहों में कार्य करने का अधिकाधिक अवसर मिलना चाहिए।

7. प्राविधिक शिक्षण विधियों को लोकप्रिय बनाने हेतु 'प्रयोगात्मक' तथा 'प्रदर्शनात्मक' विद्यालयों की स्थापना विभिन्न स्थानों पर करनी चाहिए।

VIII. पाठ्यपुस्तकों से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Textbooks Related)

मुदालियार आयोग ने पाठ्यपुस्तकों में सुधार हेतु तथा निर्धारित पाठ्यपुस्तकों के स्तर को सुधारने के लिए, सर्वोच्च पाठ्यपुस्तक कमेटी के निर्माण की अनुशंसा की। इस कमेटी में, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (High Court Judge), सार्वजनिक सेवा आयोग (Public Service Commission) का एक सदस्य, उप-कुलपति (Vice-Chanceller), मुख्याध्यापक/मुख्याध्यापिका, दो विशेष योग्यता सम्पन्न शिक्षाशास्त्री व शिक्षा निर्देशक (Director of Education) शामिल होना चाहिए। शिक्षा निर्देशक को इस कमेटी का सचिव होना चाहिए तथा कमेटी के सदस्यों की कार्य-अवधि पाँच वर्ष होनी चाहिए। इस समिति (कमेटी) के निम्नलिखित कार्य होने चाहिए–

1. माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रम में सम्मिलित प्रत्येक विषय के लिए **विशेषज्ञ समीक्षकों** (Expert Reviewers) की कमेटी बनाना।

2. समय-समय पर दो या तीन सदस्यों पर आधारित विशेषज्ञ-कमेटी नियुक्त करना, जो सम्बन्धित पुस्तकों की उपयोगिता पर विस्तृत रिपोर्ट दे सके।

3. आवश्यकतानुसार पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों की रचना के लिए **विशेषज्ञों** को आमन्त्रित करना।

4. स्कूलों के लिए आवश्यक पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध करना तथा पुस्तकों के विक्रय से प्राप्त धनराशि को व्यवस्थित करना।

5. लेखकों के उचित पारिश्रमिक की व्यवस्था तथा उन प्रकाशकों को भी रायल्टी (Royalty) देना जिनकी पुस्तकें स्कूलों हेतु स्वीकृत की गई हैं।

6. शेष विक्रय से प्राप्त धनराशि का प्रयोग, गरीब व योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देना, सुयोग्य विद्यार्थियों हेतु आवश्यक पुस्तकों की व्यवस्था, स्कूल के बच्चों के लिए दूध, खाने आदि की व्यवस्था में सहयोग तथा माध्यमिक शिक्षा के विकास हेतु अन्य सहायक साधनों की व्यवस्था करने में सहयोग हेतु, किया जाना चाहिए।

पाठ्यपुस्तक कमेटी को कागज के प्रकार, चित्र व्यवस्था, छपाई आदि का भी निश्चित स्तर स्थापित करना चाहिए। इसके साथ ही चित्रकला के विकास के लिए विकास खंडों का एक संग्रहालय स्थापित करना चाहिए तथा चित्रकला शैली का अद्यतन प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु केन्द्रीय सरकार द्वारा या तो नई संस्था खोली जाए या पूर्व स्थित कला स्कूलों की सहायता की जानी चाहिए। इसके साथ ही निर्धारित पाठ्यपुस्तकों में जल्दी-जल्दी परिवर्तन की प्रथा को समाप्त करना, भाषाओं के सम्बन्ध में प्रत्येक कक्षा हेतु निश्चित पुस्तक का निर्धारण तथा पाठ्यपुस्तकों को राजनीति व धार्मिक सिद्धान्तों (Religious Ideology) से मुक्त करना आदि सुझाव भी इसी आयोग ने दिये जिससे पाठ्यपुस्तकों का गुणात्मक सुधार हो सके व आदर्श पाठ्यपुस्तकें तैयार हो सकें। प्रान्तों को यह भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे इन पुस्तकों को अपना लें या अपनी आवश्यकताओं के अनुसार, इनमें परिवर्तन कर लें।

IX. धार्मिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ (Recommendations Regarding Religious Education)

आयोग के विचार में धार्मिक शिक्षा विद्यालयों में केवल ऐच्छिक आधार पर और नियमित विद्यालय घण्टों से बाहर दी जा सकती है। ऐसी शिक्षा विशेष मत (Fits) से सम्बन्धित बच्चों तक ही सीमित रहेगी

और प्रबन्धको एव माता-पिता की सहमति से दी जायेगी। अत: धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए किसी छात्र को विवश नहीं किया जायेगा।

X. चरित्र निर्माण की शिक्षा सम्बन्धी संस्तुतियाँ (Recommendations about Character Building Education)

'आयोग' ने चरित्र निर्माण की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है और इसके विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये है–

1. छात्रो के चरित्र का निर्माण करना सभी शिक्षकों का अनिवार्य उत्तरदायित्व होना चाहिए।

2. प्रत्येक विद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम का उद्देश्य चरित्र निर्माण की शिक्षा देना होना चाहिए।

3. विद्यालय–विस्तृत समाज के अन्दर लघु समाज है। अत: जिन मूल्यों और दृष्टिकोणों का राष्ट्रीय जीवन के लिए महत्त्व है, उनको विद्यालय जीवन में प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए।

4. छात्रों में उत्तम अनुशासन की भावना का विकास करने के लिए, उनमें और शिक्षकों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।

5. विद्यालयों में स्वशासन प्रणाली (System of Self Command) को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।

6. विद्यालयो में 'अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं' (Extra Curricular Actvities) एवं 'पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं' को स्थान दिया जाना चाहिए।

7. 17 वर्ष से कम आयु के छात्रों को राजनैतिक कार्यों से अलग रखने हेतु कानून बनाया जाए।

8. सभी विद्यालयों में (N.C.C., First aid, Scouting) एवं जूनियर रेड क्रॉस की व्यवस्था की जाए।

XI. शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestion about Physical and Health Education)

आयोग ने छात्रों की शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी सेवाओं के प्रति ध्यान दिए जाने की आवश्यकता पर बल देते हुए निम्न सुझाव दिये हैं–

1. इन राज्यों में स्कूल स्वास्थ्य सेवा (School Medical Service) की सुसंगठित योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए।

2. सभी विद्यालयों के सब छात्रों की एक वर्ष में कम-से-कम एक बार स्वास्थ्य परीक्षा अवश्य की जानी चाहिए।

3. कठिन रोगों से ग्रस्त छात्रों की स्वास्थ्य परीक्षा बार-बार की जानी चाहिए।

4. रोगी छात्रों व छात्राओं का 'विद्यालय स्वास्थ्य अधिकारी' (School Health Officer) द्वारा मुफ्त उपचार किया जाना चाहिए।

5. छात्रावासों एवं आवास विद्यालयों (Residential Schools) में विद्यार्थियों के लिए पौष्टिक तथा संतुलित भोजन का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

6. शारीरिक शिक्षा में प्रशिक्षण, स्वास्थ्य शिक्षा के समस्त पहलुओं को सम्मिलित करके पर्याप्त एवं व्यापक होना चाहिए। भारतीय प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में कुछ संस्थाओं को मान्यता प्रदान करनी चाहिए।

XII. परीक्षाओं एवं मूल्यांकन सम्बन्धी सुझाव (Suggestion about Exams and Evaluation)

1. बाह्य परीक्षाओं की संख्या कम होनी चाहिए और निबन्धात्मक प्रकार की परीक्षाओं मे आत्मनिष्ठता के तत्व को वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा लागू करके और प्रश्नो के प्रकार में भी परिवर्तन द्वारा कम किया जाना चाहिए।

2. छात्रों की सर्वांगीण प्रगति व उपलब्धियों को जानने हेतु समय-समय पर उनके द्वारा कृत कार्य के अभिलेखों का मूल्यांकन करना चाहिए।

3. अन्तिम मूल्यांकन में आन्तरिक परीक्षाओं और विद्यालय अभिलेखों को समुचित महत्व देना चाहिए।

4. बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं में **छात्रों के कार्य** का श्रेणीकरण और मूल्याकन हेतु अकात्मक अंकन के स्थान पर सांकेतिक प्रणाली अपनानी चाहिए।

5. पाठ्यक्रम के पूर्ण होने पर केवल एक ही सार्वजनिक परीक्षा होनी चाहिए।

6. अन्तिम सार्वजनिक परीक्षा पर पूरक परीक्षा प्रणाली (Compartmental Examination System) प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

XIII. अध्यापक शिक्षा हेतु सुझाव (Suggestion about Teacher Education)

आयोग ने माध्यमिक स्तर पर योग्य अध्यापक प्रदान करने हेतु अध्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया। यह अध्यापक प्रशिक्षण दो प्रकार का होता है—एक माध्यमिक शिक्षा पास अध्यापक, जिसके लिए दो वर्षीय अध्यापक प्रशिक्षण होना चाहिए। दूसरे स्नातक परीक्षा पास अध्यापक, जिनका प्रशिक्षण काल अभी तो एक वर्ष का हो, परन्तु बाद में दो वर्ष का कर दिया जाए। इस प्रकार ये अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएँ दो प्रकार की होनी चाहिए, जिनमें **प्रथम कोटि** की प्रशिक्षण संस्थाएँ एक बोर्ड के अधीन होनी चाहिए। तथा **दूसरे** प्रकार की स्नातकों की प्रशिक्षण सस्थाएँ विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध और उन्हीं के अधीन होनी चाहिए। इन संस्थाओं का नियन्त्रण पृथक् संस्थाओं द्वारा होना चाहिए। कुछ अन्य सुझाव इस प्रकार हैं—

1. सेवाकालीन प्रशिक्षण (In Service Training)—प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए अभिनव पाठ्यक्रम (Refresher Courses), लघु गहन पाठ्यक्रम (Short Intenspire Courses), व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यशाला (Practical Training Workshops) की व्यवस्था होनी चाहिए। अध्यापिकाओं के लिए अंशकालिक प्रशिक्षण (Part Time Training) की सुविधा हो तथा योग्य अध्यापकों हेतु एम. एड. कोर्स का विधान हो।

2. इन प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रवेश केवल उन प्रशिक्षणार्थियों को दिया जाए, जिनका साक्षात्कार करके इस व्यवसाय के प्रति उनकी अभिरुचि का अध्ययन किया गया हो। इन महाविद्यालयों में किसी प्रकार का शुल्क नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को छात्रवृत्ति मिलनी चाहिए। जो प्रशिक्षार्थी पहले ही कहीं नौकरी करते हैं, उन्हें प्रशिक्षण के दौरान वही वेतन मिलना चाहिए तथा उनसे प्रशिक्षण के पाँच वर्ष तक वही शिक्षण कार्य करने का **प्रतिबद्धता पत्र** (Agreement Letter) भरवा लेना चाहिए।

3. आयोग ने प्रशिक्षणार्थियों में आत्मनिर्भरता के विकास हेतु व सामुदायिक जीवन के विकास हेतु **आवासीय प्रशिक्षण महाविद्यालय** (Residential Training College) खोलने का भी ठोस सुझाव दिया तथा इन प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्यापक वर्ग के मुक्त आदान-प्रदान (Free Exchange) व अध्यापकों की कमी को दूर करने हेतु **अंशकालिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम** की व्यवस्था का भी सुझाव दिया।

4. अध्यापकों की नियुक्ति व सेवा सुविधाएँ (Teachers Appointment and Other Benefits)— मुदालियर आयोग का विचार था कि—

(i) सभी प्रकार के विद्यालयों में अध्यापक चयन के लिए एक तरह की पद्धति अपनाई जाए।

(ii) प्राइवेट मैनेजमेन्ट के सभी विद्यालयों में अध्यापकों के चयन हेतु एक समिति बनाई जाए जिसका एक सदस्य विद्यालय का प्रधानाचार्य हो।

(iii) अध्यापक के प्रोबेशन का काल साधारणतया एक वर्ष का हो।

(iv) हाईस्कूल के अध्यापक प्रशिक्षित ग्रेजुएट (Trained Graduate) हों। टेक्निकल विद्यालय के अध्यापक अपने विषय मे दक्ष हो और उन्हे पढ़ाने का प्रशिक्षण प्राप्त हो। हायर सैकेण्डरी स्कूल के अध्यापको की योग्यता इन्टरमीडिएट विद्यालय के अध्यापको के समान ही हो।

(v) समान योग्यता एव समान प्रकार का कार्य करने वाले अध्यापकों के वेतन क्रम समान हों, चाहे वे किसी भी प्रकार के विद्यालयो में पढ़ा रहे हों। इस हेतु विशिष्ट समितियों का गठन किया जाए, जिससे शिक्षको के वेतनमानो मे सुधार लाया जा सके।

(vi) अध्यापकों को आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त करने के लिए 'त्रिमुखी लाभ योजना' अर्थात् पेन्शन, प्राविडेन्ट फण्ड और बीमा (Pension cum Provident Fund cum Insurance) की प्रथा हर राज्य मे लागू हो।

(vii) अध्यापको की पदच्युति एवं निलम्बन के मामलों की सुनवाई के लिए बोर्ड बनाये जायें तथा योग्य व स्वस्थ अध्यापको के अवकाश ग्रहण की आयु 60 वर्ष कर दी जाए।

(viii) अध्यापकों को यथासम्भव विद्यालय परिसर के आसपास आवास सुविधा उपलब्ध कराई जाए ताकि वे विद्यालय के विभिन्न कार्यों में अधिक सहयोग दे सकें।

(ix) अध्यापको को शैक्षिक सेमिनार (Educational Seminar) तथा कॉन्फ्रेंस (Conference) में जाने हेतु अवकाश व यात्रा की सुविधायें दी जायें तथा उनके पाल्यों हेतु स्कूल स्तर की शिक्षा निःशुल्क की जाए।

(x) शिक्षकों तथा उनके बच्चों के लिए मुफ्त चिकित्सा की सुविधा प्रदान की जाए।

(xi) शिक्षको की प्राइवेट ट्यूशन की प्रथा समाप्त कर दी जानी चाहिए।

XIV. शिक्षा के व्यावसायीकरण पर आयोग के सुझाव (Suggestion of Commission about Vocationalisation of Education)

1. पाठ्क्रम के **विविधीकरण** (Diversification of Courses) की व्यवस्था द्वारा सामान्य मूल्य विषयो (Core Subjects) के साथ-साथ विशिष्ट व्यावहारिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था छात्रों के बहुमुखी विकास हेतु की जानी चाहिए।

2. विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था के लिए **बहुउद्देशीय विद्यालय** (Multi Purpose Schools) खोले जायें, जिनमें व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को तैयार करते समय छात्रों के व्यक्तिगत भेदों का ध्यान रखा जाए।

3. शिक्षा के विविध साधनों की व्यवस्था करने हेतु **शैक्षिक निर्देशन** को उपयोगी (Facilitate) व सुविधापूर्ण बनाया जाना चाहिए।

4. बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना से अवर्गीकृत बच्चों की समस्या (Wrongly Classified Pupils) का समाधान सम्भव है।

XV. माध्यमिक विद्यालयों में कृषि शिक्षा व तकनीकी शिक्षा (Agricultural Education and Technical Education in Secondary Schools)

हमारे देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका होने के कारण सभी प्रदेशों के देहाती क्षेत्रों मे कृषि शिक्षा के अवसर प्रदान करने चाहिए। यहाँ **कृषि का शिक्षण** सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होना चाहिए अर्थात् विद्यार्थियों को वास्तविक स्थितियों मे काम करने का अवसर देना चाहिए। इसके साथ ही कृषि सम्बन्धी दो अन्य विषयों–वनस्पति विज्ञान तथा पशु-पालन को भी

सम्बन्धित करना चाहिए। कृषि के लिए पर्याप्त भूमि की व्यवस्था, वैज्ञानिक विधि से कृषि का शिक्षण, स्थानीय आवश्यकताओं तथा प्राप्त सुविधाओं पर आधारित उद्योग का प्रशिक्षण आदि उपयोगी सुझाव भी इसी आयोग की देन है।

तकनीकी शिक्षा (Technical Education) के सम्बन्ध मे आयोग के सुझाव निम्नलिखित है–

1. अधिक संख्या में पृथक् या बहुउद्देशीय स्कूलों के भाग के रूप मे तकनीकी स्कूल खोले जाये जिनमें तकनीकी व सामान्य शिक्षा की व्यवस्था हो।

2. बड़े-बड़े नगरों में केन्द्रीय तकनीकी संस्थानों की स्थापना की जाए जिससे स्थानीय स्कूलो की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

3. सभी स्तरों पर तकनीकी तथा टेक्नोलॉजिकल प्रशिक्षण को आयोजित करने हेतु वाणिज्य तथा उद्योग के प्रतिनिधियों का शिक्षण के माध्यम से स्त्रियो के साथ निकट सम्पर्क स्थापित होना चाहिए ताकि उनके स्तर को बनाये रखने में, उनके विचारो का ध्यान रखा जाए।

4. उद्योगों पर औद्योगिक शिक्षा कर लगाकर, प्राप्त आय को तकनीकी शिक्षा विकास पर खर्च करना चाहिए।

5. माध्यमिक स्तर पर तकनीकी पाठ्यक्रमों के सुचारु रूप से सचालन हेतु अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council for Technical Education) की स्थापना होनी चाहिए।

XVI. सह-शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestion about Co-education)

सह-शिक्षा को सफल बनाने हेतु आयोग के सुझाव निम्नलिखित है–

1. सभी सह-शिक्षा संस्थानों में लड़कियो को गृह विज्ञान के अध्ययन हेतु विशेष सुविधाये प्रदान करनी चाहिए।

2. साधारण लोगो की माँग के अनुसार, लड़कियो के लिए पृथक् स्कूल स्थापित करने चाहिए।

3. लड़कियो तथा अध्यापिकाओ की विशिष्ट आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने हेतु सह शिक्षा संस्थाओं में सुनिश्चित स्थितियों (Definite Conditions) का निर्माण होना चाहिए।

XVII. माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन व परामर्श सेवायें (Guidance and Councilling Services in Secondary Schools)

आयोग ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण किया जिससे छात्र अपनी रुचि के विषयो का अध्ययन कर सकें। अत: अनुभवहीन बालकों को चयन में गलती से रोकने हेतु निर्देशन व परामर्श के सम्बन्ध मे निम्न सुझाव दिये–

1. शिक्षा अधिकारियों को छात्रों के शैक्षिक निर्देशन के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए तथा उन्हे समय-समय पर व्यवसायों की समुचित सूचना देने हेतु 'जीविकोपार्जन सम्मेलनों' (Career Conferences) किये जाने चाहिए।

2. विद्यालयो मे 'निर्देशन अधिकारियों' (Guidance Officers) और जीविकोपार्जन शिक्षको (Career Masters) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

3. नये प्रकार के विकसित दृश्य साधनों द्वारा विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों का ज्ञान दिया जाए जिससे औद्योगिक, तकनीकी तथा कृषि सम्बन्धी व अन्य व्यवसायों की वास्तविक स्थितियो को समझने मे मदद मिल सके।

4. सभी शिक्षा सस्थाओं में प्रशिक्षित निर्देशन अधिकारियों (Trained Guidance Officers) तथा कैरियर मास्टर (Career Master) की सेवायें प्राप्त करने की व्यवस्था की जाए।

5. इन निर्देशन अधिकारियों तथा कैरियर मास्टरों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायें और यथा सम्भव इनमें से कुछ केन्द्रों को शिक्षण कॉलेजों से सम्बद्ध कर दिया जाए, ताकि अध्यापकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के मूल पाठ्यवस्तु का शिक्षण दिया जा सके।

6. शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के अनुसंधान कार्य हेतु केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (Central Research Organisation) की स्थापना की जाए।

7. व्यवसायों के सम्बन्ध में सूचना देने हेतु 'जीविकोपार्जन सम्मेलनों' का आयोजन किया जाए।

8. प्रत्येक प्रदेश में राजकीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो खोले जायें।

XVIII. प्रशासन पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण कार्यक्रम (Administration, Supervision and Inspection Programme)

माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन के सम्बन्ध में आयोग ने निम्न सुझाव दिये हैं–

1. शैक्षिक विषयों पर शिक्षा मंत्री को परामर्श देने का उत्तरदायित्व शिक्षा संचालक पर होगा।

2. केन्द्र तथा राज्यों में एक समन्वय समिति हो जो शैक्षिक सुधार के उपायों पर विचार करे।

3. प्रत्येक राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड होना चाहिए जिसका अध्यक्ष शिक्षा संचालक हो।

4. केन्द्र के समान राज्यों में भी शिक्षा सलाहकार बोर्ड स्थापित किए जायें।

पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण कार्यक्रम पर सुझाव देने से पूर्व आयोग ने पर्यवेक्षण व निरीक्षण सम्बन्धी दोषों की व्याख्या की है। आयोग के अनुसार, निरीक्षण सावधानीपूर्वक किया जाता है। निरीक्षक, निरीक्षण में बहुत-कम समय लगाता है तथा अधिकतर समय वह स्कूल के प्रशासकीय कार्यों के निरीक्षण में लगा रहता है जिससे शैक्षणिक पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इसके अतिरिक्त अध्यापकों तथा निरीक्षकों से सीमित सम्पर्क के कारण अध्ययन की समस्याओं का उन्हें बोध नहीं होता। इसका एक कारण एक निरीक्षक के अधीन इतने अधिक स्कूलों का निरीक्षण होता है, कि वह सभी स्कूलों के कार्यों से परिचित नहीं हो पाता। अतः वह अध्यापकों को स्कूल के शिक्षण कार्य को सुधारने हेतु उचित निर्देश भी नहीं दे पाता। प्रायः निरीक्षक के आलोचनात्मक व सहानुभूतिहीन व्यवहार के कारण उनके आगमन को भय की दृष्टि से भी देखा जाता है।

उपर्युक्त दोषों को दूर करने हेतु आयोग ने निम्न सुझाव दिये हैं–

1. निरीक्षक को अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वहन करना चाहिए।

2. विशिष्ट विषयों; जैसे–गृहविज्ञान, कला, संगीत आदि के शिक्षण कार्य के निरीक्षण हेतु विशिष्ट निरीक्षक नियुक्त किये जाने चाहिए।

3. निरीक्षकों का चुनाव उनकी उच्च शैक्षणिक योग्यता व पर्याप्त शैक्षणिक अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त–दस वर्ष का शिक्षण अनुभव प्राप्त अध्यापक हाई स्कूलों के मुख्याध्यापक व प्रशिक्षण महाविद्यालयों के 3 से 5 वर्ष तक अनुभव प्राप्त अध्यापकों का चुनाव किया जा सकता है।

4. निरीक्षक के कर्तव्यों को प्रशासकीय (Administrative) व शैक्षणिक कर्तव्यों (Academic Duties) में बाँटा जा सकता है। प्रशासकीय कर्तव्य रिकॉर्ड, हिसाब-किताब तथा कार्यालय के कामों के निरीक्षण से सम्बन्धित है जबकि शैक्षणिक कर्तव्यों के निर्वहन हेतु विशेषज्ञों की एक टीम बना ली जानी चाहिए जिसका अध्यक्ष निरीक्षक हो तथा अन्य सदस्य सीनियर अध्यापकों या मुख्य अध्यापकों से चुने जाने चाहिए। ये सदस्य निरीक्षक के साथ स्कूलों के निरीक्षण हेतु जायें तथा दो या तीन दिन तक स्कूल

के अध्यापकों के साथ शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श करना चाहिए; जैसे—पुस्तकालय और प्रयोगशाला सम्बन्धी सुविधायें, पाठ्यक्रम, पाठ्य सहायक क्रियाओं का गठन, अवकाश का प्रयोग आदि।

XIX. पब्लिक स्कूलों के भविष्य के सम्बन्ध में सुझाव (Recommendations about Future of Public Schools)

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा का सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि पब्लिक स्कूलों का उचित संगठन किया जाये और ठीक प्रकार से प्रशिक्षण दिया जाये, तो इनके दृष्टिकोणों तथा व्यवहार में बदलाव लाकर इन्हें उत्तम नागरिक बनाया जा सकता है। इस दिशा में इन स्कूलों की कार्य प्रणाली में कुछ सिद्धान्तों का अनुपालन आवश्यक है—

1. पब्लिक स्कूलों का राष्ट्रीय शिक्षा के सामान्य ढाँचे के साथ सम्बन्ध होना चाहिए।

2. पब्लिक स्कूलों में सामान्य शैक्षणिक जीवन भारतीय संस्कृति, परम्पराओं तथा दृष्टिकोण के अनुकूल होना चाहिए ताकि उनमें अच्छी नागरिकता के गुणों का विकास किया जा सके।

इस प्रकार पब्लिक स्कूल भी विद्यार्थियों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं; उन्हें विकास की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अतः इन स्कूलों में सुझावों के अनुसार, बदलाव लाकर, इन्हें समाप्त करने से बचाया जा सकता है।

7.2 : माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) की संस्तुतियों का मूल्यांकन (EVALUATION OF RECOMMENDATIONS OF SECONDARY EDUCATION COMMISSION)

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन कुछ आधारभूत मानदण्डों के आधार पर ही किया जाता है। शिक्षा एक सामाजिक क्रिया होने के नाते, इसका विधान समाज विशेष के उत्थान हेतु किया जाता है। अतः इससे सम्बन्धित किसी भी विचार, क्रिया अथवा योजना का मूल्यांकन उसकी समाज विशेष के लिए उपादेयता के आधार पर ही किया जाता है। इस आयोग के सुझावों का मूल्यांकन एवं गुण-दोष विवेचन वर्तमान भारतीय समाज एवं उसकी भविष्य की आकांक्षाओं और संभावनाओं के आधार पर व कुछ व्यावहारिक सिफारिशों के आधार पर निम्नलिखित बिन्दु संक्षेप में प्रस्तुत हैं—

I. गुण (Merits)

1. माध्यमिक शिक्षा की नवीन अवधारणा व व्यवस्थित प्रशासनिक ढांचा (New Concept and Systematic Administrative Structure of Secondary Education)—आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की परम्परागत संकल्पना को व्यापक बनाते हुए उसे एक पूर्ण शैक्षिक इकाई के रूप में स्वीकार किया तथा शिक्षा व्यवस्था में केन्द्र सरकार की भागीदारी पर बल दिया। आयोग ने केन्द्र की भाँति प्रान्तों में भी प्रान्तीय शिक्षा सलाहकार बोर्डों की स्थापना का सुझाव दिया तथा विद्यालयों के नियमित प्रशासन व निरीक्षण पर बल दिया।

2. शिक्षा के व्यापक उद्देश्य (Broad Aims of Education)—आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के व्यापक उद्देश्य प्रस्तुत किए व छात्रों के व्यक्तित्व विकास हेतु उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व चारित्रिक विकास पर बल दिया। शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय नागरिकता के विकास से उसका तात्पर्य लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के ज्ञान और लोकतान्त्रिक जीवन शैली में प्रशिक्षित करने से है। नेतृत्व शक्ति और व्यावसायिक कुशलता का विकास ही तो लोकतन्त्र की सफलता का आधार है।

3. पाठ्यक्रम के विविधीकरण द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास (Development of Realistic Attitude Through Diversification of Curriculum)—आयोग द्वारा सुझाया गया पाठ्यक्रम का विविधीकरण जीवन की समस्याओं के प्रति एक यथार्थवादी शिक्षा का माध्यम था, क्योंकि आयोग

केवल साहित्यिक प्रकार की शिक्षा के बुरे परिणामों तथा इसके द्वारा पैदा होने वाली निराशा, बेरोजगारी इत्यादि समस्याओं से पूर्णतया अवगत था।

4. बहुउद्देशीय स्कूलों व ग्रामीण स्कूलों की स्थापना (Establishment of Multipurpose and Rural Schools)—आयोग की रिपोर्ट मे, बहुउद्देशीय स्कूल खोलने की सस्तुतियाँ समय की आवश्यकता के बिल्कुल अनुकूल थीं। इसके साथ ही ग्रामीण स्कूलों की स्थापना भी भारत जैसे—कृषकों के देश के लिए सर्वथा उपयुक्त थी।

5. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (Mother Language as a Medium of Instruction)—आयोग ने माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाने पर बल दिया है, जो यथार्थ के धरातल पर लिया गया निर्णय है, व हमारे देश के लिए हितकर है।

6. चरित्र निर्माण और अनुशासन पर बल (Stress on Character Building and Discipline)—आयोग ने चरित्र–निर्माण और अनुशासन पर बल दिया और इनकी प्राप्ति के लिए ठोस सुझाव भी दिये। इस तरह एक लम्बे समय से चली आ रही अनुशासनहीनता की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।

7. शिक्षकों की दशा में सुधार (Improvement in Teacher's Conditions)—आयोग ने उचित रूप से अध्यापक की स्थिति (Status) तथा कार्य स्थितियों में सुधार का समर्थन किया है, क्योंकि अध्यापक ही सम्पूर्ण शैक्षिक सरचना की रीढ़ है। इस हेतु सर्वप्रथम आयोग ने शिक्षकों के प्रशिक्षण की अनिवार्यता के साथ शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए ठोस सुझाव दिये। उसने शिक्षकों की नियुक्ति के लिए नियम बनाने, उनके वेतनमान बढ़ाने और उनकी सेवाशर्तों में सुधार करने की संस्तुति भी की, जिससे योग्य व्यक्ति अध्यापन वृत्ति की ओर आकर्षित हुए।

8. परीक्षा प्रणाली व मूल्यांकन में सुधार (Amendment in Exam System and Evaluation)— आयोग ने परीक्षाओं तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित ठोस सिफारिशें प्रस्तुत कीं जिनका यदि सख्ती से पालन किया जाए, तो इसके परिणाम उत्कृष्ट होंगे। सबसे महत्वपूर्ण सुझाव निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोषों को देखते हुए, निबन्धात्मक प्रश्नों की रचना करते समय विचारप्रधान प्रश्न पूछना तथा निबन्धात्मक परीक्षाओं के साथ-साथ वस्तुनिष्ठ परीक्षा की भी व्यवस्था करना था। आज भी हम देखते हैं कि इन सुझावों को स्वीकार करने से परीक्षा प्रणाली में अपेक्षित सुधार हुआ है। वह वस्तुनिष्ठ होने के साथ-साथ विश्वसनीय भी बन गई है।

9. शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन व परामर्श पर बल (Emphasis on Educational & Vocational Guidance and Councelling)—आयोग ने विद्यार्थियों को अपनी जीवनवृत्तियों (Careers) के उपयुक्त चुनाव हेतु शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन पर बल देने के साथ उचित परामर्श की आवश्यकता पर भी बल दिया। अत: उसने प्रत्येक विद्यालय में इसकी व्यवस्था करने पर बल दिया। इसके द्वारा बच्चों को उनकी रुचि, रुझान व योग्यता और स्थान विशेष की आवश्यकतानुसार सामान्य एवं व्यावसायिक विषयों के चयन में सहायता की जा सकती है।

10. निरीक्षण व पर्यवेक्षण प्रणाली के सम्बन्ध में ठोस सुझाव (Concrete Suggestions regarding Inspection and Supervision System)—आयोग ने विद्यालयों के उचित रखरखाव व शैक्षणिक स्तर को बनाये रखने हेतु निरीक्षण व पर्यवेक्षण (Inspection and Supervision) की आवश्यकता पर बल दिया व इस दिशा मे सार्थक सुझाव दिये।

11. स्त्री शिक्षा व सह-शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव (Recommendations about Women Education and Co-education)—आयोग ने बालक-बालिकाओं की शिक्षा मे किसी प्रकार का भेद न करने की सस्तुति की। आयोग की दृष्टि से बालिकाओं को बालकों की भाँति किसी भी प्रकार की शिक्षा

प्राप्ति का अधिकार होना चाहिए। उसने बालिकाओं के लिए गृहविज्ञान वर्ग की अतिरिक्त व्यवस्था करने की संस्तुति की। इसके साथ ही जिन क्षेत्रों में अलग से बालिका विद्यालय नहीं है उन क्षेत्रों में सह-शिक्षा की स्वीकृति दिये जाने की अनुशंसा की।

12. व्यावसायिक शिक्षा का विकास (Development of Vocational Education)– आयोग द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को आधुनिक युग में प्रगति हेतु आवश्यक मानते हुए इससे सम्बन्धित अनेक ठोस व व्यावहारिक सुझाव दिये गये है।

II. दोष (Demerits)

आयोग के सभी सुझाव पूर्णतया उपयुक्त नहीं थे। आज की परिस्थिति में उसके कुछ सुझाव बिल्कुल अनुपयुक्त व दोषपूर्ण थे–

1. माध्यमिक शिक्षा का अस्पष्ट संगठन (Unclear Organization of Secondary Education)–आयोग ने एक ओर 7 वर्षीय माध्यमिक शिक्षा की बात की तो दूसरी ओर कक्षा 6,7 तथा 8 को निम्न माध्यमिक और कक्षा 9,10 तथा 11 को उच्च माध्यमिक वर्ग में बाँटकर कुछ 6 वर्षीय माध्यमिक शिक्षा की बात की। ये दोनों बातें अस्पष्ट थी। माध्यमिक कक्षा 11 को माध्यमिक शिक्षा व कक्षा 12 को स्नातक शिक्षा में जोड़ने सम्बन्धी सुझाव के पीछे भी कोई औचित्य नजर नहीं आता। इसी प्रकार इन्टरमीडिएट कक्षाओं को समाप्त करने का सुझाव भी उचित नहीं है। समय ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इन्टरमीडिएट महाविद्यालय, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से उत्तम है।

2. बोझिल पाठ्यचर्या (Cumbersome Curriculum)–माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओं और कुल मिलाकर आठ विषयों के अध्ययन से माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्या बोझिल बन गई थी।

3. पाठ्यक्रम के विविधीकरण का आधार स्पष्ट नहीं (Basis Notclear of Curriculum Diversification on)–आयोग ने माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम हेतु 7 वर्गों का निर्माण किया और सातों वर्गों के लिए कुछ विषय समान रखे और भिन्न-भिन्न वर्गों के लिए भिन्न रखे। कुछ ऐच्छिक विषयों को दो या दो से अधिक वर्गों में भी रखा गया। इस प्रकार ऐच्छिक विषयों का विभिन्न वर्गों में किया गया विभाजन वर्तमान युग के लिए उपयुक्त नहीं है।

4. भ्रामक भाषा नीति (Language Policy)–ऐसा लगता था कि आयोग स्वयं भाषा नीति के प्रति सशंकित था और कोई निश्चय कर पाने की स्थिति में नहीं था। आयोग के सभी सदस्यों में एक भी हिन्दी भाषा का समर्थक नहीं था। अतः उसने अंग्रेजी के अध्ययन के विषय में कुछ उलझे हुए सुझाव दिये तथा एक ओर तो उसे अनिवार्य विषयों की सूची में रखा, वहीं दूसरी ओर दो वर्गों के ऐच्छिक विषयों की सूची में। अतः इस भ्रामक भाषा नीति द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो हानि हुई उसकी भरपाई आज तक न हो सकी।

5. बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना अव्यावहारिक (Establishmentof Multipurpose Schools Impractical)–आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों को बहुउद्देशीय माध्यमिक विद्यालयों में बदलने का सुझाव दिया और सभी स्कूलों में एक साथ अनेक हस्तकौशलों और व्यवसायों की शिक्षा की व्यवस्था का सुझाव दिया, परन्तु इस पर होने वाले व्यय का अनुमान नहीं लगाया जो इससे प्राप्त लाभों की तुलना में कहीं अधिक था। अतः आयोग की यह संस्तुति अव्यावहारिक होने के कारण इन स्कूलों को बाद में बन्द करना पड़ा।

6. गैर-सरकारी स्कूलों के सन्दर्भ में सुझाव (Suggestion Inrefference of Non-government School)–आयोग द्वारा गैर-सरकारी स्कूलों के सन्दर्भ में दिये गये सुझाव भी आशा से अधिक काल्पनिक है। इनमें मौलिकता का अभाव है।

7. पाठ्यपुस्तक समिति में उच्च न्यायाधीश की नियुक्ति (Appointment of High Judge in Text-book Committee)—पाठ्यपुस्तकों के चयन के लिए गठित समिति के सम्बन्ध में उच्च न्यायाधीश की नियुक्ति अव्यावहारिक सुझाव प्रतीत होता है, क्योंकि एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश किस प्रकार विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तकों की अनुकूलता का मूल्यांकन कर सकता है।

8. प्रतिवेदन में **नारी शिक्षा** को वह स्थान नहीं मिला है जिसकी वह अधिकारी थी।

9. आयोग ने लड़के-लड़कियों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में भी कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं किया है, जबकि दोनों की आवश्यकतायें बिल्कुल भिन्न-भिन्न हैं।

10. प्रशासन के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशें अपूर्ण व असन्तुलित हैं।

11. आयोग ने धार्मिक व नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध में अनुपयुक्त सुझाव दिये हैं। आयोग के अनुसार, स्कूलों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की व्यवस्था तब ही की जाए जब अभिभावक चाहें और वह भी स्कूल समय से पहले या बाद में, यह एक उलझा हुआ एवं अव्यावहारिक सुझाव है, क्योंकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

7.3 : आयोग की संस्तुतियों का माध्यमिक शिक्षा पर प्रभाव तथा उनसे होने वाले लाभ
(IMPACT OF COMMISSION'S RECOMMENDATIONS ON SECONDARY EDUCATION AND ACQUIRED ADVANTAGES)

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में गठित किये गये समस्त आयोगों में से मुदालियर आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग) सबसे अधिक वास्तविक तथा व्यावहारिक है। इसने माध्यमिक शिक्षा के सभी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओं पर विचार किया तथा समस्त जटिल व क्लिष्ट समस्याओं पर अत्यन्त वैज्ञानिक विधि से अध्ययन कर, उनके समाधान हेतु समुचित सुझाव प्रस्तुत किये जिनका प्रभाव तथा होने वाले लाभों का विवरण निम्न है—

आयोग के सुझावों व संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने 1955 में 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' का गठन किया। माध्यमिक शिक्षा की अवधि 11-17 आयु वर्ग के छात्र-छात्राओं हेतु, 7 वर्ष कर दी गई। बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का सुझाव अपने में पूरी तरह नवीन था। इन विद्यालयों की स्थापना के पीछे आयोग का लक्ष्य, इन विद्यालयों द्वारा छात्रों की समस्त योग्यताओं का पूर्ण विकास करना था, ताकि इसके द्वारा राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस दिशा में प्रयास हेतु आयोग ने यह अनुशंसा की है, कि हाईस्कूल और माध्यमिक कॉलेजों को बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बदल दिया जाए।

आयोग की एक अन्य विशेषता यह है कि इसने अपने सुझाव प्रस्तुत करते समय देश की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं को भी अच्छी तरह ध्यान में रखा। शिक्षा में कृषि शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान देना तथा फसल की बुवाई तथा कटाई के समय अल्पकालीन अवकाश सत्रों का सुझाव, इसी बात का प्रमाण है।

आयोग ने शिक्षा को उपयोगी, आकर्षक व व्यावहारिक बनाने हेतु प्राच्य व पाश्चात्य का सुन्दर समन्वय प्रदर्शित करते हुए निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों, धार्मिक शिक्षा आदि सुझाव भारतीय संस्कृति के अनुरूप तथा आधुनिक शिक्षण पद्धतियों का समावेश, शिक्षा का व्यावसायीकरण, शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता आदि सुझाव पाश्चात्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में दिये।

आयोग ने मातृभाषा को माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बनाया जिससे माध्यमिक शिक्षा का प्रसार हुआ। कुछ माध्यमिक विद्यालयों में एन. सी. सी. की व्यवस्था का आरम्भ, सामान्य विज्ञान का अनिवार्य अध्ययन, परीक्षा व मूल्यांकन प्रणाली में सुधार एवं शिक्षकों की दशा मे सुधार के साथ उन्हें प्रशिक्षण सेवाओं में सहायता देना, वेतनमान और सेवा शर्तों में सुधार आदि ऐसे प्रशसनीय सुझाव थे जिससे लोग अध्यापन व्यवसाय की ओर आकर्षित हुए।

इन समस्त तथ्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि आयोग ने अपने सुझाव माध्यमिक शिक्षा का सर्वांगीण सुधार करने की दृष्टि से दिये जिससे माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन हुआ, परन्तु दूसरी ओर आयोग की संस्तुतियों को लागू करने से कुछ हानियाँ भी हुईं, जो निम्नवत् हैं—

1. 5+6+3 शिक्षा संरचना को लागू करना व्यर्थ सिद्ध हुआ।
2. 5 अनिवार्य और 3 ऐच्छिक अर्थात् कुल 8 विषयों से माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्या बोझिल हो गई।
3. विभिन्न पाठ्यक्रमों को चलाने में समरूपता नहीं लाई जा सकी और इससे परेशानियाँ बढ़ी, परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ।
4. बहुउद्देशीय माध्यमिक विद्यालयों की व्यवस्था में बहुत अधिक व्यय हुआ और लाभ कुछ नहीं हुआ। कच्चे माल की बर्बादी हुई व धन, समय व श्रम भी व्यर्थ गया।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आयोग ने तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा के समस्त पहलुओं का अध्ययन कर उसके दोषों को उजागर किया और उसमें सुधार के उत्तम सुझाव दिये। आयोग की आकांक्षा थी कि भारतीय सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा की पूर्ण इकाई के रूप में विकसित किया जाये जिससे अधिकांश बच्चे अपनी रोजी रोटी कमा सकें, सामान्य जीवन जी सकें और समाज में सम्मानपूर्वक रह सकें।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. मुदालियर आयोग द्वारा प्रस्तावित माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में उसकी मुख्य सिफारिशों पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में माध्यमिक शिक्षा के नवीन संगठन के सम्बन्ध में मुदालियर कमीशन की सिफारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए, इन्हें व्यावहारिक रूप देने के लिये अभी तक क्या किया गया ?
3. मुदालियर आयोग का भारतीय शिक्षा के निर्माण एवं विकास में क्या योगदान है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. मुदालियर आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य और कार्यक्षेत्र क्या थे ?
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य बताइये।
3. परीक्षा प्रणाली पर मुदालियर कमीशन ने क्या सुझाव दिये हैं ?
4. मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के किन तत्कालीन दोषों का उल्लेख किया है ?
5. मुदालियर आयोग ने अध्यापक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में क्या सुझाव दिये हैं ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. मुदालियर कमीशन का कार्यक्षेत्र क्या था ?
   (अ) प्राथमिक शिक्षा
   (ब) माध्यमिक शिक्षा
   (स) उच्च शिक्षा
   (द) सम्पूर्ण शिक्षा
   उत्तर–(ब)

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति हुई थी–
   (अ) 1950 ई. को
   (ब) 1952 ई. को
   (स) 1959 ई. को
   (द) 1964 ई. को
   उत्तर–(ब)

3. माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति के अध्यक्ष थे–
   (अ) आचार्य नरेन्द्र देव
   (ब) पं. मदन मोहन मालवीय
   (स) डॉ. ताराचन्द
   (द) डॉ. डी. एस. कोठारी
   उत्तर–(स)

4. माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 14 अध्यायों की रिपोर्ट कब प्रस्तुत की–
   (अ) 28 अगस्त, 1953
   (ब) 24 अगस्त, 1952
   (स) 25 अगस्त, 1954
   (द) इनमें से कोई नहीं।
   उत्तर–(अ)

अध्याय

8

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66

[NATIONAL EDUCATION COMMISSION, 1964-66]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार ने अपने देश की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुसार, उच्च शिक्षा के पुनर्गठन के लिए सर्वप्रथम 1948 ई. में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया, तत्पश्चात् 1952 में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन हेतु माध्यमिक शिक्षा आयोग गठित किया। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन आयोग) ने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के प्रशासन, सगठन व स्तर को ऊँचा उठाने सम्बन्धी अपने ठोस सुझाव दिये, जिनमें से कुछ सुझावों के क्रियान्वयन द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कुछ सुधार भी हुआ, परन्तु वांछित उद्देश्य प्राप्त न हो सके। 1952 में गठित मुदालियर शिक्षा आयोग ने भी तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा के दोषों को उजागर करते हुए, उसके पुनर्गठन हेतु अनेक ठोस सुझाव दिये, परन्तु इन सबसे भी वांछित आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकी, क्योंकि दोनो आयोग एकांगी अर्थात् शिक्षा के एक ही पक्ष की ओर ध्यान देने वाले थे। अतः ऐसे आयोग के गठन की आवश्यकता अनुभूत की गई जो विविध स्तरों पर शिक्षा के समस्त पहलुओं से सम्बन्धित हो और शिक्षा के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन करके देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा सम्बन्धी नीतियों, शिक्षा के राष्ट्रीय प्रतिमान एवं शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र मे विकास की सम्भावनाओं पर महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव एवं संस्तुतियाँ प्रस्तुत करे। अतः भारत सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन पर सम्पूर्ण रूप से सोचने समझने व देश भर के लिए समान शिक्षा नीति को निश्चित करने के उद्देश्य से 14 जुलाई, 1964 को डॉ. डी. एस. कोठारी, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष थे, की अध्यक्षता में 17 सदस्यीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया, ताकि दी गई अनुशंसाओं का अनुसरण करके मनुष्य के वैयक्तिक व सामाजिक विकास की दिशा सुनिश्चित की जा सके। इसके व्यापक उद्देश्य स्वरूप और महत्व के आधार पर इसे शिक्षा आयोग, 1964-66 तथा राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66 के नाम से जाना जाता है। इस आयोग को इसके अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी के नाम पर कोठारी आयोग भी कहा जाता है। आयोग मे कुल 14 सदस्य थे जिनमें 5 विदेशी शिक्षा विशेषज्ञ भी सम्मिलित थे।

8.1 : आयोग के गठन के कारण (उद्देश्य) एवं कार्यक्षेत्र (SCOPE AND CAUSES OF ORGANISATION OF COMMISSION)

आयोग ने शिक्षा को राष्ट्र के विकास का मूल आधार मानते हुए, राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के उद्देश्य, लक्ष्य अथवा कार्य निश्चित किए और इन्हें पंचमुखी कार्यक्रम की संज्ञा दी। आयोग ने इनमें से प्रत्येक की प्राप्ति के लिए अनेक अन्य कार्य भी निश्चित किए जो निम्नलिखित हैं–

आयोग के गठन का सर्वप्रमुख उद्देश्य **शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि करना** था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र ने राष्ट्रीय विकास के एक नये युग में प्रवेश किया था। अतः जनता की निर्धनता को दूर करने का दृढ़ संकल्प व सभी के लिए एक उचित जीवन स्तर सुनिश्चित करना, कृषि का आधुनिकीकरण व उद्योगों का तीव्र विकास, आधुनिक विज्ञान व प्रौद्योगिकी का **अभिग्रहण** तथा परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यों के साथ उनका सामंजस्य आदि लक्ष्यों की पूर्ति हेतु शिक्षा को उत्पादन परक बनाने पर जोर दिया गया व इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

1. विज्ञान शिक्षा को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य करना तथा इस शिक्षा का उपयोग उत्पादन कार्यों में करना। कार्यानुभव (Work Experience) को विद्यालयीय शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाना तथा माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाना।

2. देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान के विचार से एक सच्चे प्रजातांत्रिक समाज का निर्माण, राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की उन्नति हेतु अनवरत प्रयास को ध्यान में रखते हुए एक सुसंगठित व उचित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को सुनिश्चित करना।

3. शिक्षा द्वारा सच्चे लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण, राष्ट्रीय एकता, व्यक्ति की श्रेष्ठता एवं पूर्णता की खोज हेतु शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच करना, ताकि कम-से-कम समय में एक ऐसी सुसन्तुलित एवं सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित की जा सके, जो राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों को महत्वपूर्ण योगदान दें।

4. शिक्षा के सभी स्तरों पर असाधारण विस्तार के बावजूद शिक्षा के अनेक अंगों के सम्बन्ध में व्याप्त असन्तोष को दूर करने के लिए माध्यमिक विद्यालयों व विश्वविद्यालयी के शिक्षा के क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नयन करने हेतु पाठ्यक्रम में विभिन्नीकरण (Diversification of Courses) की योजना का विस्तार करना ताकि उद्योगों व व्यवसायों हेतु प्रशिक्षित व्यक्ति मिल सकें तथा शिक्षकों के वेतनों व कार्य-दशाओं में वांछनीय परिवर्तन लाना अर्थात् शिक्षा की संख्यात्मक (Quantitative) उन्नति के अनुपात में गुणात्मक (Qualitative) उन्नति को सुनिश्चित करना।

5. शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सब साधनों के उत्तम प्रयोग हेतु शिक्षा का आधार उत्तम व प्रगतिशील बनाने का दृढ़ संकल्प करना।

6. भारत में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास हेतु शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्रों की जाँच करना, क्योंकि शिक्षा प्रणाली के सब अंग एक-दूसरे पर शक्तिशाली प्रतिक्रिया करते हैं और प्रभाव भी डालते हैं।

उपर्युक्त कारणों तथा प्रयोजन के लिए 14 जुलाई, 1964 ई. को भारत सरकार ने निम्नलिखित सदस्यों से युक्त एक शिक्षा आयोग के गठन का निर्णय लिया था। भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डॉ. दौलत सिंह कोठारी को शिक्षा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया था। इसीलिए, इस आयोग को कोठारी आयोग भी कहा जाता है। आयोग में कुल 17 सदस्य थे, जिनमें 6 सदस्य अन्य देशों के शिक्षा विशेषज्ञ थे। इन सदस्यों की सूची निम्नवत् है–

1. प्रो. दौलत सिंह कोठारी-अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।

2. श्री जे. पी. नायक-सदस्य एवं सचिव, अध्यक्ष शिक्षा नियोजन, गोखले संस्थान, पूना।
3. श्री जे. एफ. मैक्डूगल-सह-सचिव, संचालक शिक्षा विभाग यूनेस्को, पेरिस।
4. श्री ए. आर. दाऊद-सदस्य, निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रम, नई दिल्ली।
5. श्री एच. एल. एलविन-सदस्य, शिक्षा संस्थान, लन्दन विश्वविद्यालय, लन्दन।
6. श्री सदातोशी इहारा-सदस्य, टोकियो।
7. श्री आर. ए. गोपाल स्वामी-सदस्य।
8. डा. वी. एस. झा-सदस्य, निदेशक निदेशालय, कॉमनवेल्थ, लन्दन।
9. डा. एम. बी. माथुर-सदस्य, कुलपति राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
10. डा. पी. एन. कृपाल-सदस्य, शिक्षा सचिव, भारत सरकार।
11. डा. वी. पी. पाल-सदस्य, निदेशक भारतीय कृषि संस्थान, नई दिल्ली।
12. कु. एस. पानंदिकर-सदस्य, अध्यक्ष शिक्षा विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।
13. प्रो. रोज़ल रेवेल-सदस्य, निदेशक हावर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज।
14. डा. के. जी. सैयदेन-सदस्य, निदेशक एशियन शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली।
15. डा. टी. सेन-सदस्य, उपकुलपति जादवपुर, विश्वविद्यालय।
16. प्रो. एस. ए. शुमोवस्की-सदस्य, प्रोफेसर मास्को विश्वविद्यालय, मास्को।
17. श्री. एम. जीन थॉमस-सदस्य, निदेशक शिक्षा, फ्रांस, पेरिस।

इस आयोग ने भारत सरकार को **राष्ट्रीय शिक्षा** के प्रारूप को विकसित करने का सुझाव दिया, जिसके लिए निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सामान्य अधिनियम व नीतियों को विकसित किया। उसके **कार्यक्षेत्र** को और अधिक स्पष्ट रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का गहराई से अध्ययन करना, उसकी तत्कालीन कमियों व व्याप्त असन्तोष के कारणों का पता लगाना व उसमें सुधार के लिए सुझाव देना।

2. पूरे देश के लिए शिक्षा के आयोजन और प्रशासन सम्बन्धी तत्व निश्चित करना व इस सम्बन्ध में सरकार को सुझाव देना।

3. पूरे देश के लिए समान शिक्षा प्रणाली प्रस्तावित करना तथा शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करना जो देश के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक विकास में सहायक हो और यह प्रणाली ऐसी हो जो भारतीय शिक्षा के परम्परागत गुणों को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करे व भविष्य के निर्माण में सहायक हो।

4. पूरे देश में किसी भी स्तर की किसी भी प्रकार की शिक्षा के प्रसार एवं उसमें गुणात्मक सुधार के लिए उपायों की खोज करना व इस सम्बन्ध में सरकार को सुझाव देना।

8.1.1 आयोग का प्रतिवेदन (Commission's Report)

आयोग के सदस्यों ने सम्पूर्ण देश के राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों का भ्रमण किया और विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों तथा तकनीकी व अन्य संस्थानों का निरीक्षण करके, छात्रों तथा शिक्षकों से साक्षात्कार व प्रशासकों व शिक्षाविदों से विचार-विमर्श करने के बाद, अपने कार्यक्षेत्र की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए **13 कार्यदलों** (Task Forces) व **7 कार्य समितियों** (Working Groups) का संगठन किया, जिन्होंने 21 माह तक शिक्षा के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में सभी प्रकार की सूचनायें संगृहीत कीं। इसके अतिरिक्त आयोग ने शिक्षा की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित एक लम्बी

पश्नावली तैयार कराकर, इसे शिक्षा से जुड़े विभिन्न वर्ग के लगभग 5,000 व्यक्तियों के पास भेजा। 2,400 व्यक्तियो से प्राप्त आँकड़ो का साख्यिकीय विश्लेषण करने के बाद 29 जून, 1966 को अपना प्रतिवेदन 'शिक्षा एव राष्ट्रीय प्रगति' (Education and National Development) सरकार को भेजा।

यह प्रतिवेदन 692 पृष्ठो का एक वृहद दस्तावेज है जो तीन खण्डो में विभाजित है। प्रथम खण्ड में 6 अध्याय है जिनमें सभी स्तरो की शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण का सामान्य विवेचन किया गया है। राष्ट्रीय लक्ष्य एव शिक्षा का स्वरूप, सरचनात्मक पुनर्सगठन, शिक्षकों की समृद्धि, विद्यालयों में प्रवेश सम्बन्धी नीति व शिक्षा के अवसरो की समानता की चर्चा की गई है। द्वितीय खण्ड में शिक्षा के विभिन्न स्तरो एव क्षेत्रो का समावेश किया गया है और तृतीय खण्ड में आयोग ने जो सुझाव व सिफारिशें दी है, उनको क्रियान्वित करने की समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है।

8.1.2 आयोग के सुझाव व संस्तुतियाँ (Recommendations and Suggestions of Commission)

कोठारी शिक्षा आयोग ने अपनी संस्तुतियों को आठ खण्डों में प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीय शिक्षा के लक्ष्य (Aims of National Education)।

2. शिक्षा के प्रशासन, वित्त व नियोजन सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Administration, Finance and Planning)।

विद्यालयी शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा व विश्वविद्यालयी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में–

3. कृषि शिक्षा, व्यावसायिक एव तकनीकी शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Agricultural Education, Vocational and Technical Education)।

4. दस वर्ष के लिए समान पाठ्यक्रम (Common Curriculum for 10 years)

अथवा

शिक्षा की नवीन संरचना व स्तर (New Educational Structure and Standard)।

5. शिक्षक स्तर या शिक्षक की स्थिति व सेवा शर्तों सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Teacher's Status and Service Conditions)।

6. शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Teacher Education)।

7. शैक्षिक अवसरों की समानता सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Equalisaiton of Educational Opportunities)।

8. स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ व समाज शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Women Education, Adult and Social Education)।

8.2 : कोठारी शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ एवं सुझाव (RECOMMENDATIONS AND SUGGESTIONS OF KOTHARI COMMISSION)

8.2.1 शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य (Aims of National Education)

आयोग का विचार है कि शिक्षा को लोगो के जीवन की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बन्धित होना चाहिए, ताकि उनका आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास करके राष्ट्रीय लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके। आयोग ने राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में 'शिक्षा का पचमुखी कार्यक्रम' निश्चित करके, इनमें से प्रत्येक की प्राप्ति के लिए कार्य निश्चित किए। यह **पाँच सूत्रीय** कार्यक्रम इस प्रकार है–

1. शिक्षा द्वारा उत्पादकता में वृद्धि करना।
2. शिक्षा द्वारा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना।
3. शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय गुणों का विकास करना।
4. शिक्षा द्वारा राष्ट्र का आधुनिकीकरण करना।
5. शिक्षा द्वारा सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना।

1. शिक्षा द्वारा उत्पादकता में वृद्धि करना (Increase Productivity Through Education)– शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादकता से जोड़ने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम आवश्यक है–

(i) विज्ञान शिक्षा को प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य किया जाए और इस शिक्षा का उपयोग उत्पादन कार्यों में किया जाए।

(ii) कार्य अनुभव (Work Experience) को सभी प्रकार की शिक्षा के एक अभिन्न अग के रूप में प्रारम्भ किया जाए, जिसमें शिल्पविज्ञान तथा औद्योगीकरण हेतु उत्पादक प्रक्रियाओ मे विज्ञान के उपयोग का हर सम्भव प्रयास किया जाए।

(iii) माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाया जाए।

(iv) उच्च शिक्षा में कृषि विज्ञान व तकनीकी शिक्षा पर बल देने के साथ ही विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र में शोध कार्यों को विकसित किया जाए।

2. शिक्षा द्वारा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ करना (To Strengthen Social and National Unity by Education)–आयोग ने अपनी जाँच मे पाया कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय एकता तथा एकीकरण को कायम रखने में विफल रही है। अत: देश की प्रगति हेतु सामाजिक व राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता का अनुभव करते हुए आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

(i) गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु एक समान स्कूल प्रणाली की स्थापना की जाए जिसमे शिक्षा सबके लिए समान रूप से उपलब्ध हो और अच्छी शिक्षा आर्थिक आधार पर नही, बल्कि योग्यता के आधार पर उपलब्ध हो।

(ii) शिक्षा के सभी स्तरों पर समाजसेवा व राष्ट्रसेवा कार्य अनिवार्य हों।

(iii) सभी सघीय भाषाओं का विकास किया जाए तथा राष्ट्र भाषा हिन्दी के विकास हेतु विशेष प्रयत्न किए जायें।

(iv) सभी बच्चो में राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करने हेतु ऐसे कार्यक्रमों का विद्यालयो मे आयोजन किया जाए जिससे बच्चे अपनी राष्ट्रीय परम्पराओं को समझ सकें व इसके प्रति उनमे सकारात्मक प्रवृत्ति का विकास हो।

3. शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय गुणों का विकास करना (Establishment of Democratic Values by Education)–आयोग के विचार में लोकतन्त्र की सफलता हेतु शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा ही समाज में लोकतन्त्रीय मूल्यों की स्थापना कर सकती है। अत: देश के नागरिकों में लोकतन्त्रीय मूल्यों के विकास हेतु अग्रलिखित सुझाव दिये–

(i) प्राथमिक शिक्षा अर्थात् 6 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए अनिवार्य व नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

(ii) विद्यालयों में समानता, धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, सहिष्णुता, भाईचारा व सहयोग की भावना का वातावरण उत्पन्न किया जाए।

(iii) सभी बच्चों को शिक्षा के समान अवसर दिये जायें।

(iv) प्रौढ़ शिक्षा का अधिक-से-अधिक प्रचार व प्रसार किया जाए।

(v) विद्यालयों में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिनसे बच्चों में लोकतन्त्रीय मूल्यों में आस्था उत्पन्न हो तथा वे तदनुकूल व्यवहार करें।

4. शिक्षा द्वारा राष्ट्र का आधुनिकीकरण करना (Modernization of Nation by Education)—राष्ट्र के आधुनिकीकरण से आयोग का तात्पर्य विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग से देश का आर्थिक विकास करने और जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने से है। इसके लिए उसने निम्नलिखित सुझाव दिये—

(i) विज्ञान के इस युग में ज्ञान की तीव्रता व प्रसार की गति के साथ शिक्षा को भी गतिशील बनाये रखने का प्रयास करना।

(ii) देश के सभी बालकों (6 से 14 वर्ष तक) को अनिवार्य रूप से शिक्षा प्रदान करना।

(iii) जनसाधारण के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाया जाए।

(iv) उच्च स्तर पर विज्ञान व तकनीकी शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाए तथा छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन व निर्णय लेने की शक्ति का विकास किया जाए।

(v) छात्रों में प्रगतिशील वातावरण की ओर सचेत रहने की उत्सुकता पैदा करना।

5. शिक्षा द्वारा सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना (Development of Social, Moral and Spiritual Values)—आयोग के अनुसार, निम्न कार्यों द्वारा छात्रों का नैतिक, चारित्रिक व आध्यात्मिक विकास किया जा सकता है—

(i) शिक्षा में नैतिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना करने वाली गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(ii) छात्रों को सामाजिक सेवा के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

(iii) प्राथमिक शिक्षा में महान व्यक्तियों, सन्तों और आदर्श चरित्रों की जीवनी पढ़ाई जानी चाहिए।

(iv) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में मूल्य आधारित शिक्षा (Value Based Education) प्रदान की जानी चाहिए।

8.2.2 शिक्षा के प्रशासन, वित्त व नियोजन सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Administration, Finance and Planning)

चूँकि आयोग का कार्यक्षेत्र पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक की शिक्षा में सकारात्मक परिवर्तन लाना था। इसलिए, उसने सभी स्तरों की शिक्षा के पुनर्गठन हेतु अग्रलिखित सुझाव दिये—

1. विद्यालयी शिक्षा के प्रशासन व निरीक्षण सम्बन्धी सुझाव—विद्यालयी शिक्षा के प्रशासन व व निरीक्षण सम्बन्धी सुझाव निम्नलिखित हैं—

(i) केन्द्र में 'राष्ट्रीय विद्यालयी शिक्षा बोर्ड' (National Board of School Education) और 'भारतीय शिक्षा सेवा' (Indian Education Service) का गठन किया जाय।

(ii) कक्षा 1 से कक्षा 8 तक प्राथमिक शिक्षा के दो स्तर बना दिये जायें। पहले भाग में कक्षा-1 से 5 तक तथा दूसरा भाग कक्षा 6 से 8 तक होना चाहिए।

(iii) राज्य सरकारों द्वारा राज्य शिक्षा सेवा (State Education Service) तथा 'राज्य विद्यालय शिक्षा परिषद्' (State Board of School Education) का गठन किया जाना चाहिए।

(iv) देश के समस्त विद्यालयों—सरकारी, गैर-सरकारी, स्थानीय निकायों द्वारा संचालित, सहायता प्राप्त, गैर-सहायता प्राप्त, की भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रबन्ध समितियों को समाप्त कर 'सामान्य विद्यालय प्रबन्ध पद्धति' का विकास किया जाए और इनकी प्रबन्ध समितियों में शिक्षा विभाग के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

(v) विद्यालयों में जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा नियमित निरीक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vi) प्रशासन से निरीक्षण कार्य को अलग रखा जाना चाहिए। जिले के विद्यालयों का प्रशासन कार्य जिला विद्यालय बोर्ड के हाथों में हो और उनके निरीक्षण का कार्य 'जिला शिक्षा अधिकारी' के हाथों में हो, परन्तु दोनों में सहयोग अवश्य होना चाहिए।

2. पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Curriculum)—आयोग ने प्राथमिक विद्यालयों के सभी स्तरों की पाठ्यचर्या निर्माण हेतु सिद्धान्त निश्चित किया। तत्पश्चात् इन सिद्धान्तों के आधार पर पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक, शिक्षा की पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसके साथ ही आयोग ने त्रिभाषा सूत्र को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। आयोग के अनुसार, विद्यालयी पाठ्यचर्या का निर्माण बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों (उत्पादन व सहसम्बन्ध) आदि के आधार पर किया जाय, परन्तु किसी भी स्तर की शिक्षा को बेसिक शिक्षा न कहा जाय। प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या सरल होनी चाहिए तथा इसमें मातृभाषा और पर्यावरण के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा हेतु एक **आधारभूत पाठ्यचर्या** के साथ **व्यावसायिक वर्ग की पाठ्यचर्या** स्थानीय विशेष आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए। विशिष्टीकरण की व्यवस्था उच्च माध्यमिक स्तर पर ही की जानी चाहिए।

विभिन्न स्तरों पर **पाठ्यचर्या** की रूपरेखा निम्नवत् है—

(i) पूर्व प्राथमिक स्तर—(i) खाने व पहनने के कौशल, (ii) सफाई, (iii) बातचीत, सामाजिक व्यवहार, (iv) खेलकूद, (v) सृजनात्मक कार्य।

(ii) प्राथमिक स्तर—(i) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा), (ii) व्यावहारिक गणित, (iii) भौतिक पर्यावरण का अध्ययन, (iv) सृजनात्मक क्रियाएँ (v) कार्यानुभव, (vi) समाजसेवा, (vii) स्वास्थ्य शिक्षा, खेलकूद व व्यायाम आदि।

(iii) उच्च प्राथमिक अथवा निम्न माध्यमिक स्तर—(i) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा), (ii) हिन्दी अथवा अंग्रेजी, (iii) गणित, (iv) विज्ञान, (v) सामाजिक अध्ययन, (vi) कला, (vii) कार्यानुभव (शिल्पकार्य), (viii) समाज सेवा, (ix) स्वास्थ्य शिक्षा, (x) धार्मिक शिक्षा।

(iv) माध्यमिक स्तर—(i) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा), (ii) हिन्दी अथवा कोई अन्य संघीय भाषा, (iii) कोई यूरोपीय भाषा, (iv) गणित, (v) सामान्य विज्ञान, (vi) सामाजिक विज्ञान, (vii) कला, (viii) कार्यानुभव (कृषि कार्य आदि), (ix) समाज सेवा, (x) स्वास्थ्य शिक्षा, (xi) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

(v) उच्चतर माध्यमिक स्तर—(i) व (ii) आधुनिक भारतीय संघीय भाषा, आधुनिक विदेशी भाषा तथा शास्त्रीय भाषा में से कोई दो भाषाएँ, (iii) तीसरी भाषा, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, कला, भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, जीवविज्ञान, भू-गर्भशास्त्र व गृहविज्ञान में से कोई तीन विषय। इसके अतिरिक्त (vi), (vii), व (viii) विषय के अन्तर्गत कार्यानुभव, समाज सेवा व स्वास्थ्य शिक्षा होंगे।

(vi) त्रिभाषा सूत्र का संशोधित स्वरूप—आयोग ने प्रस्तावित त्रिभाषा सूत्र में संशोधन कर उसे अग्रलिखित रूप में लागू करने का सुझाव दिया—

(i) मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा)।

(ii) संघ की राज भाषा हिन्दी अथवा अंग्रेजी।

(iii) कोई आधुनिक भारतीय भाषा या कोई आधुनिक यूरोपीय भाषा या कोई शास्त्रीय भाषा, जो प्रथम दो में न दी गई हो।

3. विद्यालयी शिक्षा की शिक्षण विधियों सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Teaching Methods in School Education)—शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये—

(i) शिक्षण पद्धति में हो रहे निरन्तर परिवर्तनों के अनुसार, शिक्षण विधियाँ भी लचीली, गतिशील, क्रिया-प्रधान व रोचक होनी चाहिए।

(ii) शिक्षा को आधुनिक व प्रगतिशील बनाने हेतु शिक्षकों को नवीन शिक्षण विधियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इस दिशा में कार्यशालाओं व संगोष्ठियों का आयोजन करना चाहिए।

(iii) शिक्षकों को शिक्षण सम्बन्धी सहायक सामग्री उपलब्ध कराने के साथ ही उचित निर्देशन भी मिलना चाहिए। इस निर्देशन प्रक्रिया में शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण करने का प्रशिक्षण भी शामिल होना चाहिए, ताकि शिक्षक समुचित सहायक सामग्री का प्रयोग करने में सक्षम हों।

(iv) शिक्षण विधियाँ बाल मनोविज्ञान पर आधारित होनी चाहिए तथा इन विधियों द्वारा उन्हें अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के विकास हेतु अवसर मिलने चाहिए।

(v) आकाशवाणी व दूरदर्शन के माध्यम से पाठों का प्रसारण किया जाना चाहिए।

(vi) विद्यार्थियो के लिए इन पाठों का प्रसारण विद्यालय समय में किया जाय तथा शिक्षकों के लिए विद्यालय समय से पहले या बाद में।

4. पाठ्यपुस्तकों से सम्बन्धित सुझाव (Suggestions Regarding Textbooks)—आयोग ने पाठ्यपुस्तकों के निर्माण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक योजना बनाये जाने व राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के सिद्धान्तों को अपनाये जाने का सुझाव दिया व इन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण, परीक्षण व मूल्यांकन हेतु राज्य सरकारों की जिम्मेदारी सुनिश्चित की। इसके साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तकों के लेखन हेतु प्रतिभावान व्यक्तियों को पारिश्रमिक दिये जाने की भी व्यवस्था का सुझाव दिया गया, विशेषकर विज्ञान व तकनीकी की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण हेतु एक स्वायत्त संस्था के गठन का सुझाव दिया गया।

5. विद्यालयी शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श सम्बन्धी सुझाव (Suggestions about Guidance and Counselling in School Education)—प्राथमिक स्तर पर छात्रों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है; जैसे— विद्यालय में मन न लगना, कोई विषय समझ में न आना, विद्यालय में समायोजन न कर पाना आदि। अतः इन शैक्षिक समस्याओं के निदान हेतु शैक्षिक निर्देशन व परामर्श की आवश्यकता होती है। अतः इस सम्बन्ध में आयोग ने निम्न सुझाव दिये हैं—

(i) छात्र-छात्राओं हेतु शैक्षिक निर्देशन व परामर्श की व्यवस्था प्राथमिक स्तर से ही की जानी चाहिए।

(ii) सभी जिलों में कम-से-कम एक विद्यालय में निर्देशन की समुचित व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।

(iii) शिक्षकों को सेवामध्य कार्यक्रम (Inservice Programme) के अन्तर्गत निर्देशन व परामर्श में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

(iv) शैक्षिक निर्देशन द्वारा विशिष्ट बालकों हेतु विशेष शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

(v) निर्देशन में प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था, राजकीय मार्गदर्शन ब्यूरो व प्रशिक्षण महाविद्यालयो में की जानी चाहिए।

6. विद्यालयी शिक्षा में मूल्यांकन (Evaluation in School Education)—आयोग के अनुसार, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मूल्यांकन हेतु सतत् प्रक्रिया होनी चाहिए, जिसमे छात्रो का मूल्याकन पूरे वर्ष चलना चाहिए। इसमें भी आन्तरिक मूल्याकन को विशेष महत्व देना चाहिए। कक्षा 1 से 4 तक के छात्रो का मूल्यांकन केवल आन्तरिक होना चाहिए तथा प्राथमिक स्तर के अन्त में जिला स्तर पर बाह्य परीक्षा की व्यवस्था जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए। छात्रों की जिन उपलब्धियो का मूल्याकन लिखित परीक्षाओं द्वारा सम्भव न हो, उनका मापन मौखिक एव प्रायोगिक परीक्षाओ द्वारा किया जाना चाहिए। आन्तरिक मूल्यांकन में संचयी अभिलेख को तथा बोर्ड की परीक्षा मे ग्रेड प्रणाली को महत्व देना चाहिए।

7. विद्यालयी शिक्षा के प्रसार हेतु सुझाव (Suggestions for Expansion of School Education)—आयोग ने विद्यालयी शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों के प्रसार (सख्यात्मक वृद्धि) हेतु विभिन्न सुझाव दिये हैं—

(i) पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रसार (Expansion of Pre-Primary Education)—इस स्तर पर पर्याप्त प्रचार व प्रसार हेतु प्रत्येक राज्य के प्रत्येक जिले में 'पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्रसार केन्द्र' स्थापित किये जायें जो अपने-अपने क्षेत्र में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रसार हेतु उत्तरदायी हो तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण व प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए अभिनव पाठ्यक्रमो (Refresher Courses) की व्यवस्था करें, ताकि अधिक से अधिक प्राथमिक स्कूलों में पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। इस दिशा में व्यक्तिगत संस्थाओं को अनुदान हेतु भी प्रेरित किया जाय।

(ii) प्राथमिक शिक्षा का प्रसार (Expansion of Primary Education)—इस स्तर पर 6 से 14 वर्ष की आयु के बालकों हेतु अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अधिक तेजी से प्राथमिक स्कूल खोले जाने तथा अपव्यय व अवरोधन की समस्या को रोकने का सुझाव दिया गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सभी बच्चों को एक किमी. की दूरी के अन्दर प्राथमिक व 3 किमी की दूरी के अन्दर उच्च प्राथमिक स्कूल उपलब्ध कराये जायें तथा जो बच्चे प्राथमिक शिक्षा के बाद पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं, उन्हें किसी हस्तकार्य में निपुण बनाये जाने की आवश्यकता है। पिछड़ी व अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालय खोलने व मंद बुद्धि व विकलांग बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोलने का भी आयोग ने सुझाव दिया।

(iii) माध्यमिक शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी सुझाव (Suggestions for Expansion of Secondary Education)—माध्यमिक शिक्षा के प्रसार हेतु आयोग ने निम्न सुझाव दिये हैं—

(i) प्रत्येक जिले मे आवश्यकतानुसार माध्यमिक शिक्षा के प्रसार की योजना बनाकर उसे 10 वर्षों की अवधि में पूरा किया जाए। इस हेतु प्रत्येक जिले में आवश्यकतानुसार माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की जाय तथा इस दिशा में किये गये व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(ii) लड़कियों के लिए और अधिक माध्यमिक विद्यालय खोले जायें, दूर से आने वाली लड़कियों के लिए छात्रावास बनाए जायें, उनके लिए माध्यमिक स्तर की शिक्षा निःशुल्क की जाए और निर्धन छात्राओं को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाएँ।

(iii) माध्यमिक स्तर पर होने वाले अपव्यय व अवरोधन को रोका जाय। अनुसूचित जाति व जनजाति के बच्चो की माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था हेतु विशेष योजनायें बनाई जायें।

(iv) अशकालिक माध्यमिक शिक्षा की भी आवश्यकतानुसार व्यवस्था की जाये, विशेषकर व्यावसायिक वर्ग की।

(v) सह-शिक्षा के लिए लोगों को तैयार किया जाय।

8. विश्वविद्यालयी शिक्षा के सन्दर्भ में आयोग के सुझाव (Commission Suggestions in Reference of University Education)—कोठारी आयोग ने विश्वविद्यालयी शिक्षा पर भी विस्तार से विचार किया तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा के सन्दर्भ में निम्न सुझाव दिये—

(I) विश्वविद्यालयी शिक्षा के प्रशासन सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Administration of University Educations)—आयोग ने विश्वविद्यालयी शिक्षा के प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु निम्न सुझाव दिये—

(i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पुनर्गठन करके, इसे और अधिक सशक्त बनाया जाय तथा इसे उच्च शिक्षा संस्थाओं को अनुदान देने के साथ-साथ उनके निरीक्षण का अधिकार व उच्च शिक्षा के स्तर को बनाए रखने का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाय।

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालयों को उदारतापूर्वक अनुदान दें, विशेषकर 'उच्च अध्ययन केन्द्रों' (Centers of Advanced Studies) की स्थापना के लिए।

(iii) सभी विश्वविद्यालयों को अपने शिक्षण व अनुसंधान कार्य में सुधार लाने हेतु अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाय तथा इन्हें 'अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद्' (Inter University Council) का सदस्य बनाया जाय।

(iv) विश्वविद्यालयों के प्रशासन तन्त्र का भी पुनर्गठन करके 50% सदस्य विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि व 50% बाह्य सदस्य रखे जायें। कार्यकारिणी परिषद् में 15 से 20 सदस्य हों तथा कुलपति इसका अध्यक्ष हो।

(v) विश्वविद्यालयों की शैक्षिक परिषद् में छात्रों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए तथा इसे पाठ्यक्रम निर्माण व शैक्षिक विषयों पर निर्णय लेने का अधिकार भी होना चाहिए।

(vi) विश्वविद्यालयों को और अधिक स्वायत्तता देने की दिशा में उन्हें कुलपतियों के चुनाव की स्वतन्त्रता, पाठ्यक्रम निर्माण, शिक्षकों की नियुक्ति, छात्रों के चयन व अनुसंधान कार्य में स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।

(II) विश्वविद्यालयी शिक्षा का संगठन (Organisation of University Education)—आयोग ने विश्वविद्यालयी शिक्षा की उचित व्यवस्था हेतु चार प्रकार की उच्च शिक्षा संस्थाओं-सामान्य विश्वविद्यालय, वरिष्ठ विश्वविद्यालय, सामान्य महाविद्यालय और स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया। इनमें से नए विश्वविद्यालयों की स्थापना आवश्यकतानुसार तथा उच्च शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु की जाए तथा कई स्नातकोत्तर महाविद्यालय को संगठित करके नए विश्वविद्यालय का रूप देने का सुझाव भी दिया गया।

वरिष्ठ महाविद्यालयों के अति मेधावी छात्रों को प्रवेश देना, छात्रवृत्तियों की विशेष व्यवस्था, राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति व उन्हें शोध कार्य हेतु विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा सम्पूर्ण वित्तीय-भार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लेने का सुझाव दिया। इसी प्रकार आयोग ने नए

महाविद्यालयों की स्थापना, स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना, अंशकालिक शिक्षा व पत्राचार पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुझाव के अतिरिक्त, उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश सम्बन्धी उपयोगी सुझाव भी दिये। शोध कार्य के लिए केवल योग्य, प्रतिभाशाली व परिश्रमी व्यक्तियों का चयन किये जाने की अनुशंसा भी की गई।

(III) विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य (Aims of University Education)—आयोग द्वारा निर्धारित भारतीय विश्वविद्यालयों के लक्ष्य को ही उच्च शिक्षा के उद्देश्य माना जा सकता है, जिनका क्रमिक वर्णन निम्न प्रकार है—

1. पुराने ज्ञान एवं विश्वासों का मूल्यांकन करने के पश्चात् नवीन ज्ञान की प्राप्ति एवं नए तथ्यों (सत्य) की खोज करना।

2. सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देकर मूल्यों का विकास करना तथा छात्रों व शिक्षकों में उचित मान्यताओं व दृष्टिकोणों का विकास करना।

3. प्रतिभाशाली युवकों की खोज करना तथा उनकी प्रतिभाओं के विकास में सहायता करना।

4. कृषि, चिकित्सा, विज्ञान, तकनीकी एवं अन्य क्षेत्रों के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण करना।

(IV) पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Curriculum)—पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव निम्नवत् हैं—

1. प्रथम स्नातक पाठ्यक्रम तीन वर्ष का किया जाय तथा इस स्तर पर सामान्य तथा ऑनर्स दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।

2. स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम में नए-नए विषयों का समावेश करके उन्हें विषयों के चयन हेतु पर्याप्त अवसर दिये जायें।

3. परास्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम 2 वर्ष का हो तथा इस स्तर पर भी विषयों के चुनाव हेतु पर्याप्त अवसर हो।

4. पी. एच. डी. उपाधि के लिए छात्र को 2 से 3 वर्ष तक का शोध कार्य करने का अवसर दिया जाय तथा मूल्यांकन प्रणाली के स्तर को भी ऊँचा उठाया जाय।

5. स्नातक कक्षाओं में एक या दो विषयों के गहन अध्ययन की व्यवस्था के साथ ही अंग्रेजी, रूसी आदि समृद्ध विदेशी भाषाओं के अध्ययन की भी व्यवस्था की जाय।

(V) शिक्षण में सुधार व शिक्षण विधियाँ (Improvement in Teaching and Teaching Methods)—

1. विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को आधुनिक शिक्षण विधियाँ अपनाकर शिक्षण कार्य में सुधार करना चाहिए।

2. शिक्षण प्रक्रिया में सुधार हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में एक विशेष समिति का गठन किया जाय तथा मौलिक चिन्तन को इस स्तर पर महत्व दिया जाय।

3. समय सारिणी (Time-Table) में क्रियाप्रधान विधियों को प्रमुखता दी जाय तथा छात्रों को स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति लेखन कार्य, समस्या-समाधान व लघु शोध कार्यों में संलग्न किया जाय।

4. किसी शिक्षक को सत्र के बीच में संस्था छोड़ने की स्वीकृति न दी जाय तथा 7 दिन से अधिक का अवकाश स्वीकृत न किया जाय।

5. कक्षा शिक्षण को कुछ कम करके उसके स्थान पर स्वाध्याय, विचार–विमर्श, समस्या समाधान और लेखन को महत्व देने हेतु सम्पन्न पुस्तकालयों और संगोष्ठी भवनों की उचित व्यवस्था की जाय।

(VI) शिक्षा का माध्यम (Medium of Instruction)–शिक्षा के माध्यम के विषय में आयोग ने निम्न सस्तुतियाँ की–

1. स्नातक स्तर की शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से तथा परास्नातक स्तर पर अंग्रेजी माध्यम से होनी चाहिए।

2. शिक्षको को यथासम्भव द्विभाषी होना चाहिए अर्थात् उन्हें क्षेत्रीय भाषा व अंग्रेजी भाषा दोनों का ज्ञान होना चाहिए।

3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए।

4. उच्च शिक्षा मे अंग्रेजी के अतिरिक्त उर्दू व रूसी भाषा के शिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(VII) छात्र संघ व छात्र कल्याण कार्यक्रम सम्बन्धी सुझाव (Suggestions about Student's Federation and Student's Welfare Programmes)–आयोग ने विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में छात्र संघो के गठन एवं संचालन हेतु शिक्षकों व छात्रों की एक संयुक्त समिति का निर्माण किए जाने, छात्र सघो के पदाधिकारियो का अप्रत्यक्ष विधि से चुनाव किए जाने तथा छात्र संघ की स्वयमेव (Automatic) सदस्य का भी सुझाव दिया। छात्रों के कल्याण हेतु, उन्हें समुचित रोजगार देने हेतु रोजगार कार्यालयों की स्थापना, पर्याप्त मात्रा में सुविधासम्पन्न छात्रावासों का निर्माण व छात्र कल्याण की योजनाओ को क्रियान्वित करने हेतु छात्र कल्याण अधिष्ठाता (Dean of Student's Welfare) की स्थापना का सुझाव दिया गया।

(VIII) शैक्षिक वित्त व नियोजन (Educational Finance and Planning)–शैक्षिक वित्त के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. आयोग ने स्पष्ट किया कि 1965-66 की अपेक्षा 1985-86 में छात्रों की संख्या कम-से-कम दो गुनी हो जाने से प्रति छात्र व्यय भी 12 रु. के स्थान पर 54 रु. तक हो जाएगा। अत: शिक्षा बजट में प्रति वर्ष वृद्धि करनी आवश्यक है। इस दिशा में केन्द्र सरकार अपने बजट में शिक्षा के लिए कम-से-कम 6 प्रतिशत का प्रावधान करे।

2. राज्य सरकारें भी अपने बजटों में शिक्षा के लिए और अधिक धनराशि आवंटित करें।

3. राज्यों में स्थानीय संस्थाओं (ग्राम पंचायतों और नगरपालिकाओं) को उनके क्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं का वित्तीय भार सौंपा जाय।

4. व्यक्तिगत स्रोतों से अधिक-से-अधिक धन प्राप्त किया जाय।

5. शिक्षा हेतु आय के स्रोत बढ़ाने के उपायों की खोज की जाय व इस क्षेत्र में अनुसंधान किये जायें।

6. अगले दो या तीन दशकों में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों मे शैक्षिक व्यय उपलब्ध संसाधनो का 2/3 भाग विद्यालय शिक्षा पर और 1/3 भाग उच्च शिक्षा पर होगा।

7. 1965 से 1975 तक स्कूल शिक्षा के अधिकतम व्यय का प्रयोग स्कूल शिक्षकों के वेतनमान को समृद्ध करने में, पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम और विश्वविद्यालय से इण्टरमीडिएट कक्षाओं को स्कूल स्तर के लिए स्थानान्तरण, तथा माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण हेतु किया जाय।

8. 1975 से 1985 तक, सात वर्षीय प्रभावपूर्ण प्राथमिक शिक्षा, स्कूल स्तर पर एक वर्ष की वृद्धि व माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण पर बल दिया जायेगा।

9. 1985 के उपरान्त उच्च शिक्षा के विकास व अनुसधान पर बल देने हेतु धन का प्रयोग किया जायेगा।

उपर्युक्त वित्तीय योजनाओं हेतु आयोग ने विभिन्न शैक्षिक वित्त के स्रोतो की भी व्याख्या की है, जो इस प्रकार हैं–

(i) यद्यपि शिक्षा के अनुपोषण के लिए अधिकतम दायित्व राजकीय निधियो (केन्द्र व राज्य) पर नियत किया जायेगा, परन्तु इस वित्तीय दायित्व को पूर्णरूपेण सरकार पर न सौपकर, स्थानीय समुदायो, स्वैच्छिक संगठनों और स्थानीय निकायों से योगदान लेने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(ii) स्थानीय समुदाय की सहायता, विद्यालय निधियो का सृजन और विद्यालयो मे भौतिक सुविधाओं की उन्नति व विद्यालय सुधार सम्मेलनों की व्यवस्था द्वारा गतिशील होनी चाहिए।

(iii) जिला विद्यालय परिषदों द्वारा जिला परिषदो को वित्तीय सहायता प्रदान करने की दिशा मे भूमि राजस्व (मालगुजारी) पर कर लगाकर शिक्षा के लिए कोष विकसित किए जाने चाहिए। कोषों के संकलन को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार जिला परिषदो द्वारा इस प्रकार के सकलित के अतिरिक्त राजस्व के आनुपातिक सहायता अनुदान दे।

(iv) शिक्षा की लागत का एक निश्चित अनुपात पालिकाओ द्वारा वहन करना अनिवार्य होना चाहिए।

8.2.3 कृषि शिक्षा, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions about Agricultural Education, Vocational Education and Technical Education)

(i) विद्यालयीय स्तर पर कृषि शिक्षा–आयोग ने प्राथमिक स्तर पर कृषि सम्बन्धी सामान्य जानकारी को पाठ्यचर्या का अनिवार्य अग बनाये जाने की अनुशंसा करते हुए माध्यमिक स्तर पर कृषि विद्यालयों की स्थापना व कृषि को कार्यानुभव का महत्त्वपूर्ण अग बनाने का सुझाव दिया। इसके साथ ही उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कृषि विषय मे विशिष्टीकरण की व्यवस्था किये जाने की अनुशसा भी की।

(ii) पॉलिटेक्निक स्तर पर कृषि शिक्षा–आयोग ने माध्यमिक शिक्षा उत्तीर्ण सामान्य छात्रो के लिए प्रत्येक प्रान्त मे पर्याप्त पॉलिटेक्निक कॉलेज खोले जाने व उनमे आवश्यकतानुसार कृषि शिक्षा की व्यवस्था कर इन्हें कृषि विश्वविद्यालयो से सम्बद्ध किये जाने का भी सुझाव दिया। इन कॉलेजो मे कृषको और कृषि में विशेष रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए सघन व सक्षिप्त कार्यक्रम चलाए जाने का भी सुझाव दिया गया।

(iii) महाविद्यालय स्तर पर कृषि शिक्षा–महाविद्यालय स्तर पर कृषि शिक्षा हेतु आयोग ने प्रत्येक कृषि महाविद्यालय के पास कम से कम 200 एकड़ कृषि योग्य भूमि का फार्म होने तथा कृषि स्नातक पाठ्यक्रम के स्थान पर उच्च कृषि तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था किये जाने का सुझाव दिया। इस हेतु वर्तमान कृषि महाविद्यालयों की दशा सुधारने का भी सुझाव दिया गया। इन सभी कृषि महाविद्यालयो का हर पाँच वर्ष बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् द्वारा सयुक्त रूप से निरीक्षण किए जाने की आवश्यकता भी अनुभव की गई।

(iv) विश्वविद्यालय स्तर पर व अन्य कृषि संस्थाओं में कृषि शिक्षा–विश्वविद्यालय स्तर पर कृषि शिक्षा हेतु आयोग ने प्रत्येक प्रान्त मे कम से कम एक शिक्षण कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना का सुझाव दिया, जिसमें कम से कम 1000 एकड़ कृषि योग्य भूमि का फार्म हो तथा स्नातक एवं परास्नातक शिक्षा व कृषि में अनुसंधान कार्य की उत्तम व्यवस्था के साथ ही कृषि प्रसार कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की जाय। इन कृषि विश्वविद्यालयों में 25% छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाय तथा उपाधि देने से पूर्व फार्म पर

एक वर्ष कृषि कार्य करना अनिवार्य किया जाय। इस स्तर पर कृषि शिक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान सस्थान (IARI), भारतीय पशु अनुसंधान (IVRI) और राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान अपने-अपने क्षेत्र में परास्नातक शिक्षा की व्यवस्था और शोध कार्य के लिए उत्तरदायी है। इनमें भी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) कृषि शिक्षा के विस्तार व उन्नयन के लिए उत्तरदायी है।

1. व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा (Vocational and Technical Education)—आयोग के गठन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ता था। अतः आयोग की राय में माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण शिक्षा व उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इस सन्दर्भ में आयोग ने निम्न सुझाव दिये—

(i) माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जाय और 20 वर्ष के अन्दर माध्यमिक स्तर पर 25% व उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50% छात्रों को व्यावसायिक वर्ग में लाया जाए।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित पॉलिटेक्निक कॉलेजों में कृषि व कृषि से सम्बन्धित उद्योगों की शिक्षा दी जाय तथा नए पॉलिटेक्निक कॉलेज केवल औद्योगिक क्षेत्र में ही खोले जायें। इन कॉलेजों में महिलाओं की रुचि के उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था भी की जाय।

(iii) जूनियर टेक्निकल स्कूलों को टेक्निकल हाई स्कूलों में बदल दिया जाय।

(iv) इन विद्यालयों के पाठ्यक्रम अपने आप में पूर्ण होने चाहिए अर्थात् ये व्यवसायपरक होने चाहिए।

(v) इन पाठ्यक्रमों में सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाय तथा इसके लिए अनुभव प्राप्त शिक्षकों की नियुक्त की जाय।

1. उच्च इंजीनियरिंग शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions about Higher Engineering Education)

(i) घटिया किस्म के इंजीनियरिंग कॉलेजों को बन्द कर दिया जाय व नए इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना मानव शक्ति की माँग के आधार पर की जाय।

(ii) ये सभी कॉलेज तकनीकी शिक्षा संस्थान (Technical Education Institute, (TEI) द्वारा मान्यता प्राप्त हों तथा जो इंजीनियरिंग कॉलेज उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान नहीं कर रहे हैं, उनमें सुधार किया जाय।

(iii) इंजीनियरिंग की कुछ शाखाओं, जैसे-विद्युत-अणु-सम्बन्धी (Electronics) और उपकरण सम्बन्धी (Instrumentation) शिक्षा के लिए योग्य एवं प्रतिभाशाली बी. एस. सी. पास छात्रों को चुना जाय।

(iv) परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रमों को विभिन्न प्रकार से अद्यतन (Up-to-Date) बनाया जाय व इनमें विमान तकनीकी, नक्षत्र विज्ञान, रासायनिक तकनीकी आदि नए पाठ्यक्रम शुरू किए जाये।

(v) व्यावहारिक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाय तथा इसके लिए औद्योगिक संस्थानों का सहयोग लिया जाय।

(vi) इंजीनियरिंग कॉलेजों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में केवल उन्हीं छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाए, जो इंजीनियरिंग की स्नातक शिक्षा प्राप्त करने के बाद किसी उद्योग में 1 वर्ष कार्य कर चुके हों।

(vii) जहाँ आवश्यकता हो, पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू किए जायें।

(viii) शिक्षकों को अपने-अपने क्षेत्र के अद्यतन ज्ञान से अवगत कराने के लिए 'ग्रीष्मकालीन संस्थानों' (Summer Institutes) की व्यवस्था की जाय।

3. विज्ञान शिक्षा व अनुसंधान (Science Education and Research)—आयोग के अनुसार देश के आर्थिक विकास, उसकी सुरक्षा और उसके आधुनिकीकरण के लिए विज्ञान की शिक्षा अति आवश्यक है और साथ ही इस क्षेत्र में निरन्तर अनुसंधान की आवश्यकता है। अत: आयोग ने देश में विज्ञान शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये—

(i) राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान (National Institute of Science) का पुनर्गठन किया जाय तथा वैज्ञानिक शोधों पर व्यय धनराशि के प्रतिशत में वृद्धि की जाय।

(ii) विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भिक कक्षाओं से ही शुरु की जाय और इसके लिए क्षेत्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली का विकास किया जाय।

(iii) विज्ञान तथा गणित के उच्च अध्ययन केन्द्रों की स्थापना की जाय। इन केन्द्रों में योग्य व प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शिक्षक नियुक्त किया जाय। यदि सम्भव हो तो कुछ व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हों।

(iv) कुछ विजिटिंग प्रोफेसर्स (Visiting Professors) को सविदा के आधार पर 2 से 3 वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किया जाय।

(v) विज्ञान के स्नातक, स्नातकोत्तर और विशेष पाठ्यक्रमों में सुधार कर उन्हें अद्यतन व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का बनाया जाय।

(vi) विज्ञान में दो वर्षीय स्नातकोत्तर शिक्षा के अतिरिक्त एक वर्षीय विशेष पाठ्यक्रम भी तैयार किए जायें, जिनमें विज्ञान की अद्यतन जानकारी दी जाय।

(vii) विश्वविद्यालय तथा इंजीनियरिंग संस्थान योग्य औद्योगिक कार्यकर्ताओं को पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा तथा सायंकालीन कक्षाओं के लिए भर्ती करें। इन संस्थानों में डिप्लोमा तथा डिग्री कोर्सों के अतिरिक्त मिस्त्रियों (Mechanics), प्रयोगशाला शिल्पियों (Laboratory Technicians) तथा अन्य कुशल कार्यकर्ताओं (Skilled Operators) के लिए विशेष व लघुकोर्स आयोजित करें।

(viii) विज्ञान की शिक्षा हेतु योग्य व अनुभवी शिक्षक नियुक्त किए जायें तथा इन शिक्षकों को विज्ञान क्षेत्र की अद्यतन जानकारी हेतु ग्रीष्मकालीन संस्थाओं (Summer Institutes) में भेजा जाय। यहाँ विदेशी वैज्ञानिकों और विदेशों में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिकों को व्याख्यान के लिए आमन्त्रित किया जाय।

(ix) विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र छात्राओं के मूल्यांकन हेतु सैद्धान्तिक परीक्षा की अपेक्षा प्रायोगिक कार्य को महत्त्व दिया जाय।

(x) विश्वविद्यालय के गुणात्मक पक्ष में सुधार हेतु सामूहिक कार्य (Team work) का विकास किया जाय।

8.2.4 शिक्षा की नवीन संरचना व स्तर (New Structure of Education and Standard)

आयोग ने शिक्षा में एकरूपता लाने हेतु, शिक्षा के विभिन्न स्तरों तथा उपस्तरों हेतु 'एक समान शिक्षा प्रणाली' का प्रारूप बताया है, जो इस प्रकार है—

शिक्षा प्रणाली का नवीन प्रारूप

1. पूर्व प्राथमिक शिक्षा—कक्षा I से पहले तक
2. प्राथमिक शिक्षा—(कक्षा I से VII या VIII तक)

(i) अवर प्राथमिक-कक्षा I-IV या II से V तक

(ii) उच्च प्राथमिक-कक्षा V-VII या VII से VIII तक

3. **माध्यमिक शिक्षा**-कक्षा VII से XII या IX से XII तक

(i) **अवर माध्यमिक शिक्षा**-कक्षा VII से X या IX-X तक

(ii) उच्च माध्यमिक **शिक्षा-कक्षा** XI से XII तक

4. **उच्च शिक्षा**–

(i) प्रोफेशनल डिग्री

(ii) सामान्य डिग्री

(iii) अन्डर ग्रेजुएट

(iv) पोस्ट ग्रेजुएट

5. **सामान्य शिक्षा**–

(i) **प्रथम** स्तर की शिक्षा-प्री स्कूल तथा प्री-प्राइमरी स्कूल

(ii) द्वितीय स्तरीय **शिक्षा**-हाईस्कूल तथा हायर सैकेन्डरी स्कूल

(iii) तृतीय स्तरीय **शिक्षा**-अन्डर ग्रेजुएट तथा पोस्ट ग्रेजुएट।

आयोग ने विद्यालय **शिक्षा** की नवीन संरचना के विषय में कुछ सुझाव भी दिये हैं-

1. सामान्य **शिक्षा** की अवधि 10 वर्ष की होनी चाहिए और इसमें प्राथमिक एवं निम्न माध्यमिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2. प्राथमिक शिक्षा की अवधि 7 से 8 वर्ष हो तथा इसे 4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा व 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा में विभक्त किया जाय।

3. निम्न माध्यमिक स्तर पर छात्रों को दो प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए-(i) 2 या 3 वर्ष की सामान्य शिक्षा और (ii) 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा।

4. 9वीं कक्षा से पृथक विद्यालय स्थापित किए जाने की प्रचलित विधि का अन्त कर देना चाहिए तथा 10वीं कक्षा तक छात्रों को किसी विषय में विशिष्टीकरण (Specialization) की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

5. माध्यमिक विद्यालय भी दो प्रकार के होने चाहिए-(i) हाईस्कूल और (ii) हायर सैकेण्डरी स्कूल। हाईस्कलों में शिक्षा की अवधि 10 वर्ष की और हायर सैकेण्डरी स्कूलों में 12 वर्ष होनी चाहिए।

इसी प्रकार उच्च शिक्षा की नवीन संरचना हेतु निम्न सुझाव दिये हैं–

1. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् प्रथम डिग्री कोर्स की अवधि कम से कम 3 वर्ष की होनी चाहिए।

2. द्वितीय डिग्री कोर्स की अवधि 2 या 3 वर्ष होनी चाहिए।

3. कुछ विद्यालयों में 'ग्रेजुएट स्कूलों' की स्थापना की जाय, जिनमें कुछ विशेष विषयों में 3 वर्ष के स्नातकोत्तर कोर्स की व्यवस्था की जाय।

4. उत्तर प्रदेश के त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स को कुछ विशिष्ट विषयों और विशिष्ट विश्वविद्यालयों मे शुरू किया जाना चाहिए।

आयोग ने शिक्षा के इन सभी स्तरों के उन्नयन हेतु भी अपने सुझाव दिये हैं–

1. 10 वर्ष की विद्यालयीय शिक्षा में गुणात्मक उन्नति करके इस स्तर पर होने वाले अपव्यय मे कमी की जानी चाहिए।

2. इस अवधि में कक्षा 10 के स्तर का इतना उन्नयन कर दिया जाना चाहिए कि वह वर्तमान हायर सेकेण्डरी के स्तर पर पहुँच जाय।

3. विश्वविद्यालयों की उपाधियों के स्तरों का उन्नयन करने के लिए इन उपाधियों के पाठ्यक्रमों में अधिक उन्नत विषय वस्तु का समावेश करना चाहिए।

4. शिक्षा-स्तरों का उन्नयन करने के लिए शिक्षा के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

5. विद्यालय संकुलों (School Complexes) का यथाशीघ्र निर्माण किया जाना चाहिए। एक संकुल में एक माध्यमिक स्कूल और उसके निकटवर्ती सभी प्राथमिक स्कूल होने चाहिए। प्रत्येक संकुल के सभी स्कूलों द्वारा सामूहिक रूप से स्तरों के उन्नयन के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।

8.2.5 शिक्षक स्तर व सेवा शर्तों सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Teacher's Status and Service Conditions)

आयोग के सभी सदस्य तत्कालीन अध्यापक की करुणाजनक स्थिति से परिचित थे अत: उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि जब तक शिक्षक की स्थिति में समुन्नति नहीं की जाएगी तब तक सुयोग्य व्यक्ति शिक्षण व्यवसाय की ओर आकर्षित नही होगें। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आयोग का विचार था कि "शिक्षकों की आर्थिक, सामाजिक एव व्यावसायिक स्थिति को समुन्नत बनाने और प्रतिभाशाली तरुण व्यक्तियों को शिक्षण व्यवसाय के प्रति पुन: आकर्षित करने के लिए सघन एवं सतत् प्रयासों की आवश्यकता है।"

Intensive and Continuous efforts are necessary to raise the economic, social and professional status of teachers and to feed back talented young persons into the profession. –Education Commission report, p. 617.

आयोग ने शिक्षकों के स्तर उन्नयन हेतु सर्वप्रथम उन्हें उच्च सामाजिक, आर्थिक व व्यावसायिक स्तर प्रदान करने हेतु, उनके वेतनक्रमों में सुधार की संस्तुति की, जो इस प्रकार है-

आयोग द्वारा प्रस्तावित वेतनमान

(A) प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक	**वेतनमान**
1. माध्यमिक शिक्षा प्राप्त अप्रशिक्षित शिक्षक	₹ 100-150
2. 5 वर्ष की सेवा के बाद उक्त शिक्षक	₹ 125-250
3. माध्यमिक शिक्षा प्राप्त प्रशिक्षित शिक्षक	₹ 150-280
4. चयन वेतनमान प्राप्त कुछ शिक्षक	₹ 250-300
(B) माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक	
1. अप्रशिक्षित स्नातक उपाधि प्राप्त शिक्षक	₹ 220 न्यूनतम
2. प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक (Trained Graduate)	₹ 220-600
3. चयन वेतनमान प्राप्त शिक्षक	₹ 400-500
4. स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त माध्यमिक शिक्षक	₹ 300-600
(C) सम्बद्ध महाविद्यालयों के शिक्षक	
1. प्रवक्ता जूनियर स्केल	₹ 400-25-600
2. प्रवक्ता सीनियर स्केल	₹ 400-30-650-40-800
3. सीनियर लेक्चरर या रीडर	₹ 700-40-1100

4. प्राचार्य (I)	₹ 700-40-1100
प्राचार्य (II)	₹ 800-50-1500
प्राचार्य (III)	₹ 1000-50-1500

(D) विश्वविद्यालयों के शिक्षक

1. प्रवक्ता	₹ 400-40-800-50-950
2. रीडर	₹ 700-50-1250
3. प्रोफेसर	₹ 1000-50-1300-60-1600

इन संस्तुतियों के साथ-साथ आयोग ने शिक्षकों के स्तर के उन्नयन हेतु निम्न सुझाव भी दिये-

1. केन्द्र सरकार द्वारा सभी शिक्षकों के लिए समुचित वेतनमान निर्धारित किये जायें तथा सभी नियमित शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों के समान मँहगाई भत्ता दिया जाना चाहिए।

2. सरकारी तथा गैर-सरकारी अनुदान प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनमान समान होने चाहिए।

3. सभी वेतन दरों का समय-समय पर कम से कम पाँच वर्ष में एक बार तो अवश्य ही पुनर्निरीक्षण होना चाहिए।

4. ऊपर दिये गये वेतनमानों में शहरों में मिलने वाला प्रतिमाह निर्वाह भत्ता या अन्य भत्ते शामिल नहीं किये गये हैं। ये भत्ते ऊपर बताये गये वेतनमान के अतिरिक्त होंगे, जो समानता के अधिनियम के आधार पर मिलने चाहिए।

5. उक्त वेतन दरें सभी सरकारी, स्थानीय स्वायत्त निकायों और निजी संस्थाओं के स्कूलों के स्वायत्त निकायों और अध्यापकों को दी जायेंगी।

6. शिक्षक के रूप में योग्य व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जायेगी तथा उनकी अतिरिक्त योग्यता हेतु उन्हें अधिक वेतन दिया जाय।

7. शिक्षकों की पदोन्नति, उनकी योग्यता व कुशलता के आधार पर की जानी चाहिए। विशेष रूप से योग्य शिक्षकों को उनकी योग्यता के अनुरूप शिक्षण कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए।

शिक्षण कार्य की दशायें व सेवा शर्तों पर सुझाव (Suggestions for Service and Teaching Conditions)—आयोग के अनुसार तात्कालिक समय में प्रत्येक राज्य में अध्यापकों की कार्य की दशाओं और सेवा की शर्तों में अनिश्चितता है। अध्यापक अनिश्चित भविष्य के कारण अपने व्यवसाय के प्रति न्याय नहीं कर पाते। इसलिए आयोग ने अध्यापकों हेतु उचित कार्य दशाओं का निर्धारण व सेवा शर्तों सम्बन्धी निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

1. सभी नियमित शिक्षकों को (सरकारी तथा अनुदान प्राप्त) को भविष्यनिधि, पेंशन एवं बीमा (त्रिमुखी लाभ) आदि की सुविधायें दी जानी चाहिए।

2. सरकारी तथा अनुदान प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों की सेवाशर्तों में अन्तर नहीं होना चाहिए।

3. शिक्षकों को प्रत्येक 5 वर्ष में एक बार पर्यटन के लिए एल. टी. सी. (किराया भत्ता) या रियायती रेलवे पास की व्यवस्था करायी जानी चाहिए।

4. कक्षा-शिक्षण के घण्टों के साथ-साथ सहगामी क्रियाओं के लिए भी अध्यापकों से कार्य लिया जाय, परन्तु यह ध्यान रहे कि उन पर कार्य का भार अधिक न हो।

5. शिक्षकों को अपनी व्यावसायिक उन्नति करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

6. महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के क्रमशः 25 व 50 प्रतिशत शिक्षकों को आवास सुविधा दी जाय।

7. शिक्षकों को सभी नागरिक अधिकारों का उपयोग करने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए तथा उन पर किसी प्रकार के निर्वाचनों में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

8. शिक्षकों की ट्यूशन पर रोक लगानी चाहिए।

9. शिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु स्त्रियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

10. ग्रामीण क्षेत्रों में महिला अध्यापकों के निवास की व्यवस्था आवश्यक है।

11. आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले अध्यापकों को विशेष भत्ता, आवास व बच्चों की शिक्षा व्यवस्था व उनके लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8.2.6 शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी आयोग के सुझाव (Suggestions Regarding Teacher Education)

आयोग के अनुसार शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए यह आवश्यक है, कि अध्यापकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु एक समुचित कार्यक्रम हो। आयोग ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है-''शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।''

"A sound programme of professional education of teachers is essential for the qualitative improvement of education." – Education Commission Report, p.67

अतः आयोग ने अध्यापक शिक्षा पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया तथा अध्यापकों की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें देने से पूर्व तत्कालीन दोषों पर भी ध्यान दिया। आयोग के मतानुसार अध्यापक शिक्षा के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं–

1. प्रशिक्षण संस्थाओं के स्तर में गिरावट का कारण योग्य अध्यापकों का अभाव है।

2. प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में नवीनता, सजीवता व वास्तविकता का अभाव है, क्योंकि इन संस्थाओं में दिया जाने वाला प्रशिक्षण अधिकांश रूप से परम्परागत है।

3. इन प्रशिक्षण संस्थाओं में सिखाई जाने वाली शिक्षण पद्धतियाँ अत्यन्त प्राचीन होने के कारण वर्तमान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक नहीं हैं।

4. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं और विश्वविद्यालय के साहित्यिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इन्हीं सब दोषों को उजागर करते हुए आयोग ने इनके निराकरण हेतु महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये, जो निम्न प्रकार हैं–

1. शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में अलगाव (Isolation in Teacher's Training Programme)–आयोग के मतानुसार दोनों स्तरों की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ एवं उनके कार्यक्रम सामान्य शिक्षा संस्थाओं और उनके कार्यक्रमों से भिन्न थे, अतः वे अलग-थलग से प्रतीत होते थे। उनमें क्रमिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. 'शिक्षा' विषय को विश्वविद्यालयों के बी. ए. व एम. ए. के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।

2. प्रत्येक राज्य में 'राज्य शिक्षक शिक्षा बोर्ड' (State Board of Teacher Education) की स्थापना की जाए, जो सभी स्तर के शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं उनके कार्यक्रमों हेतु उत्तरदायी हो।

3. सभी प्रशिक्षण संस्थाओं में 'प्रसार-सेवा-विभाग' (Extension Service Department) का निर्माण किया जाना चाहिए।

4. सभी शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओ को 'शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज' या ट्रेनिंग कॉलेज कहा जाए ताकि शिक्षण संस्थाओ की पृथकता का अन्त हो सके।

5. सभी राज्यो मे 'कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों' (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जाए तथा उनमे शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाय।

6. कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में 'शिक्षा स्कूल' (School of Education) स्थापित किये जाएँ, जिनमे शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम चलाए जाएँ और साथ ही शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धान कार्य चलाए जाएँ।

7. शिक्षण अभ्यास हेतु मान्यता प्राप्त स्कूल ही चुने जाएँ, और चुने हुए स्कूलों को राज्य द्वारा 'सहकारी स्कूल' (Co-operating Schools) की मान्यता दी जाए और इन्हें साज–सज्जा हेतु विशेष सहायता अनुदान दिया जाए।

8. समय-समय पर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं और सहकारी स्कूलों में अध्यापकों का आदान-प्रदान किया जाए।

2. शिक्षक शिक्षा के स्तर में गिरावट (Drop in the Level of Teacher Education)–आयोग के मतानुसार तत्कालीन प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं दोनो का स्तर बहुत निम्न था। अत: शिक्षक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर को बनाए रखने का उत्तरदायित्व 'राज्य शिक्षक शिक्षा बोर्ड' (State Board of Teacher Education) का होना चाहिए और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण के स्तरमान को बनाए रखने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों का होना चाहिए।

2. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि (Degree in Education) के अतिरिक्त दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ (Post Graduate Degrees) होनी चाहिए।

3. इन कॉलेजो के अध्यापकों में 'डॉक्टर' (Doctorate) की उपाधियों वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में होनी चाहिए।

4. प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष होनी चाहिए और माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की अवधि फिलहाल तो 1 वर्ष की रहे, परन्तु आगे चलकर इसे 2 वर्ष की कर देना चाहिए। एक वर्ष में कार्य दिवसों की संख्या कम से कम 230 दिन होनी चाहिए।

5. माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षणार्थियो को उन्हीं स्कूली विषयों में शिक्षण अभ्यास कराया जाए, जिनका अध्ययन उन्होंने स्नातक स्तर पर अवश्य किया हो।

6. शिक्षण अभ्यास एवं अन्य प्रायोगिक कार्यों के आन्तरिक मूल्यांकन को वस्तुनिष्ठ बनाया जाए।

7. शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाओ मे स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण योग्य छात्र छात्राओं को प्रवेश दिया जाये और योग्य व्यक्तियों को इस ओर आकर्षित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण नि:शुल्क किया जाए और प्रशिक्षणार्थियो को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाएँ। यदि सम्भव हो तो छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए।

8. वर्तमान प्रशिक्षण सस्थाओ के पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि में सुधार किया जाना चाहिए तथा अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए 'ग्रीष्मकालीन संस्थाओं' (Summer Institutes) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

3. प्रशिक्षण सुविधाओं का असन्तुलित विस्तार (Unbalanced Expansion of Training Facilities)–आयोग ने प्रशिक्षण-सुविधाओ का विस्तार करने के उद्देश्य से अग्राकित विचार व्यक्त किये है–

1. प्रशिक्षण संस्थाओं के आकार में एक निश्चित योजना के अनुसार पर्याप्त विस्तार किया जाना चाहिए।

2. प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में शिक्षकों की वर्तमान और भविष्य की माँग के आधार पर प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेजों की स्थापना करे।

3. कार्यरत अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए, अध्यापन कार्य करते हुए अंशकालीन पाठ्यक्रम व पत्राचार पाठ्यक्रम की सुविधायें दी जायें।

4. अन्तर्सेवा प्रशिक्षण का अभाव (Lack of Inservice Training)—आयोग ने देखा कि उस समय देश में कार्यरत प्रशिक्षित शिक्षकों को नए-नए शैक्षिक प्रयोगों एवं तकनीकों से अवगत कराने हेतु अन्तर्सेवा प्रशिक्षण (Inservice Training) की व्यवस्था नहीं थी।

इस सम्बन्ध में आयोग ने निम्न सुझाव दिये—

1. किसी भी स्तर के शिक्षकों के लिए हर पाँच वर्ष बाद अन्तर्सेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. अन्तर्सेवा प्रशिक्षण शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ-साथ विश्वविद्यालयों में भी दिया जाना चाहिए।

3. जहाँ तक सम्भव हो ग्रीष्मकालीन संस्थाओं में भी शिक्षकों के अन्तर्सेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

8.2.7 शैक्षिक अवसरों की समानता सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Equalization of Educational Opportunities)

आयोग के अनुसार तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में दो प्रकार की असमानतायें व्याप्त थीं-एक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर बालक-बालिकाओं की शिक्षा में असमानता और दूसरी उच्च वर्ग, पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति वर्ग और पिछड़े क्षेत्रों में रहने वालों की शिक्षा में असमानता, जबकि लोकतन्त्रीय समाज में सबको शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए। आयोग के शब्दों में-"शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य—शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों में समानता स्थापित करना है, ताकि पिछड़े हुए या कम अधिकारों वाले वर्ग एवं व्यक्ति अपनी दशा में सुधार करने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में प्रयोग कर सकें।" अतः आयोग ने इन असमानताओं को दूर करने हेतु व सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता सुलभ कराने हेतु निम्न सुझाव दिये—

1. कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा सभी के लिए निःशुल्क हो। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त से प्राथमिक शिक्षा, पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक या उससे पूर्व निम्न माध्यमिक शिक्षा तथा इस योजना के अन्त से 10 वर्ष की अवधि में उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा को योग्य व निर्धन छात्रों के लिए निःशुल्क कर दिया जाए।

2. प्राथमिक स्तर पर बच्चों को पाठ्यपुस्तकें व लेखन सामग्री भी निःशुल्क दी जाए।

3. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं के पुस्तकालयों में पाठ्यपुस्तकें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराई जायें तथा योग्य व निर्धन छात्रों को पुस्तकें खरीदने हेतु आर्थिक मदद दी जाए। इसके साथ ही माध्यमिक व उच्च शिक्षा स्तर पर बुक बैंक योजना चालू की जाए।

4. निम्न प्राथमिक स्तर के बाद शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियाँ दी जायें। उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 1975-76 तक 2.5 प्रतिशत प्रतिभाशाली बालकों को और सन् 1985-86 तक 5 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जायें।

5. माध्यमिक स्तर पर 15% प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

6. पूर्व स्नातक स्तर पर सन् 1975-76 तक 15% योग्य छात्रों को और 1985-86 तक 25 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

7. स्नातकोत्तर स्तर पर सन् 1975-76 तक 25% छात्रों को और सन् 1985-86 तक 50 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

8. विश्वविद्यालय स्तर पर भी दो प्रकार की छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए। छात्रावास में रहकर कॉलेज या विश्वविद्यालय से अध्ययन करने वाले छात्रों को इतना धन दिया जाय, जिससे वे शिक्षा से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्यय को पूरा कर पायें।

9. व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं में सामान्य शिक्षा संस्थाओं की अपेक्षा अधिक छात्रवृत्तियाँ दी जाये तथा अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि व प्रतिभावान छात्रों को विदेशों में अध्ययन के लिए।

10. माध्यमिक स्तर तक की छात्रवृत्तियों का वित्तीयभार राज्य सरकारों पर होना चाहिए और उच्च स्तर के छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृत्तियों का वित्तीय भार केन्द्र सरकार को वहन करना चाहिए।

11. लड़कियों को लड़कों के समान किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध कराये जाये व इस दिशा में आवश्यकतानुसार स्कूलों की व्यवस्था भी की जाय।

12. पिछड़े वर्ग के बच्चों के लिए वर्तमान सुविधाओं को जारी रखने के साथ ही कबीलों के बच्चों की शिक्षा के लिए चलित विद्यालयों (Running Schools) की व्यवस्था करके कबीले के व्यक्तियों को ही शिक्षित व प्रशिक्षित करके शिक्षक नियुक्त किया जाय।

8.2.8 स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा व समाज शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Women Education, Adult Education and Social Education)

आयोग के अनुसार बच्चों के चरित्र निर्माण, परिवारों की उन्नति व राष्ट्रीय मानव संसाधनों के विकास के लिए स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण है, अतः स्त्री शिक्षा के प्रसार व उन्नयन के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा सम्बन्धी आयोग के सुझाव निम्न है–

1. बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का अधिक से अधिक विस्तार करने के साथ ही माध्यमिक स्तर पर भी बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार की गति इतनी तीव्र कर दी जाय, कि 20 वर्ष के अन्त में निम्न माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं तथा बालकों की संख्या का अनुपात 1 : 3 और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 1 : 2 हो जाय।

2. बालिकाओं के लिए पृथक विद्यालयों व छात्रावासों और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाय तथा जहाँ महिलाओं की उच्च शिक्षा की अधिक माँग हो, वहाँ अलग से महिला महाविद्यालय स्थापित किये जायें।

3. बालिकाओं की शिक्षा के लिये गृहविज्ञान व सामाजिक कार्य (Social Work) के पाठ्य विषयों का विस्तार करके उनको समुन्नत बनाया जाय।

4. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को भी विज्ञान या गणित का अध्ययन करने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जाय तथा संगीत व कलाओं की शिक्षा देने हेतु भी उचित व्यवस्था की जाय।

5. स्त्रियों के लिए पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था व प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान रखा जाय।

प्रौढ़ एवं समाज शिक्षा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Adult Education)–आयोग ने प्रौढ़ शिक्षा को अत्यन्त व्यापक रूप मे लेते हुए इसके लिए एक व्यापक योजना प्रस्तुत की तथा प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी सुझावों को 4 वर्गों में बाँटा है–

1. प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप।

2. प्रौढ़ शिक्षा का प्रशासन व सगठन।

3. प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था।

4. प्रौढ़ शिक्षा की निरन्तरता।

प्रौढ़ शिक्षा के प्रशासन व संगठन के बारे में आयोग का विचार था कि प्रान्तो मे प्रौढ़ शिक्षा के लिए अलग से विभाग होना चाहिए। केन्द्र में प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी नीति और योजनाओ का निर्माण करने केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों को प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी परामर्श देने, उपयुक्त साहित्य व सामग्री का निर्माण करने व शिक्षा की प्रगति का लेखा-जोखा रखने व शोध कार्य करने हेतु **'राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा बोर्ड'** (National Board of Adult Education) की स्थापना की जाय तथा केन्द्र की ही भाँति प्रत्येक प्रान्त मे **'राज्य प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड'** (State Board of Adult Education) की स्थापना की जाय। जिले व ग्राम स्तरो पर **'प्रौढ़ शिक्षा समितियों'** का गठन किया जाय व इस क्षेत्र में कार्यरत स्वय सेवी सस्थाओ को भी प्रोत्साहन दिया जाय व उन्हें आर्थिक सहायता दी जाय। प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था हेतु आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

1. 15 से 30 आयु वर्ग के निरक्षर प्रौढ़ो की शिक्षा के लिए प्राथमिक विद्यालयो को सामुदायिक केन्द्र (Community Centre) बनाया जाय तथा यहाँ विद्यालयी समय के पहले अथवा बाद मे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाए जाए।

2. प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार व उन्नयन के लिए विश्वविद्यालयो का सहयोग लिया जाय तथा प्रौढ़ शिक्षा विभाग खोले जायें, जो शिक्षा हेतु साहित्य, शिक्षक व अन्य सामग्री तैयार करे तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलायें व शोध कार्य करें।

3. ग्रामीण निरक्षर महिलाओं को साक्षर बनाने हेतु ग्राम सेविकाओं का सहयोग लिया जाय तथा सामान्य महिलाओं को साक्षर बनाने हेतु 'केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड' द्वारा सक्षिप्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाय।

4. आयोग ने यह भी स्पष्ट किया कि प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त अधिकतर प्रौढ़ कुछ वर्ष बाद सब कुछ भूल जाते हैं। अत: प्रौढ़ शिक्षा की निरन्तरता बनाये रखने हेतु अनुसरण कार्यक्रम (Follow up Programme) चलाये जाएँ। पुस्तकालयों व वाचनालयों की व्यवस्था के अलावा सचल पुस्तकालयो की व्यवस्था की जाय, तथा इन पुस्तकालयों व वाचनालयों में क्षेत्र विशेष के व्यक्तियो की रुचि और आवश्यकतानुसार साहित्य उपलब्ध कराया जाए। जो प्रौढ़ अल्पकालीन शिक्षा का लाभ न उठा सकें उनके लिए अल्पकालीन पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पत्राचार पाठ्यक्रम व अभिनव पाठ्यक्रम चलाए जायें। इन सभी कार्यों के लिए जनसंचार के साधनो का प्रयोग किया जाय।

8.3 : कोठारी आयोग के सुझावों व संस्तुतियों का मूल्यांकन (EVALUATION OF SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF KOTHARI COMMISSION)

शिक्षा आयोग का भारतीय शिक्षा के इतिहास में अभूतपूर्व स्थान है, क्योंकि आयोग ने देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित व परिवर्धित करने की सिफारिश करके शिक्षा को अत्यन्त व्यावहारिक व उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानों ने आयोग के कुछ सुझावों एव सस्तुतियों के सम्बन्ध मे आयोग की आलेचना की है। अत आयोग के गुण/विशेषताओ और दोष/सीमाओं का विवेचन आवश्यक है और इन विशेषताओं व दोषों का विवेचन/मूल्यांकन हम भारत की आज की परिस्थितियों और भविष्य की आवश्यकताओं के आधार पर करेंगे।

8.3.1 कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग) के गुण (Characteristics of Kothari Commission)

आयोग के सुझावो व सस्तुतियो के आधार पर निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टव्य हैं–

1. कोठारी आयोग ने केन्द मे सशक्त प्रशासनिक ढाँचे और प्रान्तों मे समान प्रशासनिक ढाँचे का सुझाव देते हुए शिक्षा की एक समान सरचना प्रस्तुत की, जो लोकतन्त्रीय भारत के लिए उत्तम सुझाव था और इससे देश की भावी शिक्षा में समरूपता आयेगी।

2. आयोग ने क्रमिक व समयबद्ध शैक्षिक नियोजन के आधार पर वर्तमान और भविष्य की माँगों के आधार पर राष्ट्रीय लक्ष्यो व उपलब्ध संसाधनों के आधार पर 20 वर्षों के अन्दर 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य व नि शुल्क शिक्षा योजना, माध्यमिक स्तर पर प्रवेश लेने वाले 70% सामान्य बच्चो के लिए मध्यम स्तर की शिक्षा पूर्ण करने और इनमें से भी योग्य व सक्षम बच्चों हेतु उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने का सुझाव दिया।

3. आयोग ने समय की मांग को देखते हुए शिक्षा के अभिनव उद्देश्यों का निर्धारण किया तथा शिक्षा को उत्पादन व रोजगारपरक बनाने हेतु शिक्षा के व्यावसायीकरण पर जोर दिया।

4. उच्च शिक्षा के विस्तार पर रोक व उन्नयन पर बल दिया।

5. आयोग ने क्षेत्र की आवश्यकतानुसार व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था करने, पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाने व सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक प्रशिक्षण पर जोर दिया।

8.3.2 कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग) की सीमाएँ (Limitations of Kothari Commission)

1. आयोग ने प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के संगठनात्मक स्वरूप को निर्धारित करते हुए कक्षा 11 व 12 के सम्बन्ध में अस्पष्ट सुझाव दिये। यह स्पष्ट नहीं हो सका कि पहले से प्रचलित कक्षा-12 को माध्यमिक शिक्षा में लिया जाना है अथवा उसे विश्वविद्यालयीय शिक्षा का अंग मानना है।

2. आयोग द्वारा प्रस्तुत शिक्षा संरचना उलझी हुई व अस्पष्ट है। यही कारण है कि अगली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में 10+2+3 की समान शिक्षा संरचना घोषित की गयी।

3. आयोग द्वारा प्रस्तावित प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के सुझाव भ्रामक प्रतीत होते हैं, क्योंकि कही माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की बात कहीं गई है, तो कहीं विशिष्टीकरण की बात उच्चतर माध्यमिक स्तर पर की गई है, कही माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र अपनाने की बात कही गई है, तो कहीं इस स्तर पर अंग्रेजी, रूसी व फ्रेंच भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था की बात कही गई है, जिसके कारण इनके सुझावों में पंचमेल खिचड़ी की भावना निहित/प्रतीत होती है।

4. आयोग द्वारा प्रस्तावित, शिक्षको के वेतनमान और कार्य एवं सेवा दशाओं की संस्तुतियाँ शिक्षकों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुईं।

5. आयोग ने सामान्य शिक्षा व उच्च शिक्षा मे एक ओर तो राष्ट्रीय नामांकन नीति निर्धारित की। वहीं दूसरी ओर चयनात्मक प्रवेश प्रणाली की सिफारिश करके सभी छात्रों हेतु उच्च शिक्षा के दरवाजे बन्द करने का भी प्रावधान कर दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) के सुझावों का शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव–राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण किया गया और उसे 24 जुलाई, 1968 को घोषित कर दिया गया, जिससे इन सिफारिशो पर अमल किया जाने लगा। पूरे देश में 10+2+3 शिक्षा सरचना लागू करने के प्रयत्न शुरू हो गए और एन.सी.ई.आर.टी. (N.C.E.R.T.) ने प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए आधारभूत पाठ्यचर्या तैयार की जिसमे त्रिभाषा सूत्र के आधार पर तीन

भाषाओं का अध्ययन, देश के आधुनिकीकरण हेतु विज्ञान व गणित का अध्ययन और माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत करने के लिए कार्यानुभव को अनिवार्य किया गया और कुछ प्रान्तों में इस आधार पर प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण कर उसे चालू किया गया। कुछ प्रान्तों में +2 पर अनेक प्रकार के व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी शुरू किए गए परन्तु उनमें सफलता न मिल सकी। उच्च शिक्षा में भी डिग्री कोर्स त्रिवर्षीय कर दिया गया। उच्च शिक्षा और व्यावसायिक, तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उसके उन्नयन हेतु ठोस कदम उठाये गये। साथ ही शिक्षक शिक्षा में सुधार होने शुरू हुए और प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को व्यापक बनाया गया। इस आयोग ने शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु, जो सुझाव दिये उनका अनुपालन भी शुरू हुआ और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का निर्माण भी इसी आधार पर हुआ। अतः आयोग के कुछ सुझाव व सदस्य साधुवाद के अधिकारी हैं।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. इस मत की आलोचना कीजिए कि 'सन् 1966' के भारतीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की व्यापक योजना का प्रथम वास्तविक प्रयास है।
2. पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण की क्या आवश्यकता है ? उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिये मुदालियर तथा कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम की योजना के गुण दोषों का उल्लेख कीजिए।
3. शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित विद्यालय शिक्षा की नवीन संरचना पर प्रकाश डालिए।
4. लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना में कोठारी आयोग का प्रतिवेदन किस सीमा तक सफल हो सकता है ? पुष्टि कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित शिक्षा की राष्ट्रीय संरचना को स्पष्ट कीजिए।
2. कोठारी आयोग की नियुक्ति के कारण बताइये।
3. क्या कोठारी आयोग वास्तव में एक राष्ट्रीय आयोग था ?
4. कोठारी आयोग द्वारा बताये गये शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. आयोग में कुल सदस्यों की संख्या है–

   (अ) 14 (ब) 15

   (स) 10 (द) 17 **उत्तर**–(द)

2. कोठारी आयोग के अध्यक्ष थे–

   (अ) दौलत सिंह कोठारी (ब) राम किशोर कोठारी

   (स) धर्मवीर सिंह कोठारी (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)

अध्याय

9

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

[NATIONAL EDUCATION POLICY, 1986]

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया होने के कारण निरन्तर विकसित व भिन्नीकृत होती रही है तथा उसका प्रसार क्षेत्र लगातार बढ़ता रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट करने व कायम रखने, समकालीन चुनौतियों का सामना करने व राष्ट्रीय जीवन के संवर्द्धन के लिये अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्त्वपूर्ण कदम का प्रतीक था। इस पर अमल भी होना शुरू हो गया था तथा कई प्रान्तों ने अपने-अपने ढंग से 10+2+3 की शिक्षा संरचना लागू कर दी थी। त्रिभाषा सूत्र लागू कर दिया गया था। कई प्रान्तों में कृषि, व्यावसायिक एवं तकनीकि शिक्षा, विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक शोधों के लिये विशेष प्रावधान किये जाने लगे थे। प्रायः सभी प्रान्तों में परीक्षा प्रणाली में सुधार की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। आधुनिकीकरण के नाम पर विज्ञान व गणित की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी और शैक्षिक अवसरों की समानता के लिये कदम उठाये जाने लगे थे। परन्तु 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार के बनने पर 10+2+3 शिक्षा संरचना के स्थान पर 8+4+3 शिक्षा संरचना का विचार आया। जिसके परिणामस्वरूप कुछ शिक्षाविदों व सांसदों के सहयोग से तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री प्रतापचन्द्र चन्दर ने एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 की घोषणा कर दी। इसे अभी लागू भी नहीं किया गया था, कि 1980 में केन्द्र में पुनः कांग्रेस सत्ता में आ गई व पुनः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के अनुपालन पर जोर दिया। परन्तु इसी बीच इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्री बनने पर, हर क्षेत्र में आन्दोलनकारी कदम उठाने के प्रयास में शिक्षा के पुनर्निरीक्षण व पुनर्गठन प्रक्रिया ने तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराकर इसे **शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य (Challenge of Education : A Policy Perspective)** नाम से अगस्त 1983 में प्रकाशित कराया गया। जिसमें भारतीय शिक्षा की 1951 से 1983 तक की प्रगति यात्रा का सांख्यिकीय विवरण, उसकी उपलब्धियों एवं असफलताओं का यथार्थ चित्रण करते हुये उसके गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन किया गया है। सरकार के इस दस्तावेज पर विश्वव्यापी बहस शुरू हुई और सभी प्रान्तों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सुझाव प्राप्त हुये। केन्द्रीय सरकार ने इन सुझावों के आधार पर एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की और उसे संसद के बजट अधिवेशन, 1986 में प्रस्तुत किया। संसद में प्रस्तुत करने के बाद इसे मई, 1986 में पास कराया गया। इस शिक्षा नीति की घोषणा के कुछ माह बाद इसकी कार्य योजना (Plan of Action) नामक

दस्तावेज प्रकाशित किया गया। यह भारत की ऐसी पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है, जिसमें नीति के साथ उसके कार्यान्वयन की पूरी योजना भी प्रस्तुत की गई है और साथ ही उसके लिये पर्याप्त ससाधन जुटाये गये हैं।

9.1 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का दस्तावेज (FORMAT OF NATIONAL EDUCATION POLICY, 1986)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज विभाजित है, जिसका सक्षिप्त वर्णन निम्न है–

1. शिक्षा का सार व भूमिका (The Essence and Role of Education)–इस भाग मे यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा वास्तव में सभी के लिये है। यह बहुमुखी विकास पर आधारित है। शिक्षा से अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिये मानवशक्ति विकसित होती है। यह वह आधार है, जिस पर शोध व विकास की उन्नति होती है। यह राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की अन्तिम गारटी है। शिक्षा का एक कार्य सस्कृति सक्रमण है। यह उन संवेदनशीलताओं तथा प्रत्यक्षीकरण का परिष्कार करती है, जो राष्ट्रीय समंजन वैज्ञानिक स्वभाव मन व आत्मा की स्वतन्त्रता को सभव बनाते हैं व इस प्रकार सविधान मे निहित समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता तथा प्रजातन्त्र के लक्ष्यों की प्राप्ति सुगम हो जाती है।

इस प्रकार यह भाग पूरे दस्तावेज की भूमिका (Introductory) है। इस भाग मे 1.1 से लेकर 1.5 तक धारायें हैं। इन धाराओं में शिक्षा पर सामान्य कथन करते हुये बताया गया है कि इस नवीन शिक्षा नीति में 1968 की प्रथम राष्ट्रीय नीति का अनुसरण किया गया है। इसमें शिक्षा को जीवन से जोड़ने, ग्रामीण क्षेत्र मे 90% लोगों को प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता, शिक्षा की 10+2+3 की समान सरचना, उच्च शिक्षा में की गई प्रगति, लोकतंत्र के मार्ग की बाधायें, बेरोजगारी व जनसख्या की चुनौतियाँ तथा अगले दशक के नये तनावों आदि का वर्णन किया गया है।

2. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (National Education System)–शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली का आशय है–किसी निश्चित स्तर तक जाति, पन्थ, स्थान या लिंग के भेदभाव के बिना सभी विद्यार्थियो की एक समान गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँच हो। अत: इस भाग में शिक्षा को सभी के लिये सुलभ बनाने हेतु शिक्षा को राष्ट्रीय लक्ष्य मानते हुये इसे एक ऐसा आर्थिक निवेश कहा गया, जो समाज और व्यक्तियो के वर्तमान तथा भविष्य दोनों का निर्माण करता है। यह राष्ट्रीय शिक्षा एक समान शैक्षिक सरचना पर विचार करती है। यह राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय पाठ्यक्रम पर आधारित होगी, जिसमे समान मूल (Core) सहित अन्य घटक शामिल होते हैं, जो लचीले होते हैं। इसके साथ ही एक उभयनिष्ठ अश भी होगा, जिसमें भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व तथा राष्ट्रीय पहचान के विकास के लिये जरूरी विषयवस्तु होगी। ये तत्त्व विषय सीमाओं से परे होंगे तथा इनका निर्माण इस प्रकार किया जायेगा कि भारत की उभयनिष्ठ, सांस्कृतिक धरोहर, प्रजातंत्र, समतावादिता व धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों, विभिन्न लोगों के लिंगों में समानता, पर्यावरण की रक्षा, सामाजिक बाधाओं की समाप्ति, छोटे परिवारों के मानक के स्वीकरण तथा वैज्ञानिक स्वभाव के विकास को बढ़ावा मिल सके।

अवसर की समानता को बढ़ावा देना न केवल सफलता के लिये बल्कि सुलभता की शर्तों के लिये भी आवश्यक है। यह जागरुकता मूल (Core) पाठ्यक्रम द्वारा पैदा की जायेगी। सभी को सफलता सम्बन्धी दशाओं के समान अवसर उपलब्ध कराये जायेंगे। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर निर्धारित किये जायेंगे तथा उच्च शिक्षा में सामान्यत: व प्राविधिक शिक्षा में विशिष्टत: अन्तरक्षेत्रीय गतिशीलता को बढ़ावा दिया जायेगा।

जीवनपर्यन्त शिक्षा शिक्षा प्रक्रिया का एक पोषक उद्देश्य होगा। अपनी मनपसन्द शिक्षा को उपयुक्त स्थान पर जारी रखने के लिये युवाओं, गृहणियों, कृषि व उद्योगों में कार्यरत कामगारों को अवसर दिये जायेंगे। भविष्य मे मुक्त व दूरस्थ शिक्षा पर बल दिया जायेगा।

शिक्षा की इस राष्ट्रीय प्रणाली को उपयुक्त स्वरूप प्रदान करने में प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकने के लिये सक्षम बनाने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् तथा भारतीय चिकित्सा परिषद् को सशक्त किया जायेगा। इनके साथ-साथ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय शिक्षा योजना एवं प्रशासन संस्थान और अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा संस्थान को भी शिक्षा नीति के क्रियान्वयन मे शामिल किया जायेगा।

शिक्षा विषय के समवर्ती सूची में होने के कारण केन्द्र व राज्य सरकारों के उत्तदायित्वों में एक नई साझेदारी की जरूरत है। राज्यों की भूमिका व दायित्व तो निश्चित रूप से अपरिवर्तित रहेंगे, परन्तु सघीय सरकार शिक्षा के राष्ट्रीय व समन्वयात्मक चरित्र को प्रबलित करने, गुणवत्ता व मानकों को कायम रखने, विकास के लिये मानवशक्ति सम्बन्धी पूरे देश की शैक्षिक जरूरतों को जानने व नियन्त्रित करने, शोध व उच्च अध्ययन की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा सामान्यत: पूरे देश में सभी शैक्षिक स्तरों पर श्रेष्ठत्व को बढ़ाने में अधिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करेगी।

3. समानता के लिये शिक्षा (Education for Equality)—राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वर्तमान समय में पाई जाने वाली शैक्षिक असमानताओं को दूर करने तथा समान अवसरों से वंचित व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की ओर ध्यान देकर समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ध्यान दिया जायेगा। स्त्रियों की स्थिति में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिये, स्त्रियों में निरक्षरता को समाप्त करने व प्रारम्भिक शिक्षा तक उनकी पहुँच व शिक्षा प्राप्ति में बाधाओं को हटाने पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस भाग में शिक्षा से सम्बन्धित निम्नलिखित नीतियों को प्रस्तुत किया गया है—

1. सामाजिक विषमताओं को दूर रखते हुये अब तक के वंचित लोगों को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना।

2. महिलाओं को सशक्त व सामर्थ्यवान बनाने हेतु उन पर विशेष ध्यान देकर सार्थक शिक्षा प्रदान करना।

3. विभिन्न स्तरों पर व्यावसायिक, तकनीकी तथा व्यवसाय से सम्बन्धित शिक्षा में महिलाओं की सहभागिता पर प्रमुख बल दिया जाना।

4. अनुसूचित जातियों के बच्चों की शिक्षा के लिये निर्धन परिवारों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये प्रोत्साहन, विशेष छात्रवृत्तियाँ, नियमित निरीक्षण, इन जातियों के व्यक्तियों को शिक्षक बनाना, छात्रावास की सुविधायें तथा ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम व ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का समुचित उपयोग आदि पर विशेष ध्यान देना।

5. अनुसूचित जनजातियों के बालकों की शिक्षा के लिये आदिवासी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय खोलना, आदिवासी सस्कृति व भाषा का संरक्षण, आदिवासियों को शिक्षक बनाना, आश्रम तथा आवासीय विद्यालय स्थापित करना, शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं को दूर करना, उच्च शिक्षा व तकनीकी शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना, विशेष उपचारात्मक पाठ्यक्रम, आगनबाड़ी व अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोलना तथा आदिवासियों की सृजनात्मक प्रतिभा का विकास करना आदि कार्यक्रम सम्पन्न किये जायेंगे।

6. समाज की शैक्षिक व्यवस्था से पिछड़े वर्गों विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों के वर्गों को अनुकूल प्रोत्साहन प्रदान किया जायेगा, पर्वतीय तथा मरुस्थलीय जिलों को दूरवर्ती तथा दुर्गम क्षेत्रों को उपयुक्त संस्थागत सरचना प्रदान की जायेगी।

7. अल्पसंख्यकों को उनकी भाषा व संस्कृति की सुरक्षा, अपनी शिक्षा संस्थाओं का संचालन, वस्तुनिष्ठ पाठ्यक्रम का निर्माण तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप एकता स्थापित करने के पर्याप्त अवसर दिये जायेंगे।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग को बराबर के साझीदार की तरह, आम जनता के साथ समन्वित करने हेतु उनकी शिक्षा अन्य बच्चों के समान करने, यथासम्भव जिला मुख्यालयों में छात्रावासों सहित विशेष विद्यालयों का प्रावधान करने, विकलांगों का व्यावसायिक प्रशिक्षण देने व विकलांग बच्चों की विशेष कठिनाइयों के समाधान हेतु स्वैच्छिक प्रयत्न करने व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की पुन: अभिमुखता का प्रावधान रखा गया।

9. प्रौढ़ तथा सतत् शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम को अनेक प्रकार से लागू किया जायेगा, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, नियोजकों, मजदूर संघों व सरकारी अभिकरणों द्वारा कामगारों की शिक्षा, पुस्तकों, पुस्तकालयों व वाचनालयों का प्रसार, रेडियो, टी वी व फिल्मों का जन व समूह अधिगम माध्यम के रूप में प्रयोग, दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम, रुचि व आवश्यकता पर आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्माण किया जायेगा।

4. विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन (Reorganization of Education at Different Levels)–

(i) पूर्व बाल्यकाल देखभाल व शिक्षण (Early Childhood Care and Education ECCE)–शिक्षा की इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिशु के विकास की सर्वतोन्मुखी प्रकृति को मान्यता दी गई है, अर्थात् आहार, स्वास्थ्य तथा सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक व भावनात्मक विकास पर विशेष ध्यान देते हुये समेकित बाल विकास कार्यक्रम चलाया जायेगा, जिसमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा को समेकित करते हुये विद्यालयों के स्वास्थ्य कार्यक्रमों को और सुदृढ़ बनाया जायेगा। साथ ही प्राथमिक शिक्षा को भी **बालकेन्द्रित** बनाते हुये 14 वर्ष के सभी बालकों को विद्यालय भेजने का प्रबन्ध किया जायेगा। इस काल में औपचारिक विधियों का प्रयोग नहीं किया जायेगा तथा लिखने-पढ़ने तथा गणित के बारे में शिक्षा वहीं दी जायेगी। शिशु की देखभाल व पूर्व प्राथमिक शिक्षा में पूर्ण समन्वय रखा जायेगा। इसे एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम से उपयुक्त रूप से समन्वित किया जायेगा।

(ii) प्राथमिक (मौलिक) शिक्षा [Primary (Elementary) Education]–इस शिक्षा नीति में 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के सार्वजनिक नामांकन व नियमित शिक्षा प्राप्ति तथा शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार पर बल दिया जायेगा। इस स्तर पर बालकेन्द्रित व क्रिया आधारित अधिगम प्रक्रिया अपनाई जायेगी। नयी शिक्षा नीति में प्राथमिक शिक्षा के दो पहलुओं पर बल दिया जायेगा–

1. सार्विक प्रवेश तथा 14 वर्ष की आयु तक बच्चों की सार्विक शिक्षा।
2. शिक्षा की गुणवत्ता में महत्त्वपूर्ण सुधार।

इस शिक्षा नीति में गति निर्धारित स्कूलों की व्यवस्था करने की बात भी कही गयी है। जहाँ प्राथमिक शिक्षा के विद्यार्थियों को अपनी गति से पढ़ने का अवसर दिया जाएगा तथा उन्हें पूरक उपचारात्मक अनुदेशन दिया जायेगा। प्राथमिक स्तर पर किसी भी बच्चे को किसी कक्षा में एक से अधिक वर्ष तक रोका नहीं जायेगा। मूल्यांकन को यथासम्भव अलग रखा जायेगा। शारीरिक दण्ड वर्जित होगा व बच्चों की सुविधानुसार विद्यालय समय व छुट्टियों का निर्धारण किया जायेगा।

प्राथमिक विद्यालयो मे अनिवार्य सुविधाओं का प्रबन्ध किया जायेगा, जिसमें कम से कम दो उचित आकार के बड़े कमरे शामिल होंगे, जिनका सब ऋतुओं मे प्रयोग किया जा सके तथा आवश्यक खिलौने श्यामपट, मानचित्रो, चार्ट तथा अधिगम की अन्य सामग्री उपलब्ध होगी। प्रत्येक विद्यालय में कम से कम दो अध्यापको को नियुक्त किया जायेगा, जिनमे से एक महिला होगी। धीरे-धीरे प्रत्येक विद्यालय में एक कक्षा एक शिक्षक के अनुपात में शिक्षक नियुक्ति किये जायेंगे। समस्त देश मे प्राथमिक विद्यालयों के सुधार के लिये तत्काल एक अवस्था (Phared) अभियान चलाया जायेगा। जिसे प्रतीकात्मक रूप से 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' कहा गया है। कामगार बच्चों, पूर्णकालिक विद्यालयों में पढ़ने में असमर्थ लड़कियो, विद्यालयविहीन क्षेत्रों के बच्चो तथा विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों के लिये निरौपचारिक शिक्षा का व्यापक व क्रमबद्ध कार्यक्रम शुरू किया जायेगा। निरौपचारिक शिक्षा केन्द्रों (NFEC) के अधिगम वातावरण को सुधारने के लिये आधुनिक तकनीकी प्रयुक्त की जाएगी व स्थानीय समुदाय के प्रतिभाशाली व समर्पित युवको व युवतियो को अनुदेशक नियुक्त किया जायेगा। इस प्रकार औपचारिक व निरौपचारिक शिक्षा की गुणवत्ता मे समानता स्थापित करने के उपाय किये जायेंगे। इस प्रकार यह सुनिश्चित किया जायेगा कि सन् 1990 तक 11 वर्ष की आयु के सभी बच्चे कम से कम पाँच वर्ष की विद्यालयीय शिक्षा या निरौपचारिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हो। इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण का कार्य पूर्णकालिक अनौपचारिक शिक्षा पर्यवेक्षको को सौपा जा सकता है तथा जहाँ भी सम्भव हो औपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के लिये प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षक संरचना तथा पंचायती राज संस्थाओं व स्वैच्छिक अभिक्रमों (Agencies) तथा पचायती राज संस्थाओ को शामिल करने के सकारात्मक उपाय करने का प्रस्ताव रखा गया है। इन अभिक्रमो (Agencies) को उपयुक्त तथा समय पर अनुदान प्रदान करने की जिम्मेदारी सरकार उठायेगी।

(iii) माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)—इस राष्ट्रीय नीति में माध्यमिक शिक्षा अपनी विशिष्ट भूमिका मे दिखायी देगी। माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थियों को विज्ञान, मानविकी तथा सामाजिक विज्ञानो की विभिन्न भूमिकाओं की जानकारी देना शुरू करती है। इस नीति के सुझावों के अनुसार प्रतिभाशाली बच्चो को तीव्र गति से प्रगति करने देने के लिये अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा व उपयुक्त अवसर सुलभ कराने के लिये देश के विभिन्न भागों मे एक निश्चित प्रकार के 'पेस सेटिंग स्कूल' या 'गति निर्धारक विद्यालय' खोले जायेंगे। ये बालकों में श्रेष्ठता की भावना का विकास करने के साथ ही समानता व सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों की स्थापना करेंगे। इस प्रकार देश के विभिन्न भागो मुख्यत ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बच्चो को साथ-साथ रहने का अवसर देकर राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा तथा बच्चों की क्षमताओं का पूर्ण विकास होगा तथा ये राष्ट्रीय कार्यक्रम के उत्प्रेरक बनेंगे। ये विद्यालय आवासीय व नि:शुल्क होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे माध्यमिक शिक्षा के प्रसार व उन्नयन हेतु आवश्यकतानुसार देश के विभिन्न भागों मे **नवोदय विद्यालयों** की भी स्थापना की जायेगी ताकि तीव्र गति से विकास करने वाले या विशेष प्रतिभा वाले बच्चो को अवसर प्रदान किये जा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा बच्चो को उपलब्ध कराई जायेगी। इन नवोदय स्कूलों के सामान्य उद्देश्य—उत्कृष्टता, समानता व सामाजिक न्याय आदि तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति करना, ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बच्चों को सीखने के अवसर देना, उनकी क्षमताओं का पूर्ण विकास करना व स्कूलों को आवासीय तथा नि:शुल्क बनाना होगा।

इस स्तर पर क्रमबद्ध, सुनियोजित तथा लचीले **व्यावसायिक कार्यक्रम** शुरू किये जायेंगे। विशेष संस्थाओं मे व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जायेगा तथा माध्यमिक शिक्षा से अपवंचित वर्ग तथा

क्षेत्र के लिये व्यापक स्तर पर नये विद्यालय खोले जायेंगे। व्यावसायिक संस्थाओं व पाठ्यचर्याओं को शुरू करने का दायित्व सरकार तथा सरकारी व निजी क्षेत्र के सेवायोजकों का होगा। इस प्रकार व्यापक रूप से व्यावसायिक शिक्षा का प्रावधान किये जाने से व्यावसायिक शिक्षा सामान्यत माध्यमिक शिक्षा के बाद अलग धारा के रूप में होगी तथा इसका उद्देश्य स्वरोजगार के अवसर को प्राप्त करने के प्रति एक स्वस्थ अभिवृत्ति का विकास करना होगा। इस पाठ्यक्रम की अवधि एक से तीन वर्ष की होगी तथा ऐसे विद्यालयों का दायित्व सरकार का होगा। ऐसा भी प्रस्ताव किया गया है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का दस प्रतिशत 1990 तक और 25 प्रतिशत 1995 तक व्यावसायिक पाठ्यचर्या मे आ जाए।

इसके अतिरिक्त नव साक्षरों, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त युवकों, स्कूल छोड़ जाने वालों तथा रोजगार या आंशिक रोजगार में लगे हुये व्यक्तियों के लिये भी अनौपचारिक लचीले व आवश्यकता पर आधारित व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम चलाये जायेंगे।

5. उच्च शिक्षा (Higher Education)—इस शिक्षा नीति मे उच्च शिक्षा के उन्नयन हेतु छात्रों को प्रवेश परीक्षा द्वारा प्रवेश देने, पाठ्यक्रमों के पुनर्गठन करने, उच्च शिक्षा संस्थानों को साधन उपलब्ध कराने और उनके शिक्षकों के लिये पुनर्बोध कार्यक्रमों की व्यवस्था करने की बात कही गई है। इस सम्बन्ध में नवीन शिक्षा नीति में निम्नलिखित प्रावधान हैं—

(i) एक बड़ी संख्या में स्वायत्तता प्राप्त कॉलेजों का विकास किया जायेगा तथा विश्वविद्यालयों के कुछ चुने हुये विभागों को भी स्वायत्तता दी जायेगी।

(ii) उच्च शिक्षा के लिये न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जायेगी तथा छात्रों की संख्या को सीमित रखने के साथ ही विशेषज्ञता सम्बन्धी माँगों को प्रभावी ढंग से पूरा किया जायेगा।

(iii) उच्च शिक्षा का परिषदों के माध्यम से राज्य स्तरीय नियोजन व समन्वय किया जायेगा तथा क्षमता के अनुसार प्रवेश को नियमित किया जायेगा।

(iv) शिक्षण विधियों को बदलने के प्रयास किये जायेंगे तथा शिक्षकों के कार्य का मूल्यांकन भी व्यवस्थित ढंग से किया जायेगा।

(v) विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्यों की व्यवस्था की जायेगी और अनुसन्धान की उच्च गुणवत्ता को सुनिश्चित बनाने के लिये सहायता प्रदान की जायेगी व आवश्यक प्रयास किये जायेंगे।

(vi) शिक्षा के स्तर पर निगरानी के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और शिक्षा परिषदें कार्य करेंगी।

(vii) सामान्य रूप से उच्च शिक्षा को तथा विशेष रूप से कृषि, चिकित्सा, टेक्नोलॉजी, कानून व शिक्षा पर आधारित अन्य व्यवसायों के क्षेत्रों को अपना लक्ष्य बनाने वाली एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना शिक्षा नीति में एकरूपता व सुसंगति पैदा करने के उद्देश्य से की जायेगी।

शिक्षा के समान अवसरों को उपलब्ध कराने की दृष्टि से **मुक्त विश्वविद्यालय** तथा **दूरस्थ शिक्षा प्रणाली** को नयी शिक्षा नीति में प्रश्रय दिया जायेगा। विशिष्ट तकनीकी सेवाओं जैसे—डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, विधि तथा ऐसी अन्य सेवाओं में, जहाँ अकादमिक योग्यता आवश्यक है, को छोड़कर अन्य सामान्य सेवाओं के लिये डिग्री की अनिवार्यता समाप्त की जायेगी। शिक्षा नीति में महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारों के अनुरूप ग्रामीण विश्वविद्यालयों को विकसित किया जायेगा।

6. तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education)—नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति में तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा हेतु अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE) एवं राज्यों के तकनीकी शिक्षा बोर्डों को सुदृढ़ करने, कुछ अच्छे तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा संस्थानों को

स्वायत्तता प्रदान करने, तकनीकी शिक्षा सस्थाओं में अन्तर्सम्बन्ध बढ़ाने और इस क्षेत्र में सतत शि की व्यवस्था करने की बात कही गयी है। इसके लिए अग कार्य किये जायेंगे –

1. बालको के लिए इस प्रकार की पाठ्यवस्तु का निर्माण किया जायेगा, जिससे वे सुन्दरता समायोजन तथा परिष्कार आदि के प्रति सवेदनशील बन सकें।

2. शिक्षा द्वारा छात्रो के जीवन से धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, हिंसा, असहिष्णुता तथा भाग्यवाद आदि बुराइयो को दूर कर उनमें हो रहे मूल्यों के ह्रास को रोकने के लिए उन्हें जीवन के शाश्वत मूल्यो से अवगत कराया जायेगा।

3. तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा की धारायें अलग-अलग होने पर भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को देखते हुए सदी के अन्त तक प्रस्तावित कल्पना के अनुसार इनका पुनर्गठन करना आवश्यक होगा यह आवश्यक है कि तकनीकी एव प्रबन्ध शिक्षा की नीति के अन्तर्गत भविष्य में आर्थिक, सामाजिक पर्यावरणीय उत्पादन और प्रबन्ध प्रक्रिया व ज्ञान का द्रुत गति से प्रसार किया जाय और इसे विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में देखा जाय।

4. मानव शक्ति सम्बन्धी सूचनाओ को विकसित करने के क्रम मे हाल ही में स्थापित **टैक्नीकल मैन पावर इन्फार्मेशन सिस्टम** को और अधिक विकसित एवं सक्षम बनाया जाय।

5. स्थापित व विकासशील प्रौद्योगिकी के लिए सतत् शिक्षा (Continuing Education) का विकास किया जायेगा।

6. महिलाओ, आर्थिक तथा सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों एवं विकलांगो के लाभ के लिए तकनीकी शिक्षा के समुचित औपचारिक व अनौपचारिक कार्यक्रम तैयार किये जायेगें। छात्र को इतना उत्तम उद्यम विषयक प्रशिक्षण दिया जायेगा कि वे स्वयं रोजगार कर सकें। इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था डिग्री तथा डिप्लोमा स्तर पर माड्यूलर तथा वैकल्पिक कोर्सों द्वारा की जायेगी।

7. सामुदायिक पॉलिटेक्निकों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो में कमजोर वर्ग के लोगों को उत्पादक व्यवसायो मे प्रशिक्षण दिया जायेगा।

8. शिक्षा मे आधुनिक सचार प्रौद्योगिकी के ज्ञान के अन्तर्गत छात्रों को आवश्यक सूचनाओं का ज्ञान, शिक्षक प्रशिक्षण, शैक्षिक गुणवत्ता में वृद्धि, कला व संस्कृति के प्रति जागरूकता तथा स्थायी मूल्यों के सस्कार आदि का ज्ञान कराया जायेगा।

9. कार्य अनुभव को उद्देश्यपूर्ण व सार्थक शारीरिक कार्य मानते हुए इसका प्रयोग छात्रों के लिए माध्यमिक स्तर पर दिये जाने वाले पूर्व व्यावसायिक कार्यक्रम तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के लिए किया जायेगा।

10. तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा में दक्षता व प्रभाविता का बढ़ाया जाना भी आवश्यक है अत: इस हेतु कार्यात्मक दक्षता को बढ़ाया जायेगा तथा पुरानी कार्यशैली को हटाया जायेगा।

11. तकनीकी शिक्षा का सम्बन्ध उद्योग, अनुसंधान और विकास संगठनों से, ग्रामीण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमो से तथा पूरक स्वरूप वाले अन्य शिक्षा क्षेत्रों से स्थापित किया जायेगा।

12. शिक्षकों को इस सन्दर्भ में बहुमुखी भूमिका निभाते हुए शिक्षण, अनुसधान, शिक्षण सामग्री तैयार करने के साथ सस्था के प्रबन्ध में भी हाथ बटाना होगा। सभी तकनीकी प्रशिक्षकों के लिए सेवा पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जायेगा।

13. उच्च कोटि की सस्थाओं और व्यक्तियों के श्रेष्ठ कार्य पर उन्हे पुरस्कृत किया जायेगा परन्तु घटिया स्तर की सस्थाओ की वृद्धि पर अकुश लगाने के साथ-साथ चुनिदा सस्थानों को ही, एक सीमा तक ही शैक्षिक, प्रशासनिक व वित्तीय स्वतन्त्रता दी जायेगी।

14. शिक्षा की प्रामाणिकता को बनाये रखने तथा अन्य अनेक उपयुक्त कारणों को ध्यान में रखकर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के व्यापारीकरण को रोका जायेगा. इसके विकल्प के रूप में वीकृत मानदण्डों और सामाजिक लक्ष्यों के अनुरूप इन क्षेत्रों में निजी और स्वैच्छिक प्रयासों को शामिल करने की एक नई पद्धति तैयार की जायेगी।

7. शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाना (Making the Education System Effective)—इस शिक्षा नीति में तत्कालीन शैक्षिक वातावरण में उद्देश्यों की गंभीरता के साथ-साथ आधुनिकीकरण एवं सृजनात्मकता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के गुण एवं प्रसार के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तनों को सम्मिलित किए जाने की बात कही गई है। अत इसमें संस्थाओं के प्रशासन तथा शिक्षकों के लिए मानक निर्धारित करने, शिक्षक तथा छात्रों की कार्य प्रणाली में सुधार करने और शिक्षा संस्थाओं का मूल्याकन करने पर बल दिया गया है। इस कार्य हेतु शिक्षकों की जबाबदेही वांछित व्यवहार-मानकों का छात्रों द्वारा अनुपालन एवं उन्नत छात्र सेवा की व्यवस्था, संस्थाओं को अच्छी सुविधा प्रदान करना तथा राष्ट्रीय या स्वराज्य पर निर्धारित मानक तथा स्तरों के अनुसार संस्थानों की निष्पत्ति के सन्दर्भ में मूल्यांकन व्यवस्था का निर्माण करने की बात कही गयी है।

8. शैक्षिक विषय–वस्तु और प्रक्रिया को नया स्वरूप देना (To Give New Prospective to Educational Content and Process)—तत्कालीन परिस्थितियों में ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि औपचारिक शिक्षण पद्धति और देश की समृद्धि व विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच की खाई को भरना आवश्यक है, इन सांस्कृतिक परम्पराओं के मध्य विद्यमान अन्तर को समाप्त करने हेतु एक सेतु का निर्माण आवश्यक है। शिक्षा को एक ओर जहाँ वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के विकास और परिवर्तन को ध्यान में रखना है वहीं विभिन्न सांस्कृतिक व मानवीय मूल्यों में भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा की विषयवस्तु व प्रक्रिया को अनेक प्रकार से सांस्कृतिक विषयवस्तु से सम्बन्धित किया जायेगा। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति इन दोनों पक्षों के न्यायोचित संश्लेषण पर बल देने के साथ ही साहित्य और कला आदि के शिक्षण-प्रशिक्षण वाले संस्थानों के संवर्द्धन पर भी बल देगी। बच्चों की सौन्दर्य, संगीत व परिष्कार के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जाएगी तथा शिक्षा द्वारा सार्वभौमिक मूल्यों का विकास किया जायेगा। इस प्रकार मूल्यों की शिक्षा, सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास हेतु एक सशक्त माध्यम बनेगी तथा इससे धार्मिक अन्धविश्वास, कट्टरता, असहिष्णुता, हिंसा और भाग्यवाद का अन्त करने में सहायता मिलेगी।

1968 की शिक्षा नीति की परीक्षा के बाद भाषाओं के विकास की दिशा में आवश्यक प्रावधानों में हो रही कठिनाई को, इस नीति में संशोधित किया जा सकता है, अत. 1986 की भाषा नीति को सोद्देश्यपूर्ण ढंग से व पूरी शक्ति से लागू किया जायेगा। बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा अच्छी विदेशी पुस्तकों को भारतीय भाषाओं में अनुवादित करने के लिए सहायता भी दी जायेगी। पुस्तकों की गुणवत्ता सुधारने, पाठकों की पठन क्षमता बढ़ाने, सृजनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने व लेखकों के हितों के संरक्षण हेतु कदम उठाये जायेंगे तथा पुस्तकालयों की दशा सुधारने के उपाय भी किये जायेंगे।

भारत जैसे देश में पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को अनुभव करते हुए पर्यावरण की सुरक्षा और सुरक्षा की सजगता के पक्ष को विद्यालयों और महाविद्यालयों के शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जायेगा व इसे शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में समाहित किया जायेगा।

उपयोगी सूचनाओं के प्रसार, शिक्षकों के प्रशिक्षण, गुणवत्ता में सुधार, कला व संस्कृति के बोध को बढ़ाने, शाश्वत मूल्यों के विकास के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जायेगा। उपलब्ध सुविधाओं

का अधिकतम उपयोग किया जाएगा। अच्छी व उपयोगी बाल फिल्मों के उत्पादन को प्रोत्साहन दि जाएगा व उचित शैक्षिक उद्देश्यो के विरोधी रेडियो व टी. वी. कार्यक्रमों तथा फिल्मों आदि पर रोक लग जायेगी।

...नुभव की शिक्षा को सभी स्तरो पर दी जाने वाली शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जाए व इसे देने हेतु एक श्रेणीकृत व सुसरचित कार्यक्रम भी बनाया जायेगा। इसके द्वारा प्राप्त किया ग अनुभव आगे चलकर रोजगार पाने मे बहुत सहायक होगा। वातावरणीय सचेतनता या जागरुकत उत्पन्न करने के कार्यक्रमो को सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया में समाकलित किया जायेगा।

बच्चो मे चिन्तन, तर्क, विश्लेषण व तार्किक संश्लेषण में प्रशिक्षण देने के लिए गणित पढ़ा चाहिए। विज्ञान शिक्षा को इस प्रकार मजबूत बनाया जायेगा कि बच्चों में पृच्छा, सृजनात्मक वस्तुनिष्ठता जिज्ञासा, सौन्दर्यात्मक सवेदनशीलता, समस्या समाधान व निर्णय लेने से सम्बन्धि कौशल विकसित हो सके व वे दैनिक जीवन में विविध पक्षो से विज्ञान का सम्बन्ध जान सकें।

खेलकूद व शारीरिक शिक्षा को भी अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न अंग मानते हुए निष्पत्ति मूल्याकन मे इसे भी शामिल किया जाएगा। योग पर विशेष ध्यान दिया जायेगा व इसे सभी स्कूलो शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे शामिल किया जायेगा।

पुस्तको के स्तर को सुधारने तथा पठन आदत को बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किया जायेग पुस्तको के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकालयों के सुधार का आन्दोलन भी चलाय जायेगा व नये पुस्तकालयो की व्यवस्था की जायेगी। शिक्षा संस्थानों में भी पुस्तकालयों की सुविधाए बढ़ाई जायेगी एवं पुस्तकालयो की वृद्धि की जायेगी एवं पुस्तकालयाध्यक्षों के स्तर में वृद्धि की जायेगी।

शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए शिक्षण अधिगम की किसी भी प्रक्रिया के आन्तरिक अ के रूप में निष्पत्ति को मूल्यांकन का अनिवार्य अंग मानते हुए परीक्षण प्रणाली की पुनर्व्यवस्था की जायेगी, जिसमें मूल्यांकन विधि की विश्वसनीयता व वैधता सुनिश्चित की जायेगी। कार्यात्मक सन्दर्भ में मूल्याकन का तात्पर्य कंठस्थीकरण को हतोत्साहित करना, सयोग व वैयक्तिकता के अवसरों को दूर करना, सतत् व सघन, मूल्यांकन करना शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रभावी उपयोग व परीक्षा संचालन में सुधार करना होगा। इसके साथ ही शैक्षिक सामग्री तथा शिक्षण विधियो मे सहगामी परिवर्तन, क्रमिक रूप से माध्यमिक स्तर से ही सेमिस्टर प्रणाली लागू करना व अंको के स्थान पर ग्रेडिंग का उपयोग करना आदि उपायों को अपनाकर बाह्य परीक्षा के पूर्व प्रभाव को कम किया जायेगा।

9. शिक्षक व शिक्षक शिक्षा (Teacher and Teacher Education)—समाज में शिक्षकों का स्थान सर्वोपरि होने के साथ-साथ शैक्षिक व्यवस्था की सफलता शिक्षकों के बौद्धिक, शैक्षिक तथा उनके मानवीय गुणों पर आधारित होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत शिक्षकों की सेवा शर्तों और कार्यकारी परिस्थितियो में व्यापक सुधार किया जायेगा। शिक्षकों के चयन के तरीकों को भी इस प्रकार पुनर्गठित किया जायेगा कि योग्यता व वस्तुनिष्ठता सुनिश्चित हो सके व प्रक्रिया क्षेत्रीय व कार्यपरक अपेक्षाओं के अनुरूप हो। प्रतिभावान छात्रों को विशेष तौर पर शिक्षा व्यवसाय की ओर आकर्षित करने के लिए जोड़ा जाएगा। समान वेतन तथा भत्ते, सेवा की दशायें एवं देश भर में उनकी कठिनाइयों को दूर करने की प्रणाली के गठन करने के प्रयास किए जायेगें। शिक्षकों की नियुक्ति एवं स्थानान्तरण हेतु भी मार्गदर्शिका तैयार की जायेगी तथा उच्च ग्रेड हेतु मुक्त, सहयोगी एव आँकड़ों पर आधारित शिक्षक

मूल्यांकन प्रणाली विकसित की जायेगी, जिसमें शिक्षक के उत्तरदायित्वों का मूल्यांकन, प्रयास एवं निष्पत्ति को दृष्टिगत रखते हुए मानकों के आधार पर होगा।

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है अत इसमें पूर्व व सेवाकालीन पक्षों को अलग नहीं किया जा सकता अत पहले चरण में शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था को पुनर्व्यवस्थित किया जायेगा।

शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है अत राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षक शिक्षा की प्रणाली में आमूल परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता को दृष्टिगत हुए जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान (D.I.E.T. District Institute of Education and Training) स्थापित किए जायेंगे जो प्रारंभिक स्कूलों के शिक्षकों व निरौपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कार्मिकों के लिए सेवापूर्व व सेवाकालीन कार्यक्रम आयोजित करेंगे। इनकी स्थापना होते ही स्तरहीन संस्थाओं को समाप्त कर दिया जायेगा व चुने हुए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की उन्नति SCERT (State Council of Education Research and Training) के रूप में की जायेगी। NCERT के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को सक्षम बनाने, पाठ्यक्रम तथा विधियों के निर्माण हेतु मार्गदर्शन के लिए वांछित ससाधन प्रदान किए जायेंगे। ये संस्थाएँ व विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग आपस में मिलकर काम करेंगे। कुछ चयनित माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को भी उच्चीकृत करके उन्हें SCERT के कार्य में पूरक के रूप में कार्य दिया जायेगा। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) को अध्यापक शिक्षा संस्थाओं को मान्यता देने का अधिकार दिया जायेगा तथा उसे आवश्यक साधन उपलब्ध कराए जाएंगे। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा संस्थानों व विश्वविद्यालय शिक्षा विभागों की सुसम्बद्ध संगठित संरचना विकसित की जाएगी।

10. शिक्षा का प्रबन्धन (Management of Education)–1 शिक्षा के प्रबन्धन एवं शैक्षिक नियोजन व प्रबन्ध प्रणाली में परिवर्तन को प्राथमिकता दी जाएगी। इसके लिए कुछ सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा–

(i) शैक्षिक आयोजन व प्रबन्ध का दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य (Long Term Profile) तैयार करना और उसे देश की विकासात्मक और मानवशक्ति सम्बन्धित आवश्यकताओं से जोड़ना।

(ii) विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षा संस्थाओं में स्वायत्तता की भावना उत्पन्न करना।

(iii) शिक्षा में लोक भागीदारी, गैर सरकारी साधनों का प्रयोग तथा स्वैच्छिक प्रयासों को महत्व देना।

(iv) शैक्षिक नियोजन व प्रबन्ध में स्त्रियों के भाग लेने को प्रोत्साहित करना।

(v) अराजकीय अभिकरणों की परिषदों व ऐच्छिक प्रयासों की सहभागिता पर बल देना।

(vi)प्रदत्त उद्देश्यों तथा मानदण्डों के सम्बन्ध में जबावदेही के सिद्धान्त की स्थापना करना तथा निर्देशक विचारों पर ध्यान देना।

2. राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक नियोजन व प्रबन्ध की दिशा में **'सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजूकेशन'** शैक्षिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्धारित करेगा तथा शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु वांछित परिवर्तन किए जायेंगे। मानव ससाधन मत्रालय के विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय हेतु वांछित समितियाँ तथा अन्य अभिक्रमों को क्रियाशील बनाया जायेगा जिसमें शिक्षा विभाग केन्द्र तथा राज्य स्तर पर व्यावसायिकों के सहयोग से सशक्त बनेगा। इस प्रकार यह संस्था शैक्षिक विकास का पुनरावलोकन करने तथा तन्त्र को सुधारने हेतु इसके कार्यान्वयन पर नियन्त्रण रखेगी तथा अखिल भारतीय स्तर की 'भारतीय शिक्षा सेवा' (IES) शुरू की जायेगी।

3. शैक्षिक नियोजकों, प्रशासकों व संस्थाओं के प्रशिक्षण पर भी ध्यान दिया जायेगा।

4. राज्य स्तर पर शैक्षिक नियोजन व प्रबन्ध हेतु राज्य सरकार स्टेट एडवाइजरी बोर्ड की स्थापना की जायेगी जो राज्यो के विभिन्न विभागो का मानव ससाधन विकास के लिए प्रभावशाली समन्वय करेगी।

5. जिला व स्थानीय स्तर पर भी, उच्च माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए जिला शिक्षा बोर्ड का गठन किया जायेगा। शिक्षा विकास की बहुस्तरीय संरचना के भीतर केन्द्रीय, राज्य व स्थानीय स्तर पर नियोजन, समन्वय, प्रबन्धन एवं मूल्यांकन मे भाग लिया जायेगा।

6. शिक्षा को व्यापार बनाने के उद्देश्य से गठित संस्थाओं की स्थापना पर रोक लगाने के भी प्रयास किए जाएगे तथा सही प्रबन्ध वाली सस्थाओ को वित्तीय सहायता दी जाएगी।

7. शिक्षा सस्था के अध्यक्ष को भी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होगा। उन्हें प्रशिक्षित किया जायेगा तथा विद्यालय परिसरों को नमनीय आधार पर विकसित किया जायेगा। इससे शिक्षकों को सहक्रियात्मक आधार पर वृत्तिक विकास होगा, अनुभव व सुविधाओं में भागीदारी के द्वारा मानकों तथा आचरण की प्रतिबद्धता हो सकेगी।

8. इन सस्थाओ के माध्यम से स्थानीय समुदायों को विद्यालय विकास कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी जायेगी।

11. ससाधन तथा समीक्षा (Resources and Evaluation)—(i) व्यावहारिक रूप से सभी शिक्षाविदों ने यह स्वीकार किया है कि शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय आर्थिक निवेश होता है तथा इसके द्वारा ही भारत मे समतावादी उद्देश्यों व विकास केन्द्रित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अभी तक शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का अधिक प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करके ही भारत में समतावादी उद्देश्यों, विकास केन्द्रित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है और यह कार्य के आयाम तथा अभ्यासों के क्रम में होगा।

(ii) शिक्षा के लिए पूँजी एकत्रित करने हेतु चदा लेना, भवनों की देखभाल और दैनिक कार्यों के लिए स्थानीय व्यक्तियों की सहायता लेना, शुल्क वृद्धि तथा मौजूदा ससाधनों का समुचित उपयोग आदि लगभग सभी सभव उपाय किये जायेंगे।

(iii) विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा से सम्बन्धित सस्थाओं का प्रसार व उन्हें तीव्र गति से आधुनिक स्वरूप देना भी आवश्यक होगा।

(iv) अनुसंधान व विकास से लगे संस्थानों को, सुविधाओ का प्रयोग करने वाले अभिकरणों सरकारी विभागो तथा उद्यमियों पर शिक्षा अधिभार लगाना होगा। इन सभी उपायों से राज्य पर भार भी कम होगा तथा सरकार को प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण, निरक्षरता उन्मूलन, पूरे देश के सभी वर्गों के लिए शैक्षिक अवसरो की समानता, सामाजिक, प्रासंगिकता की अभिवृद्धि, शैक्षिक कार्यक्रमों की गुणात्मक व कार्यात्मक प्रभावशीलता के लिए धन भी प्राप्त होगा।

(v) शिक्षा में विनिवेश या अपर्याप्त निवेश के गम्भीर परिणामो से बचने के लिए व विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्थापित विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रियाशील सस्थाओं को निरर्थकता से बचाने हेतु इन कोर्सों को अद्यतन व आवश्यकताओं की माग पर आधारित बनाना होगा। अन्यथा इन क्षेत्रों पर किया गया निवेश भारतीय अर्थव्यवस्था को हानि भी पहुँचा सकता है।

(vi) 1968 की शिक्षा नीति मे शिक्षा के निवेश को धीरे-धीरे बढ़ाने की बात कही गयी है जिसमे यथासभव राष्ट्रीय आय का 6% तक शिक्षा पर व्यय किया जा सके। चूँकि निवेश का वास्तविक स्तर उस लक्ष्य से कही कम है। अत नीति में निर्धारित कार्यक्रमों के लिए वाछित धन प्रदान करने का निर्णय लिया जाय। साथ ही अनुवीक्षण (Monitoring) व पुनरावलोकन के आधार पर समय-समय पर आवश्यकता की माँग के अनुसार धन की व्यवस्था की जाय।

12. भविष्य (The Future)– भारत मे शिक्षा का भावी स्वरूप इतना पेचीदा है कि उसके बारे मे स्पष्ट रूपरेखा बना सकना सम्भव नही। फिर भी, हमारी उन परम्पराओ को देखते हुये कि जिन्होने हमेशा बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियो को महत्त्व दिया है, इसमे कोई शक नही कि हम अपने उद्देश्यों को हासिल करने मे कामयाब होंगे।

आज सबसे बड़ा काम है शैक्षिक पिरामिड की बुनियाद को सुदृढ़ बनाना, उस बुनियाद को जिसमे इस शताब्दी के अन्त तक लगभग सौ करोड़ लोग होंगे, यह सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि जो इस पिरामिड के शिखर पर हों, वे विश्व मे सर्वोत्तम स्तर के हो। अतीत मे इन दोनों छोरों को हमारी संस्कृति के मूल-स्रोतों ने भली-भाँति सिंचित रखा, लेकिन विदेशी आधिपत्य और प्रभाव के कारण इस प्रक्रिया मे विकार पैदा हो गया। अब मानव ससाधन विकास का एक राष्ट्रव्यापी प्रयास पुनश्च शुरू होना चाहिए जिसमे शिक्षा अपनी बहुमुखी भूमिका पूर्ण रूप से निभाए।

9.2 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) हेतु कार्य योजना (PLAN OF PROGRAMME OF ACTION OR POA FOR NATIONAL EDUCATION POLICY)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रकाशन, ससद द्वारा पारित हो जाने के बाद मई 1986 मे किया गया था तथा इसके लगभग 6 महीने बाद नवम्बर 1986 मे इस शिक्षा योजना को लागू करने के लिए **कार्य योजना** (Plan of Action) के दस्तावेज का प्रकाशन किया गया।

इस शिक्षा नीति को लागू करने के मानव ससाधन मत्रालय ने 23 कार्यदलो का गठन किया था जिनमें ख्याति प्राप्त शिक्षाविद, विषय विशेषज्ञ तथा वरिष्ठ सरकारी अधिकारी शामिल थे। इन्होने शिक्षा नीति के प्रमुख प्रावधानों को क्रियान्वित किये जाने की विधि पर विचार करके अपनी सस्तुति जुलाई 1986 मे प्रस्तुत की। इन सुझावों पर 21 जुलाई, 1986 को राज्य व केन्द्र के सक्षम शैक्षिक एव प्रशासनिक अधिकारियो की बैठक मे विचार करके एक कार्ययोजना (POA) तैयार की गयी, जिसे केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् द्वारा पुन: विचार करके अपनी स्वीकृति दे दी गयी। यह अन्तिम प्रारूप भारतीय ससद द्वारा अगस्त 1986 में स्वीकृत किया गया, जिसे बाद मे सभी राज्यों मे लागू कर दिया गया।

9.2.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action for Elementary Education in National Educational Policy)

इस शिक्षा नीति मे प्रारम्भिक शिक्षा हेतु निम्न सुझाव दिये गये–

1. 14 वर्ष तक के बालकों की शिक्षा के लिए पूरे देश में समान प्रवेश प्रणाली (Universal Enrolment) तथा समान अवधि की शिक्षा (Universal Retention) होनी चाहिए।

2. प्राथमिक शिक्षा मे सुधार वाछित दिशा में तथा मूर्त रूप में होने चाहिए।

3. बालको के सज्ञानात्मक अधिगम मे वृद्धि होनी चाहिए।

4. अभ्यास द्वारा बालको को कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

5. विद्यालयो मे शारीरिक दण्ड की प्रथा को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहिए।

6. छात्रों को व्यावसायिक ज्ञान उनकी सुविधानुसार दिया जाना चाहिए।

7. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के माध्यम से छात्रों को खेल का सामान, नक्शे, चार्ट, चॉक, श्यामपट्ट तथा डस्टर आदि प्रदान किये जाने चाहिए।

8. अपव्यय तथा अवरोधन को रोकने के लिए बड़े पैमाने पर निरौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।

9.2.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति में माध्यमिक शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action Secondary Education in National Education Policy)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे माध्यमिक शिक्षा के महत्त्व को भली प्रकार समझा गया था। अत इस स्तर की शिक्षा के सम्बन्ध मे निम्नाकित सुझाव दिये गये थे–

1. आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर भी प्रतिभावान बालकों की शैक्षिक प्रगति में तेजी लाने प्रयास करना।

2. इस नीति मे माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का एक ऐसा व्यवस्थित व सुनियो कार्यक्रम बनाने की सस्तुति की गई है, जो छात्रों को उनके शिक्षा पूरी करने के बाद उन्हे आत्मनि बनाने मे सहायता करे।

3. व्यावसायिक शिक्षा सस्थाओं के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार तथा निजी सेवायोजकों सहभागिता के आधार पर सौंपा गया है।

4. माध्यमिक स्तर पर कक्षा 10 के लिए एक सामान्य आधारभूत पाठ्यक्रम बनाया गया है।

5. ग्रामीण क्षेत्रो मे तथा महिलाओं के लिए सरकारी एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार की सस्थाओ व्यावसायिक शिक्षा बढ़ाने के लिए विशेष कदम उठाये जाने चाहिए।

6. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो कि छात्र विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास कर सकें।

9.2.3 उच्च शिक्षा हेतु कार्य योजना (Plan of Action for Higher Education National Education Policy)

उच्च शिक्षा की समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद, राष्ट्रीय शिक्षा नीति निम्नलिखित सस्तुतियाँ दी गई हैं–

1. भारत मे स्थित 150 विश्वद्यिालय व 5000 महाविद्यालयों की संख्या बढ़ाने के स्थान पर इस स्तर मे सुधार किया जाय।

2. शिक्षा में आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के नवाचारों को लागू करना व अधिक सुविधा प्रदान करना।

3. सम्बद्ध कॉलेजों के स्थान पर कुछ प्रमुख स्वायत्त कॉलेज खोले जायें।

4. भाषागत योग्यता के आधार पर पर्याप्त ध्यान देना व पाठ्यक्रमों में लचीलापन होना।

5. उच्च शिक्षा के स्तर पर व उसकी गुणवत्ता पर यू. जी. सी. द्वारा निरन्तर निगरानी रखना।

6. शिक्षक शिक्षा की दृष्टि से ओरिएन्टेशन प्रोग्राम तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संचालित करने हे ऐकेडेमिक स्टाफ कॉलेजों की स्थापना करना।

9.3 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 द्वारा उठाये गये कुछ महत्वपूर्ण कदम (SOME IMPORTANT STEPS TAKEN BY NATIONAL EDUCATION POLICY–1986)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति -1986 का गठन शिक्षा की चुनौतियों के रूप मे किया गया था अत: इसका भार की शिक्षा व्यवस्था पर पर्याप्त स्थायी एवं व्यापक प्रभाव पड़ा है, जिसका कारण सभवत: उसके द्वारा उठा गये कुछ महत्त्वपूर्ण शैक्षिक कदम है। शिक्षा में योगदान देने वाले ये महत्त्वपूर्ण कदम इस प्रकार है–

1. 10+2+3 शिक्षा सरचना (10+2+3 Structure of Education)

2. नवोदय विद्यालय (Navodaya Vidyalaya)
3. विद्यालय सकुल (Group of Schools)
4. सर्व शिक्षा अभियान (Education for all Movement)
5. शैक्षिक अवसरों की समानता (Equalization of Educational Opportunities)
6. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (Operation Black Board)
7. दूरस्थ शिक्षा एव मुक्त विश्वविद्यालय (Distance Education and Open Universities)
8. उपाधि को सेवा से अलग करना (To Remove Degree from Service)
9. शिक्षक प्रशिक्षण (Teacher Training)
10. शिक्षक की जवाबदेही (Accountability of Teacher)

1. 10+2+3 शिक्षा संरचना (Education Structure)—केन्द्रीय सरकार ने भारतीय शिक्षा पर समग्र रूप से विचार करने और विभिन्न स्तरों के प्रसार व उन्नयन के लिए सुझाव देने के उद्देश्य से 1964 में भारतीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) की नियुक्ति की। इस आयोग ने पूरे देश के लिए समान शिक्षा संरचना 10+2+3 प्रस्तावित की। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा को 5+3+2 में विभाजित किया गया और इसके लिए पूरे देश में आधारभूत पाठ्यचर्या लागू करने पर बल दिया गया। +2 को दो वर्गों में विभाजित किया गया—सामान्य (General) तथा व्यावसायिक (Vocational) जिसके द्वारा छात्रों को विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा देकर उन्हें जीविका कमाने योग्य बनाया जायेगा। +3 पर प्रथम दो वर्षों में छात्रों को उनके द्वारा चुने गये विषयों में विशेष ज्ञान कराया जायेगा और तीसरे वर्ष में उन्हें सम्पूर्ण शिक्षा दी जायेगा।

I. सम्पूर्ण देश में इस नई शिक्षा संरचना 10+2+3 को लागू करने के मूल उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. सम्पूर्ण देश में शिक्षा के स्तर में समानता लाना, जिसमें एक क्षेत्र के छात्र दूसरे क्षेत्र में प्रवेश पा सकें।

2. प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा सामाजिक एकता, राजनैतिक एकता और राष्ट्रीय एकता का विकास करना।

3. प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों को क्षेत्र विशेष का नहीं, राष्ट्र का नागरिक बनाना।

4. प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों के मानवीय एव वैज्ञानिक दोनों पक्षों का विकास करना, जिससे एक ओर संस्कृति का संरक्षण हो और दूसरी ओर देश का आधुनिकीकरण हो।

5. प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।

6. +2 पर बहुसख्यक सामान्य छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा देकर उन्हें अपनी जीविका कमाने योग्य बनाना और मेधावी छात्रों को सामान्य शिक्षा देकर विश्वविद्यालयीय शिक्षा के लिए तैयार करना।

7. +3 की विशिष्ट शिक्षा द्वारा राष्ट्र के लिए विशेषज्ञ तैयार करना, जिससे राष्ट्र को विशिष्ट मानव संसाधन की पूर्ति हो, राष्ट्र का बहुमुखी विकास हो।

II. नई शिक्षा संरचना (10+2+3) के गुण (Merits of New Education Structure)—देश की वर्तमान स्थिति और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों को सामने रखकर निश्चित की गई है। इसमें निम्नलिखित गुण हैं—

1. 10 वर्षीय शिक्षा की आधारभूत पाठ्यचर्या को लागू करने से पूरे देश की प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा का स्तर समान होना।

2. इस आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को लागू करने से सामाजिक समानता व राष्ट्रीय एकता विकास सुनिश्चित होना।

3. मानवीय व वैज्ञानिक विषयो को समान महत्त्व देने से संस्कृति का सरक्षण व देश आधुनिकीकरण सभव होना।

4. पाठ्यचर्या मे राष्ट्रीय महत्त्व के विषयो व क्रियाओ को स्थान दिये जाने से बच्चे मे राष्ट्र जागरुक नागरिक बनने की भावना का उदय होना।

5. +2 पर बहुसख्यक सामान्य छात्रो को व्यावसायिक शिक्षा की ओर मोड़ देने से उच्च शिक्षा मे प्रवेश का दबाव कम होना व मेधावी व योग्य छात्रो को प्रवेश मिलने से शिक्षा का स्तर उच्च होना

6. शिक्षित बेरोजगारी की समस्या का हल होना व सभी का अपनी योग्यता व क्षमतानुसार व्यवसा का प्राप्त होना।

III. दोष (Demerits)—यद्यपि यह शिक्षा सरचना बहुत उत्तम है, परन्तु इसे जिस रूप अपनाया गया है, उसमें गुणों के साथ दोष भी हैं—

1. इस शिक्षा सरचना मे प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा को समान, अनिवार्य व नि:शुल्क करने का प्रस्ता किया गया, जबकि हमारे देश मे अभी तक प्रथम 8 वर्षीय शिक्षा ही समान, अनिवार्य एवं नि:शुल्क क की जा सकी है।

2. एन सी ई आर टी. द्वारा प्रस्तावित यह 10 वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या अति विस्तृत होने स सामान्य बुद्धि और क्षमता के छात्र इसे पूरा नहीं कर सके।

3. कक्षा 1 से ही समाजोपयोगी कार्य अथवा कार्यानुभव और कार्यशिक्षा का प्रारम्भ करना अधिक युक्तिसगत नहीं कहा जा सकता।

4. इन समाजोत्पादक कार्यों हेतु व कार्यानुभव व कार्य शिक्षा हेतु कच्चे माल व प्रशिक्षित अध्यापक की व्यवस्था किया जाना संभव नहीं प्रतीत होता।

5. हमारे देश में नैतिक मूल्यों के अत्यधिक ह्रास के कारण चारों ओर अराजकता व भ्रष्टाचार व्याप्त है, जिसे ध्यान में रखते हुए भी इस आधारभूत पाठ्यचर्या में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा और मूल्यों के निर्माण हेतु कोई व्यवस्था नहीं है।

6. +2 स्तर पर पाठ्यक्रम को सैद्धान्तिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम के रूप में विभाजित करने पर भी अच्छे परिणाम नहीं मिले हैं, क्योंकि इसके कई कारण हैं-व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का उचित न होना विद्यालयों में आवश्यक प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं और प्रशिक्षित शिक्षकों का न होना व प्रायोगिक प्रशिक्षण हेतु व्यावसायिक व औद्योगिक केन्द्रों का उपलब्ध न होना आदि।

निष्कर्षत: +2 पर जिस व्यावसायीकरण का प्रयोग किया गया है वह असफल रहा है। अत: अच्छा होगा कि +2 पर व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था सामान्य विद्यालयो में करने के स्थान पर पॉलीटेक्निक कॉलेजो में की जाए। इसके लिए प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकतानुसार साधन सम्पन्न पॉलीटेक्निक कॉलेज स्थापित किए जाए व उनके लिए प्रशिक्षित शिक्षक तैयार किए जाएँ।

2. नवोदय विद्यालय (Navodaya Schools)—किसी भी राष्ट्र में शिक्षा पर किया गया निवेश उत्तम निवेश होता है और यदि यही निवेश प्रतिभावान बच्चों के लिए उत्तम शिक्षा की व्यवस्था करने में किया जाय तो उतना ही अधिक लाभ होता है। हमारे देश में प्राय: धनी वर्ग के लोग तो अपने बच्चों को व्यय साध्य पब्लिक स्कूलों और कैपीटेशन फीस वाले कॉलेजो मे उन्हें प्रवेश दिलाकर उत्तम प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था कर लेते हैं, परन्तु निर्धन वर्ग ऐसा नहीं कर पाता। अत: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे

ऐसे श्रेष्ठ बालकों को उच्च कोटि की शिक्षा की व्यवस्था हेतु नवोदय विद्यालय खोले गये है. इस तथ्य को और सबसे पहले हमारे युवा प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी का ध्यान गया व उन्होंने शिक्षाविदो के सम्मुख इस तथ्य को रखकर इस समस्या के समाधान हेतु सुझाव माँगे। इस समस्या के समाधान हेतु ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में गति निर्धारक स्कूलों (Pace Setting Schools) की स्थापना की घोषणा की गई तथा इन्हें नवोदय विद्यालय का नाम दिया गया. इन विद्यालयों द्वारा शिक्षा नीति के माध्यम से नवाचारों (Innovations) तथा प्रयोगों (Experiments) के लिए छूट दी गई है

इन विद्यालयों का प्रारूप व विशेषतायें इस प्रकार है –

1. ये विद्यालय उपेक्षित वर्ग की प्रतिभाओं के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध करते है. इन विद्यालयों में निर्धन या सामान्य व्यक्तियों के श्रेष्ठ बालकों को स्तरीय शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रवेश परीक्षा के माध्यम से उपेक्षित क्षेत्रों व वर्गों के प्रतिभावान बच्चों का चयन करके प्रतिभाशाली बच्चों को प्रवेश दिया जाता है। नवोदय विद्यालयों में नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था होती है।

2. इन विद्यालयों में शैक्षिक अवसरों की समानता होती है. धनी वर्ग के बच्चों को अच्छी शिक्षा आसानी से उपलब्ध होती है, परन्तु निर्धन वर्ग के बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है। अत: इन विद्यालयों में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए 75% स्थान सुरक्षित रहता है तथा अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए 15% स्थान सुरक्षित रहता है व जनजाति के बच्चों के लिए 7.5% स्थान सुरक्षित है।

3. इन विद्यालयों मे कक्षा 6 से 12 तक के बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती है तथा कक्षा 8 अथवा 9 से 12 तक सामाजिक शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा विज्ञान शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहता है। ये विद्यालय आवासीय होते हैं, इनमें सहशिक्षा की व्यवस्था होती है।

4. ये विद्यालय केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (Central Board of Secondary Education or CBSE) से सम्बद्ध होते हैं।

5. इनमें कक्षा 6 में प्रवेश लिया जाता है, जिसके लिये योग्य अभ्यर्थियों का चयन किया जाता है। योग्य छात्रों का चयन NCERT द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर ली जाने वाली परीक्षा से किया जाता है।

6. इनके द्वारा बालकों को राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की प्रेरणा दी जाती है। क्योंकि इनमें अध्ययन-अध्यापन हेतु उत्तम वातावरण रहता है।

7. इन विद्यालयों मे क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेजी दोनों के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था होती है तथा इनमें राष्ट्रीय स्तर की चयन प्रक्रिया द्वारा योग्य व प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है। इनमें उत्तम शिक्षण विधियों व तकनीकों का प्रयोग होता है।

8. इन विद्यालयों की स्थापना इस उद्देश्य से की गई है, जिससे ये अन्य विद्यालयों के लिए आदर्श हों तथा कुछ हद तक ये आदर्श सिद्ध भी हुये हैं, परन्तु ये अपने साधनों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न नहीं हैं।

नवोदय विद्यालयों के उद्देश्य–1. प्रतिभावान बच्चों को अच्छी व निशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना।

2. देश के उपेक्षित ग्रामीण क्षेत्रों और उपेक्षित वर्ग के प्रतिभावान बच्चों को शैक्षिक विकास के अवसर प्रदान करना।

3. समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता की प्राप्ति करना और राष्ट्रीय एकता का विकास करना।

4. देश की अमूल्य प्रतिभा का विकास करके राष्ट्र विकास में सहायता प्रदान करना।

5. अन्य विद्यालयों के लिये आदर्श उपस्थित करना।

मूल्यांकन—नवोदय विद्यालय को खोलने का उद्देश्य—उच्च शैक्षिक व्यवस्था का प्रबन्ध करना इसमे वे सभी गुण विद्यमान है, जो अच्छे विद्यालयों मे होने चाहिये। परन्तु कुछ कमियाँ भी इसमें विद्यमान है। इसमे प्रतिभावान बच्चो को प्रवेश परीक्षा के माध्यम से प्रवेश दिया जाता है। छात्रों को मनोविज्ञान के अनुसार अपनी रुचियो, योग्यताओ व क्षमताओं के अनुसार अपना व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास करने का पूरा अधिकार है।

प्रवेश परीक्षा के माध्यम से प्रवेश देना कुछ विसंगत भी है, क्योंकि धनी वर्ग अपने बहुतायत साधनों के बल पर छात्रों को ज्ञान का भण्डार दे सकते है, परन्तु निर्धन बच्चे प्रतिभावान होने पर भी ये साधन नहीं जुटा पाते है तथा उनके पास सूचनाओं का संग्रह नहीं रह पाता है, जिससे वे पिछड़ जाते है। अत मात्र परीक्षा के माध्यम से छात्रो का चयन दोषपूर्ण है। विद्यालय के वातावरण तथा बाहरी परिवेश मे बहुत अन्तर रहता है।

इन दोषो के बावजूद भी नवोदय विद्यालय अन्य विद्यालयों के लिये आदर्श है, जो नि शुल्क शिक्षा प्रदान करते है। परन्तु इनमे कुछ व्यावहारिक परिवर्तन करके इन्हें और अधिक उत्कृष्ट बनाया जा सकता है तथा कुछ नियमो मे परिवर्तन करके अधिक से अधिक निर्धन बच्चों को लाभ पहुँचाया जा सकता है।

3. **विद्यालय सकुल** (School Complex)—यह एक ऐसी राष्ट्रव्यापी योजना है, जो विद्यालयों के गुणात्मक विकास के लिये सचालित की गई है। यह विभिन्न शैक्षिक क्षेत्रों में विद्यालयों के पारस्परिक सहयोग के कार्यक्रमों पर आधारित है। इसकी प्रारम्भिक रूपरेखा कोठारी आयोग ने निर्धारित की थी परन्तु इसे कार्य और व्यवहार रूप में परिणित करने का सम्पूर्ण श्रेय नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति—1986 को जाता है।

विद्यालय सकुल ऐसी कार्य योजना है जिसमें किसी क्षेत्र विशेष के माध्यमिक विद्यालय अथवा शीर्ष विद्यालय तथा उससे नीचे के विद्यालय आपस में संगठित होकर एक समूह का निर्माण करते है। ये समस्त विद्यालय बैठको का आयोजन करके पारस्परिक सहयोग भावना के साथ अपनी-अपनी समस्याओं को प्रकट करते है और उसका समाधान खोजने का प्रयास करते हैं तथा जो शीर्ष संस्था होती है, वह संस्थाओ मे एकता और समन्वय स्थापित करते हुये उनके चर्तुमुखी विकास हेतु शैक्षिक निर्देशन प्रदान कर उनकी समस्त समस्याओ को दूर करती है।

विद्यालय संकुल का उद्देश्य—1. विद्यालयों के मध्य स्तर को लेकर आपसी भेदभाव को दूर करना।

2. उनकी गुणवत्ता मे सुधार लाना।

3. उनकी समस्त समस्याओ को दूर करना।

विद्यालय संकुल की कार्यप्रणाली—विद्यालय संकुल की स्थापना जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं उपविद्यालय निरीक्षक से प्राप्त निर्देशों के आधार पर की जाती है। इसके लिये किसी क्षेत्र की शीर्ष संस्था का सर्वप्रथम चयन किया जाता है, इसके बाद उसके आसपास के लगभग 8 किमी क्षेत्र के 5 विद्यालयों का चयन समूह के सदस्यों के रूप में किया जाता है तथा इसकी बैठक माह मे कम से कम 1 बार अवश्य होती है, जिसकी अध्यक्षता शीर्ष विद्यालय के प्रधानाचार्य द्वारा की जाती है तथा इस प्रकार की बैठकें क्रमिक रूप से प्रत्येक सदस्य विद्यालय में आयोजित की जाती है। सदस्य प्रत्येक विद्यालय मे अपने यहाँ की सभी शैक्षिक परिस्थितियों, उपलब्धियों तथा समस्याओ का विवरण प्रस्तुत करते है तथा उनके सुधार हेतु विचार-विमर्श करते है तथा बैठकों के अन्त मे समस्त कार्यवाही तथा निष्कर्षों का प्रतिवेदन जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है।

विद्यालय संकुल के लाभ—विद्यालय संकुल के लाभ निम्नलिखित है –

1. विद्यालय संकुल अपने सदस्य विद्यालयों को उनके बहुमुखी विकास हेतु पर्याप्त अधिकार प्रदान करता है।

2. इनके द्वारा विद्यालय अपने परिसर, भवनों, शिक्षण कक्षों, शिक्षण विधियों तथा शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग में काफी सुधार कर सकते हैं।

3. इसके द्वारा पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं तथा हास्टल आदि का समुचित विकास किया जा सकता है।

4. सभी विद्यालयों के मध्य आपसी प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर उनके लिये समानता पर आधारित मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

5. पाठ्यक्रम की जटिलताओं तथा कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है

6. शिक्षकों में सहयोग, प्रेम तथा आत्म विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है

4. सर्व शिक्षा अभियान (Sarv Shiksha Abhiyan)—धारा–45 के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश के 6 से 14 वर्ष तक के बालकों को एक निश्चित अवधि में नि शुल्क एव अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का संकल्प लिया गया था। परन्तु काफी लम्बे समय तक यह लक्ष्य न पूर्ण हो पाने पर अक्टूबर 1998 मे राज्यों के शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन की संस्तुतियों के आधार पर नवम्बर 2000 में भारत सरकार ने देश के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराने के उद्देश्य से 'सर्व शिक्षा अभियान' को प्रारम्भ किया था।

सर्वशिक्षा अभियान के उद्देश्य—सर्वशिक्षा अभियान के उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा निम्न तीन चरणो मे पूरी करना
   (A) सन् 2003 तक ब्रिज कोर्स के आधार पर विद्यालयीय शिक्षा की पारंपरिक योजना को पूरा करना।
   (B) सन् 2007 तक देश के समस्त बालकों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना
   (C) सन् 2008 तक देश के सभी बच्चों को आठ वर्ष की शिक्षा प्रदान कर देना
2. प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य सन् 2010 तक पूरी तरह प्राप्त कर लेना।

(**Note**–अप्रैल 2010 से सम्पूर्ण देश में माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा को नि शुल्क कर दिया गया तथा इसे अनिवार्य रूप से लागू करने हेतु प्रत्येक राज्य को आर्थिक सहायता भी प्रदान की गई।)

3. प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये उसे सामान्य जीवन से सम्बद्ध करना।

सर्वशिक्षा अभियान की विशेषतायें—इसकी विशेषतायें निम्नलिखित है–

1. यह अभियान नवम्बर 2000 मे स्वीकृत हुआ और देश भर में जुलाई 2002 तक चलाया गया।

2. इसमें समाज के कमजोर वर्गों, अनुसूचित जातियों, बालिकाओं तथा जनजातियों के बच्चों की शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया है।

3. यह ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों के लिये विशेष रूप से लाभदायक है।

4. जनवरी 2001 से इस अभियान को प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय मिशन के रूप मे चलाया जा रहा है।

5. इस अभियान के लिये सरकार की ओर से पर्याप्त अनुदान दिया जा रहा है। उदाहरण–2001-02 में 1100 करोड़ रु. से अधिक का व्यय निर्धारित किया गया था।

5. शैक्षिक अवसरों की समानता (Equality of Educational Opportunities)—शैक्षिक अवसरों की समानता का सामान्य अर्थ है—देश के समस्त बच्चों को भेदभाव रहित शिक्षा प्रदान करना। शैक्षिक अवसरों की समानता का विचार लोकतन्त्र की भावना पर आधारित है। हमारे देश में इस समस्या पर सर्वप्रथम विचार कोठारी आयोग (1964-66) ने प्रस्तुत किया। आयोग ने सुझाव दिया कि सर्वप्रथम 14 आयु वर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं नि:शुल्क कर दी जाय। किसी के बच्चों की इस शिक्षा प्राप्त करने मे आने वाली कठिनाइयों को दूर कर दिया जाय। शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है—राज्य द्वारा देश के सभी बच्चों के लिये स्थान, जाति, धर्म अथवा लिंग आदि किसी भी आधार पर भेद किये बिना एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य एवं नि:शुल्क रूप से सुलभ कराना।

शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता—शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता निम्नलिखित रूप से है—

1. लोकतन्त्र की रक्षा के लिये देश के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से शिक्षित करना आवश्यक है।

2. व्यक्ति के वैयक्तिक विकास के लिये शैक्षिक समानता आवश्यक है, क्योंकि भारत में अधिकांश जनसंख्या निर्धन है और शिक्षा से वंचित है।

3. वर्ग भेद की समाप्ति के लिये भी शैक्षिक समानता आवश्यक है।

4. सुसंस्कृत समाज को विकसित करने के लिये आवश्यक है।

5. देश के आर्थिक विकास के लिये शैक्षिक समानता आवश्यक है क्योंकि आर्थिक विकास तीन तत्त्वों पर आधारित होता है—प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन, जिसमें मानव संसाधन का विकास शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।

भारत में शैक्षिक अवसरों की असमानता—भारत में शैक्षिक अवसरों की असमानता निम्नलिखित रूप से है—

1. भारत कई प्रान्तों में बँटा हुआ है तथा शिक्षा का उत्तरदायित्त्व राज्यों का है। जिसके कारण प्रत्येक राज्य के शिक्षा के स्तर में असमानता है।

2. भारत के कई प्रान्त विशेष हैं जहाँ पर शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है, जिससे देश के कई हिस्सों में शैक्षिक असमानता है।

3. भारत के सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा में बहुत अन्तर पाया जाता है।

4. देश मे बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में बहुत अन्तर पाया जाता है, क्योंकि बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है, अत: लड़कियों की स्नातक तक की शिक्षा नि:शुल्क कर देनी चाहिये।

5. देश में कई विद्यालय जाति एवं धर्म के नाम पर खोले जाते है तथा वहाँ पर शिक्षकों की नियुक्ति भी जाति एव धर्म के आधार पर ही की जाती है, जहाँ पर छात्रों के साथ एक समान व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती है।

भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता के उपाय—शैक्षिक अवसरो मे समानता लाने के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि देश के सभी बच्चों और युवकों को बिना किसी भेदभाव के, किसी भी स्तर की किसी भी प्रकार की शिक्षा समान रूप से सुलभ हो तथा इसके मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर किया जाए। शैक्षिक अवसरों की समानता को दूर करने के उपाय निम्नलिखित है—

1. महिलाओं के लिये उचित शिक्षा का प्रबन्ध करके तथा उनको तकनीकी शिक्षा व प्रौद्योगिकी का ज्ञान भी उन्हें प्रदान किया जाए।

2. अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास के लिये उचित प्रबन्ध हो तथा वे सवर्ण जाति के लोगों के बराबर आ सकें।

3. अल्पसंख्यकों व विकलांगों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

4. ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना करके तथा प्रौढ़ों को शिक्षित करना।

5. नियजकों, मजदूरों, श्रमिकों आदि के लिये व उनके बच्चों के लिये भी उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये।

6. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (Operation Blackboard) – देश में प्राथमिक शिक्षा का स्तर बहुत धीमी गति से आगे बढ़ा है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा के प्रसार और वांछित सुधार हेतु किये जाने वाले प्रयास अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सके हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 घोषित हो जाने के बाद 1987-88 में भारत सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा को फैलाने और समुन्नत करने के लिये 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' नाम से एक नवीन योजना प्रारम्भ की गई।

यह योजना स्कूलों में मात्र ब्लैक बोर्ड उपलब्ध कराने हेतु नहीं है, वरन इस योजना के माध्यम से सभी प्राथमिक विद्यालयों में समुचित शिक्षण कार्य का संचालन करने के लिये उसको शैक्षिक तथा भौतिक संसाधनों सम्बन्धी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। इसके लिये धन की पूर्ति राज्यों के सहयोग से ही की जाती है। इसमें स्थानीय निकायों, संस्थाओं, प्रसिद्ध एवं धनी व्यक्तियों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का भी सहयोग लिया जा सकता है। पर्याप्त सुधार लाने हेतु आवश्यक घटक निम्नलिखित हैं –

1. सुव्यवस्थित स्कूल भवन हो, कम से कम दो बड़े कमरे अवश्य हों, खुला बरामदा और लड़के-लड़कियों के लिये अलग-अलग शौचालय की व्यवस्था हो।

2. प्रारम्भ में कम से कम दो शिक्षक अवश्य हों उसके बाद संख्या बढ़नी चाहिये।

3. श्यामपट (ब्लैक बोर्ड), चाक, डस्टर, चित्रों के चार्ट, नक्शे (मानचित्र और ग्लोब आदि)।

4. पुस्तकालय, पुस्तक व पत्रिकायें, समाचार-पत्र, शब्दकोश व विश्वकोश

5. पीने योग्य पानी का प्रबन्ध, समयकाल समाप्त होने पर बजाने वाली घंटी

6. दृश्य-श्रव्य सामग्री, संगीत के साधन-तबला, हारमोनियम आदि।

7. विज्ञान का ज्ञान प्रदान करने हेतु आवश्यक सामग्री।

7. दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त विश्वविद्यालय (Distance Education and Open University) – माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को सम्पूर्ण देश में समुचित ढंग से चलाने हेतु भारत सरकार ने दूरस्थ शिक्षा तथा मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की। राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 में इसके लिये ठोस प्रावधान किये गये। दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में आज भारत ने बहुत प्रगति कर ली है। इसकी अवधारणा मुख्य रूप से विकासशील देशों में प्रारम्भ हुई, जहाँ पर जनसंख्या अधिक होने के कारण शिक्षा का प्रसार जन-जन में कर पाना सम्भव नहीं है।

दूरस्थ शिक्षा, औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा और निरौपचारिक शिक्षा के मध्य शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पत्राचार तथा विभिन्न प्रकार के आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा पूरी की जाती है। इसमें प्रत्यक्ष कक्षा शिक्षण की तरह शिक्षक व छात्र के मध्य अंत: क्रिया (Interaction) न होकर दोनों पक्षों द्वारा प्रेषित सूचनाओं के द्वारा ज्ञान का आदान-प्रदान किया जाता है। शिक्षण सामग्री लगभग सामान्य जैसी होती है, लेकिन शिक्षण विधि में पर्याप्त भिन्नता होती है। आधुनिक समय में टेलीफोन, मोबाइल, दूरदर्शन, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, टेलिकॉन्फ्रेन्सिंग के नवीन संसाधनों के प्रयोग ने दूरस्थ शिक्षा को पर्याप्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता—दूरस्थ शिक्षा का प्रचलन सामान्यत कुछ व्यक्ति विशेष की सुविधा के लिए ही किया जाता है—

1. कार्यरत व्यक्ति जो अपनी शिक्षा को कार्य के साथ आगे सुचारु रखना चाहते हैं।
2. ऐसे व्यक्ति जो किन्ही कारणो से शिक्षा नही प्राप्त कर सके हैं।
3. ऐसे व्यक्ति जो शिक्षा के साथ कुछ अन्य कार्य भी करना चाहते हैं।
4. जो व्यक्ति अपने खाली समय का सदुपयोग करना चाहते हैं।
5. देश के पिछड़े व ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग।
6. जो व्यक्ति किन्ही कारणो से औपचारिक शिक्षा में प्रवेश नहीं ले सके है।
7. जो व्यक्ति सामाजिक रूप से पिछड़े हुये है या शारीरिक रूप से अक्षम है।

दूरस्थ शिक्षा की विधि—पहले इसका विषय विशेषज्ञ द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम आदि पत्राचार के माध्यम से छात्र तक भेजा जाता था, परन्तु सूचना तकनीकी के आधुनिकीकरण ने इस शिक्षा की विधियों मे बहुत गतिशील परिवर्तन ला दिया है।

जेनेट जैकिन्स के अनुसार—''नई सूचना और सम्प्रेषण तकनीकी के शिक्षा में प्रयोग ने पूरे विश्व मे दूरस्थ एव मुक्त शिक्षा के विकास को अत्यधिक तीव्र गति प्रदान कर दी है। इनका तात्कालिक आकर्षण इस बात में है कि आज एक ही समय में अन्त: क्रियाओं मे वृद्धि के साथ एक शिक्षक की उपस्थिति के बिना भी मल्टीमीडिया और इलैक्ट्रॉनिक सम्प्रेषण के माध्यम से अधिक से अधिक सीखा जा सकता है। किन्तु यह अधिगम उन कुछ सीमित वयस्क व्यक्तियों के लिये है, जो आसानी से कम्प्यूटर सीख सकते है और उनका प्रयोग कर सकते हैं।''

"New information and communications technology applications in education have given an immense boost to open and distance learning all over the world. Their immediate attraction lies in their ability to make more learning available at the same time as increasing inter activity in the absence of a teacher through multimedia application and electronic communication but such learning is available only to the mainority of adults, those who have easy access to computers and know how to use them."

मुक्त विश्वविद्यालय—मुक्त विश्वविद्यालयो की स्थापना राष्ट्र की दूर दराज की आबादी को उच्च शिक्षा के अधिक से अधिक अवसर देने तथा शिक्षा को सर्वसुलभ स्वरूप प्रदान करने के लिए की गई है।

सन् 1979 में ब्रिटेन मे सबसे पहले मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी। इसमें अध्ययन के लिए रेडियो, टेलीविजन और अन्य ससाधनों की सहायता ली जाती थी। भारत में प्रथम खुले विश्वविद्यालय की स्थापना 1982 मे आन्ध्र प्रदेश मे की गई। इसमें बी.ए., बी.कॉम, बी.एस.सी., कुछ विषयो में स्नाकोत्तर उपाधि तथा पुस्तकालय विज्ञान आदि की शिक्षा व्यवस्था की गई थी। 1985 मे इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी, जो ससद द्वारा पारित एक अधिनियम पर आधारित था। भारत में अब तक 10 मुक्त विश्वविद्यालय खोले जा चुके हैं, इनके नाम निम्नलिखित है—

1. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। (IGNOU)
2. डॉ बी आर अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, अहमदाबाद।
3. नालन्दा मुक्त विश्वविद्यालय, पटना।
4. यशवन्तराव चह्वाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नासिक।
5. एस पी भोज मुक्त वि वि, भोपाल।

6. कोटा मुक्त वि वि , कोटा।

7. नेता जी सुभाष मुक्त वि वि , मैसूर।

8. कर्नाटक स्टेट मुक्त वि वि , मैसूर।

9. उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि वि , इलाहाबाद।

8. उपाधि (डिग्री) को सेवा से अलग करना (Disqualification from Service)– भारत में 1981 की जनगणना के अनुसार उच्च शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत 1 % था, जब इतनी बड़ी संख्या में छात्र उपाधि प्राप्त कर लेते हैं, तो उन्हें उनकी शिक्षा के अनुरूप नौकरी नहीं मिल पाती है। इस समस्या के समाधान के लिये राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 में निम्न तथा मध्य निम्न स्तर के ऐसे पदों के लिये बहुत सोच–विचार करके उपाधि अनिवार्यता समाप्त करने की नीति बनाई गई, परन्तु इसके कई दुष्परिणाम सामने आये। यह पता लगाना जटिल है कि कौन–सी उपाधि किस कार्य के लिए उपयोगी है और कौन–सी नहीं। परन्तु इसे फिर भी लागू किया गया उदाहरण-ऐसे व्यक्ति जिन्हें टाईपिंग का ज्ञान है किन्तु वे स्नातक नहीं हैं तो क्या ऐसे व्यक्तियों को टाइपिस्ट पद के लिये अनुपयुक्त समझा जायेगा? शिक्षा नीति में यह प्रावधान किया गया है, कि ऐसे पदों के लिए उपाधि की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया जाय। इस विषय में अभी परीक्षणों का क्रम जारी है। आगे इसकी सम्भावनाओं पर और विचार किया जा सकता है।

9. शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षण (Teacher and Teacher Training)–**राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986** में शिक्षकों के स्तर तथा शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम पर विस्तार से विचार किया गया। इस नीति में शिक्षकों के स्तर तथा शिक्षक प्रशिक्षण स्तर पर अध्ययन किया गया तथा कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये गये जो निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था का सुधार एवं आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए।

2. विद्यालयी शिक्षकों के समुचित प्रशिक्षण के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्था (DIET) खोले जाने चाहिए।

3. शिक्षकों को सृजनात्मक कार्यों की ओर प्रेरित करने हेतु सरकार को मदद करनी चाहिए।

4. विश्वविद्यालयी शिक्षकों हेतु ओरिण्टेशन कार्यक्रमों तथा रिफ्रेशर कोर्स चलाने के लिये एक शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों की स्थापना की जानी चाहिए।

10. शिक्षक की जवाबदेही (Accountability of Teacher)–राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु एक नवीन कदम उठाया गया, जिसमें शिक्षक की जवाबदेही तय की गई। जवाबदेही के अन्तर्गत शिक्षकों के स्तर, सम्मान, वेतन सेवा शर्तों व अन्य सुविधाओं को स्वीकार किया गया है, वहीं दूसरी ओर उनके उत्तरदायित्व, कर्तव्य और कार्य प्रणाली का मूल्यांकन भी आवश्यक माना गया है। शिक्षकों की स्थिति पर 1987 में एक संगोष्ठी में मानव संसाधन एवं विकास मन्त्रालय के सचिव श्री अनिल बेर्दिया ने कहा था–

"राष्ट्रीय शिक्षा नीति का क्रियान्वयन शिक्षकों के सक्रिय सहयोग के बिना भली प्रकार हो पाना एक कठिन कार्य है। इस विषय में शिक्षकों की भूमिका की विवेचना गंभीरता से की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में उनके वेतन, स्थिति, सेवा-शर्तें, पर्याप्त शिक्षण सामग्री की आपूर्ति तथा उनकी कठिनाइयों के निवारण पर भी विचार करना होगा।"

जवाबदेही की संकल्पना और अर्थ–जब हम किसी कार्य को पूर्ण करने हेतु अपने हाथ में लेते है तो उसके प्रति हमारी जवाबदेही या उस कार्य को सफलतापूर्वक खत्म करने की जिम्मेदारी होती है। जब कार्य अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कर लेता है तो कार्य करने वाले और करवाने वाले दोनों पक्षों को

प्रसन्नता होती है। परन्तु यदि कार्य अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाता है, तो कार्य करने वाले को जवाब देना पड़ता है कि किन कारणों या परिस्थितियों के कारण वांछित सफलता नहीं प्राप्त हो सकी, यही जवाबदेही कहलाती है। शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी लेने और उसके उद्देश्य में सफल न हो पाने पर सम्बन्धित व्यक्ति को तो जवाब देना ही पड़ेगा। दोषियों को अपनी गलतियों के परिणाम भी भुगतने पड़ते हैं। शिक्षा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जवाबदेही तय करनी होगी तथा अपने कार्य की गुणवत्ता में भी सुधार लाना होगा।

शिक्षक की जवाबदेही—शिक्षक की जवाबदेही निम्न प्रकार की होती है—

1. आदर्श शिक्षक के गुणों से सम्बन्धित जवाबदेही।
2. छात्रों के अनुशासन एवं मूल्यांकन की।
3. छात्रों की व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों को पूरा करने के प्रयासों से सम्बन्धित।
4. सामाजिक कार्यों तथा नैतिक चारित्रिक आचार व्यवहार की जवाबदेही।
5. शिष्ट एवं अच्छे प्रेम पूर्ण आचरण की।

9.4 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा (ESTIMATION OF NATIONAL EDUCATION POLICY 1986)

स्वतन्त्रता के उपरान्त देश में किसी भी आधारभूत नीति का निर्माण नहीं हो सका। सरकार ने कई नीतियाँ तो बनाईं परन्तु वह कार्य रूप में परिणित न हो सकी। जब राजीव गाँधी प्रधानमन्त्री बने तो उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में आन्दोलनकारी कदम उठाये। सर्वप्रथम सरकार ने तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराया और उसे 'शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिपेक्ष्य (Challenge of Education A Policy Perspective)' नाम से अगस्त, 1983 में प्रकाशित किया। इस दस्तावेज में भारतीय शिक्षा की 1951 से 1983 तक की प्रगति का सांख्यिकीय विवरण, उसकी उपलब्धियाँ एवं असफलताओं का लेखा जोखा और गुण–दोषों का विवेचन किया गया है। सरकार ने इस दस्तावेज को जनता तक पहुँचाया और राष्ट्रव्यापी बहस प्रारम्भ हो गई। केन्द्रीय सरकार ने राज्यों द्वारा प्राप्त सुझावों के आधार पर एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की और उसे ससद के बजट अधिवेशन, 1986 में प्रस्तुत किया गया। संसद में पास होने के बाद इसको मई, 1986 में प्रकाशित किया गया। यह भारत की पहली शिक्षा नीति है, जिसमें नीति के साथ उसके क्रियान्वयन की पूर्ण योजना भी प्रस्तुत की गई है तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु पर्याप्त ससाधन भी जुटाए गये हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल तत्व

1. शिक्षा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया जायेगा।
2. पूरे देश में 10+2+3 शिक्षा संरचना लागू होगी।
3. शिक्षा व्यवस्था हेतु पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाएगी।
4. पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी।
5. अनिवार्य एवं नि शुल्क प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त किया जायेगा।
6. माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन किया जाएगा।
7. उच्च शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन किया जायेगा।
8. तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा में सुधार किया जायेगा।
9. परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार किया जाएगा।

10. शिक्षकों के स्तर और शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा।
11. प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा।
12. सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।
13. शैक्षिक तकनीकों का प्रयोग किया जाएगा।
14. शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाया जाएगा।
15. शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए ठोस कदम उठाए जाएँगे।
16. महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
17. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी।
18. पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी।
19. अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
20. विकलांग और मन्दबुद्धि बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

9.4.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की विशेषतायें (Characteristics of National Education Policy, 1986)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की विशेषतायें निम्नलिखित है–

1. स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रथम बार शिक्षा के क्षेत्र में इतना महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया है जिसमें शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन पर बल दिया गया तथा शिक्षा को मजबूत बनाकर उसे देश की अनुरूप परिस्थितियों में ढालने का प्रयास किया गया।

2. इसके द्वारा एक निश्चित शैक्षिक स्तर तक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रारूप दिया जाता है, इससे देश के पाठ्यक्रम में एकरूपता आयेगी।

3. नई शिक्षा में विषमताओं को दूर करके शैक्षिक समानता लाने का संकल्प किया गया है। महिलाओं, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों एवं वर्गों को एक समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने का दृढ़ संकल्प किया गया है।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में 10+2+3 की एक राष्ट्रव्यापी शिक्षा संरचना की सिफारिशें की गई है जिसे देश के प्रत्येक भाग में स्वीकार कर लिया गया है।

5. सन् 1976 में संविधान संशोधन करके शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल कर लिया गया है जिससे राज्यों की जिम्मेदारी समाप्त नहीं हुई है, वरन् शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर उत्कृष्टता लाने के लिये केन्द्र सरकार और अधिक कार्य करेगी।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शैक्षिक स्तरोन्नयन को क्रियान्वित करने पर विशेष बल दिया गया है संस्थाओं और शैक्षिक कार्यों में लगे व्यक्तियों के कार्य को उत्कृष्ट मान्यता दी जायेगी और उन्हें पुरस्कृत करने के साथ उनकी जवाबदेही भी निर्धारित की गई।

9.4.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के दोष (Demerits of National Education Policy, 1986)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कई कमियाँ है, जो निम्नलिखित है–

1. शिक्षा के प्रसार पर ध्यान दिया गया, परन्तु शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

2. अस्वस्थ अवस्था में चल रहे स्कूलों पर सरकार का ध्यान नहीं गया। शिक्षा नीति सरकारी एवं प्राइवेट स्कूलों के मध्य फासले पर मौन है।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति शैक्षिक कम राजनैतिक अधिक प्रतीत होती है।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कैपिटेशन फीस लिये जाने को वैध माना गया है, जिससे दोहरी शिक्षा व्यवस्था को बल मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 के परस्पर विरोधी विचारों का विवेचन करते हुये इसकी सफलता/असफलता का विश्लेषण कीजिये।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिये।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की उपयोगिता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिये। उसके उद्देश्य एवं कार्य योजना (पी ओ ए) का वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. 1979 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषतायें क्या थी ?
2. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड का क्या अर्थ है ? इस योजना के क्या उद्देश्य थे ?
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की कार्य योजना (P.O.A.) से आप क्या समझते है ?
5. नवोदय विद्यालयो की कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिये।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 के सशोधित प्रारूप 1992 पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 मे महत्त्वपूर्ण कदम है–
   (अ) नवोदय विद्यालय (ब) विद्यालय सकुल
   (स) सर्वशिक्षा अभियान (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे प्रारम्भिक शिक्षा के सुझाव है–
   (अ) 14 वर्ष तक के बालको की शिक्षा के लिए समान प्रवेश प्रणाली तथा समान अवधि की शिक्षा होनी चाहए
   (ब) सज्ञानात्मक अधिगम मे वृद्धि होनी चाहिए
   (स) कौशलो का प्रशिक्षण दिया जाना
   (द) उपर्युक्त सभी। **उत्तर**–(द)
3. नवोदय विद्यालय मे किस कक्षा मे प्रवेश लिया जाता है।
   (अ) कक्षा–6 (ब) कक्षा–8
   (स) कक्षा–7 (द) इनमे से कोई नही **उत्तर**–(अ)
4. भारत मे प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गई
   (अ) आन्ध्र प्रदेश (ब) दिल्ली
   (स) मध्य प्रदेश (द) इनमे से कोई नही **उत्तर**–(अ)

अध्याय

10

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020
[NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, '2020' (National Education Policy, 2020) [NEP 2020] द्वारा 29 जुलाई, 2020 को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा मजूरी दी गयी। इस नीति द्वारा विद्यालय और उच्च शिक्षा दोनो क्षेत्रो मे बड़े पैमाने पर रूपातरकारी सुधार के रास्ते खुल गए है। [illegible] पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, '1986' (National Education Policy, 1986) को प्रतिस्थापित [illegible] इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे भारत द्वारा 2015 मे अपनाए गए सतत् विकास एजेंडा [illegible] (सतत् विकास लक्ष्य -4 'SDG-4') मे परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास के एजेंडे को [illegible] जिसके अनुसार विश्व मे 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा [illegible] करने और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरो को बढ़ावा दिये जाने के लक्ष्य को ध्यान मे रखा [illegible] इस तरह के उदात्त लक्ष्य के लिए सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा [illegible] लिए इसको पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी। ताकि सतत् विकास के लिए 2030 [illegible] महत्वपूर्ण उद्देश्यो और लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके।

वैश्विक पारिस्थितिकी मे तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनो से शिक्षा को अनिवार्य समझा [illegible] रहा है। शिक्षा मे विषय-वस्तु को बढ़ाने की जगह जोर इस बात पर देने की आवश्यकता है कि बच्चे समस्या-समाधान और तार्किक एव रचनात्मक रूप से विचार करना सीखे, विविध विषयो के बीच अतर्सबन्धो को जाने और कुछ नया विचार करे। इसलिए आज आवश्यकता है कि शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो जिज्ञासा खोज अनुभव और सवाद के आधार पर सचालित हो लचीली हो और समग्रता और समन्वित रूप से देखने-समझने मे सक्षम बनाने वाली और रुचिपूर्ण हो ताकि शिक्षार्थियो के जीवन के सभी पक्षो और क्षमताओ का सतुलित विकास हो सके।

इस सन्दर्भ मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वी शताब्दी की पहली नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओ को पूरा करना है तथा साथ-साथ भारत की परम्परा और सास्कृतिक मूल्यो के सरक्षण को बरकरार रखते हुए 21वी सदी की शिक्षा के लिए आकाक्षात्मक लक्ष्यो को हासिल करना है। शिक्षा व्यवस्था का सयोजन व नियमन गवर्नेंस सहित सभी पक्षो के सुधार और पुनर्गठन के निहित रचनात्मक क्षमताओ के विकास पर यह नीति विशेष जोर देती है। यह

नीति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी 'बुनियादी क्षमताओं' का विकास भी हो तथा इसके साथ-साथ 'उच्चतर स्तर' की तार्किक और समस्या-समाधान सम्बन्धी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास भी होना चाहिए। साथ ही व्यक्ति का नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी विकास हो। अत: इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कई क्रांतिकारी सुधार किए गए हैं।

सबके लिए आसान पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीयता और जवाबदेही के आधारभूत स्तम्भों पर निर्मित यह शिक्षा नीति विकास के एजेंडे 2030 के अनुकूल है। इसका उद्देश्य 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुकूल स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र और लचीला बनाते हुए भारत को एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज और ज्ञान की वैश्विक शक्ति में बदलना और प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाना है।

10.1 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 से सम्बन्धित अन्य जानकारी [OTHER INFORMATION RELATED TO NATIONAL EDUCATION POLICY (NEP), 2020]

- **अध्यक्ष** : पद्म विभूषण डॉ. के. कस्तूरीरंगन।
- **समिति** : कस्तूरीरंगन समिति।
- **समिति का गठन** : जून, 2017 में किया गया तथा मई, 2019 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप कैबिनेट में प्रस्तुत किया गया।
- **मंजूरी** : 29 जुलाई, 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा मंजूरी मिली।
- **शिक्षा मंत्रालय**—मानव संसाधन विकास मंत्रालय (Ministry of Human Resource Development 'MHRD') का नाम बदलकर '**शिक्षा मंत्रालय**' कर दिया गया है। जिसका उद्देश्य '**शिक्षा और सीखने** (Education and Learning)', पर पुन: अधिक ध्यान आकर्षित करना है।

10.2 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के उद्देश्य [OBJECTIVES OF NATIONAL EDUCATION POLICY (NEP), 2020]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, समानता, वहनीय शिक्षा और उत्तरदायित्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान देना है।

2. विद्यार्थियों को आवश्यक कौशलों एवं ज्ञान से पूर्ण करना और विज्ञान, तकनीकी, शैक्षिक क्षेत्र और औद्योगिकी में कुशल लोगों की कमी को दूर करते हुए देश को ज्ञान आधारित सुपर पॉवर के रूप में स्थापित करना है।

3. विद्यार्थियों में रचनात्मक चिंतन, तार्किक निर्णय और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित करना।

4. भाषाई बाध्यताओं को दूर करने, दिव्यांग छात्रों के लिए शिक्षा को सुगम बनाने आदि के लिए तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने पर बल देना।

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत् वर्ष 2030 तक सकल नामांकन अनुपात (GER) को 100% लाने का लक्ष्य रखा गया है।

6. **केन्द्र/राज्य सरकार** के सहयोग से शिक्षा के क्षेत्र पर जी डी पी के 6% हिस्से के सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है।

7. **भारत सरकार** नया राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क तैयार करेगी जिसमे बाल्यावस्था पूर्व देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education) विद्यालय शिक्षक और प्रौढ़ शिक्षा को जोड़ा जाना है।

8. **राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी** द्वारा उच्च शिक्षा सस्थानो मे प्रवेश के लिए कॉमन एंट्रेस एग्जाम का ऑफर होगा।

9. **ई–लर्निंग** पर जोर देकर पाठ्यपुस्तको पर निर्भरता को कम किया जाना है।

10.3 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की विशेषताएँ [CHARACTERISTICS OF NATIONAL EDUCATION POLICY (NEP), 2020]

यह शिक्षा नीति प्रगतिशील, समृद्ध, सृजनशील एव नैतिक मूल्यो से पूर्ण ऐसे भारत की कल्पना कर रही है जो अपने गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने का स्वप्न दिखाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. यह नीति स्वतत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है जिसमे बुनियादी तौर पर परिवर्तन किए गए है।

2. इस नीति के तहत् शैक्षिक क्षेत्र को तकनीकी से भी जोड़ा जाएगा जिसमे सभी स्कूलो मे अधिक-से-अधिक डिजिटल उपकरण दिए जाएँगे।

3. इस नीति में सभी प्रकार की शैक्षिक विषय–वस्तु को प्रमुखत इस क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषा मे भी ट्रांसलेट किया जाएगा, जिससे शैक्षिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा को बढ़ावा मिल सके।

4. छठवीं कक्षा में बच्चों के लिए व्यावसायिक परीक्षण इटर्नशिप प्रारम्भ की जाएगी।

5. वर्तमान शिक्षा नीति में 10+2 को बदलकर 5+3+3+4 के पैटर्न को अपनाते हुए स्कूली शिक्षा को 15 साल कर दिया गया है।

6. समान व समावेशी शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए देश में जेंडर एजुकेशन को नई शिक्षा नीति में शामिल किया गया है।

7. इस नीति के अन्दर बच्चों को पढ़ाई मे विभिन्न प्रकार के अन्य विकल्प दिए जाएँगे। अब दसवी कक्षा मे अन्य विकल्पो को भी रखा जाएगा जिसमें छात्र कोई स्ट्रीम न चुनकर अपनी इच्छा अनुसार विषयों को चुन सकेगा।

8. अभी तक भारत मे डीम्ड, राज्य और सेन्ट्रल विश्वविद्यालय के लिए अलग–अलग नियम थे, अब सभी के लिए एकसमान नियम लागू होंगे।

9. विद्यालयों मे सकल अनुपात बढ़ाने के लिए दूरस्थ व मुक्त शिक्षा का विस्तार किया जाएगा।

10. मूल्यांकन मानदण्ड को योगात्मक मूल्यांकन में बदलकर औपचारिक व नियमित मूल्यांकन मे बदला जायेगा। मूल्यांकन के उद्देश्य के लिए एक नया राष्ट्रीय मूल्यांकन केन्द्र स्थापित किया जाएगा।

10.4 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF NATIONAL EDUCATIONAL POLICY, 2020)

मूलभूत सिद्धान्त जो बड़े स्तर पर शिक्षा प्रणाली और साथ ही व्यक्ति और संस्थानों दोनों का मार्गदर्शन करेंगे

1. **प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना**—शिक्षकों और अभिभावकों को इन क्षमताओं के प्रति संवेदनशील बनाना जिससे वे बच्चे की अकादमिक और अन्य क्षमताओं में उसके सर्वांगीण विकास पर भी पूरा ध्यान दें।

2. **बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना**—जिससे सभी बच्चे कक्षा 3 तक साक्षरता और सख्याज्ञान जैसे सीखने के मूलभूत कौशलों को हासिल कर सकें।

3. **लचीलापन**, ताकि विद्यार्थियों में उनके सीखने के तौर–तरीके और कार्यक्रमों को चुनने की क्षमता हो और इस तरह वे अपनी प्रतिभा और रुचियों के अनुसार जीवन में अपना रास्ता चुन सकें।

4. **कला और विज्ञान** के बीच, पाठ्यक्रम और पाठयेतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं, आदि के बीच कोई स्पष्ट अलगाव न हो, जिससे ज्ञान क्षेत्रों के बीच हानिकारक ऊँच–नीच और परस्पर दूरी एवं असंबद्धता को दूर किया जा सके।

5. **सभी ज्ञान की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–विषयक दुनिया के लिए**, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेल के बीच एक बहु–विषयक (Multi-disciplinary) और समग्र शिक्षा का विकास करना।

6. **अवधारणात्मक समझ पर जोर,** न कि रटंत पद्धति और केवल परीक्षा के लिए पढ़ाई करना।

7. **रचनात्मकता और तार्किक सोच** तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करना।

8. **नैतिकता**, मानवीय और संवैधानिक मूल्य जैसे, सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान वैज्ञानिक चिंतन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय।

9. **बहु–भाषिकता** और अध्ययन–अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन देना।

10. **जीवन कौशल** जैसे, आपसी संवाद, सहयोग, सामूहिक कार्य, और लचीलापन लाना।

11. सीखने के लिए सतत् मूल्यांकन पर जोर, इसके बजाय कि साल के अंत में होने वाली परीक्षा को केंद्र में रखकर शिक्षण हो जिससे कि आज की 'कोचिंग संस्कृति' को ही बढ़ावा मिलता है,

12. **तकनीकी के यथासंभव उपयोग पर जोर**—अध्ययन–अध्यापन कार्य में, भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने में, दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने में और शैक्षणिक नियोजन और प्रबंधन में जोर देना।

13. सभी शैक्षिक निर्णयों की आधारशिला के रूप में पूर्ण समता और समावेशन, साथ ही शिक्षा को लोगों की पहुँच और सामर्थ्य के दायरे में रखना—यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी छात्र शिक्षा प्रणाली में सफलता हासिल कर सकें।

14. विद्यालयी शिक्षा से उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्यक्रम में तालमेल, प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल तथा शिक्षा को देखना।

15. शिक्षकों और सकाय को सीखने की प्रक्रिया का केंद्र मानना - उनकी भर्ती और तैयारी में उत्कृष्ट व्यवस्था, निरंतर व्यावसायिक विकास और सकारात्मक कार्य वातावरण और सेवा की स्थितियां।

16. शैक्षिक प्रणाली की अखंडता, पारदर्शिता और ससाधन कुशलता ऑडिट और सार्वजनिक प्रकटीकरण के माध्यम से सुनिश्चित करने के लिए एक हल्का, लेकिन प्रभावी नियामक ढांचा - साथ ही साथ स्वायत्तता, सुशासन, और सशक्तीकरण के माध्यम से नवाचार और आत्म-भरोसा के बारे विचारों को प्रोत्साहित करना।

17. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर का शोध;

18. शैक्षिक विशेषज्ञों द्वारा निरंतर अनुसधान और नियमित मूल्यांकन के आधार पर प्रणाली की सतत समीक्षा,

19. भारतीय जड़ों और गौरव से बधे रहना, और जहाँ प्रासगिक लगे वहाँ भारत की समृद्ध और विविध प्राचीन और आधुनिक सस्कृति और ज्ञान प्रणालियों और परम्पराओं को शामिल करना और उससे प्रेरणा पाना;

10.5 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के विषय (SUBJECT OF NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020)

सार्वभौमिक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सामाजिक न्याय, समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण, सतत् प्रगति एवं आर्थिक विकास के शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना आदि भारत के भविष्य को निर्धारित करता है। इन सभी महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के विषयों को चार भागों में विभाजित किया गया है–

भाग 1–प्रथम भाग: इसमें **'स्कूल शिक्षा'** से सम्बन्धित 8 विषय रखे गये है–

1. **प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा** : सीखने की नींव

2. **बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान** : सीखने के लिए एक तात्कालिक आवश्यकता और पूर्व शर्त

3. ड्रॉपआउट बच्चों की संख्या कम करना और सभी स्तरों पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना

4. **विद्यालयों में पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र** : अधिगम समग्र, एकीकृत आनददायी और रुचिकर होना

5. शिक्षक

6. **समतामूलक और समावेशी शिक्षा** : सभी के लिए अधिगम

7. विद्यालय कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर के माध्यम से कुशल ससाधन और प्रभावी गवर्नेंस

8. विद्यालयी शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रत्यायन

भाग 2–द्वितीय भाग: इसमें **'उच्चतर शिक्षा'** से सम्बन्धित 11 विषय रखे गये है–

1. **गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय** : भारतीय उच्चतर शिक्षा व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण

2. सस्थागत पुनर्गठन और समेकन
3. समग्र और बहुविषयक शिक्षा की ओर
4. सीखने के लिए अनुकूलतम वातावरण व छात्रो को सहयोग
5. प्रेरित, सक्रिय और सक्षम सकाय
6. उच्चतर शिक्षा मे समता और समावेश
7. शिक्षक शिक्षा
8. व्यावसायिक शिक्षा का नवीन आकलन
9. नवीन राष्ट्रीय अनुसधान फाउण्डेशन (National Research Foundation (NRF)) के माध्यम से सभी क्षेत्रो मे गुणवत्तायुक्त अकादमिक अनुसंधान को उत्प्रेरित करना
10. उच्चतर शिक्षा की नियामक प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन
11. उच्चतर शिक्षा सस्थानो के लिए प्रभावी शासन और नेतृत्व

भाग 3–तृतीय भाग : इस भाग में अन्य **केन्द्रीय विचारणीय मुद्दों** से सम्बन्धित **5** विषय रखे गये है–

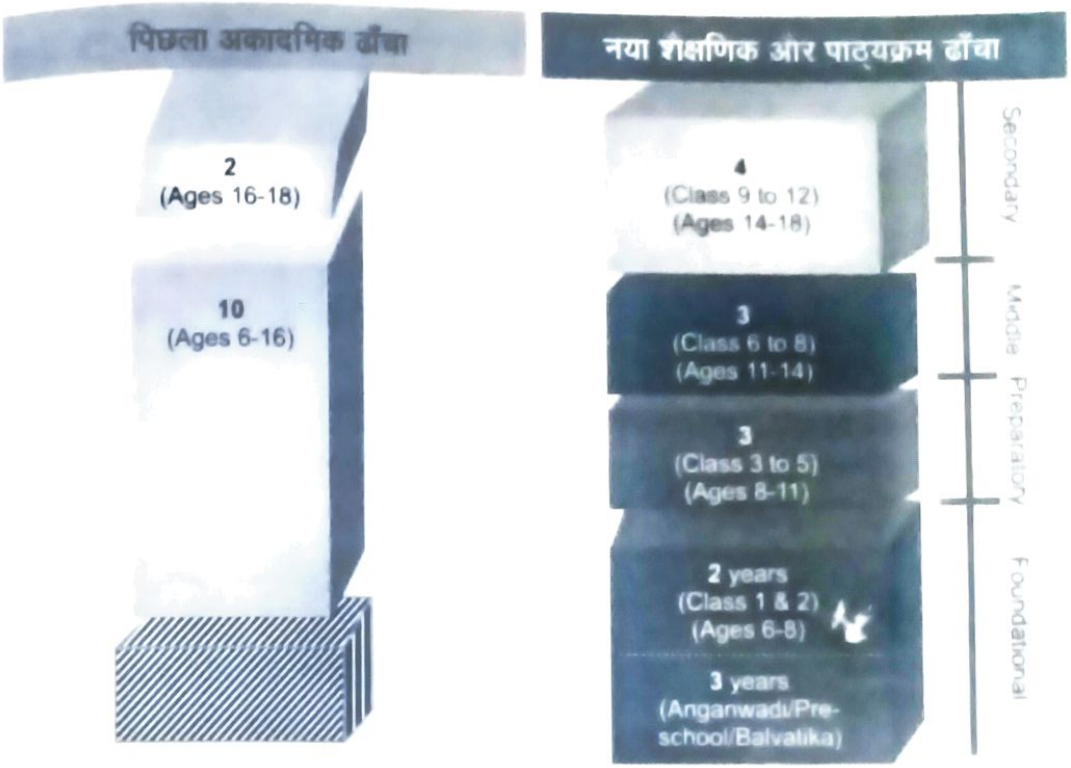
1. व्यावसायिक शिक्षा
2. प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यन्त सीखना
3. भारतीय भाषाओ, कला और संस्कृति का संवर्धन
4. प्रौद्योगिकी का उपयोग एवं एकीकरण
5. **ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा** : प्रौद्योगिकी का न्यायसम्मत उपयोग सुनिश्चित करना

भाग 4–चतुर्थ भाग : इस भाग में **"क्रियान्वयन की रणनीति"** से सम्बन्धित **3** विषय रखे गये है–

1. केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का सशक्तीकरण
2. **वित्त पोषण** : सभी के लिए वहनीय एवं गुणवत्तापूर्वक शिक्षा
3. कार्यान्वयन

10.6 : भाग–I : स्कूल शिक्षा (PART-I SCHOOL EDUCATION)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को **4** चरणों में विभाजित किया गया है। पुरानी **राष्ट्रीय शिक्षा** नीति, **1986, 10+2** की विद्यालय व्यवस्था को समाप्त करने के पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 शिक्षण-शास्त्रीय आधार पर 5+3+3+4 की नयी व्यवस्था में पुनर्गठित करने की बात करती है। यह व्यवस्था सरकारी तथा गैर-सरकारी (प्राइवेट) विद्यालय दोनों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चो के लिए है। जिसमें 12 साल की विद्यालय व्यवस्था शिक्षा तथा 3 साल की प्री विद्यालयी शिक्षा दी जाएगी। इस नीति के चार चरण अग्रलिखित प्रकार से है–



(1) फाउंडेशन स्टेज (Foundation Stage)–फाउंडेशन स्टेज को 3 से 8 साल तक के बच्चों के लिए तैयार किया गया है, जिसमे 3 साल की प्री विद्यालयी शिक्षा और 2 साल की विद्यालयी शिक्षा मे (कक्षा एक तथा दो) शामिल है। फाउंडेशन स्टेज के अन्तर्गत बच्चो को भाषा कौशल और शिक्षण के विकास पर ज्ञान दिया जाएगा।

(2) प्रिपरेटरी स्टेज (Preparatory Stage)–प्रिपरेटरी स्टेज मे 8 साल से 11 साल तक के बच्चो को शिक्षा प्रदान की जाएगी जिसमे कक्षा 3 से 5 तक के बच्चो को शामिल किया जाएगा। इस स्टेज मे बच्चों को सख्यात्मक कौशल और भाषा मे विकास कराना शिक्षको का उद्देश्य रहेगा तथा इसके साथ ही बच्चो को क्षेत्रीय भाषा मे भी पढ़ाया जाएगा।

(3) मिडिल स्टेज (Middle Stage)–मिडिल स्टेज मे बच्चो को कोडिंग, व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ–साथ इटर्नशिप प्रशिक्षण भी दिया जाएगा जिसमे कक्षा 6 से 8 तक के बच्चो को शामिल किया जाएगा।

(4) सेकण्डरी स्टेज (Secondary Stage)–सेकण्डरी स्टेज मे कक्षा 9 से 12 तक की कक्षा के बच्चो को शामिल किया जाएगा तथा इस स्टेज पर बच्चा कोई भी विषय चुन सकता है।

1. प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा : सीखने की नींव (Early Childhood Care and Education : Learning Foundation)–प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) प्रारंभिक बाल्यावस्था विकास देखभाल के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सार्वभौमिक प्रावधान को 2030 तक शीघ्र उपलब्ध कराया जाएगा जिससे यह सुनिश्चित किया जायेगा कि पहली कक्षा मे प्रवेश पाने वाले सभी स्कूली छात्र पूरी तरह तैयार है।

(ii) प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education–ECCE) का समग्र उद्देश्य बच्चों का शारीरिक–भौतिक विकास, सज्ञानात्मक विकास, समाज–सवेगात्मक

नैतिक विकास, सास्कृतिक विकास, सवाद के लिए प्रारम्भिक भाषा, साक्षरता और सख्यात्मक ज्ञान के विकास मे अधिकतम परिणामो को प्राप्त करना है।

(iii) आँगनवाड़ियो व पूर्ण विद्यालयो मे 5 वर्ष की आयु से पूर्व प्रत्येक बच्चा, 'प्रारम्भिक कक्षा' मे जाएगा जिससे छात्र के सीखने के परिणामो मे सुधार होगा और ड्रॉपआउट कम होगा।

(iv) आँगनवाड़ी प्रणालियो को मजबूत किया जाएगा जिससे बच्चों की सामाजिक, भावनात्मक, सज्ञानात्मक और शारीरिक आवश्यकताओ का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके।

(v) 5 वर्ष की आयु से पहले प्रत्येक बच्चे को 'प्रारंभिक कक्षा' या 'बालवाटिका' में स्थानातरित किया जाएगा।

(vi) प्रारभिक कक्षा मे पढ़ाई मुख्य रूप से खेल आधारित शिक्षा पर आधारित होगी जिसमे सज्ञानात्मक, भावनात्मक और शारीरिक क्षमताओं और संख्या ज्ञान विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

(vii) मध्याह्न भोजन कार्यक्रम का विस्तार प्राथमिक विद्यालयो के साथ-साथ प्राक्-प्रवेश कक्षाओं मे भी किया जाएगा।

(viii) आँगनवाड़ी मे उपलब्ध स्वास्थ्य जाँच और बच्चों के विकास की निगरानी सम्बन्धी व्यवस्था को प्राक्-प्रवेश कक्षाओ मे भी उपलब्ध कराया जाएगा।

(ix) एनसीईआरटी द्वारा 8 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को प्रारंभिक बाल्यावस्था की शिक्षा के दो भागो मे एक उत्कृष्ट पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढाँचे में विकसित किया जाएगा जिसमें 0-3 वर्ष के बच्चो के लिए तथा 3-8 वर्ष के बच्चों के लिए प्रारूप को विकसित किया जाएगा।

(x) आँगनवाड़ी कार्यकत्रियों/शिक्षकों को एनसीईआरटी द्वारा विकसित पाठ्यक्रम के द्वारा एक व्यवस्थित तरीके से परीक्षण दिया जाएगा।

(xi) आदिवासी बहुल क्षेत्रों की आश्रमशालाओ में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (Early Childhood Care and Education—ECCE) का कार्यान्वयन किया जाएगा।

(xii) प्रारभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के सुचारु एकीकरण एवं सतत् मार्गदर्शन के लिए एक विशेष संयुक्त कार्यबल (टास्क फोर्स) का गठन किया जाएगा।

(xiii) प्रारभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा से जुड़ी योजनाओ का निर्माण और क्रियान्वयन केंद्रीय मानव ससाधन विकास मत्रालय, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मत्रालय व जनजातीय कार्य मत्रालय के साझा सहयोग से किया जाएगा।

2. बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान (Basic Literacy and Number Knowledge) –बुनियादी साक्षरता एव सख्या ज्ञान से सम्बन्धित सुझाव अग्रलिखित हैं–

(i) शिक्षा प्रणाली की सर्वोच्च प्राथमिकता वर्ष 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और सख्या ज्ञान प्रदान कराया जाएगा।

(ii) मानव ससाधन विकास मत्रालय द्वारा प्राथमिक आधार पर आधारभूत साक्षरता एव सख्यात्मकता पर राष्ट्रीय मिशन स्थापित किया जाएगा।

(iii) प्रत्येक विद्यालय मे शिक्षक-विद्यार्थियों का अनुपात (पी टी आर) 30 : 1 से कम हो और सामाजिक आर्थिक रूप से वचित बच्चों की अधिकता वाले क्षेत्रों के स्कूलो में शिक्षक-विद्यार्थियो का अनुपात (पी टी आर) 25 : 1 से कम होना चाहिए।

(iv) राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद (State Council of Educational Research and Training—SCERT) के द्वारा कक्षा 1 के विद्यार्थियो के लिए अल्पकालीन 3 महीने का खेल आधारित 'प्राक्–प्रवेश' मॉड्यूल' का विकास किया जाएगा जिसमे गतिविधियाँ और वर्कबुक होगी। जिसमे अक्षर, ध्वनियाँ, शब्द, रग, आकार, सख्या आदि शामिल होग

(v) दीक्षा (Digital Infrastructure for School Education) पर बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान पर उच्चतर–गुणवत्ता वाले ससाधनो का एक राष्ट्रीय भडार उपलब्ध कराया जाएगा।

(vi) राष्ट्रीय मिशन मे, पियर ट्यूटरिंग और वोलेंटियर्स को बढ़ावा देने के लिए नवीन मॉडल स्थापित किया जाएगा।

(viii) डिजिटल पुस्तकालयो को स्थापित किया जाएगा।

(viii) बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के उपाय विकसित किए जाएँगे

(ix) विद्यालय के बच्चे विद्यालयो द्वारा आयोजित नियमित स्वास्थ्य जाँच मे भाग लेगे और बच्चो को स्वास्थ्य कार्ड जारी किए जाएँगे।

(x) विद्यालयी बच्चों को विशेष रूप से 100% टीकाकरण के लिए स्कूलो मे नियमित जाँच तथा हेल्थकार्ड जारी कराये जाएँगे।

3. ड्रॉपआउट बच्चों की संख्या कम करना और सभी स्तरो पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना (Reducing the Number of Dropout Children and Ensuring Universal Access to Education at all Levels)—ड्रॉपआउट बच्चो की सख्या कम करना और सभी स्तरो पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करने से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है –

(i) विद्यालयी शिक्षा प्रणाली के प्राथमिक लक्ष्यो मे यह सुनिश्चित करना है कि बच्चो का स्कूल मे नामाकन हो और उन्हे नियमित रूप से विद्यालय भेजा जाए। वर्ष 2030 तक प्री–स्कूल से माध्यमिक स्तर मे 100% सकल नामाकन अनुपात प्राप्त करने का लक्ष्य रखा जाएगा और भविष्य मे विद्यार्थियो की ड्रॉपआउट दर को कम किया जाएगा।

(ii) पूर्व प्राथमिक से कक्षा 12 तक की शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा सहित देश के सभी छात्रो के लिए सार्वभौमिक पहुँच और अवसर प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय प्रयास किए जाएँगे।

(iii) प्रत्येक स्तर पर नियमित प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध कराने के साथ–साथ विशेष देखभाल की जाएगी ताकि यह सुनिश्चित हो कि किसी विद्यालय में अवस्थापना की कमी न हो। सरकारी विद्यालयो की विश्वसनीयता फिर से स्थापित की जाएगी और मौजूदा विद्यालयो का उन्नयन और विस्तार करके, जहाँ विद्यालय नहीं है वहाँ अतिरिक्त विद्यालय और छात्रावास बनाये जाएँगे जिससे सभी बच्चो को अच्छे विद्यालय मे जाने और समुचित स्तर तक पढ़ने का अवसर प्राप्त हो।

(iv) विद्यालयों में प्रत्येक बच्चे की सहभागिता सुनिश्चित हो इसके लिए सभी विद्यार्थियो की ट्रैकिंग की जाएगी। फाउडेशन स्टेज से लेकर कक्षा 12 तक को विद्यालयी शिक्षा के माध्यम से 18 वर्ष तक की आयु तक सभी बच्चो को समान गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने के लिए बुनियादी सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी। प्रशिक्षित शिक्षको और कर्मिको की भर्ती विद्यालय में की जाएगी जिससे शिक्षक हमेशा विद्यार्थियो और उसके अभिभावको के साथ कार्य कर सके।

(v) विद्यालय का अवसरचनात्मक ढाँचा और बच्चो की भागीदारी सुनिश्चित होने पर कक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए काम करना होगा इसके लिए एक मजबूत चैनल और स्थानीय भाषा के ज्ञान के साथ उत्कृष्ट शिक्षको के लिए प्रोत्साहन प्रणाली की आवश्यकता होगी।

(vi) सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहो [Socially and Economically Disadvantage Group (SEDG)] पर विशेष ध्यान तथा विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र को व्यापक बनाना होगा जिससे कि औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के अन्दर सीखने के विभिन्न रास्ते उपलब्ध हो सकें।

(vii) बच्चो के अधिगम मे सुधार के लिए भूतपूर्व विद्यार्थियो और समुदाय से स्वयसेवी प्रयासो को प्रोत्साहित किया जाएगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साक्षर स्वयंसेवकों, सेवानिवृत वैज्ञानिको, सरकारी/अर्द्धसरकारी कर्मचारियो, भूतपूर्व विद्यार्थियों और शिक्षाविदों का एक डेटाबेस तैयार किया जाएगा।

4. विद्यालयों में पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र : अधिगम समग्र, एकीकृत आनंददायी और रुचिकर (Curriculum and Pedagogy in School : Learning Holistic, Integrated, Enjoyable and Engaging)–विद्यालयों में पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र सम्बन्धित सुझाव निम्न लिखित है–

(1) 5+3+3+4 के नये प्रारूप में विद्यालय पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र को पुनर्गठित करना। (Restructuring the School Curriculum and Pedagogy in the New Format of 5+3+3+4)

(i) 5+3+3+4 के नये प्रारूप में विद्यालय पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र को पुनर्गठित करना।

(ii) विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढाँचे को पुनर्गठित किया जाएगा जिससे कि 3-8, 8-11, 11-14 और 14-18 की उम्र के विभिन्न पड़ावों पर विद्यार्थियों के विकास की अलग–अलग अवस्थाओं के आधार पर उनकी रुचियों और विकास की आवश्यकताओ पर समुचित ध्यान दिया जा सके। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढाँचे और पाठ्यक्रम रूपरेखा 5+3+3+4 प्रारूप से मार्गदर्शित होगी।

(iii) फाउंडेशन स्टेज में पाँच वर्षीय लचीली बहु–स्तरीय खेल/गतिविधि आधारित शिक्षा तथा बाल्यावस्था पूर्व देखभाल और शिक्षा [Early Childhood Care and Education (ECCE)] के पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र शामिल होंगे।

(iv) मिडिल स्टेज में तीन वर्ष की शिक्षा होगी और इसमें विषय विशेषज्ञ शिक्षकों द्वारा विषय की अमूर्त अवधारणाओं पर काम शुरू होगा। यह कार्य विज्ञान, गणित, कला, खेल, सामाजिक विज्ञान, मानविकी और व्यावसायिक विषय में होंगे।

(v) सेकण्डरी स्टेज में चार साल के बहु–विषयक अध्ययन शामिल होंगे। यह विषय उन्मुख शिक्षक क्रमीय और शिक्षण–शास्त्रीय शैली पर आधारित किए जाएँगे।

(vi) विद्यालयो मे सभी स्तरों पर विद्यार्थियों को बागवानी, खेल-कूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट की शिक्षा स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान की जाएगी ताकि बच्चे शारीरिक गतिविधियो एव व्यायाम में भाग ले सके।

(2) विद्यार्थियों का समग्र विकास (Holistic Development of Students)–सभी स्तरो पर पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि को समग्र केन्द्र बिन्दु शिक्षा प्रणाली प्रथा से अलग कर वास्तविक समझ और ज्ञान की ओर ले जाना तथा शिक्षा के उद्देश्य को केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और कौशल से सुसज्जित करना है। इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षाविधि को पुन तैयार किया जाएगा।

(3) अनिवार्य अधिगम और आलोचनात्मक चिंतन को बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को कम करना (Reducing Course Content to Increase Compulsory Learning and Critical Thinking)–पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु को प्रत्येक विषय से कम करके बुनियादी बीजों पर केन्द्रित किया जाएगा ताकि आलोचनात्मक चिंतन, समग्र खोज चर्चा आधारित और विश्लेषण आधारित अधिगम पर आवश्यक ध्यान दिया जा सके।

(4) प्रायोगिक अधिगम (Practical Learning)–सभी चरणों (5+3+3+4) में प्रायोगिक आधारित अधिगम को अपनाया जाएगा तथा इसके अतिरिक्त स्वय करके सीखना और विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाएगा तथा कहानी आधारित शिक्षणशास्त्र को प्रत्येक विषय में एक मानक शिक्षणशास्त्र के तौर पर देखा जाएगा।

(5) कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से विद्यार्थियों को सशक्त बनाना (Empowering Students Through flexibility in Course Choice)–विद्यार्थियों को विशेष रूप से माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन करने के लिए अधिक लचीलापन और विषयों के चुनाव के विकल्प दिए जाएँगे। इसमें शारीरिक शिक्षा, कला और शिल्प तथा व्यावसायिक विषय भी शामिल होंगे।

(i) साल-दर-साल समग्र विकास विषयों और पाठ्यक्रमों के विस्तृत चुनाव विकल्पों का होना माध्यमिक विद्यालय शिक्षा की नई विशिष्ट विशेषता होगी।

(ii) विद्यालयी शिक्षा के चार चरणों में से प्रत्येक, विभिन्न क्षेत्रों में जो सम्भव है उसके अनुसार एक सेमेस्टर या अन्य प्रणाली की ओर बढ़ने पर विचार किया जाएगा।

(6) बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति (Multilingualism and Power of Language)

(i) छोटे बच्चे अपनी घर की भाषा/मातृभाषा में अधिक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखेंगे और समझेंगे। जहाँ तक सम्भव हो कम-से-कम कक्षा 5 तक शिक्षा का माध्यम घर की भाषा, मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके पश्चात् घर/स्थानीय भाषा को भाषा के रूप में पढ़ाया जाएगा। इसका सार्वजनिक और निजी विद्यालय दोनों अनुपालन करेंगे।

(ii) फाउंडेशनल स्टेज के आरम्भ और इसके पश्चात् से बच्चों को विभिन्न भाषाओं में (मातृभाषा पर विशेष जोर देने के साथ) एक्सपोजर दिए जाएँगे।

(iii) सभी भाषाओं को एक मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ाया जाएगा जिसमें संवादात्मक वार्तालाप होगा और आरम्भ के वर्षों में पढ़ने और बाद में मातृभाषा में लिखने के साथ कक्षा 3 और आगे की कक्षाओं में अन्य भाषाओं में पढ़ने और लिखने के लिए कौशल विकसित किए जाएँगे।

(iv) त्रिभाषा फॉर्मूले को लागू किया जाना जारी रहेगा। हालाँकि तीन भाषा के फॉर्मूले में लचीलापन रखा जाएगा और किसी भी राज्य पर कोई भाषा थोपी नहीं जाएगी।

(v) बच्चों द्वारा सीखी जाने वाली तीन भाषाओं के विकल्प राज्यों, क्षेत्रों और निश्चित रूप से विद्यार्थियों के स्वय के होंगे, जिनमें से कम-से-कम तीन में दो भारतीय भाषाएँ हों। विशेष रूप से जो विद्यार्थी तीन में से एक या अधिक भाषाओं को परिवर्तित करना चाहते हैं वे कक्षा 6 या 7 में कर सकते हैं, लेकिन ऐसा करने के लिए विद्यार्थी को तीनों भाषाओं में, जिसमें एक भारतीय भाषा को उसके साहित्य के स्तर पर अध्ययन करना शामिल होगा। माध्यमिक कक्षाओं के अंत तक बुनियादी दक्षता हासिल करके दिखानी होगी।

(vi) उच्चतर गुणवत्ता वाले विषय विज्ञान और गणित में द्विभाषी पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण अधिगम सामग्री को तैयार करने के सभी प्रयास किए जाएँगे जिससे कि विद्यार्थी दोनों विषयों पर सोचने और बोलने के लिए घर की भाषा/मातृभाषा और अंग्रेजी दोनों में सक्षम हो सकें।

(vii) देश में प्रत्येक विद्यार्थी पढ़ाई के दौरान 'द लैंग्वेज ऑफ इंडिया' पर आधारित प्रोजेक्ट गतिविधि में भाग लेगा यह एक रुचिकर और आनंददायी गतिविधि होगी और इसमें किसी भी रूप में मूल्यांकन शामिल नहीं होगा।

(viii) संस्कृत को त्रि-भाषा की मुख्यधारा के विकल्प के साथ स्कूल और उच्चतर शिक्षा के सभी स्तरों के विद्यार्थियों के लिए समृद्ध विकल्प के रूप में पेश किया जाएगा।

(ix) देश के संवर्धन के लिए सार्वजनिक या निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों के पास भारत की शास्त्रीय भाषाओं और उससे जुड़े साहित्य को कम-से-कम दो साल सीखने का विकल्प होगा।

(x) भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में उच्चतर गुणवत्ता वाले कोर्स के अलावा, विदेशी भाषाएँ, जैसे कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, पुर्तगाली और रूसी का माध्यमिक स्तर पर व्यापक रूप से अध्ययन करवाया जाएगा।

(xi) सभी भाषाओं के शिक्षण को नवीन और अनुभवात्मक विधियों से समृद्ध किया जाएगा जिससे सरलीकरण और एप्स के माध्यम से भाषाओं के सांस्कृतिक पहलुओं को जोड़ते हुए और विभिन्न प्रासंगिक विषयों के साथ और वास्तविक जीवन के अनुभवों के साथ सम्बन्धों को दिखाते हुए विद्यार्थियों को सिखाया जाएगा। इस प्रकार भाषाओं का शिक्षण भी अनुभवात्मक-अधिगम शिक्षणशास्त्र पर आधारित होगा।

(xii) भारतीय साइन लैंग्वेज (Indian Sign Language) को देश में मानकीकृत किया जाएगा और बधिर विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर पाठ्यक्रम सामग्री विकसित की जाएगी।

(7) अनिवार्य विषयों, कौशलों और क्षमताओं का शिक्षाक्रमीय एकीकरण (Pedagogical Integration of Compulsory Subjects, Skills and Abilities)

(i) प्रासंगिक चरणों में समसामयिक विषयों जैसे कृत्रिम बुद्धिमता, ऑर्गेनिक लिविंग, पर्यावरण शिक्षा, नागरिकता शिक्षा आदि जैसे समसामयिक विषयों का आरम्भ सभी स्तरों पर विद्यार्थियों के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण कौशलों को विकसित करने हेतु समुचित शिक्षाक्रमीय और शिक्षणशास्त्रीय कदम उठाए जाएँगे।

(ii) मिडिल स्कूल पर कोडिंग सम्बन्धी गतिविधियाँ आरम्भ की जाएँगी।

(iii) गणितीय सोच को अधिक आनंददायी और आकर्षक बनाने के लिए सीखने के माध्यम पर जोर दिया जाएगा।

(iv) राज्यों और स्थानीय समुदायों द्वारा कक्षा 6 और 8 के विद्यार्थियों के लिए आनंददायी कोर्स और अपने हाथों से काम करने का अनुभव प्राप्त कराया जाएगा। कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के लिए अभ्यास आधारित पाठ्यक्रम को एनसीईआरटी उचित रूप से डिजाइन करेगा।

(v) कक्षा 6 से 8 के सभी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने की अवधि में दस दिन के बस्ता रहित पीरियड में भाग लेंगे। तब वे स्थानीय व्यावसायिक विशेषज्ञों जैसे- बढ़ई, माली, कुम्हार आदि के साथ प्रशिक्षु के रूप में काम करेंगे। इसी तर्ज पर कक्षा 6 से 12 तक छुट्टियों की अवधि में विभिन्न व्यावसायिक विषय समझने के अवसर उपलब्ध कराये जाएँगे। वर्षभर में बस्ता रहित दिनों को विभिन्न

प्रकार की समृद्ध करने वाली कला, क्विज, खेल और व्यावसायिक [illegible] जाएगा।

(vi) विद्यार्थियों को कम उम्र में 'सही को करने' के महत्व को सिखाया जाएगा और नैतिक निर्णय लेने के लिए एक तार्किक ढाँचा दिया जाएगा।

(vii) भारतीय सविधान के अश भी सभी विद्यार्थियो के लिए पढ़ना आवश्यक माना जाएगा। स्वास्थ्य मे बुनियादी प्रशिक्षण के साथ-साथ ही शराब, तम्बाकू और अन्य मादक पदार्थों के हानिकारक और विपरित प्रभावो की वैज्ञानिक व्याख्या को भी पाठ्यक्रम म शामिल किया जाएगा।

(viii) फाउडेशन स्तर से आरम्भ करके अन्य सभी स्तरो तक पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्र को एक मजबूत भारतीय और स्थानीय सन्दर्भ देने की दृष्टि से पुनर्गठित किया जाएगा।

(8) विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (National Curriculum of School Education)

(i) विद्यालय शिक्षा के लिए नयी और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 'विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCFSE) 2020-21, एनसीईआरटी द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के सिद्धान्तों तथा राज्य सरकारों, मत्रालयो, केन्द्र सरकार सम्बन्धित विभागो, विशेषज्ञ निकायो, हितधारकों के साथ परामर्श करके तैयार की जाएगी और इसे क्षेत्रीय भाषाओं मे उपलब्ध कराया जाएगा।

(ii) पाठ्यक्रम और शिक्षणशास्त्र मे उपयुक्त परिवर्तनो के जरिए स्कूल बैग और पाठ्यपुस्तकों के बोझ को पर्याप्त रूप से कम करने के लिए ठोस प्रयास किए जाएँगे।

(9) विद्यार्थियों के विकास के लिए आंकलन में आमूल-चूल परिवर्तन (A Radical Change in Assessment for the Development of Students)

(i) विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की सस्कृति में आकलन के उद्देश्य को योग्यात्मक [illegible] से रटकर याद करने के कौशल को जाँचता है से हटाकर नियमित रचनात्मक आकलन [illegible] जाना होगा जो अधिक दक्षता आधारित होगा।

(ii) 10वीं और 12वी कक्षा के लिए बोर्ड परीक्षाएँ जारी रहेंगी, बोर्ड और प्रवेश परीक्षाओं की मौजूदा प्रणाली में सुधार किया जाएगा। विद्यार्थी परीक्षा देने के लिए अपने विषयो मे से कई विषय चुन सकेंगे।

(iii) विद्यार्थियों को वर्ष मे दो बार बोर्ड परीक्षा देने की अनुमति दी जाएगी, जिससे बोर्ड परीक्षाओं के 'उच्चतर' जोखिम पहलू को समाप्त किया जा सके।

(iv) विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा सम्पूर्ण देश मे एक समान होगी। इसे राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी (National Test Agency) द्वारा साल मे 2 बार करवाया जाएगा।

(v) विद्यार्थियों के मूल्याकन के लिए मानक निर्धारक निकाय के रूप में परख (PARAKH) नामक एक नए राष्ट्रीय आकलन केन्द्र (National Assessment Centre) की स्थापना की जाएगी।

(vi) विद्यार्थी का रिपोर्ट कार्ड 360° Assessment के आधार पर उसके व्यवहार, अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं तथा मानसिक क्षमताओं को ध्यान मे रखकर तैयार किया जाएगा, जिसमे मूल्याकन स्वय विद्यार्थी, शिक्षक एव सहपाठियो द्वारा किया जाएगा।

(vii) विद्यार्थी कक्षा 3, 5 और 8 के स्तर पर स्कूली परीक्षाओं मे भाग लेंगे जिन्हे उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा सचालित किया जाएगा।

(viii) विद्यार्थियो के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए कक्षा–10 और कक्षा–12 की परीक्षाओ मे परिवर्तन किए जाएँगे। इसमे भविष्य में सेमिस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारो को शामिल किया जा सकता है।

(ix) विद्यार्थियो की प्रगति के मूल्यांकन तथा छात्रो को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने मे सहायता प्रदान करने के लिए 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता [Artifical Intelligence (AI)] आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया जाएगा।

(x) भारत के सभी मान्यता प्राप्त स्कूल बोर्डों के लिए विद्यार्थी आंकलन एवं मूल्यांकन के लिए मानदण्ड, मानक और दिशा-निर्देश बनाने जैसे उद्देश्यों को पूरा करेगा इसके साथ ही स्टेट अचीवमेंट सर्वे (एस ए एस) का मार्गदर्शन और नेशनल अचीवमेंट सर्वे (एन ए एस) का संचालन भी करेगा।

(xi) एनसीईआरटी द्वारा सभी प्रमुख हितधारको, जैसे एससीईआरटी, बोर्ड ऑफ असेसमेंट (बीओए), प्रस्तावित नया राष्ट्रीय आंकलन केन्द्र (एनएसीएसई) आदि शिक्षकों के साथ परामर्श के जरिये दिशा-निर्देश तैयार किए जाएँगे ताकि 2022-23 शैक्षणिक सत्र तक एनसीएफ 2020-21 के समरूप आंकलन प्रणाली को बदला जा सके।

(10) विशेष प्रतिभा वाले और मेधावी विद्यार्थियों के लिए सहायता (Help for Meritorious Students with Special Talent)

(i) देशभर मे विभिन्न विषयों में ओलंपियाड और प्रतियोगिताओं को आयोजित किया जाएगा।

(ii) शिक्षक का उद्देश्य विद्यार्थियो को पूरक संवर्धन सामग्री, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन देकर कक्षा मे प्रोत्साहित करना होगा। माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए उच्चतर गुणवत्ता वाले राष्ट्रीय आवासीय ग्रीष्मकालीन कार्यक्रमों को भी प्रोत्साहित किया जाएगा।

(iii) विद्यार्थियों की जन्मजात प्रतिभाओं को खोज कर उनका विकास किया जाएगा।

5. शिक्षक (Teacher)

शिक्षक से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) उत्कृष्ट विद्यार्थी ही शिक्षण विषय में प्रवेश कर पाएँ यह सुनिश्चित करने के लिए 4 वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम की स्थापना की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रो मे कुछ विशिष्ट मेरिट आधारित छात्रवृत्ति स्थापित की जाएगी तथा 4 वर्षीय बी.एड. डिग्री पूरी करने के पश्चात् स्थानीय क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा।

(ii) वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत बी. एड. डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

(iii) शिक्षको की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय–समय पर किए गए कार्य–प्रदर्शन आकलन के आधार पर पदोन्नति होगी।

(iv) शिक्षकों के स्थानांतरण की पारदर्शिता को बनाये रखने के लिए स्थानांतरण एक ऑनलाइन सॉफ्टवेयर आधारित व्यवस्था के द्वारा किए जाएँगे।

(v) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा 2022 तक 'शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक (National Professional Standard for Teacher– NPST) का विकास किया जाएगा।

(vi) जिन विद्यार्थियो ने पहले से अन्य विषयों में स्नातक डिग्री प्राप्त कर ली है उनके लिए 2 वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम भी प्रदान किए जाएँगे।

(vii) शिक्षक को स्वय में सुधार करने के लिए और व्यवसाय से सम्बन्धित आधुनिक विचार और नवाचार को सीखने के लिए सतत विकास के अवसर उपलब्ध कराये जाएँगे इसके लिए स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं के साथ-साथ ऑनलाइन शिक्षक विकास मॉड्यूल पेश किया जाएगा।

(viii) प्रत्येक सस्था, प्रधान एव शिक्षक से अपेक्षित होगा कि वे स्वय के व्यावसायिक विकास के लिए स्वेच्छा से प्रत्येक वर्ष लगभग 50 घण्टों के [सतत व्यावसायिक विकास (सीपीडी)] कार्यक्रम में भाग लेंगे।

(ix) एक सशक्त मेरिट आधारित कार्यक्रम, पदोन्नति और वेतन व्यवस्था का निर्माण किया जाएगा जिसमें शिक्षकों का प्रत्येक स्तर बहुस्तरीय होगा जिससे सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों का प्रोत्साहन और पहचान मिलेगी।

(x) बी.एड. कार्यक्रमों को एक वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम के रूप में भी समुचित रूप से विकसित किया जा सकता है जो केवल उन व्यक्तियों को प्रदान किया जाएगा जिन्होंने 4 वर्षीय बहु-स्नातक डिग्री या किसी विशिष्ट कार्य में परास्नातक डिग्री प्राप्त की हो और उस विशेष विषय में शिक्षक बनना चाहते हों।

(xi) बी.एड. डिग्रियाँ केवल 4 वर्षीय एकीकृत बी.एड. उपलब्ध कराने वाले मान्यता प्राप्त उच्च शिक्षा संस्थानों द्वारा ही प्रदान की जाएँगी।

(xii) संविदा शिक्षक रखने के बजाय नियमिक शिक्षक भर्ती करने पर जोर दिया जाएगा।

(xiii) राष्ट्रीय आध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा एनसीईआरटी के परामर्श के आधार पर अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विकास किया जाएगा।

(xiv) स्थानीय व्यवसाय ज्ञान और कौशल जैसे स्थानीय कला, संगीत, कृषि व्यवसाय, खेल, बढ़ईगिरी एवं अन्य व्यावसायिक शिल्प को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रख्यात स्थानीय व्यक्तियों को स्कूल या स्कूल परिसरों में 'मास्टर प्रशिक्षक' के रूप में पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाएगा।

(xv) बहु-विषयक कॉलेज और विश्वविद्यालयों में उन शिक्षकों को बी.एड. के बाद कुछ अल्प अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स भी व्यापक रूप से उपलब्ध करवाए जाएँगे।

(xvi) विद्यालयी शिक्षा के कुछ क्षेत्रों के लिए अतिरिक्त विशिष्ट शिक्षकों की आवश्यकता होगी।

(xvii) अध्यापक शिक्षा संस्थानों (टी.ई.आई.) से सम्बन्धित प्रमुख पहलुओं के कार्यान्वयन के लिए विस्तृत कार्ययोजना।

(xviii) शिक्षकों को उच्चतर-गुणवत्ता की सामग्री के साथ-साथ शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, शिक्षक शिक्षा को वर्ष 2030 तक बहु-विषयक कॉलेज और विश्वविद्यालयों में शामिल किया जाएगा।

6. समतामूलक और समावेशी शिक्षा : सभी के लिए अधिगम (Equitable and Inclusive Education : Learning for All)

समतामूलक और समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित हैं-

(i) प्रत्येक विद्यार्थी की उत्कृष्ट क्षमताओं को पहचानने और उन्हें बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों और अभिभावकों को सवेदनशील बनाया जाएगा।

(ii) सभी शैक्षणिक निर्णयो मे पूर्ण समानता और समावेश पर फोकस ताकि शिक्षा प्रणाली मे सभी विद्यार्थियो का विकास सुनिश्चित हो सके।

(iii) शैक्षिक रूप से अविकसित समुदायो से सम्बन्धित बच्चो की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा।

(iv) बच्चो के शैक्षिक परिदृश्य मे परिवर्तन हेतु शिक्षा क्षेत्र की सभी योजनाओं व नीतियों का पूर्ण इस्तेमाल किया जाएगा।

(v) सभी दिव्याग बच्चो के लिए बाधा मुक्त शिक्षा सुनिश्चित की जाएगी।

(vi) बुनियादी सुविधाओ से वचित क्षेत्रों एवं समूहों के लिए बालक-बालिका '**समावेशी कोष**' और '**विशेष शिक्षा जोन**' की स्थापना की जाएगी।

(vii) बाल्यावस्था पूर्व देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education) मे दिव्याग बच्चो को शामिल करना तथा उनकी समान भागीदारी सुनिश्चित की जाएगा।

(viii) दिव्याग बच्चो को प्रारम्भिक स्तर से उच्चतर स्तर तक की शिक्षण प्रक्रियाओं में सम्मिलित करने के लिए सक्षम बनाया जाएगा।

(ix) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करते समय एनसीईआरटी द्वारा दिव्यांगजन विभाग के राष्ट्रीय सस्थानो जैसे विशेषज्ञ संस्थानों के साथ परामर्श सुनिश्चित किया जाएगा।

(x) दिव्यांग बच्चे नियमित या विशेष स्कूली शिक्षा और गृह आधारित शिक्षा के विकल्प का चयन कर सकते हैं।

(xi) गृह आधारित शिक्षा के लिए ऑडिट की शुरुआत की जाएगी और इसके लिए मानक व दिशा-निर्देश विकसित किए जाएँगे।

(xii) गम्भीर या एक से अधिक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के पुनर्वास और शिक्षा से सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ससाधन केन्द्र और विशेष शिक्षक द्वारा सहायता दी जाएगी।

(xiii) दिव्याग बच्चों के एकीकरण को ध्यान मे रखते हुए विद्यालय व विद्यालय परिसरों की वित्तीय सहायता की सुस्पष्ट व कुशल प्रावधानों की व्यवस्था की जाएगी।

(xiv) विद्यालय व विद्यालय परिसरों में दिव्यांग बच्चो की आवश्यकता से सम्बन्धित प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक की नियुक्ति की जाएगी।

(xv) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की विभिन्न श्रेणियों के अनुरूप विद्यालय अथवा विद्यालय परिसर कार्य करेंगे जिससे प्रत्येक बच्चे की आवश्यकता के अनुरूप सहायता सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त प्रणाली विकसित की जाएगी जिससे कक्षा–कक्ष में उनकी पूर्ण प्रतिभागिता व समावेशन सुनिश्चित किया जाएगा।

(xvi) कक्षा मे शिक्षको व अन्य सहपाठियो के साथ सुलभ रूप से जुड़ने के लिए सहायक उपकरण, उपयुक्त तकनीकी आधारित उपकरण व उपयुक्त भाषा में पठन–पाठन सामग्री (जैसे बड़े प्रिंट और ब्रेल प्रारूपों में सुलभ पाठ्य पुस्तकें) उपलब्ध करवाए जाएँगे।

(xvii) उच्च गुणवत्ता वाले मॉड्यूल से भारतीय साइन लैंग्वेज सिखायी जाएगी और भारतीय साइन लैंग्वेज के उपयोग से अन्य बुनियादी विषयों का विकास किया जाएगा।

(xviii) विद्यालयी शिक्षा प्रणाली मे सभी हितधारको, जिसमे शिक्षक, प्रधानाचार्य प्रशासक परामर्शदाता और छात्रो को शामिल कर प्रणाली को ज्यादा सवेदनशील बनाया जाएगा।

(xix) विद्यालय परिसरों में ससाधनों के साझे उपयोग से दिव्यांग बच्चों और सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह (Socially and Economically Disadvantage Groups (SEDG)) का बच्चों को सहयोग व सहायता में सुधार किए जाएँगे।

(xx) दिव्यांग बच्चों को विद्यालय परिसरों में आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए सहायता प्रदान की जाएगी और इसके लिए एक क्षेत्र विकसित किया जाएगा।

(xxi) दिव्यांग बच्चों को भी अन्य बच्चों की तरह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के समान अवसर प्रदान करने हेतु सक्षम क्षेत्र बनाया जाएगा।

(xxii) नीतियों और योजनाओं, जैसे लक्षित छात्रवृत्ति बच्चों को स्कूल भेजने के लिए माता–पिता को प्रोत्साहित करने के लिए सशर्त नकद हस्तांतरण आदि को मजबूत किया जाएगा।

(xxiii) बी.एड. कार्यक्रमों में शिक्षण–शास्त्र में अत्याधुनिक तकनीकों में प्रशिक्षण दिया जाएगा जिसमें बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान, दिव्यांग बच्चों को पढ़ाना आदि शामिल है।

(xxiv) सेवारत् शिक्षा कार्यक्रम में दिव्यांग बच्चों को पढ़ाने का कौशल शामिल होगा।

(xxv) वैकल्पिक विद्यालय में शिक्षकों की क्षमता निर्माण, जिसमें विज्ञान, गणित आदि विषयों समेत नई शैक्षणिक पद्धतियों का ओरिएंटेशन भी शामिल है।

(xxvi) उच्चतर शिक्षण संस्थानों में यह सुनिश्चित किया जाएगा कि इमारतें और अन्य बुनियादी सुविधाएँ व्हीलचेयर सुलभ और दिव्यांगजनों के अनुकूल हों।

(xxvii) NCFSE द्वारा निर्धारित विषय और शिक्षण क्षेत्रों को उनके पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा।

(xxviii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत् 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अन्तर्गत रखा गया है। इससे पूर्व 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान रखा गया था।

(xxix) शिक्षा को अनुसूचित जातियों के बच्चों तक पहुँचाना तथा उनकी भागीदारी को बढ़ाना और सीखने के अन्तराल को कम करना तथा इनके साथ ही अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना।

(xxx) आदिवासी समुदायों के बच्चों को लाभान्वित करने के लिए विशेषतत्र का प्रावधान किया जाएगा।

(xxxi) सामाजिक व आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्ग (एसईडीजी) के अधिक आबादी वाले क्षेत्रों में विशेष शिक्षा केन्द्रों का निर्माण किया जाएगा।

(xxxii) एसईडीजी से सम्बन्धित बच्चों और विशेष रूप से छात्राओं के शिक्षा के प्रति विषमता समाप्त करने हेतु लक्षित नीतियाँ और योजनाएँ तैयार की जाएँगी।

(xxxiii) छात्राओं तथा ट्रांसजेंडर बच्चों की शिक्षा हेतु जेंडर इन्क्लूजन निधि फंड का प्रावधान किया जाएगा।

(xxxiv) सामाजिक व आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्ग (एसईडीजी) के बच्चों की समस्याओं के समाधान हेतु समावेशन निधि योजनाओं को विकसित किया जाएगा।

(xxxv) विद्यालयों में, विशेष रूप से सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह (Socially and Economically Disadvantage Groups) वर्ग के विद्यार्थियों के लिए, निःशुल्क बोर्डिंग सुविधाओं का निर्माण किया जाएगा।

(xxxvi) कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों का सुद्धीकरण और गुणवत्तापूर्ण स्कूलों में लड़कियों की भागीदारी (12वी कक्षा तक) बढ़ाई जाएगी।

(xxxvii) आकाक्षात्मक जिलो, विशेष शिक्षा क्षेत्रों व वंचित क्षेत्रों में अतिरिक्त जवाहर नवोदय विद्यालय और केन्द्रीय विद्यालय का निर्माण किया जाएगा।

(xxxviii) उच्चतर शिक्षा ग्रहण करने हेतु सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह (Socially and Economically Disadvantage Groups) वर्ग के प्रतिभाशाली मेधावी विद्यार्थियों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी।

(xxxix) सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह (Socially and Economically Disadvantage Groups) से सबधित बच्चों को छात्रवृत्ति व अन्य अवसरों और योजनाओं के लिए एकल खिड़की प्रणाली अपनाई जाएगी।

7. विद्यालय कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर के माध्यम से कुशल संसाधन और प्रभावी गवर्नेंस (Efficient Resources and Effective Governance Through School Complex/Clusters)

विद्यालय कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर के माध्यम से कुशल संसाधन से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में राष्ट्रीय कैडेटकोर विंग (NCC Wings) को खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

(ii) राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश की सरकारों द्वारा वर्ष 2025 तक स्कूलों के समूह बनाने या उनकी सख्या को समुचित रूप देने के लिए नवीन प्रक्रिया को अपनाकर समाधान किया जाएगा।

(iii) फाउडेशन स्तर से सेकण्डरी स्तर के ऐसे विद्यालयों के समूह को एक एकीकृत अर्द्ध–स्वायत्त इकाई के रूप में देखा जाएगा।

(iv) एक संभावित क्षेत्र विद्यालय परिसर नामक एक समूहन संरचना की स्थापना होगी, जिसमें एक माध्यमिक विद्यालय होगा जिसमें 5 से 10 किलोमीटर के क्षेत्र में आँगनवाड़ी केन्द्रों सहित निचले ग्रेड की पेशकश करने वाले अन्य सभी विद्यालय होंगे।

(v) विद्यालय/ कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर व्यवस्था से विद्यालयों का शासन भी सुधरेगा और अधिक कुशल होगा।

(vi) कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर द्वारा दोनों दीर्घकालीन और अल्पकालीन सन्दर्भ में एक योजनाबद्ध तरीके से काम करने की संस्कृति का विकास होगा। विद्यालय प्रबंधन समिति (School Management Committee) की सहायता से विद्यालय विकास योजनाएँ (School Development Plannings) बनायी जाएँगी।

(vii) निजी और सार्वजनिक विद्यालयों सहित सभी विद्यालयों के बीच परस्पर सहयोग और सकारात्मक तालमेल बढ़ाने के लिए देशभर में एक निजी और एक सार्वजनिक विद्यालय को परस्पर सम्बद्ध किया जाएगा जिससे ऐसे सम्बद्ध स्कूल एक–दूसरे से सीख सकें तथा एक–दूसरे के ससाधनों से लाभान्वित हो सकें।

(viii) प्रत्येक राज्य और जिले को 'बाल भवन' स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा जहाँ प्रत्येक उम्र के बच्चे सप्ताह में एक या अधिक बार जाकर गतिविधियों मे भाग ले सकें।

(ix) एक सस्थान के रूप में स्कूल की प्रतिष्ठा को पुन स्थापित करना चाहिए इसके लिए स्कूल स्थापना दिवस जैसे महत्वपूर्ण दिवस समुदाय के साथ मिलकर मनाये जाने चाहिए। स्कूल एक सामाजिक चेतना केन्द्र के रूप में भी भूमिका निभाए।

8. विद्यालयी शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन (Standard Assessment and Certification for School Education)–विद्यालय शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) सम्पूर्ण राज्य की सार्वजनिक विद्यालयी प्रणाली के सम्यक प्रबन्धन और शैक्षिक संचालन का उत्तरदायित्व स्कूल शिक्षा निदेशालय का होगा।

(ii) राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश द्वारा राज्य विद्यालय मानक प्राधिकरण (State School Standard Authority) का गठन किया जाएगा।

(iii) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (National Council of Educational Research and Training) सभी हितधारकों के साथ व्यापक परामर्श के माध्यम से एक विद्यालय गुणवत्ता आकलन एवं प्रत्यायन संरचना (School Quality Assessment and Accreditation Form) तैयार करेगा।

(iv) सार्वजनिक और निजी विद्यालय का मूल्याकन और प्रमाणन समान मापदंड, बेंचमार्कों और प्रक्रियाओं के आधार पर किया जाएगा, जो ऑनलाइन और ऑफलाइन सार्वजनिक प्रकटीकरण और पारदर्शिता पर जोर देते हैं।

(v) राज्यों को अपने स्वयं के जनगणना–आधारित राज्य मूल्याकन सर्वेक्षण (एसएएस) का संचालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा जिसके परिणामों का उपयोग केवल विकास के उद्देश्य के लिए किया जाएगा।

10.7 : भाग–II : उच्चतर शिक्षा (PART-II HIGH EDUCATION)

1. गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय : भारतीय उच्चतर शिक्षा हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण (Quality Universities and College : A New and Futuristic Approach to the Indian Higher Education System)

(i) व्यक्तियों के समग्र विकास के उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि पूर्व विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक, सीखने के प्रत्येक चरण में कौशल और मूल्यों का एक निर्धारित सेट शामिल किया जाएगा।

(ii) यह नीति उच्चतर शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन और सचार के लिए उपयुक्त चुनौतियों को दूर करने के लिए कहती है। जिससे सभी युवाओं को उनकी आकांक्षा के अनुरूप गुणवत्तापूर्ण, समान अवसर देने वाली एवं समावेशी उच्चतर शिक्षा प्राप्त हो। इस नीति की दृष्टि में वर्तमान उच्चतर शिक्षा प्रणाली में निम्नलिखित प्रमुख परिवर्तन शामिल है

- ऐसी उच्चतर शिक्षा व्यवस्था की ओर बढ़ना जिसमें विशाल बहु–विषयक विश्वविद्यालय और महाविद्यालय हों, जहाँ प्रत्येक जिले में या उसके पास कम–से–कम एक और पूरे भारत में अधिकतर उच्च शिक्षा संस्थान ऐसे हो, जो स्थानीय/भारतीय भाषाओं में शिक्षा या कार्यक्रमों का माध्यम प्रदान करते हों।
- बहु–विषयक स्नातक शिक्षा की ओर बढ़ना।
- संकाय और संस्थागत स्वायत्तता की ओर बढ़ना।

- विद्यार्थियों के अनुभव में वृद्धि के लिए पाठ्यचर्या, शिक्षण–शास्त्र, मूल्यांकन और विद्यार्थियों को दिए जाने वाले सहयोग में आमूल–चूल परिवर्तन करना।
- शिक्षण, अनुसधान और सेवा के आधार पर योग्यता–नियुक्तियों और करियर की प्रगति के माध्यम से सकाय और सस्थागत नेतृत्व की स्थिति की अखडता की पुष्टि करना।
- सहकर्मी द्वारा समीक्षा की गई उत्तम अनुसधान और विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सक्रिय रूप से अनुसधान की नीव रखने के लिए राष्ट्रीय अनुसधान फाउडेशन (एनआरएफ) की स्थापना करना।
- शैक्षणिक और प्रशासनिक स्वायत्तता वाले उच्चतर–योग्य स्वतंत्र बोर्डों द्वारा उच्च शिक्षा सस्थान का गवर्नेंस।
- व्यावसायिक (Professional) शिक्षा सहित उच्चतर शिक्षा के सभी एकल नियामक द्वारा लचीला, लेकिन स्थायित्व प्रदान करने वाला विनियमन।
- उपायों की एक शृखला के माध्यम से पहुँच, समता और समावेशन में वृद्धि; इसके साथ ही उत्कृष्ट सार्वजनिक शिक्षा के लिए अधिक अवसर; वंचित और निर्धन विद्यार्थियों के लिए निजी विश्वविद्यालयो द्वारा छात्रवृत्ति में पर्याप्त वृद्धि; मुक्त विद्यालय, ऑनलाइन शिक्षा मुक्त दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) और दिव्यांग शिक्षार्थियों के लिए सभी बुनियादी ढाँचे और शिक्षण सामग्री की उपलब्धता।

2. संस्थागत पुनर्गठन और समेकन (Institutional Restructuring and Consolidation)

(i) उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात' (Gross Enrollment Ratio) को 26.3% (वर्ष 2018) से बढ़ाकर वर्ष 2035 तक 50% तक करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।

(ii) वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता, न्यायसंगता और समावेश के लिए उचित संख्या में उच्चतर शिक्षा सस्था स्थापित किए जाएँगे।

(iii) वर्ष 2040 तक सभी वर्तमान उच्चतर शिक्षा संस्थानों (Higher Education Institute in India) का उद्देश्य अपने आपको बहु–विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा।

(iv) वर्ष 2030 तक प्रत्येक जिले में या उसके समीप कम–से–कम एक बड़ा बहु–विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित किया जाएगा।

(v) केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालय और प्राइवेट विश्वविद्यालय के लिए अलग–अलग नियम हैं लेकिन वर्तमान एकसमान नियम बनाए जाएँगे।

(vi) एक ही स्ट्रीम वाले संस्थानों (HEI) को समय के साथ जीवंत बहु–विषयक संस्थानों या बहु–विषयक उच्च शिक्षा संस्थान (Higher Education Institute) क्लस्टर के अंग के रूप में चरणबद्ध तरीके से परिवर्तित किया जाएगा।

(vii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission -UGC), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council for Technical Education - AICTE) और राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (National Council for Technical Education - NCTE) को समाप्त कर रेगुलेटरी बॉडी बनाई जाएगी।

3. समग्र और बहुविषयक शिक्षा की ओर (Towards Holistic and Multidisciplinary Education)

(i) स्नातकोत्तर कोर्स में एक साल बाद पढ़ाई छोड़ने का विकल्प होगा। उदाहरण के लिए, संयुक्त स्नातक–मास्टर कोर्स लाया जाएगा।

(ii) स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है। जिसमें 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा। 1 वर्ष के बाद, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा प्रमाण–पत्र, 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक।

(iii) विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से संरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (Academic Bank of Credit) दिया जाएगा, जिससे अलग–अलग संस्थानों में विद्यार्थियों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

(iv) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत् एम. फिल. कार्यक्रम को समाप्त कर दिया जाएगा।

(v) समग्र और बहु–विषयक शिक्षा के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (Indian Institute of Technology), भारतीय प्रबंधन संस्थान (Indian Institute of Management) आदि की तर्ज पर मेरु (बहु–विषयक शिक्षा और शोध विद्यालय) नामक मॉडल सार्वजनिक विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाएगी।

(vi) उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए सामान्य प्रवेश परीक्षा (National Common Admission Test) होगा जिसे राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी कराएगी। संस्था के लिए इस प्रवेश परीक्षा का होना अनिवार्य नहीं है।

4. सीखने के लिए सर्वोत्तम वातावरण व विद्यार्थियों को सहयोग (Best Environment for Learning and Support to Students)

(i) उच्चतर शिक्षा के व्यापक ढाँचे में रचनात्मकता को सुनिश्चित करने के लिए संस्थाओं को अपनी सीमाओं को पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि और आकलन आदि पर नवाचार करने की स्वायत्तता दी जाएगी।

(ii) विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में कैम्पस खोलने की अनुमति मिलेगी।

(iii) अंतर्राष्ट्रीयकरण भारत के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों को अपने परिसर अन्य देशों में स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इसके साथ ही विश्व के चुनिंदा विश्वविद्यालयों (शीर्ष 100 में से) को भारत में संचालित करने की अनुमति दी जाएगी।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों की अधिक संख्या को आकर्षित करने और 'देश में अन्तर्राष्ट्रीयकरण' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बढ़ावा दिया जाएगा।

(v) विदेशी विद्यार्थियों की मेजबानी करने वाले प्रत्येक उच्चतर शिक्षण संस्थान में एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थी कार्यालय स्थापित किया जाएगा।

(vi) प्रत्येक शिक्षा संस्थान में तनाव से जूझने और भावनात्मक तारतम्यता बनाने के लिए काउंसलिंग की व्यवस्था होगी। इसके अलावा ग्रामीण पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों को अपेक्षित सहायता प्रदान करने के लिए एक बेहतर व्यवस्था बनाई जाएगी जिसमें आवश्यकतानुसार छात्रावास की सुविधाओं के साथ–साथ सभी उच्चतर शिक्षण संस्थान अपने संस्थानों में सभी विद्यार्थियों के लिए गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराएँगे।

(vii) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग

के अन्य छात्रों की योग्यता को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाएगा। इन विद्यार्थियों की प्रगति को बढ़ाने के लिए तथा ट्रैक करने के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल का विस्तार किया जाएगा।

(viii) विद्यार्थियों को विभिन्न उपायों के माध्यम से वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाएगी।

5. प्रेरित, सक्रिय और सक्षम संकाय (Motivated, Active and Competent Faculty)

(i) वर्तमान नियुक्ति प्रक्रिया में उत्कृष्टता को सुनिश्चित करने के लिए एक 'कार्यकाल-ट्रैक प्रणाली को प्रोवेशन अवधि से जोड़ा जाएगा।

6. उच्चतर शिक्षा में समता और समावेश (Equity and Inclusion in Higher Education)

सभी सरकारों और उच्चतर शिक्षण संस्थानों द्वारा उच्चतर शिक्षा के हेतु अतिरिक्त कदम इस प्रकार है–

(i) एसईडीजी की शिक्षा के लिए समुचित सरकारी निधि का निर्धारण।

(ii) उच्चतर जीईआर तथा एसईडीजी के लिए स्पष्ट लक्ष्यों का निर्धारण।

(iii) उच्चतर शिक्षण संस्थानों की प्रवेश प्रक्रिया में जेंडर-संतुलन को बढ़ावा देना।

(iv) विकास की ओर उन्मुख जिलों में उच्चतर गुणवत्तायुक्त उच्चतर शिक्षण संस्थान बनाकर और बड़ी संख्या में सामाजिक व आर्थिक रूप से वंचित समूह लिए हुए विशेष शिक्षा क्षेत्र बनाकर पहुँच को सुधारना।

(v) उच्चतर गुणवत्तायुक्त ऐसे उच्चतर शिक्षण संस्थानों का निर्माण और विकास करना जो स्थानीय/भारतीय भाषाओं में या द्विभाषी रूप से शिक्षण कराएँ।

(vi) सार्वजनिक और निजी दोनों ही तरह के उच्चतर शिक्षण संस्थानों में एसईडीजी को अधिक वित्तीय सहायता और छात्रावास प्रदान करना।

(vii) एसईडीजी के बीच उच्चतर शिक्षा के अवसरों और छात्रवृत्ति से जुड़ी जागरूकता के लिए प्रचार-प्रसार करना।

(viii) बेहतर भागीदारी और सीखने के परिणामों के लिए प्रौद्योगिकी का निर्माण और विकास।

(ix) उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने से जुड़ी लागत और इस दौरान हुई आर्थिक अवसरों की हानि को कम करना।

(x) सामाजिक आर्थिक रूप से वंचित विद्यार्थियों को अधिक वित्तीय सहायता और छात्रवृत्ति प्रदान करना।

(xi) उच्चतर शिक्षा के अवसरों और छात्रवृत्ति से जुड़ी जागरूकता के लिए प्रचार-प्रसार करना।

(xii) प्रवेश प्रक्रियाओं को अधिक समावेशी बनाना।

(xiii) पाठ्यक्रम को अधिक समावेशी बनाना।

(xiv) उच्चतर शिक्षा कार्यक्रमों को अधिक रोजगारपरक बनाना।

(xv) भारतीय भाषाओं और द्विभाषी रूप से पढ़ाए जाने वाले अधिक डिग्री पाठ्यक्रम विकसित करना।

(xvi) यह सुनिश्चित करना कि सभी सम्बन्धित इमारतें और अन्य बुनियादी सुविधाएँ व्हीलचेयर सुलभ और दिव्यांगजनों के अनुकूल हों।

(xvii) वंचित शैक्षिक पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों के लिए ब्रिज-कोर्स निर्मित करना।

(xviii) ऐसे सभी विद्यार्थियों को उपयुक्त सलाह और परामर्श कार्यक्रमों के जरिए सामाजिक भावनात्मक और अकादमिक सहायता तथा सलाह प्रदान करना।

(xix) पाठ्यक्रम सहित उच्चतर शिक्षण सस्थानो के सभी पहलुओं द्वारा सकाय सदस्यों परामर्शदाताओं और विद्यार्थियों को जेंडर और जेंडर-पहचान के प्रति सवेदनशील और समावेशी करना।

(xx) भेदभाव और उत्पीड़न के खिलाफ बने सभी नियमों को सख्ती से लागू करना।

(xxi) सामाजिक व आर्थिक रूप से वचित समूह से बढ़ती भागीदारी को सुनिश्चित करने से जुड़ी विशिष्ट योजनाओं को शामिल करते हुए सस्थागत विकास योजनाओं का निर्माण करना, जिनमें उपर्युक्त बिन्दु शामिल हों, लेकिन इन्हीं तक सीमित न हों।

7. अध्यापक शिक्षा (Teacher Education)—अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित हैं—

(i) वर्ष 2030 तक केवल शैक्षिक रूप से सुदृढ़, बहु-विषयक और एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम कार्यान्वित किए जाएँगे।

(ii) वर्ष 2030 तक सभी एकल शिक्षक शिक्षा के सस्थानो को बहु-विषयक सस्थानो के रूप में बदलने की आवश्यकता होगी, क्योंकि 4 वर्षीय एकीकृत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सचालित करना होगा।

(iii) 4 वर्षीय, 2 वर्षीय या 1 वर्षीय बी.एड. कार्यक्रमों के लिए उत्कृष्ट उम्मीदवारों को आकर्षित करने के उद्देश्य से मेधावी विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों की स्थापना की जाएगी।

(iv) शिक्षकों को ऑनलाइन प्रशिक्षण के लिए स्वय/दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफॉर्मों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा, ताकि मानकीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रमों को कम समय के भीतर अधिक शिक्षकों को मुहैया कराया जा सके।

(v) सलाह के लिए एक राष्ट्रीय मिशन को स्थापित किया जाएगा, जिसमे बड़ी सख्या मे वरिष्ठ सेवानिवृत उत्कृष्ट सकाय सदस्यों को जोड़ा जाएगा।

8. व्यावसायिक शिक्षा का नवीन आकलन (The New Assessment of Vocational Education)—व्यावसायिक शिक्षा के नवीन आकलन से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव है

(i) वर्ष 2025 तक विद्यालय और उच्चतर शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम-से-कम 50% विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा का अनुभव प्रदान किया जाएगा, जिसके लिए लक्ष्य और समय सीमा के साथ एक स्पष्ट कार्ययोजना विकसित की जाएगी।

(ii) 'लोकविद्या' अर्थात् भारत में विकसित महत्वपूर्ण व्यावसायिक ज्ञान से जुड़े विषयों को व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों में एकीकरण के माध्यम से छात्रों के लिए सुलभ बनाया जाएगा।

(iii) व्यावसायिक शिक्षा को चरणबद्ध तरीके से सभी विद्यालय और उच्चतर शिक्षा सस्थानो में एकीकृत किया जाएगा।

(iv) व्यावसायिक शिक्षा के फोकस एरिया का चुनाव कौशल अन्तर विश्लेषण (Skill Gap Analysis) और स्थानीय अवसरों के आधार पर किया जाएगा।

(v) मानव ससाधन विकास मत्रालय पहल की देख-रेख के लिए उद्योगों के सहयोग से व्यावसायिक शिक्षा के विशेषज्ञों और व्यावसायिक मत्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर एक

राष्ट्रीय समिति (National Committee for the Integration Vocational Education -NCIVE) का गठन करेगा।

(vi) व्यावसायिक शिक्षा और अप्रेंटिसशिप प्रदान करने वाले विभिन्न मॉडलों को उच्चतर शिक्षा संस्थानों द्वारा भी प्रयोग मे लाया जाएगा। उद्योगों के साथ साझेदारी के तहत् उच्चतर शिक्षा संस्थानों मे इन्क्युबेशन केन्द्र स्थापित किए जाएँगे।

(vii) राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क (National Skill Qualification Framwork- NSQF) को प्रत्येक विषय व्यवसाय रोजगार के लिए अधिक विस्तारपूर्वक निर्मित किया जाएगा। इसके अलावा भारतीय मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा बनाए गए व्यवसायों के अंतर्राष्ट्रीय मानक वर्गीकरण के साथ जोड़ा जाएगा।

9. नवीन राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन के माध्यम से सभी क्षेत्रों में गुणवत्तायुक्त शैक्षणिक अनुसंधान को उत्प्रेरित करना (To Catalyze Quality Academic Research in all Fields Through the New National Research Foundation)

नवीन राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन से सम्बन्धित सुझाव निम्न प्रकार से है–

(i) यह नीति राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (National Research Foundation) की स्थापना को प्रस्तावित करेगी जिससे राष्ट्र में गुणवत्तायुक्त अनुसंधान को विकसित तथा उत्प्रेरित किया जा सके। राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन का व्यापक लक्ष्य विश्वविद्यालयों के माध्यम से शोध की संस्कृति को सक्षम बनाना होगा। राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन योग्यता आधारित एवं पियर रिव्यु पर आधारित शोध निधि का एक विश्वसनीय आधार प्रदान करेगा जो उत्कृष्ट शोध के लिए उपयुक्त प्रोत्साहन के माध्यम से देश मे अनुसंधान की संस्कृति विकसित करने मे सहायता करेगा।

(ii) राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन सघन रूप से अन्य फंडिंग एजेंसियों के साथ समन्वय स्थापित करेगा और विज्ञान, इंजीनियरिंग और सक्षम अकादमियों के साथ काम करेगा।

(iii) राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन स्वतंत्र रूप से सरकार के एक रोटेटिंग बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा शासित होगा जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के बहुत ही उत्कृष्ट शोधकर्ता और आविष्कारकर्त्ता शामिल होंगे।

राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की प्राथमिक गतिविधियाँ इस प्रकार रहेंगी:

- सभी प्रकार के और विभिन्न विषयों मे, प्रतिस्पर्धी और पियर रिव्यु किए गए शोध प्रस्तावों के लिए फंड देना
- शिक्षा संस्थानों में विशेषत: विश्वविद्यालयों में और महाविद्यालयों में जहाँ अभी अनुसंधान शैशवावस्था में है, इन संस्थानों को परामर्श प्रदान करके अनुसंधान शुरू करना, विकसित करना और उसके लिए सुविधा देना
- शोधार्थियों और सरकार की सम्बन्धित शाखाओं तथा उद्योगों के बीच संपर्क बनाने एवं समन्वयन का काम करना, जिससे शोधार्थियों को लगातार अति तात्कालिक राष्ट्रीय अनुसंधान मुद्दों के बारे मे बताया जा सके और जिससे नीति निर्माता भी अनुसंधान के क्षेत्र मे नवीनतम सफलताओं के प्रति जागरूक रहे।

(iv) उत्कृष्ट अनुसंधान और उनकी प्रगति को पहचानना।

10. उच्चतर शिक्षा की नियामक प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन (A Radical Change in the Regulatory System of Higher Education)

(i) देश में वैश्विक मानकों के सर्वश्रेष्ठ बहु-विषयक शिक्षा के प्रारूपों के रूप में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (Indian Institute of Technology), भारतीय प्रबंधन संस्थान (Indian Institute of Management) के समकक्ष बहु-विषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय (एमईआरयू) स्थापित किए जाएँगे।

(ii) भारत उच्च शिक्षा आयोग (Higher Education Commission of India - HECI) की सम्पूर्ण उच्च शिक्षा के सर्वोच्च निकाय के रूप में गठित किया जाएगा। इसमें राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन मेडिकल और कानूनी शिक्षा को शामिल नहीं किया जाएगा

भारतीय शिक्षा आयोग के कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु चार निकाय होंगे-

(i) **राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद्** (National Higher Education Regulatory Council – NHERC) : यह शिक्षक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक 'नियामक' का कार्य करेगा।

(ii) **सामान्य शिक्षा परिषद्** (General Education Council - GEC) : यह उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित सीखने के परिणामों का ढाँचा तैयार करेगा अर्थात उनके मानक निर्धारण का कार्य करेगा।

(iii) **राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद्** (National Accreditation Council - NAC) : यह संस्थानों के प्रत्यायन का कार्य करेगा जो मुख्य रूप से बुनियादी मानदंडों, सार्वजनिक स्व-प्रकटीकरण, सूचना और परिणामों पर आधारित होगा।

(iv) **उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद्** (Higher Education Grants Council - HEGC) : यह निकाय कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के लिए वित्तपोषण का कार्य करेगा।

(v) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर), वेटरनरी काउंसिल ऑफ इंडिया (वीसीआई), राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई), आर्किटेक्चर काउंसिल (सीओए), फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया (पीसीआई), राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीवीईटी) आदि का पुनर्गठन व्यावसायिक मानक सेटिंग निकायों (पीएसएसबी) के रूप में किया जाएगा। ये उच्चतर शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे और उन्हें जीईसी के सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया जाएगा।

(vi) इस तरह की संरचना विभिन्न भूमिकाओं के बीच आपसी हितों के टकराव को समाप्त करते हुए, प्रत्येक की भूमिका एवं कार्यों को एक-दूसरे से अलग करने के सिद्धांत को बनाये रखेगी। इसका उद्देश्य कुछ बुनियादी विषयों पर ध्यान देते हुए उच्चतर शिक्षा संस्थानों को सशक्त बनाना भी है। इससे जुड़ी जिम्मेदारियाँ और जवाबदेही उच्चतर शिक्षण संस्थानों के अनुरूप होगी। सार्वजनिक और निजी उच्चतर शिक्षण संस्थानों के बीच अपेक्षानुरूप किसी तरह का भेद नहीं किया जाएगा। भारतीय शिक्षा आयोग के अन्तर्गत प्रत्येक अंग को एक नई एकल भूमिका पर ले जाया जाएगा।

(vii) विनियमन के लिए सभी स्वतंत्र संरचनाओं का कार्यकरण नियमन (एनएचईआरए) मान्यता (एनएसी), निधियन (एचईजीसी) और अकादमिक मान्यता (जीईसी) एक वृहद् और स्वायत्त निकाय (एचईसीआई) सार्वजनिक प्रकटीकरण नीति पर आधारित होगा और अपने कार्यों, दक्षता और पारदर्शिता को सुनिश्चित करने के लिए और मानव इंटरफेस कम करने के लिए अधिक-से-अधिक

प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करेंगे। वृहद और स्वायत्त निकाय के भीतर कार्य निष्पादन हेतु उपयुक्त प्रक्रिया का निर्माण किया जाएगा, जिसमे अधिनिर्णय भी शामिल है।

(viii) विनियम को सक्षम बनाने की प्राथमिक प्रक्रिया प्रत्यायन होगी। इसलिए भारतीय शिक्षा आयोग का दूसरा अग मेटा-अक्क्रेडिटिग निकाय होगा जिसे **राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद्** (National Academy of Construction - NAC) के नाम से जाना जाएगा।

11. उच्चतर शिक्षा संस्थानों के लिए प्रभावी प्रशासन और नेतृत्व (Effective Governance and Leadership for Higher Education Institutes)

(i) ग्रेडेड प्रत्यापन और ग्रेडेड स्वायत्तता की प्रणाली के माध्यम से, 15 वर्षों में एक चरणबद्ध तरीके से, भारत के सभी उच्चतर शिक्षण संस्थानों का उद्देश्य नवप्रवर्तन और उत्कृष्टता का अनुशीलन करने वाली स्वतत्र स्वशासी संस्था बनाना होगा। इसके लिए बोर्ड ऑफ गवर्नेस (Board of Goverance - BOG) स्थापित किया जाएगा।

(ii) उच्चतर शिक्षण सस्थान, संस्थागत उत्कृष्टता, अपने स्थानीय समुदायों के साथ जुड़ाव और वित्तीय ईमानदारी और जवाबदेही के उच्चतममानकों के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित करेंगे।

10.8 : भाग-III : अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे (PART-III : OTHER CENTRAL ISSUES TO CONSIDER)

1. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)-व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित हैं-

(i) पेशेवरों को तैयार करने से जुड़ी शिक्षा के लिए यह अनिवार्य है कि उसके पाठ्यक्रम में नैतिकता और सार्वजनिक उद्देश्य के महत्व का समावेश हो, इसके साथ ही विषय विशेष की शिक्षा और व्यावसायिक अभ्यास की शिक्षा को शामिल किया जाएगा।

(ii) व्यावसायिक विकास की शिक्षा को समग्र उच्चतर शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अग बनाया जाएगा।

(iii) व्यावसायिक या सामान्य शिक्षा प्रदान करने वाले सभी संस्थान वर्ष 2030 तक समेकित रूप से दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करने वाले सभी संस्थान इस लक्ष्य के साथ कार्य करेंगे।

(iv) कृषि शिक्षा और इससे सम्बद्ध विषयों को पुनर्जीवित किया जाएगा।

(v) कृषि शिक्षा की प्रक्रिया को ऐसे व्यावसायिक व्यक्तियों के विकास के लिए परिवर्तित किया जाएगा जोकि स्थानीय ज्ञान, पारपरिक ज्ञान और उभरती हुई तकनीकों को समझ सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते है और इसके साथ ही महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे कि भूमि की गिरती उत्पादन शक्ति, जलवायु परिवर्तन, हमारी बढ़ती आबादी के लिए पर्याप्त भोजन की आवश्यकता आदि को लेकर जागरूक हो तथा कृषि शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों से स्थानीय समुदाय सीधे-सीधे लाभान्वित हो, इसके लिए कृषि प्रौद्योगिकी पार्क की स्थापना की जाएगी जिससे प्रौद्योगिकीय-इन्क्युबेशन, प्रसार और टिकाऊ तरीकों को बढ़ावा मिल सके।

(vi) स्वास्थ्य शिक्षा प्रणाली को एकीकृत किया जाएगा अर्थात्, एलोपैथिक चिकित्सा शिक्षा के सभी छात्रों को आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी सिद्ध और होम्योपैथी (आयुष) की बुनियादी समझ होनी चाहिए और अन्य सभी प्रकार की चिकित्सा से सम्बन्धित विद्यार्थियों के विषय में भी लागू किया जाएगा।

(vii) सभी प्रकार की हेल्थकेयर शिक्षा में निवारक स्वास्थ्य देखभाल (प्रिवेंटिव हेल्थकेयर) और सामुदायिक चिकित्सा (कम्यूनिटी मेडिसिन) पर अधिक जोर दिया जाएगा।

(viii) तकनीकी शिक्षा में डिग्री और डिप्लोमा कार्यक्रम शामिल किए जाएंगे।

2. प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना (Adult Education and Lifelong Learning) –प्रौढ़ शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) वर्ष 2030 तक 100% युवा और वयस्क साक्षरता दर, वयस्क एवं सतत शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार करना।

(ii) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद के एक नए और सु–समायोजित घटक संगठन द्वारा एक उत्कृष्ट प्रौढ़ शिक्षण पाठ्यचर्या ढाँचा विकसित किया जाएगा जिसमे पाँच प्रकार के कार्यक्रम शामिल होंगे–1. बुनियादी साक्षरता और सख्या ज्ञान 2. जीवन कौशल 3. व्यावसायिक कौशल विकास 4. बुनियादी शिक्षा 5. सतत् शिक्षा।

(iii) बुनियादी ढाँचा सुनिश्चित किया जाएगा जिससे सभी इच्छुक प्रौढ़ो को प्रौढ़ शिक्षा और आजीवन अधिगम प्राप्त हो सकें। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल के लिए स्कूल के घटो के पश्चात और सप्ताहांत पर विद्यालय/विद्यालय परिसरो का उपयोग, प्रौढ़ शिक्षा पाठ्यक्रमो के लिए सार्वजनिक स्थान जो पुस्तकालय आईसीटी से सुसज्जित होंगे।

(iv) प्रौढ़ शिक्षा के लिए परिपक्व विद्यार्थियो को पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षकों/शिक्षकों/ प्रेरकों की आवश्यकता होगी। इसके लिए प्रशिक्षकों को प्रौढ़ शिक्षा केंद्रो में शिक्षण गतिविधियों को व्यवस्थित करने और नेतृत्व करने के साथ–साथ स्वयसेवक प्रशिक्षकों और स्थानीय के साथ समन्वय करने के लिए राष्ट्रीय, राज्य और जिला–स्तरीय ससाधन सहायता सस्थानो द्वारा प्रशिक्षित किया जाएगा।

(v) राज्य, साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा की दिशा मे प्रयासो को प्रोत्साहित करने के लिए गैर–सरकारी संगठनों और अन्य सामुदायिक संगठनों के साथ भी काम करेंगे।

(vi) विज्ञापनों और घोषणाओं और गैर सरकारी संगठनो और अन्य स्थानीय संगठनों की गतिविधियों एवं विभिन्न पहलकदमियों के माध्यम से भी प्रौढ़ शिक्षा के अवसरों का व्यापक प्रचार किया जाएगा।

(vii) समुदाय एवं शिक्षण सस्थानों में पढ़ने की आदत विकसित करने के लिए पुस्तकों की पहुँच और उपलब्धता बेहतर करायी जाएगी। इसके लिए पुस्तकों की ऑनलाइन उपलब्धता एवं डिजिटल पुस्तकालय को अधिक व्यापक बनाने हेतु कदम उठाये जाएँगे। प्रौढ़ शिक्षा के लिए गुणवत्तापूर्ण प्रौद्योगिकी–आधारित विकल्प, जैसे ऐप, ऑनलाइन कोर्स/मॉड्यूल, उपग्रह–आधारित टीवी चैनल, ऑनलाइन किताबें और आईसीटी से सुसज्जित पुस्तकालय और प्रौढ़ शिक्षा केंद्र आदि विकसित किए जाएंगे। इसके लिए गुणवत्तापूर्ण प्रौढ़ शिक्षा का सचालन ऑनलाइन या मिश्रित मोड में किया जा सकता है।

3. भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्धन (Promotion of Indian Language, Art and Culture)–भारतीय भाषाओं, कला और सस्कृति के सवर्धन से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) भारत शीघ्र ही अनुवाद एवं विवेचना से सम्बन्धित अपने प्रयासों का विस्तार करेगा। जिससे विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में उच्चतर गुणवत्ता वाली अधिगम सामग्री और अन्य लिखित

एव मौखिक सामग्री उपलब्ध हो सकेगी इसके लिए अनुवाद और व्याख्या सस्थान (Institute of Translation and Interpretation - IITI) की स्थापना की जाएगी।

(ii) शिक्षा एव सस्कृत विषयो मे चार वर्षीय बहु–विषयक बी.एड. डिग्री के द्वारा मिशन मोड द्वारा सस्कृत शिक्षको को बड़ी सख्या मे व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी।

(iii) भारत की इस सास्कृतिक सपदा का सरक्षण, सवर्धन एवं प्रसार देश की उच्चतर प्राथमिकता होनी चाहिए।

(iv) भारतीय भाषाओ के शिक्षण और अधिगम को विद्यालय और उच्चतर शिक्षा के प्रत्येक स्तर के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता होगी।

(v) भारतीय भाषाओ, तुलनात्मक साहित्य, सृजनात्मक लेखन, कला संगीत, दर्शनशास्त्र आदि के सशक्त विभागो एव कार्यक्रमो को देशभर मे आरम्भ किया जाएगा। साथ-ही-साथ इन विषयों मे (दोहरी डिग्री और चार वर्षीय बी.एड. सहित) डिग्री कोर्स विकसित किए जाएँगे।

(vi) सभी कोर्स को विकसित करने के लिए उत्कृष्ट टीम का विकास किया जाएगा।

(vii) राष्ट्रीय अनुसधान फाउडेशन (National Research Foundation -NRF) उन क्षेत्रों मे गुणवत्तापूर्ण अनुसधान हेतु वित्त मुहैया कराएगा जहाँ स्थानीय संगीत कला, भाषाओं एवं हस्त–शिल्प को प्रोत्साहित करने के लिए तथा सुनिश्चित करने के लिए विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हों।

(viii) उत्कृष्ट स्थानीय कलाकारों एवं हस्त–शिल्प में कुशल व्यक्तियों को अतिथि शिक्षक के रूप मे नियुक्त किया जाएगा।

(ix) भारत की विविधता, प्राकृतिक ससाधनों और समृद्ध विरासत के एक्सपोजर के लिए बच्चो को भ्रमण व ऑनलाइन या ई-पर्यटन आरम्भ करने, लिंक राज्यों में पेन-पाल बनाने, लिंक राज्य की भाषा सीखने आदि के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

(x) अधिक उच्चतर शिक्षण संस्थानों तथा उच्चतर शिक्षा के और अधिक कार्यक्रमों में मातृभाषा/ स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाएगा। कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाया जाएगा जिससे पहुँच और सकल नामांकन अनुपात दोनों में वृद्धि हो सके।

(xi) उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत अनुवाद और विवेचना, कला और संग्रहालय प्रशासन, पुरातत्व, कलाकृति संरक्षण, ग्राफिक डिजाइन एवं वेब डिजाइन के उच्चतर गुणवत्तापूर्ण कार्यक्रम एवं डिग्रियों का सृजन भी किया जाएगा।

(xii) शास्त्रीय, आदिवासी और लुप्तप्राय: भाषाओं सहित सभी भारतीय भाषाओं को संरक्षित और बढ़ावा देने के प्रयास किए जाएँगे।

(xiii)स्थानीय मास्टर्स उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय भाषाओं, कला एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए सभी आयु के लोगों के लिए छात्रवृत्ति की स्थापना की जाएगी। भारतीय भाषाओं में प्रवीणता को रोजगार अर्हता के मानदंडों के एक हिस्से के तौर पर शामिल किया जाएगा।

4. प्रौद्योगिकी का उपयोग और एकीकरण (Uses and Integration of Technology) –प्रौद्योगिकी का उपयोग और एकीकरण से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) एक स्वायत्त निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' (National Education Technical Forum) का गठन किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना स्व प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच के निम्नलिखित कार्य होंगे –

(ii) प्रौद्योगिकी आधारित हस्तक्षेप में केंद्र एवं राज्य सरकार की एजेंसियों को स्वतंत्र एवं प्रमाण आधारित परामर्श उपलब्ध कराना,

(iii) शैक्षिक प्रौद्योगिकी में बौद्धिक एवं संस्थागत क्षमता का निर्माण

(iv) इस क्षेत्र में रणनीतिक रूप से अत्यंत प्रभावी कार्यों की परिकल्पना करना और

(v) अनुसंधान एवं नवाचार के लिए नई दिशाओं को स्पष्ट करना

(vi) सतत् एवं नए सृजन को बढ़ावा देने के लिए, राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी शोधकर्ताओं, उद्यमियों और प्रौद्योगिकी की सहायता से क्षेत्रीय और राष्ट्रीय के विचारों से सम्मेलनों, कार्यशालाओं आदि का आयोजन करेगा।

(vii) सभी राज्यों तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान एवं अन्य संस्थानों द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में विकसित शिक्षण एवं अधिगम सम्बन्धी ई-कंटेंट दीक्षा प्लेटफॉर्म पर अपलोड किया जाएगा। इस प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध ई-कंटेंट का उपयोग शिक्षकों के व्यवसाय सम्बन्धी विकास के लिए किया जा सकता है। दीक्षा के साथ-साथ अन्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी सम्बन्धी उपायों के संवर्धन एवं प्रसार हेतु केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी विद्यालयी संस्थान को मजबूत बनाया जाएगा।

(viii) प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा प्लेटफॉर्म, जैसे दीक्षा/स्वयं सम्पूर्ण विद्यालयी और उच्चतर शिक्षा में समन्वित किए जाएँगे और इसमें उपयोगकर्ताओं द्वारा रेटिंग/समीक्षाएँ शामिल होंगी, जिससे कंटेंट विकासकर्ता प्रयोक्ता अनुकूल और गुणवत्तापूर्ण कंटेंट बना सकें।

(ix) मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा औपचारिक रूप से नवीन परिवर्तनकारी प्रौद्योगिकी को औपचारिक रूप से स्वीकार करने के प्रतिक्रियास्वरूप, राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन द्वारा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान का प्रारम्भ या विस्तार किया जाएगा।

(x) विद्यालयी विद्यार्थियों को भाषा सिखाने के प्रयासों को भारत की विविध भाषाओं के लिए स्वाभाविक भाषा प्रोसेसिंग को बढ़ावा देने के प्रयासों के साथ जोड़ा जाएगा।

(xi) विद्यालय स्तर पर अध्ययन हेतु नैतिक व समसामयिक मुद्दों में एनईटीएफ/एमएचआरडी द्वारा चिह्नित अत्यंत प्रभावशाली प्रौद्योगिकियों पर चर्चा को भी शामिल किया जाएगा। सतत शिक्षा हेतु उचित निर्देशात्मक एवं विमर्शात्मक सामग्री भी तैयार की जाएगी।

5. ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा (Online and Digitial Education)—ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव निम्नलिखित है–

(i) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म और क्रियान्वित आईसीटी–आधारित पहलुओं को अनुकूल और विस्तारित किया जाएगा। ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग समानता के सरोकारों को पर्याप्त रूप से सम्बोधित किया जाए।

(ii) डिजिटल प्रौद्योगिकी के उद्भव और विद्यालय से लेकर उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों पर शिक्षण अधिगम के लिए प्रौद्योगिकी के उभरते हुए महत्व को देखते हुए – यह नीति अग्रलिखित प्रमुख पहलुओं की सिफारिश करती है–

1. ऑनलाइन शिक्षा हेतु अध्ययन—ऑनलाइन शिक्षा की हानियों को कम करते हुए उसे शिक्षा के साथ एकीकृत करने के लाभों का मूल्यांकन करने के लिए और विद्यार्थियों को उपकरणों की आदत, ई-कंटेंट का सबसे पसंदीदा प्रारूप आदि जैसे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करने के लिए भी इसके साथ-साथ प्रमुख अध्ययन संचालित करने के लिए एनईटीएफ, सीआईईटी, एनआईओएस इग्नू, आईआईटी, एनआईटी आदि जैसी उपयुक्त एजेंसियों की पहचान की जाएगी। इन पायलट अध्ययनों के परिणामों को सार्वजनिक रूप से सूचित किया जाएगा और निरंतर सुधार के लिए इनका उपयोग किया जाएगा।

2. डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर—भारत के क्षेत्रफल, विविधता, जटिलता और डिवाइस अर्थबोध को हल करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में खुले, परस्पर, विकसित, सार्वजनिक डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण करने की आवश्यकता है, जिसका उपयोग कई प्लेटफॉर्मों और पॉइंट सॉल्यूशंस द्वारा किया जा सकता है। इससे यह सुनिश्चित होगा कि प्रौद्योगिकी आधारित समाधान प्रौद्योगिकी में तेजी से प्रगति के साथ पुराने न हो जाएँ।

3. ऑनलाइन शिक्षण मंच और उपकरण—शिक्षार्थियों की प्रगति की निगरानी के लिए शिक्षकों को सहायक उपकरण के एक संरचित, उपयोगकर्ता अनुकूल, विकसित सेट प्रदान करने के लिए स्वयं, दीक्षा जैसे उपयुक्त ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का विस्तार किया जाएगा।

4. सामग्री निर्माण, डिजिटल रिपॉजिटरी और प्रसार—कोर्स वर्क, लर्निंग गेम्स और सिमुलेशन, ऑगमेंटेड रियलिटी और वर्चुअल रियलिटी के निर्माण सहित कंटेन्ट की एक डिजिटल रिपाजिटरी विकसित की जाएगी, जिसमें प्रभावशीलता और गुणवत्ता के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा रेटिंग करने के लिए एक स्पष्ट सार्वजनिक प्रणाली होगी।

5. डिजिटल अंतर को कम करना—जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है, जो डिजिटल पहुँच से अत्यधिक सीमित है, इसके लिए जनसंचार माध्यम जैसे टेलीविजन, रेडियो और सामुदायिक रेडियो का उपयोग टेलीकास्ट और प्रसारण के लिए बड़े पैमाने पर किया जाएगा। इस तरह के शैक्षिक कार्यक्रमों को छात्रों की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न भाषाओं में 24/7 उपलब्ध कराया जाएगा। सभी भारतीय भाषाओं में सामग्री पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और इस पर विशेष बल दिया जाएगा।

6. वर्चुअल लैब्स—वर्चुअल लैब्स बनाने के लिए दीक्षा, स्वयं और स्वयंप्रभा जैसे मौजूदा ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का उपयोग किया जाएगा। एसईडीजी विद्यार्थियों और शिक्षकों को पहले से लोड की गई सामग्री वाले टैबलेट जैसे उपयुक्त डिजिटल उपकरण पर्याप्त रूप से देने की संभावना पर विचार किया जाएगा और उन्हें विकसित किया जाएगा।

7. शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण और प्रोत्साहन—शिक्षकों को विद्यार्थी-केन्द्रित अध्यापन में गहन प्रशिक्षण दिया जाएगा तथा इसके साथ ही उनके द्वारा ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्मों और उपकरणों का उपयोग करके उच्चतर गुणवत्ता वाली ऑनलाइन सामग्री का स्वयं सृजन किया जाएगा। ई-सामग्री के साथ-साथ छात्रों में आपसी सहयोग स्थापित करने के लिए शिक्षक की भूमिका पर जोर दिया जाएगा।

8. ऑनलाइन मूल्यांकन और परीक्षाएँ—उपयुक्त निकाय, जैसे कि प्रस्तावित राष्ट्रीय मूल्यांकन केन्द्र अथवा 'परख' स्कूल बोर्ड, एनटीए और अन्य चिह्नित निकाय मूल्यांकन रूपरेखाओं का निर्धारण

करेंगे और कार्यान्वित करेंगे, जिसमें दक्षताओं पोर्टफोलियो, रूब्रिक्स मानकीकृत मूल्यांकन और मूल्यांकन विश्लेषण के डिजाइन शामिल होंगे। 21वीं सदी के कौशल पर ध्यान केंद्रित करते हुए शिक्षा प्रौद्योगिकियों का उपयोग कर मूल्यांकन के नए तरीकों का अध्ययन किया जाएगा।

9. सीखने के मिश्रित मॉडल–डिजिटल शिक्षा व शिक्षण को बढ़ावा देने के साथ ही परंपरागत व्यक्तिगत रूप से आमने-सामने सीखने के महत्व को भी पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है। तदनुसार, विभिन्न विषयों के लिए सीखने के विभिन्न मिश्रित प्रभावी मॉडल उपयुक्त प्रतिकृति के लिए चिह्नित किए जाएँगे।

10. मानकों को पूरा करना–जैसे-जैसे ऑनलाइन/डिजिटल शिक्षा पर शोध सामने आ रहे हैं एनईटीएफ और अन्य उपयुक्त निकाय ऑनलाइन/डिजिटल शिक्षण के लिए सामग्री प्रौद्योगिकी और शिक्षाशास्त्र के मानक स्थापित करेंगे। ये मानक राज्यों, बोर्डों, विद्यालयों और विद्यालय परिसरों, उच्चतर शिक्षण संस्थानों आदि द्वारा ई–लर्निंग के लिए दिशा निर्देश तैयार करने में सहायता करेंगे।

11. विश्व स्तरीय डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर, शैक्षिक डिजिटल कंटेंट सामग्री और क्षमता का निर्माण करने के लिए एक समर्पित इकाई का सृजन–विद्यालय और उच्चतर शिक्षा दोनों की ई-शिक्षा आवश्यकताओं पर ध्यान देने के लिए मंत्रालय में डिजिटल बुनियादी ढाँचे, डिजिटल सामग्री और क्षमता निर्माण की व्यवस्था करने के उद्देश्य के लिए एक समर्पित इकाई की स्थापना की जाएगी।

10.9 : भाग–IV : क्रियान्वयन की रणनीति (PART-IV : STRATEGY OF IMPLEMENTATION)

1. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का सशक्तिकरण (Empowerment of Central Advisory Board of Education)

(i) अधिगम और शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय को शिक्षा मंत्रालय के रूप में पुनः नामित किया जाए।

2. वित्त पोषण : सभी के लिए वहनीय एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा (Financing Affordable and Quality Education for all)

(i) यह शिक्षा नीति, केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा, शिक्षा में निवेश को पर्याप्त रूप से बढ़ाने का समर्थन करेगी।

(ii) विशेष रूप से शिक्षा से जुड़े महत्वपूर्ण मदों और संघटकों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी।

(iii) बुनियादी सुविधाओं एवं संसाधन सम्बन्धी एकमुश्त खर्चों के अलावा यह नीति एक शिक्षा प्रणाली विकसित करने के लिए वित्त पोषण हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण दीर्घकालिक क्षेत्रों की पहचान करेगी।

3. क्रियान्वयन (Implementation)

(i) क्रियान्वयन के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्त होंगे : पहला, नीति की भावना और प्रयोजन क्रियान्वयन, दूसरा, नीतिगत पहलों को चरणबद्ध तरीके से क्रियान्वित करना, तीसरा, प्राथमिकीकरण द्वारा काम को क्रमबद्ध तरीके से किया जाना, चौथा, क्रियान्वयन की व्यापकता, पाँचवाँ

केन्द्र और राज्यो के बीच सावधानीपूर्वक योजना निर्माण, संयुक्त निगरानी और समन्वयपूर्ण क्रियान्वयन करना, छठा, सतोषजनक निष्पादन के लिए मानव, सरचनागत और वित्तीय ससाधनो को समय पर जुटाना।

(ii) सम्बद्ध मत्रालयो के समन्वय से एव उनसे परामर्श करके केन्द्र एवं राज्य दोनो स्तरो पर विषयवार क्रियान्वयन विशेषज्ञ समितियो का गठन किया जाएगा।

(iii) नीति के कार्यान्वयन मे की गई प्रगति की वार्षिक संयुक्त समीक्षा

(iv) नीति का मूल्याकन और फाइन ट्यूनिंग के साथ-साथ बदलाव, यदि आवश्यकता हो तो 2030 तक किए जाने चाहिए।

(v) वर्ष 2040 के बाद नीति की व्यापक समीक्षा

10.10 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के लाभ (MERITS OF NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के लाभ निम्नलिखित हैं–

(i) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से शैक्षिक क्षेत्र में तकनीकी को बढ़ावा दिया जा रहा है।

(ii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से शैक्षिक पाठ्यक्रम में भाषाओं को लेकर कई विकल्प रखे गए हैं। यदि शैक्षिक पाठ्यक्रम में कोई विद्यार्थी अपनी क्षेत्रीय भाषा अथवा मातृभाषा को पढ़ना चाहता है तो वह आसानी से पढ़ सकता है। वही शैक्षिक पाठ्यक्रम में भारतीय प्राचीन भाषाओं को पढ़ने का भी विकल्प छात्रो के समक्ष रखा गया है।

(iii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2025 तक प्राथमिक विद्यालयों मे कक्षा तीन तक के सभी विद्यार्थियों के लिए सख्यात्मक ज्ञान तथा साक्षरता को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन की योजना तैयार की जाएगी।

(iv) स्वास्थ्य नीति के तहत विद्यार्थियों के स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया जाएगा जिसके साथ छात्रो के लिए स्वास्थ्य कार्ड भी बनाये जाएँगे।

(v) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से शिक्षकों को समय–समय पर उनके कार्य प्रदर्शन के आधार पर पदोन्नति को भी रखा गया है।

(vi) राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे 2030 तक अध्यापन के लिए B.Ed की डिग्री को 4 वर्ष की न्यूनतम डिग्री योग्यता में सम्मिलित कर दिया गया है। यानि 2030 तक B.Ed का कोर्स 4 साल का हो चुका है।

(vii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्दर उच्च शिक्षा से संबधित एमफिल की डिग्री को भी खत्म किया जा रहा है।

(viii) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् 2022 तक शिक्षको के लिए व्यवसायिक मानक को विकसित करेगी तथा एनसीईआरटी के परामर्श पर अध्यापको की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक पाठ्यक्रम की चर्चा की विषयवस्तु को भी तैयार किया जाएगा।

(ix) विद्यार्थियों को जिस क्षेत्र में अधिक रुचि है जैसे–खेल, कला, बॉक्सिंग, आदि में विद्यार्थियों को बढ़ावा दिया जाएगा।

(x) राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ-साथ उनके कौशल पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाएगा। वहीं मेन सिलेबस में भी एक्स्ट्रा करिकुलर एक्टिविटीज को शामिल किया जा रहा है।

(xi) विद्यार्थियों पर पढ़ाई का बोझ कम करने के लिए हर संभव कोशिश - नई शिक्षा नीति में की गई है। जिसमें पढ़ाई को आसान बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल शैक्षिक पाठ्यक्रम में किया जाएगा।

(xii) विद्यार्थियों पर बोर्ड परीक्षाओं का बोझ कम करने के लिए बोर्ड परीक्षाओं को भी बदला जाएगा जिसमें 1 साल में दो बार छात्रों की परीक्षाएँ की जाएगी।

(xiii) विद्यार्थियों को ऑफलाइन कक्षाओं के साथ ऑनलाइन माध्यम से भी पाठ्यक्रम कोर्स उपलब्ध करवाए जाएंगे।

(xiv) महाविद्यालयों की स्वायत्तता 15 वर्षों में समाप्त हो जाएगी तथा क्रमिक सहायता प्रदान करने के लिए एक चरणबद्ध प्रणाली की स्थापना भी की जाएगी।

(xv) देश के बड़े संस्थान जैसे आईआईटी और आईआईएम के लिए वैश्विक स्तर पर मानकों हेतु बहु विषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय की स्थापना भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत कराई जाएगी।

(xvi) वहीं कानूनी तथा चिकित्सा क्षेत्र को छोड़कर उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एकल निकाय के रूप में भारतीय उच्च शिक्षा आयोग का गठन किया जाएगा।

(xvii) शैक्षिक पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करने तथा उसे तकनीकी माध्यम से बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच की एक स्वायत्त निकाय की स्थापना की जाएगी जिससे शिक्षा तथा प्रशासनिक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से विचारों का आदान-प्रदान संभव हो सके।

10.11 : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की कमियाँ (DEMERITS OF NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की कुछ महत्वपूर्ण कमियाँ इस प्रकार है –

(i) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भाषा एक नकारात्मक कारक के रूप में प्रतीत होती है।

(ii) भारत में असंतुष्ट शिक्षक और छात्र अनुपात की समस्या है। इसलिए प्रत्येक विषय के लिए अकादमिक संस्थानों में मातृ भाषाओं को प्रस्तुत करना एक समस्या है। यह केवल इसलिए है क्योंकि एक सक्षम शिक्षक खोजना कई बार एक चुनौती है।

(iii) भारत सरकार चीन, जर्मनी, फ्रांस जैसे अन्य देशों के कदमों पर चलना चाहती थी, जहाँ विदेशी छात्र को देश को बेहतर समझने के लिए देश की भाषा सीखने की आवश्यकता है और भारत में 22 सक्रिय भाषाएँ है और अन्य देशों की तरह एक भी राष्ट्रीय भाषा नहीं है।

(iv) राष्ट्रीय शिक्षा नीति समाज के वर्गों के मध्य मतभेदों को और बढ़ाएगी।

(v) सरकारी विद्यालयों में संबंधित विद्यार्थियों को क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाया जाएगा, निजी संस्थानों में विद्यार्थियों को प्रारंभिक कक्षाओं में अंग्रेजी से परिचित कराया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 कब प्रस्तावित की गई? इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को कितने विषयों में विभाजित किया गया है। इनका विवेचन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की विशेषताएँ बताइए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में शिक्षक शिक्षा के बारे में क्या सुझाव दिये गये।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के सिद्धान्त बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की प्रस्तावित समिति का क्या नाम था।
   (अ) कस्तूरीरगन समिति (ब) श्री प्रकाश समिति
   (स) हसा समिति (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में विषयों को कितने भागों में विभाजित किया गया है।
   (अ) चार (ब) आठ
   (स) पाँच (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(ब)
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को भारत सरकार ने मंजूरी दी–
   (अ) 20 जुलाई 2020 (ब) 20 अगस्त 2020
   (स) 20 जून 2020 (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)
4. वर्तमान शिक्षा नीति के पैटर्न में स्कूली शिक्षा को कितने साल का किया–
   (अ) 15 साल (ब) 20 साल
   (स) 25 साल (द) इनमें से कोई नहीं। **उत्तर**–(अ)

■■

अध्याय

11

संगठन के रूप मे विद्यालय

[SCHOOL AS AN ORGANIZATION]

11.1 विद्यालय संगठन का अर्थ
(MEANING OF SCHOOL ORGANIZATION)

आधुनिक युग मे शैक्षिक व्यवस्था अत्यधिक जटिल हो गयी है। इसके अनेक पक्षो ने आधुनिक तथा जटिल स्वरूप धारण कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण कार्य मे सगठनात्मक तत्व आवश्यक हो गया है। शिक्षा तथा शिक्षा व्यवस्था के सभी अगो को सुचारु रूप से क्रियान्वित करने के लिए एक सस्था की आवश्यकता होती है। यह सस्था शिक्षा के सभी अगो का सुचारु रूप से सचालन करती है। सामान्य रूप से किसी सचालन करने वाली सस्था को अथवा उसके सम्पूर्ण ढाँचे को ही हम विद्यालय का सगठनात्मक तत्व अथवा विद्यालय सगठन कह सकते है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त विद्यालय का सगठनात्मक पक्ष मुख्यत उन व्यवस्थाओ से सम्बन्धित है जो निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायता देती है। विद्यालय-सगठन के अन्तर्गत भौतिक एव मानवीय तत्वो को साध्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध तथा सुव्यवस्थित किया जाता है। यदि एक विद्यालय की स्थापना करनी हो, तो उसके लिए स्थान, वातावरण, जल, भवन, फर्नीचर, शैक्षिक साज-सज्जा, शिक्षक एव अन्य कर्मचारियो आदि का प्रबन्ध करना होगा तथा अभीष्ट साध्य की प्राप्ति के लिए इन तत्त्वो को सुव्यवस्थित करना होगा। उदाहरणार्थ, शिक्षा के चरित्र निर्माण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमे विद्यालय मे पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओ, नैतिक वातावरण, सामाजिक क्रियाओ आदि का सगठन इस प्रकार करना होगा, जिससे बालको का चरित्र-निर्माण उचित दिशा मे हो सके। उपयुक्त वातावरण निर्मित करने के लिए हमे योग्य एव चरित्रवान शिक्षको की भी नियुक्ति करनी होगी। विद्यालय-सगठन वह सरचना है जिसमे शिक्षक, छात्र, प्रधानाध्यापक, परिनिरीक्षक तथा अन्य व्यक्ति विद्यालय की क्रियाओ को चलाने के लिए मिलकर कार्य करते है। शैक्षिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए समस्त उपलब्ध भौतिक एव मानवीय तत्त्वो की समुचित व्यवस्था करना विद्यालय का सगठन कहलाता है।

सगठन के अन्तर्गत केवल व्यवस्था ही नहीं वरन् विभिन्न विद्यालयीय तत्त्वो मे सामजस्य या समन्वय स्थापित करना भी अनिवार्य है। सभी आवश्यक तत्त्वो का प्रबन्ध करके उनमे इस प्रकार समन्वय स्थापित

किया जाना चाहिए जिससे निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक तत्त्व का अधिकतम उपयोग कम-से-कम विघ्न एवं बाधा के अभाव में किया जा सके। यदि विभिन्न वस्तुओं के प्रयोग एवं उनके काम मे उचित समन्वय का अभाव है, तो विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से संचालित नहीं हो सकेगा। विद्यालय मे पुस्तकों, पुस्तकालयाध्यक्ष एवं भवन आदि सभी का प्रबन्ध रहता है, परन्तु यदि पुस्तकों का उचित प्रकार से वर्गीकरण नहीं किया गया है और विद्यालय की समय-तालिका में छात्रों को पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त करने के लिए विशेष समय नहीं दिया गया है अथवा बहुत बड़ी संख्या में छात्र एक ही समय मे पुस्तकें पढ़ने व लेने हेतु पुस्तकालय में एकत्रित हों अथवा पुस्तकालयाध्यक्ष का इस कार्य के लिए नियत समय छात्रों की सुविधा के समय से भिन्न हो तो विद्यालय में पुस्तकालय सम्बन्धी सुविधाएँ एवं व्यवस्था होते हुए भी समय के अभाव में पुस्तकालय का अधिकतम लाभ छात्रों को नहीं मिल पाएगा।

सगठन के अर्थ को समझने से स्पष्ट हो जाता है कि संगठन को ही लक्ष्य न बनाया जाए। विद्यालय-सगठन को तो एक ऐसे साधन के रूप में ग्रहण करना चाहिए कि अभीष्ट शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। सगठन वह यन्त्र है जिसको विधिवत् संचालित करके लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। इसको स्वय में साध्य बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, वरन् इसको सदैव उस लक्ष्य के अधीन रखा जाना चाहिए, जिसकी प्राप्ति के लिए नियोजन किया जा रहा है।

आधुनिक युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक भाग में देखा जा रहा है। विद्यालय की धारणा अब उतनी साधारण नहीं रह गई जितनी पहले हुआ करती थी। लगभग पचास वर्ष पूर्व विद्यालय प्रबन्धन बहुत साधारण विषय होता था जिसका प्रबन्धन एवं नियन्त्रण बहुत सुगम होता था लेकिन अब इक्कीसवीं शताब्दी मे मामलों का संगठन एवं प्रबन्धन तुलनात्मक रूप से कठिन होता जा रहा है।

जे. बी. सीयर्ज (J. B. Sears) के कथनानुसार, "यह (गठन) एक मशीन के समान है जो व्यक्तियों, वस्तुओं, विचारों, धारणाओं, प्रतीकों, नियमों, सिद्धान्तों या इन सब के योग से बनती है। मशीन अपने आप भी चल सकती है और मनुष्य के निर्णय और इच्छा के अधीन भी चल सकती है।"

"It is a machine for doing work. It (organisation) may be composed primarily of persons, of materias, of ideas, of concepts, symbols, forms, rules, principles or more often, of a combination of these. The machine may work automatically or its operation may be subject to human judgement and will."

हम कह सकते है कि 'गठन' स्वस्थ शरीर के समान है, स्वास्थ्य एक सफल मानव–जीवन की पहली आवश्यकता है।

डब्ल्यू. एच. रायबर्न (W. H. Ryburn) के कथनानुसार, "गठन का सीधा सादा तात्पर्य उन व्यावहारिक साधनों से है जिन्हें अपनाकर हमें विश्वास हो जाता है कि इनके प्रयोग से हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति मे ज्यादा से ज्यादा सहायता प्राप्त होगी और उनसे हमारे बच्चों को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।"

"Organisation simply means the practical measures which we take to ensure that the system of work we use will be of the greatest possible assistance in carrying our aims and of the greatest benefit to our children."

अत विद्यालय के गठन से अभिप्राय है संस्थान की स्थापना। विद्यालय स्थापित करने के लिये भूमि अर्जन, भवन निर्माण, कक्षाओं के लिये फर्नीचर उपलब्ध करना, विद्यालय में भर्ती करने वाले विद्यार्थियों पर विचार करना शिक्षकों के चुनाव आदि पर बल दिया जाता है।

सर्वप्रथम विद्यालय की स्थापना योजनाबद्ध क्रम से होती है ताकि वह सुचारु रूप से चल सके। उसके बाद प्रशासन होता है जिसका सम्बन्ध विद्यालय की क्रियाशीलता से है।

11.2 विद्यालय संगठन का स्वरूप
(NATURE OF SCHOOL ORGANIZATION)

विद्यालय संगठन किसी सामाजिक समूह द्वारा अपने कल्याण हेतु किये जाने वाले कार्यों की एक सामाजिक क्रिया है। सामान्यत: इसका स्वभाव इस प्रकार है–

1. यह एक सामाजिक गतिविधि है जो समाज द्वारा समाज में समाज के कल्याण हेतु किये जाने वाले कार्यों की जाती है।
2. यह समय के साथ-साथ बढ़ती एव विकसित होती है।
3. भविष्य में अच्छे लाभ प्राप्त करने के लिये यह बहुत अच्छा निवेश है।
4. यह लाभ न कमाने वाला उद्यम है।
5. श्रेष्ठ मानवीय व्यवहार इसका उत्पादन है जिसकी तुलना धन से नहीं की जा सकती क्योंकि श्रेष्ठ मानवीय व्यवहार धन की अपेक्षा अद्वितीय है।
6. यह दूसरों की सेवा है। स्वाभाविक है कि इसमें किसी प्रकार की स्वार्थपरता नहीं होती।
7. एक बार विद्यालय रूपी पौधे के बीज बो दिये जाते हैं, तो फिर वे बढ़ते और विकसित होते जाते हैं केवल देख भाल की जरूरत होती है।
8. यह किसी एक व्यक्ति का प्रयत्न नहीं है। बल्कि यह तो मनुष्यों का मिश्रित श्रम है।
9. यह कुछ दिनों या कुछ महीनों की मेहनत नहीं है। यह तो असीमित समय का श्रम है।
10. विद्यालय की श्रेष्ठता इसके निर्देशक एव दार्शनिक पर निर्भर करती है। निश्चय ही यह उस व्यक्ति के दर्शन को प्रतिबिम्बित करती है।
11. यह लोचशील होती है।

11.3 विद्यालय संगठन का महत्व
(IMPORTANCE OF SCHOOL ORGANIZATION)

विद्यालय की स्थापना का मुख्य ध्येय बालक का सर्वांगीण विकास करना है। इसलिए विद्यालय संगठन का महत्व भी इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सक्रिय योग प्रदान करने में होता है। विद्यालय संगठन का उद्देश्य बालकों को ऐसे अवसर प्रदान करना है, जिनमें उनकी समस्त जन्मजात शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास सम्भव हो सके। इसके अतिरिक्त उनकी मूल प्रवृत्तियों का उपयोग एव शोधन तथा रुचियों का स्वस्थ प्रकाशन एवं परिष्करण हो सके। बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करने की दृष्टि से विद्यालय संगठन का ध्येय–उसके शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एव सामाजिक गुणों का विकास करते हुए उसे इस योग्य बनाना है कि वह भावी जीवन में अपने दायित्वों का निर्वाह सफलता एव सच्चाई के साथ कर सके।

अत: स्पष्ट है कि विद्यालय का संगठन बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए, परन्तु यह तथ्य नहीं भुलाया जाना चाहिए कि बालक का विकास शून्य में विचरण करने हेतु नहीं किया जा रहा है, वरन् उसे तो समाज का एक कुशल एव सफल सदस्य बनाना है। समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय की स्थापना करता है। विद्यालय मानव-जाति की अनुपम उपलब्धियों को संजोकर रखता है तथा उन्हें भावी सन्तति को विरासत के रूप में प्रदान करता है। इस

प्रकार विद्यालय-सगठन का उद्देश्य–बालको को इस प्रकार से शिक्षित करना है कि वे समाज के आदर्शों, मान्यताओ, विश्वासो एव मूल्यो की रक्षा कर सके। कुछ विद्वानो का मत है कि विद्यालय समाज का लघु रूप है जिसमे समाज की क्रियाएँ, विचारधाराएँ, आवश्यकताएँ एव सस्कृति आदि अपने सर्वोत्तम रूप मे प्रतिबिम्बित होती है। विद्यालय का सगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह सामाजिक जीवन का ऐसा केन्द्र बन सके, जहाँ बालक को सामाजिक जीवन का वास्तविक एव उपयोगी प्रशिक्षण मिल सके। विद्यालय सगठन का लक्ष्य–सामाजिक आवश्यकताओ के सन्दर्भ मे बालक का समन्वित बहुपक्षीय विकास होना चाहिए जिसमे वह स्वय अपने, अपनी जाति, समाज, राष्ट्र और अन्तत: मानव-जाति के लिए वरदान सिद्ध हो सके, परन्तु स्मरण रहे कि विद्यालय भी समाज से यह अपेक्षा करता है कि वह उसकी सुरक्षा करते हुए उसकी अभिवृद्धि करने के लिए यथाशक्ति सहायता दे।

1. बालक की सर्वांगीण शक्तियो का विकास
2. छात्रो मे आदर्श, विश्वास एव मूल्यो को विकसित करना
3. समाज की आवश्यकता की पूर्ति हेतु
4. राष्ट्रीय एव राज्य द्वारा निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति
5. सास्कृतिक मूल्यो का सरक्षण एव सास्कृतिक विरासतो का हस्तातरण।

11.4 विद्यालय संगठन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF SCHOOL ORGANIZATION)

शिक्षा के उद्देश्यो की अधिकतम प्राप्ति हेतु संगठन का कुछ सुविचारित सिद्धान्तों पर आधारित होना परमावश्यक है। अनेक विद्वानों ने विद्यालय-संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनमे से कुछ प्रमुख एव मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. बाल केन्द्रित (Child Centred)–विद्यालय का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वोन्मुखी विकास करना है। इस दृष्टि से संगठन बाल-केन्द्रित होना चाहिए। यह संगठन ऐसा हो जिसके द्वारा बालको की विभिन्न योग्यताओं, अभिरुचियों, शक्तियों, सवेगों एवं मूल-प्रवृत्तियो को स्वस्थ दिशा मे विकसित किया जा सके। सगठन द्वारा विद्यालय मे ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए जिसमें बालक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं चारित्रिक गुणों को सरलता से प्राप्त कर सकें। विद्यालय की विभिन्न क्रियाओ को, उनके विकास की प्रकृति एवं गति, उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं, उनके पूर्व-अनुभवों तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को दृष्टिगत रखकर व्यवस्थित किया जाना चाहिए। ऐसा करके प्रत्येक बालक को अपना सर्वोत्तम विकास करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जा सकेंगी।

2. समाज-केन्द्रित (Society Centred)–सगठन बाल-केन्द्रित होने के साथ-साथ, समाज-केन्द्रित भी होना चाहिए, क्योकि शिक्षा का उद्देश्य–बालको को समाज का एक सक्रिय, उपयोगी एव कुशल सदस्य बनाना है। संगठन में बालको की विकास सम्बन्धी क्रियाओं के आयोजन के साथ-साथ समाज की प्रगति हेतु उचित व्यवस्था का होना भी परमावश्यक है। संगठन के द्वारा समाज मे गत्यात्मक उद्देश्य को भी अभिव्यक्त किया जाना चाहिए, जिससे समाज भावी प्रगति की ओर अग्रसर हो सके। अत विद्यालय-संगठन बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए भी समाज के आदर्शों, आकाक्षाओ, आवश्यकताओं, मूल्यों, सस्कृति आदि पर आधारित होना चाहिए। **उदाहरणार्थ**–भारत एक कृषि-प्रधान देश है, परन्तु वह फिर भी अपने देश की खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूर्ण करने मे असफल रहा है। अनाज के अधिक उत्पादन के लिए कृषि को वैज्ञानिक तथा तकनीकी आधार देना आवश्यक हो गया। इसलिए विद्यालय में कृषि की आधुनिक विधियो के शिक्षण पर बल दिया जा रहा है।

आधुनिक माँग के अनुसार देश का औद्योगीकरण भी करना परमावश्यक है। इस दृष्टि से विद्यालय में आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी (Technology), इंजीनियरिंग आदि विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है।

आधुनिक माँग के अनुसार आज शिक्षा को व्यवसाय या पेशा-उन्मुख (Job-oriented) बनाने पर बल दिया जा रहा है जिससे शिक्षित बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके।

3. लोकतन्त्रीय सिद्धान्त (Democratic Principle)—जनतन्त्र की सफलता हमारे विद्यालयों पर ही निर्भर है। ये विद्यालय ही हैं जो स्वतन्त्रता के स्तम्भों अर्थात भावी नागरिकों का निर्माण करते हैं। बालकों में आदर्श नागरिकों के गुणों का विकास विद्यालय की व्यवस्था, क्रिया-कलाप एवं परम्पराओं के माध्यम से किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का संगठन लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार हो।

लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार संगठन एवं प्रशासन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

1. वैयक्तिक भेदों को ध्यान में रखकर विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं की व्यवस्था की जाए।
2. अवसर की समानता प्रदान करने के लिए व्यवस्था की जाए।
3. बालक की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया जाए। दूसरे शब्दों में, छात्रों को स्वतन्त्रता प्रदान की जाए।
4. शिक्षकों को व्यावसायिक स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए अवसर प्रदान किये जाएँ।
5. विद्यालयों में पाठ्यचर्या तथा शिक्षण-विधियों को लचीले सिद्धान्त के अनुकूल व्यवस्थित किया जाए।
6. विद्यालयी संगठन एवं प्रशासन विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित किया जाए।
7. विद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था को सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित किया जाए।

4. उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपभोग का सिद्धान्त (Principle of Maximum Utilization of Available Sources)—जैसा कि हम देख चुके हैं, अभीष्ट शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यालय संगठन के अन्तर्गत उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होना चाहिए। इस दृष्टि से संगठन द्वारा विभिन्न मानवीय एवं भौतिक तत्त्वों में अधिक-से-अधिक सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए जिससे इनका सर्वोत्तम उपयोग करके शक्ति, समय एवं धन का अधिकतम सदुपयोग हो सके। शिक्षकों की नियुक्ति तथा विद्यालय में प्रयुक्त होने वाली समस्त सामग्री-शिक्षण विधियाँ, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ, पाठ्य-पुस्तकें व अन्य साज-सज्जा बालक तथा समाज की आवश्यकताओं व सामर्थ्य को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाएँ, अन्यथा उनका अपव्यय होगा तथा संगठन से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो पाएगा।

5. लोच का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)—मानव-प्रकृति एवं समाज तथा उसकी आवश्यकताएँ परिवर्तनशील हैं। जब विद्यालय का लक्ष्य—बालक एवं समाज का उचित दिशाओं में विकास करना है तो इनकी बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल विद्यालय-संगठन में समय-समय पर परिवर्तन होना भी नितान्त आवश्यक है। अतः विद्यालय-संगठन में लोच अथवा परिवर्तनशीलता का गुण होना चाहिए। यदि संगठन में दृढ़ता एवं एकरूपता आ गई, तो यह बालक एवं स्थानीय समाज की माँगों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहेगा।

11.5 विद्यालय संगठन के क्षेत्र (SCOPES OF SCHOOL ORGANIZATION)

विद्यालय संगठन के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित है–

1. विभिन्न शिक्षण कार्यों को नियोजित करना।
2. शैक्षिक कार्यक्रमो का निर्धारण।
3. शैक्षिक गुणो का विकास।
4. सुव्यवस्थित तथा उपयोगी पाठ्यक्रम का निर्धारण।
5. विद्यालय, शिक्षक तथा विद्यार्थियों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
6. शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखना।

इस प्रकार विद्यालय संगठन के अनेक मूलभूत क्षेत्र हैं जहाँ कि विद्यालय संगठन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। निश्चय ही विद्यालय संगठन के आभाव में सुचारु शिक्षा-शिक्षण की कल्पना करना भी बेमानी है।

11.6 संगठन एवं प्रशासन में भेद (DIFFERENCE BETWEEN ORGANIZATION AND ADMINISTRATION)

बहुधा लोग संगठन तथा प्रशासन का एक ही अर्थ लगाते हैं वस्तुतः ऐसा नहीं है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, संगठन एक विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन रूपी ढाँचा अथवा संरचना है और विद्यालय के प्रशासकीय पक्ष मे मुख्यतः उनका संचालन एवं परिचालन निहित है। उत्तम संगठन अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सम्भावना ही उत्पन्न करता है, परन्तु प्रशासन द्वारा उसकी प्राप्ति का क्रमिक रूप से प्रयास किया जाता है। जैसी जिस समय आवश्यकता होती है, उसी के अनुसार संगठन में परिवर्तन करके उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रशासनिक कार्य किया जाता है। इसी कारण यह कहा जाता है कि विद्यालय के प्रधान को एक उत्तम प्रशासक होने के साथ-साथ उत्तम संगठनकर्त्ता भी होना चाहिए, क्योंकि घटिया संगठन से उत्तम प्रशासक के सभी प्रयास निरर्थक हो जायेंगे।

संगठन की अपेक्षा प्रशासन का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक है। विद्यालय-प्रशासक वस्तुतः संगठनात्मक एवं प्रशासकीय–दोनो ही पक्षों के लिए उत्तरदायी है। विद्यालय-संगठन एवं संरचना है, जिसको निर्मित एवं सचालित करना प्रशासक का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अमरीका के प्रसि विद्वान ग्यूलिक (Gulick) ने प्रशासकों के कार्य का अध्ययन करके सि किया है कि उनके कार्यों में संगठन में एवं प्रशासन-सम्बन्धी कार्य निहित है। उनके अध्ययन के परिणामों के आधार पर एक प्रशासक के प्रमुख कार्य–विद्यालय व्यवस्था का नियोजन, संगठन, समन्वय एवं संचालन माने गये हैं। अतः उसे प्रशासकीय कार्यों के साथ-साथ संगठनात्मक कार्य, जैसे–शिक्षकों की नियुक्ति, विद्यालय के लिए आवश्यक साज-सज्जा एवं धन का प्रबन्ध आदि भी करने होते हैं। प्रशासक की कुशलता इसमें है कि वह विद्यालय में भौतिक एवं मानवीय तत्त्वो का समन्वय एवं संचालन इस प्रकार से करे कि अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति सरलता से हो सके। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संगठन एवं प्रशासन घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित ही नहीं, वरन् अन्योन्याश्रित है।

अन्त मे, हम **ऑर्थर बी. मोहमेन** के शब्दो मे कह सकते है, "शिक्षा को योजनाओं की संरचना, प्रक्रियाओं, कार्यकर्त्ताओं, सामग्री, विद्यालय-भवन तथा वित्त के एक निश्चित संगठन के माध्यम से कार्य

करना चाहिए। कार्य का स्तर सदैव उन कार्यकर्त्ताओं के गुणों, कुशलताओं तथा आदर्शों पर निर्भर रहता है, जो अपने दृष्टिकोण एवं दैनिक प्रयासों से शिक्षा की सम्पूर्ण सामग्री में जीवन का संचार करते हैं।

"Education must function through a definite organization of structure of plans, procedures, personnel, material, plant and finance. The level of operation is at all times dependent upon the quality, technical skill and idealism of personnel who, through their attitude and daily effort, breathe life into mechanics of structure."

Arthur B. Moehlman

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. विद्यालय संगठन का क्या अर्थ है ? इसके सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए।
2. विद्यालय संगठन का महत्त्व क्या है ? प्रशासन एवं संगठन में भेद का विस्तार से विवेचन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. विद्यालय-संगठन से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
2. विद्यालय-संगठन के क्या उद्देश्य होने चाहिए और क्यों ?
3. विद्यालय-संगठन के प्रमुख सिद्धान्तों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. संगठन एवं प्रशासन में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
5. विद्यालय प्रबन्धन प्रशासन दोनों एक-दूसरे से किस प्रकार भिन्न है ? समझाइये।
6. विद्यालय प्रबन्ध में संगठन के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. विद्यालय संगठन के सिद्धान्त है–
   (अ) लोच का सिद्धान्त (ब) बाल केन्द्रित
   (स) समाज केन्द्रित (द) उपर्युक्त सभी उत्तर–(द)
2. विद्यालय संगठन का स्वरूप है–
   (अ) यह एक सामाजिक गतिविधि है (ब) यह लोचशील होती है
   (स) समय के साथ बढ़ती है (द) उपर्युक्त सभी उत्तर–(द)
3. विद्यालय संगठन का उद्देश्य है–
   (अ) बालकों में मान्यताओं, विश्वासों एवं मूल्यों की शिक्षा देना
   (ब) सामाजिक आवश्यकताओं के रूप में शिक्षा देना
   (स) सामाजिक जीवन का वास्तविक एवं उपयोगी प्रशिक्षण
   (द) उपर्युक्त सभी। उत्तर–(अ)

अध्याय

12

शैक्षिक नियोजन : अर्थ, स्वरूप, उद्देश्य, गुण, सिद्धान्त एवं प्रकार

[EDUCATIONAL PLANNING : MEANING, NATURE, OBJECTIVES, QUALITIES, PRINCIPLES AND TYPES]

12.1 : शैक्षिक नियोजन का अर्थ एवं स्वरूप (MEANING AND NATURE OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन का अर्थ हम उन सब क्रियाओ के सदर्भ मे दे सकते है, जो शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा मे गुणवत्ता को पोषण देने के लिए सुनियोजित की जाती है। यह आर्थिक आयोजन का ही एक अश है किंतु इसकी प्रकृति आर्थिक आयोजन से भिन्न है, क्योकि इसके परिणाम तुरत प्राप्त नही होते। किसी भी राष्ट्र का विकास उसकी अर्थव्यवस्था पर टिका होता है। इसके लिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी शिक्षा व्यवस्था मे परिवर्तन लाता है। शिक्षा का समग्र विकास ही राष्ट्र के आर्थिक विकास की कुजी है। अत विश्व की अर्थव्यवस्था मे अपनी उपस्थिति को बनाए रखने के लिए, नागरिको की उन्नति के लिए, गुणो को विकसित करने के लिए, साथ ही भविष्य की आवश्यकताओ और लक्ष्यो की पूर्ति करने के लिए योजना का निर्माण किया जाता है। आयोजना के मुख्य लक्ष्य आर्थिक मुद्दो को निपटाने, चेतन रूप से माँग और आपूर्ति की शक्तियो को नियत्रित करने तथा सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति के द्वारा जन-जन की भलाई सपादित करने का वैज्ञानिक मार्ग है। राष्ट्रीय सामाजिक साधनो के द्वारा नागरिको के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करता है।

"यह एक प्रयास है समस्याओ का तार्किक हल निकालने का, यह प्रयास है लक्ष्य और साधनो मे समन्वय प्राप्त करने का।"

वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार–नियोजन को योजनाओ को बनाने, क्रियान्वयन के कार्य अथवा प्रक्रिया के रूप मे परिभाषित किया है। नियोजन सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु अपनायी जाने वाली क्रियाओ की भविष्यवाणी है। यह पूर्व निर्धारित क्रिया विधि है। यह भविष्य की क्रियाओ का वर्तमान मे प्रक्षेपण है।

दूसरे शब्दो मे, नियोजन "भविष्य मे की जाने वाली क्रियाओ की एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, ताकि एक निश्चित समय मे, निश्चित लागत पर, निश्चित परिणाम की प्राप्ति की जा सके।"

एलेन के अनुसार–"नियोजन भविष्य को बाँधने वाला एक जाल है।"

कूंट्ज के अनुसार–"नियोजन भविष्य में क्या किया जाना है, इसकी पूर्वधारणा है।"

आर. एल. इकाफ के अनुसार–"नियोजन पूर्व निर्धारित (अनेश्चयीकरण है।"

ड्रार के अनुसार–"नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा भविष्य में किए जाने वाले कार्यों के लिए निर्णयों के समुच्चय को तैयार किया जाता है जो साधनों के द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की ओर निर्देशित होते है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह एक बौद्धिक क्रिया है, जो निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भावी कार्यकलापों के विषय में वैकल्पिक क्रियाओं में से श्रेष्ठ के चयन हेतु निर्णय लेना है। **हार्टले** ने अपनी पुस्तक "कुरुकुशनल प्लैनिंग प्रोग्रामिंग बजटिंग–ए सिस्टमैटिक अप्रोच में लिखा है कि शैक्षिक नियोजन का तात्पर्य निम्नलिखित तथ्यों को क्रमबद्ध करना, उन्हें सगठित तथा स्थापित करने से है।

सी. ई. बीटी के अनुसार–"शिक्षा नियोजन दूरदर्शिता का ऐसा प्रयत्न है जिसमें आर्थिक तथा राजनीतिक वास्तविकताओं को सम्मुख रखकर शिक्षा प्रणाली के भविष्य के विकास, राष्ट्र तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के लिए–नीतियों, प्राथमिकताओं, शिक्षा प्रणाली के व्यय को निर्धारित करते है।"

यूनेस्को ने भी शिक्षा नियोजन की परिभाषा दी है। इसके अनुसार छात्रों में जो गुण आदर्श शिक्षक लाना चाहते है, उनका शिक्षा में प्रयोग ही शैक्षिक नियोजन है।

उपर्युक्त पर भाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शैक्षिक नियोजन में निम्नलिखित तीन तत्व पर विशेष महत्त्व दिया जाता है–

1. पूर्व निर्धारित उद्देश्य
2. उपलब्ध सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग
3. निर्णय लेना

12.2 : शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य उपलब्ध साधनों का शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु सर्वोच्च उपयोग है। शैक्षिक नियोजन शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय का उचित उपयोग निर्धारित करता है। यह पूँजी को बर्बाद होने से रोकता है। इसका मूल उद्देश्य ऐसे कार्यक्रमों को निर्धारित करना है, जिनके द्वारा विशेष लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें। उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नांकित क्रियाएं सहायक होती है–

1. आने वाले वर्षों में शिक्षा की गणना आत्मक का पूर्वानुमान करना तथा उन मांगों को पूरा करने की पहले से ही तैयारी करना।

2. शैक्षिक विकास के उद्देश्य को परिभाषित करना तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रभावशाली कार्यक्रम बनाना।

3. शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र के लिए विस्तृत योजनाएं बनाना एवं उनका एकत्रीकरण करना है।

4. भोजन का एकीकरण राष्ट्रीय विकास योजना के साथ करना।

5. शैक्षिक योजना में जो भी सेवी वर्ग की माँग हो उसका अनुमान लगाना तथा उनको प्रशिक्षण देकर योजना के लिए तैयार करना।

6. शैक्षिक विकास के लिए जिन साधनो की आवश्यकता है, उनका अनुमान लगाना और जनमत को उनकी आवश्यकता तथा उनको प्राप्त करने के उपायो के सबध मे शिक्षित करना।

7 शिक्षा के अपव्यय को रोकना तथा क्रियाओ मे मितव्ययिता लाना।

उपर्युक्त उद्देश्य शैक्षिक नियोजन को सरल बनाते है तथा विभिन्न उद्देश्य योजना के भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है। अनेक विद्वानो ने इसे शैक्षिक नियोजन का आधार माना है। इसलिए योग्य और कुशल शिक्षाविद् इसकी रूपरेखा बनाने से पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की व्याख्या कर लेते है।

12.3 : शैक्षिक नियोजन के मुख्य उपागम (MAIN APPROACHES OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन माग और साधनो के बीच तालमेल स्थापित करता है, किंतु माग और साधनो का निर्धारण किस प्रकार किया जाए इस सबध मे अनेक उपागमो का वर्णन किया जा सकता है–

1. सामाजिक मांग उपागम–यह वर्तमान समाज मे शिक्षा सबधी आवश्यकताओ का अनुमान लगाकर शैक्षिक नियोजन पर बल देता है। शिक्षा के समान अवसर सबको मिले, शिक्षा जात–पात, ऊँच नीच का भेदभाव मिटाये, बढ़ती हुयी जनसख्या को उपलब्ध हो और शिक्षा द्वारा जनसख्या की वृद्धि पर अकुश लगाया जाए, युवाओ के लिए आयोजित राष्ट्रीय आय मे वृद्धि तथा सामाजिक और सास्कृतिक उद्देश्यो की पूर्ति करने वाली हो।

उपर्युक्त सामाजिक मागो को केद्रित करके शैक्षिक योजना तैयार करना शैक्षिक माग उपागम की मुख्य विशेषता है। इस उपागम का मूल तत्व यह परिभाषित करना है कि भविष्य मे समाज की प्रगति के लिए कितनी शिक्षा की आवश्यकता है? शिक्षा के उद्देश्यो मे सम्मिलित होगे–सर्वव्यापी साक्षरता, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, गुणात्मक माध्यमिक शिक्षा।

2. जनशक्ति आवश्यकता उपागम–इस उपागम मे यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि भविष्य मे आर्थिक तथा व्यवसायिक सरचना कैसी होगी, उक्त सरचना के अनुरूप प्रशिक्षित कर्मचारी तैयार करने हेतु शैक्षिक योजना का निर्माण किया जाता है। जिन तत्वो पर जनशक्ति की आवश्यकताओ का पूर्वानुमान किया जाता है, वे निम्नलिखित है–

1. एक आधार वर्ष को लेकर जनशक्ति की सूची बनाई जाती है।

2. लक्षित वर्ष के लिए अनुमान लगाया जाता है।

प्रत्येक विभाग एव शाखाओ मे जिन वर्षों के लिए पूर्वानुमान किया जा रहा है, उनमे कितनी नियुक्तियो की आवश्यकता होगी इसका अनुमान लगाया जाता है।

3. व्यवस्था के अनुरूप प्रत्येक विभाग एव शाखा के लिए की जाने वाली सभी नियुक्तियो का श्रेणी के रूप मे पूर्वानुमान लगाया जाता है।

4 वर्गों की माग सबधी प्रदत्त सामग्री को उसके शैक्षिक योग्यताओ की प्रदत्त सामग्री से सबधित किया जाता है।

6. शैक्षिक योग्यता प्राप्त कर्मचारी वर्ग का पूर्वानुमान इस उपलब्धि का अनुमान पूर्वानुमान गत वर्षों के लिए निम्नाकित आधार पर किया जाता है–

(i) इस समय कितने कर्मचारी उपलब्ध है?

(ii) वर्तमान शिक्षा प्रणाली द्वारा कितनो के उपलब्ध होने की सभावना है एव

(iii) मृत्यु अवकाश ग्रहण तथा कार्य छोड़ने के कारण कितने सेवी वर्ग की कमी हो जाएगी।

3. सामाजिक न्याय उपागम–भारतीय सविधान मे समानता का सामाजिक न्याय का मूल अधिकार नागरिको को दिया गया है। इन मूल अधिकारो को ध्यान मे रखकर ही इस देश मे राष्ट्रीय विकास के लिए नियोजन बनाया जाता है। शैक्षिक नियोजन राष्ट्रीय योजना का एक मुख्य तत्व है। नियोजन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य समानता और सामाजिक न्याय होता है। जब नियोजन इस लक्ष्य को केंद्र बिंदु मानकर किया जाता है। तो यह सामाजिक न्याय उपागम कहलाता है। सामाजिक न्याय उपागम इस बात पर बल देता है कि शिक्षा इस प्रकार व्यवस्थित की जाए कि पिछड़े व साधन विहीन व्यक्तियों तथा उपेक्षित वर्गों को शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिले ताकि उनका जीवन स्तर ऊँचा हो सके। सामाजिक न्याय उपागम पीड़ितो को शोषण से बचाने की ओर केंद्रित होता है। यह विश्वास किया जाता है कि साक्षरता के कारण व्यक्ति शोषण का विरोध नही कर पाते है। इसलिए व्यक्तियो को साक्षर बनाने की योजना बनाई जाती है।

4. प्रतिफल दर उपागम–शैक्षिक नियोजन मे आर्थिक पक्ष प्रतिफल दर के अनुसार ध्यान मे रखा जाता है। विभिन्न स्तरों पर तथा विभिन्न प्रकार के शिक्षा देने मे प्रत्येक विद्यार्थी पर कितना व्यय किया जाता है, यह प्रति व्यक्ति दर बताता है। इसी प्रकार प्रति विद्यालय प्रति स्तर पर व्यय इत्यादि भी निकाले जाते हैं। जब हम शैक्षिक नियोजन मे अपना मुख्य लक्ष्य केंद्रित करते है कि प्रति विद्यार्थी कितना व्यय किया जाना है तो हम प्रतिपल उपागम को अपना रहे होते है। शैक्षिक नियोजन प्रतिफल दर उपागम के आधार पर करने के लिए निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है–

(i) शिक्षा के लिए कितना धन उपलब्ध है?

(ii) किस शिक्षा के क्षेत्र में प्रति विद्यार्थी व्यय बढ़ाने की सर्वप्रथम आवश्यकता है?

(iii) मुद्रा का वर्तमान समय मे वास्तविक मूल्य क्या है?

(iv) शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की कुल सख्या किस अनुपात मे है?

(v) प्रतिफल धन के व्यय का सामाजिक लाभ क्या है इसका भी अनुमान लगाना पड़ता है।

(vi) प्रतिफल व्यय न केवल अधिक सख्या मे विद्यार्थियो के प्रवेश के लिए होता है उनकी गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया जाता है।

5. समन्वित उपागम–इस उपागम मे उन सब प्रासगिक तथ्यो को ध्यान मे रखा जाता है जो शिक्षा पर प्रभाव डालते है। इस उपागम का प्रारम्भ यह नियत करने के साथ होता है कि नागरिको की सामाजिक तथा आर्थिक आकाक्षाए क्या है तथा किस प्रकार से शिक्षा इन आकाक्षाओ की पूर्ति की ओर ले जाने वाली होगी? एक ओर तो शिक्षा की आवश्यकताओ का निर्धारण होता है और दूसरी ओर उपलब्ध मानवीय भौतिक साधन जो शैक्षिक विकास को सभव बनाते है, उन सब की पहचान की जाती है। यह उपागम लगातार राष्ट्रीय आवश्यकता तथा क्षमताओ के बीच मे सबध बनाए रखता है। यह दोनो ही प्रत्येक वर्ष बढ़ते जाते है, समन्वित उपागम मे अनेक प्रक्रियाए सम्मिलित होती है। यह जनसख्या मे वृद्धि तथा आर्थिक पृष्ठभूमि मे प्रारभ होता है और निम्न तत्वों को ध्यान मे रखता है–

(i) जनसख्या कितनी होगी और विभिन्न आयु वर्ग के विद्यार्थी कितने होगे?

(ii) पूर्व मे और वर्तमान मे कर्मचारी सरचना का स्वरूप क्या होगा?

(iii) देश के आर्थिक साधनो का विश्लेषण करना जो कि शैक्षिक व्यय के लिए आवटित किए जा सकते है?

(iv) प्रत्येक शैक्षिक स्तर के लिए जन शक्ति को ध्यान मे रखकर और यह देखकर कि क्या वित्तीय साधन उपलब्ध है? पजीयन, लक्ष्य एव उत्पादित परिणाम के बीच समन्वय स्थापित करना।

12.4 : शैक्षिक नियोजन के प्रकार (TYPES OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन को हम कई आधारो पर निम्न वर्गों मे विभाजित कर सकते है–

1. **अवधि के आधार पर** (On the basis of Period)–इसे अवधि के आधार पर दो वर्गों म विभाजित कर सकते है–**प्रथम**, अल्पकालीन नियोजन (Short-range Planning), **द्वितीय**–दीर्घकालीन नियोजन (Long-range Planning)।

(i) **अल्पकालीन नियोजन** (Short-range Planning)–साधारणत इस प्रकार का नियोजन एक से पाँच वर्ष तक के लिए किया जाता है। **इस अवधि की क्रियाओ का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है** कि इससे दीर्घकालीन नियोजन के उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायता मिले। प्राय यह तात्कालिक समस्याओं को हल करने के लिए बनायी जाती है ताकि नजदीक की आवश्यकताओ को पूरा किया जा सके।

(ii) **दीर्घकालीन नियोजन** (Long-range Planning)–साधारणत इस प्रकार का नियोजन पाँच वर्ष या उससे अधिक वर्षों के लिए तैयार किया जाता है। यह देखा गया है कि महत्त्वपूर्ण योजनाओ की अवधि 10 से 20 वर्ष प्राय होती है जिसमे दीर्घकालीन शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते है। प्राय इस प्रकार की योजनाएँ देश मे आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन लाती हैं, अत आजकल शिक्षा के दीर्घकालीन नियोजन पर बल दिया जा रहा है।

2. **स्तर के आधार पर** (On the basis of Levels)–स्तर के आधार पर नियोजन को अग्र भागों मे वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) **उच्चस्तरीय नियोजन** (Top Level Planning)–यह कार्य करने वाले प्रबन्धको द्वारा उच्च स्तर पर निर्मित की गयी योजना होती है। इस तरह का नियोजन सम्पूर्ण सस्था अथवा उपक्रम को प्रभावित करता है क्योकि इसके अन्तर्गत सामान्य नीतियाँ स्पष्ट की जाती है।

(ii) **प्राथमिक स्तर का नियोजन** (Grass-root Level Planning)–इसकी योजना गाँव के स्तर से राष्ट्र के स्तर तक होती है। दूसरे शब्दो मे, इस तरह का नियोजन विभिन्न स्तरो पर विभिन्न आकारो का हो सकता है। गाँव के स्तर पर निर्मित योजना नीचे से ऊपर की ओर चलने वाली योजना होती है। इसका अर्थ यह है कि यह योजना स्थानीय साधनो द्वारा स्थानीय समस्या को हल करने के लिए विवेकशील व्यक्तियो द्वारा बनायी जाती है। आजकल इस प्रकार की योजनाएँ ज्यादा लोकप्रिय हो रही है क्योकि इसका विश्वास प्रजातान्त्रिक मूल्यो मे है। शिक्षा के क्षेत्र मे यह नियोजन ज्यादा हितकारी सिद्ध हो सकता है यदि इसे अपनाया जाये।

3. **महत्त्व के आधार पर** (On the basis of Importance)–महत्त्व के आधार पर नियोजन को निम्न वर्गों मे बाँटा जा सकता है–

(i) **परिमाणात्मक नियोजन** (Quantitative Planning)–इस प्रकार का नियोजन केवल शिक्षा के प्रसार से सम्बन्ध रखता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा मे कितने छात्रो को प्रवेश दिया जाये और इससे सम्बन्धित विद्यालय तथा प्रशिक्षण विद्यालय खोले जाये। इसमे छात्राओ तथा छात्रो के प्रवेश मे कितनी सख्या मे वृद्धि की जाये, नये शाला भवन कितने बनाये जाये, कितने अध्यापको की नियुक्ति हो तथा क्या-क्या सुविधाएँ प्रदान की जाये आदि तय की जाती है। शिक्षा के वार्षिक बजट मे इन सब तथ्यो का उल्लेख होता है।

(ii) गुणात्मक नियोजन (Qualitative Planning)—शिक्षा किस प्रकार अर्थपूर्ण तथा गुणात्मक हो, इससे सम्बन्धित तथ्य इस प्रकार के नियोजन मे शामिल किये जाते है अत इसके लिए पाठ्यक्रम को सार्थक बनाने के लिए, शिक्षको के प्रशिक्षण मे नवाचार पाठ्य-पुस्तको को प्रभावशाली बनाना, शिक्षक को अधिक कर्त्तव्यशील बनाने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन आदि कार्यक्रम शामिल किये जाते है। इन कार्यक्रमो का उद्देश्य शिक्षा के अपव्यय तथा अवरोध को रोकना होता है तथा शिक्षा को अत्यधिक व्यावहारिक और गुणात्मक बनाना होता है।

(iii) प्रशासनिक नियोजन (Administrative Planning)—उपर्युक्त वर्णित परिमाणात्मक तथा गुणात्मक नियोजन आदि उसे सफल तथा प्रभावशाली बनाना है तो इसका प्रत्येक स्तर पर निरीक्षण आवश्यक है। इसके लिए योग्य तथा कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मचारियो तथा अधिकारियो की जरूरत पड़ेगी। अत प्रशासनिक नियोजन मे कैसे अधिकारियो की आवश्यकता होगी किन-किन स्तर पर यह कार्य होगा, उनका कार्यक्षेत्र तथा शक्तियाँ (अधिकार) क्या होगी आदि सभी सगठनात्मक स्वरूप निर्धारित किये जायेंगे।

(iv) संस्थागत नियोजन (Institutional Planning)—कोठारी कमीशन (1964-66) की रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार की नियोजन सम्बन्धी योजनाओ का प्रत्येक शिक्षण सस्था निर्माण करती है। यह लोकप्रिय तथा लाभकारी इसलिए सिद्ध हुई है क्योकि इसमे सभी अध्यापको का सम्मिलित होने का सहयोग मिलता है और इस प्रकार के सहयोग अवसर प्राप्त होने के कारण व इसके निर्माण व क्रियान्विति मे सक्रिय रहते है। इस तरह का नियोजन प्राय दोनो स्तर के लिए (लघु तथा दीर्घ समय किया जाता है। यह देखा गया है कि इस प्रकार की योजनाएँ प्रत्येक विद्यालय तथा महाविद्यालय अपना विकास करने के लिए निर्मित करते है। इस सस्थागत योजना को अनुभवी शिक्षक अपनी योग्यता व सूझबूझ से निर्मित करते है तथा बाद मे मूल्याकन भी करते है, ताकि दुबारा सस्थागत योजना बनाते समय बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ न आये। अत इसके माध्यम से शीघ्र सुधार लाया जा सकता है क्योकि इसमे अन्य शिक्षको द्वारा दिये गये सुझावो पर पूरा ध्यान दिया जाता है। इस तरह शिक्षण सस्थाओ की समस्या भी सरलता से समाधान किया जा सकता है क्योकि यहाँ समस्या मे समाधान मे विलम्ब नही होता। इसके अलावा यहाँ सस्था को अपने नियोजन मे स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, अत इस नियोजन से सस्था के बहुत-से उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते है। यह इस तरह क्षेत्रीय और राष्ट्रीय नियोजन बनाने मे सहायक भी हो सकती है।

12.5 : शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता (NEED OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी आवश्यकता पर भी विचार करना आवश्यक है, जिससे कि प्रयासो मे सक्रियता लायी जा सके। शैक्षिक नियोजन की आवश्यकताएँ निम्नलिखित है—

1. **समय की बचत** (Time Saving)—उचित शैक्षिक नियोजन समय, ऊर्जा व धन की बचत करता है। यदि बिना नियोजन के कार्य किया जाता है, तो उसके परिणाम उस विशेष क्षेत्र, सस्था सगठन व राष्ट्र के उद्देश्यो की पूर्ति नही करते जिनके लिए उनका निर्माण किया गया है। अत समय का सदुपयोग हो सके इसके शैक्षिक नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।

2. **ससाधनों का सर्वोत्तम उपयोग** (Best Utilization of Resources)—शैक्षिक नियोजन के द्वारा उपलब्ध ससाधनो का सर्वोत्तम उपयोग हो सकता है, क्योकि शैक्षिक नियोजन मे इस विषय पर

विचार किया जाता है कि किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता है, उसी के अनुसार उनको उपलब्ध कराया जाता है। इससे आवश्यकता की पूर्ति भी होती है और ससाधनो की बर्बादी भी नही होती है।

3. शैक्षिक समस्याओं का समाधान (Solution of Educational Problems)–शिक्षा की प्रक्रिया के क्षेत्र मे आने वाली समस्याओ का समाधान उचित शैक्षिक नियोजन के द्वारा ही किया जा सकता है। उचित शैक्षिक नियोजन के द्वारा समस्या का सही कारण ढूँढने मे सरलता होती है अत समाधान कहाँ और किस प्रकार से होता है, यह जानने के लिए शैक्षिक नियोजन आवश्यक है।

4. प्रशासनिक कार्यों की जाँच (Investigation of Administrative Works)–शैक्षिक नियोजन के द्वारा प्रशासनिक कार्यों की असफलता के मूल्याकन की प्रक्रिया द्वारा जाँच की जाती है जिससे कि असफलता के कारणो को दूर करके शिक्षा के क्षेत्र में कुशलता व सरलतापूर्वक कार्य किया जा सके।

5. शिक्षा सर्वोत्तम साधन के रूप में (Education as a Major Source)–उपयुक्त शैक्षिक नियोजन के द्वारा शिक्षा को समाज का एक आवश्यक साधन बनाया जा सकता है, जो कि समाज, सस्कृति व मूल्यो का सरक्षण करके राष्ट्र की भावी मूल्य प्रणाली, व्यक्तियों, नैतिकता, ज्ञान, कौशलो आदि का विकास करती है।

12.6 : शैक्षिक नियोजन के गुण (QUALITIES OF EDUCATIONAL PLANNING)

शैक्षिक नियोजन के गुण निम्नलिखित है–

1. भारत मे शैक्षिक नियोजन आर्थिक नियोजन के एक अग के रूप मे कार्य करता है।
2. शैक्षिक योजनाओ द्वारा व्यक्ति सतुलित विकास पर बल दिया जाता है।
3. देश मे सास्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक प्रगति के लक्ष्यो को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक नियोजन किया जाता है।
4. भारत मे अधविश्वास, रूढ़िवादिता तथा अज्ञानता को शैक्षिक नियोजन के द्वारा ही दूर करने का प्रयास किया जाता है। शैक्षिक नियोजन के माध्यम से ही सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है।
5. शैक्षिक नियोजन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि इसके द्वारा आर्थिक प्रगति भी हो। मानवीय ससाधनो को उपयोगी बनाने का लक्ष्य भी शैक्षिक नियोजन मे निहित होता है।
6. शैक्षिक नियोजन मे केन्द्र सरकार के साथ-साथ राज्य सरकारे भी समान रूप से रुचि लेती है। किसी क्षेत्र विशेष को महत्व न देकर सम्पूर्ण राष्ट्र को ध्यान मे रखकर नियोजन किया जाता है।
7. भारतीय शैक्षिक नियोजन मे राष्ट्रीय स्तर की बातो को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है तो दूसरी ओर स्थानीय आवश्यकताओ की भी उपेक्षा नही की जाती है।
8. भारतीय शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत अल्पकालिक योजनाओ के साथ ही दीर्घकालिक योजनाएँ भी बनायी जाती है। दीर्घ एव अल्पकालिक योजनाओ का एक साथ समावेश होना भारतीय शैक्षिक नियोजन का प्रमुख गुण है।

12.7 : शैक्षिक नियोजन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF EDUCATIONAL PLANNING)

सिद्धान्तो का निर्माण, आधारभूत सत्य तथा उसके श्रेष्ठ गुणो पर निर्भर करता है अत नियोजनो के सिद्धान्तो को नियोजन के गुण भी कहा जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र मे नियोजन निम्न सिद्धान्तो के आधार पर किया जाता है–

1. उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of Objective)–शैक्षिक नियोजन राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो पर आधारित होना चाहिए। ये उद्देश्य पूर्व-निर्धारित होते है। अत नियोजन ऐसा हो जो इन पूर्व-निर्धारित उद्देश्यो को पूरा करने मे सहयोग दे सके। इनमे से कुछ उद्देश्य अल्पकालीन होते है और कुछ दीर्घकालीन लेकिन दोनो उद्देश्यो का सम्बन्ध शिक्षा के माध्यम द्वारा राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास होता है। यदि नियोजन इन उद्देश्यो तथा लक्ष्यो की प्राप्ति मे कोई खास कदम नही उठा पाता तो ऐसे नियोजन की सार्थकता नही सिद्ध हो पायेगी।

2. प्राथमिकता क्रम स्थापित करना (Establishing Order of Priority)–विकासशील देशो मे उपलब्ध भौतिक साधन सीमित होते है तथा विकास हर क्षेत्र मे करना होता है। शिक्षा सम्बन्धी सामाजिक माँग को ध्यान में रखते हुए, शैक्षिक नियोजन मे प्राथमिकता क्रम स्थापित करना पड़ता है। शिक्षा के विस्तार तथा गुणात्मक विकास दोनो का ही नियोजन मे विशेष ध्यान रखना होता है ताकि विभिन्न लक्ष्यो की प्राप्ति की जा सके।

3. योजना का लचीलापन तथा सामाजिक मूल्यांकन (Elasticity in Planning and Periodic Evaluation of Planning)–योजना मे भविष्य के पूर्वानुमान पूर्णत सही हो, ऐसा सम्भव नही है। अत आकस्मिक घटनाएँ घटित होने पर नियोजन मे परिवर्तन लाना जरूरी है। इसके लिए जरूरी है कि नियोजन मे लचीलापन होना चाहिए। इसके अलावा यह भी जरूरी है कि योजना की क्रियान्विति पर इसकी प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन होना चाहिए ताकि आने वाली कठिनाइयो को दूर किया जा सके। उदाहरणत, शैक्षिक सामग्री की आवश्यकता तथा उसका श्रेष्ठतम उपयोग, प्रभावशाली शिक्षण विधियो का प्रयोग, निर्देशन सेवाओ मे सुधार, विभिन्न शैक्षिक स्तर पर अपव्यय को रोकना आदि अनेक ऐसे कार्यक्रम है जिनका मूल्यांकन वर्ष मे कम से कम एक बार होना चाहिए।

4. तथ्यों के प्रयोग का सिद्धान्त (Principle of the Uses of Facts)–यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि नियोजन कल्पना तथा भावनाओ पर आधारित नही होना चाहिए बल्कि तथ्यो तथा उनके विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षो पर आधारित होना चाहिए। अत शैक्षिक नियोजन के निर्माण हेतु शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक सूचनाओ तथा तथ्यो का सकलन करना महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। उदाहरणत रोजगार के लिए शिक्षित बेरोजगारी की सख्या, मानव शक्ति की वर्तमान स्थिति तथा उसकी भावी आवश्यकता सम्बन्धी तथ्य एकत्रित करने होगे।

5. नियोजन की मान्यताओं का सिद्धान्त (Principle of Planning Premises) **अथवा विकल्पो का निर्धारण** (Decision Regarding Various Options)–विभिन्न शिक्षाविदो का मत है कि प्रभावशाली नियोजन की स्थापना के लिए मान्यताओ का निर्धारण पूर्ण विवेकशीलता तथा कुशलता से करना चाहिए। शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत ऐसी अनेक मान्यताएँ तथा विकल्प होते है जिनके लिए पूर्व निर्णय जरूरी है ताकि राष्ट्रीय शैक्षिक विकास सुनियोजित ढग से हो सके। उदाहरणत शहरो मे शैक्षिक विकास काफी वर्षों से हो रहा है। अब सरकार का ध्यान गाँवो के शैक्षिक विकास के लिए किया है। गाँवो मे प्रतिभा की खोज तथा विकास के अन्तर्गत ग्रामीण छात्रो के लिए नवोदय विद्यालय खोले गये है। इससे

यह मान्यता स्पष्ट होती है कि प्रतिभा केवल शहरो के छात्रो मे ही नही है बल्कि गाँवो के छात्रो मे भी है। इस तरह गाँवो तथा शहरो के छात्र तथा छात्राओ का शैक्षिक समन्वित विकास ही राष्ट्रीय शैक्षिक विकास है।

शैक्षिक नियोजन मे उत्पादकता मे वृद्धि तथा मानवीय पूँजी (Human Capital) का निर्माण एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। समाज के अधिकतम व्यक्तियो के पास जितना आधुनिकता ज्ञान, विज्ञान तथा तकनीक होगी उतना ही अधिक वे प्राकृतिक ससाधनो का उपयोग कर सकेगे। इस तरह वे उत्पादकता बढ़ाने का प्रयत्न करेगे। अत खनिज पदार्थों, जगल, समुद्र, नदी, पहाड़, झरने तथा भूमि जैसी नैसर्गिक सम्पदा तथा प्राकृतिक ससाधनो के सही और पर्याप्त मात्रा मे उपयोग से राष्ट्रीय उत्पादकता बढ़ेगी, लेकिन यह तभी सम्भव है जब भावी नागरिको को इस दिशा मे शिक्षित किया जाये। दूसरे शब्दो मे मानवीय ससाधनो का सही तथा पर्याप्त मात्रा में उपयोग ही शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति कर सकता है। व्यक्तियो को ज्ञान, कौशल तथा योग्यता देना ही मानवीय पूँजी का निर्माण है। उपर्युक्त आकाक्षाएँ तथा मान्यताएँ तभी पूरी होगी जब इसके महत्त्व को शैक्षिक नियोजन मे शामिल किया जाये।

6. योजना निर्माण एवं क्रियान्विति में सभी स्तर पर सहयोग (Cooperation at all Levels in Planning and Implementation)—योजना निर्माण मे सभी कार्यरत अधीनस्थ कर्मचारियो तथा अधिकारियो का सहयोग आवश्यक है। इससे उनके अनुभव तथा विभिन्न कठिनाइयो का पता लग जाता है तथा योजना ऊपर से थोपी नही प्रतीत होती। योजना निर्माण मे भागीदारी होने के कारण वाछित उत्साह, स्नेह तथा सहयोग की भावना द्वारा इस योजना की क्रियान्विति उनके द्वारा की जाती है। शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न शिक्षाविद् (जैसे—अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, प्रशासक) तथा अभिभावक आदि के परामर्श का लाभ भी योजना निर्माण मे उठाया जा सकता है। अत योजना के सफल निर्माण तथा क्रियान्विति के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर कार्य करने वाले व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त किया जाये। इसका परिणाम यह होगा कि योजना व्यावहारिक तथा वास्तविक बनेगी और इससे उसकी क्रियान्विति मे निरन्तर सहयोग भी प्राप्त होगा।

7. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)—शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न स्तर पर अनेक योजनाएँ तैयार की जाती है, लेकिन इन समस्त क्रियाओ को एक लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। इसे पूरा करने के लिए इन विभिन्न कार्यों मे सामजस्य स्थापित किया जाना चाहिए। इन विभिन्न कार्यों के समन्वय से ही शिक्षा के उद्देश्यो को प्राप्त करना सम्भव होगा।

8. अन्य सिद्धान्त (Other Principles)—उपर्युक्त सिद्धान्तो के अतिरिक्त समय का सिद्धान्त (Principle of Timing) भी महत्त्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि किसी उद्देश्य को कितने समय मे पूरा कर लिया जायेगा। इसके साथ मितव्ययता का सिद्धान्त (Principle of Economy) भी कम महत्त्व का नहीं है। नियोजन की वह विधि श्रेष्ठ होती है जो फिजूलखर्ची पर नियन्त्रण कर सके तथा उद्देश्यो की सफल पूर्ति मितव्ययतापूर्ण ढग से कर सके।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. शैक्षिक नियोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके विभिन्न उद्देश्य बताइये।
2. शैक्षिक नियोजन के विभिन्न प्रकारो का वर्णन कीजिए।

3. शैक्षिक नियोजन से क्या तात्पर्य है ?
4. भारत में शैक्षिक नियोजन के विकास का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. शैक्षिक नियोजन से क्या तात्पर्य है ?
2. शैक्षिक नियोजन में किन तीन तत्त्वों को महत्त्व दिया जाता है ? बताइये।
3. अवधि के आधार पर शैक्षिक नियोजन का वर्गीकरण कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. शैक्षिक नियोजन में सगठित किया जाता है–

(अ) शैक्षिक उद्देश्यों को (ब) दार्शनिक मान्यताओं को
(स) सामान्य आदर्शों को (द) इन सभी को। उत्तर–(द)

2. अवधि के आधार पर शैक्षिक नियोजन होते है–

(अ) अल्पकालीन (ब) दीर्घकालीन
(स) (अ) व (ब) दोनों (द) इनमें से कोई नही। उत्तर–(स)

3. 'Educational Planning, Programming, Budgeting A Systematic Approach' किसने लिखी है?

(अ) हेरी जे. हटिले (ब) सी ई बीटी
(स) हेयन्स (द) इनमें से कोई नही। उत्तर–(अ)

□□

अध्याय

13

शैक्षिक पर्यवेक्षण : अर्थ, स्वरूप, उद्देश्य, प्रकार, क्षेत्र, महत्व एवं कार्य

[EDUCATIONAL SUPERVISION : MEANING, NATURE, OBJECTIVES, TYPES, SCOPE, IMPORTANCE AND FUNCTIONS]

13.1 : पर्यवेक्षण की अवधारणा (CONCEPT OF SUPERVISION)

आधुनिक युग मे शिक्षा के क्षेत्र मे नवीन प्रवृत्तियो, आन्दोलनों एवं विचारधाराओं का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप शिक्षा की प्रकृति, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियो आदि मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इनमे आगे परिवर्तनो के साथ-साथ निरीक्षण की धारणा में भी परिवर्तन आया। शिक्षाशास्त्रियो ने निरीक्षण सम्बन्धी नवीन धारणा को अभिव्यक्त करने के लिए एक नवीन पद का प्रयोग किया जो 'परिनिरीक्षण' (Supervision) नाम से प्रसिद्ध है। केवल शब्दो का हेर-फेर नही है वरन् इनमे उद्देश्य, क्षेत्र, विधि एव दृष्टिकोण का भी अन्तर है। 'परिनिरीक्षण' की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ विद्वानो के विचारो को अभिव्यक्त किया जा रहा है–

"आजकल परिनिरीक्षण केवल शिक्षक तथा छात्र के विकास पर ही बल नही देता है, वरन् स्वय परिनिरीक्षक-वर्ग, अभिभावको तथा अन्य सामान्य लोगो के विकास को भी ध्यान मे रखता है। यह छात्र-समुदाय तथा सकाय के प्रत्येक सदस्य की शारीरिक और सामाजिक कुशलता के विकास से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। यह उन तत्त्वो से भी सम्बन्धित है, जो उनके विकास मे अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होते है।"

"Currently, supervision aims at the growth of not only pupil and teacher but also of the supervisory staff itself as well as parents and other laymen, supervision is concerned with everything that directly concerns the further development of every member of faculty and student body toward physical and social competence is also concerned with (but not so directly responsible for) those factors that are but indirectly related to their growth."

–William T. Melchoir

"परिनिरीक्षण एक सेवा-कार्य है, जो मुख्यत निर्देश एव उसकी उन्नति से सम्बन्धित है। यह प्रत्यक्ष रूप से शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया और उन तत्त्वो से सम्बन्धित है, जो इन प्रक्रियाओ मे निहित एव इनसे सम्बन्धित है। ये तत्त्व–शिक्षक, छात्र, पाठ्यक्रम, निर्देश-सामग्री, स्थिति का सामाजिक एव भौतिक वातावरण आदि है।"

"Supervision is a service particularly concerned with instruction and its improvement. It is directly concerned with teaching and learning and with the factors included in and related to these processes—the teacher, the pupil, the curriculum, the materials of instruction, the socio-physical environment of the situation."

—H. P. Adams and F. G. Dickey

"परिनिरीक्षण एक विशेष प्राविधिक सेवा है जो मुख्यत: उन दशाओं के संशोधन एवं सुधार से सम्बन्धित है जो छात्रों के विकास तथा सीखने की प्रक्रिया को आच्छादित करता है। पाठ्यक्रम के प्रत्येक वस्तु विकास तथा सीखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रदान की जाती है। परिनिरीक्षण उन बातों से सम्बन्धित है जो मुख्यत: तथा प्रत्यक्षत: विकास एवं सीखने की प्रक्रिया को सहज बनाती है।"

"Supervision is, in general, what has been in modern times an expert technical service primarily concerned with studying and improving the conditions that surround learning and pupil growth. Everything in a school system in designed of course, for the ultimate purpose of stimulating learning and growth. Supervision deals with those items which are primarily and rather directly connected with learning and growth."

—Barr, Bruton and Brueckner

"परिनिरीक्षण एक उत्तम शिक्षण अधिगम परिस्थिति के विकास में सहायता देना है।"

"Supervision is assistance in the development of a better teaching-learning situation."

—Kimbal, Wiles

13.2 : शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एवं स्वरूप
(MEANING AND NATURE OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

शिक्षा-प्रशासन के क्षेत्र में कभी-कभी निरीक्षण (Inspection) तथा पर्यवेक्षण (Supervision) को एक ही अर्थ में लिया जाता है, जबकि इन दोनों में मूलभूत अन्तर है। शाब्दिक अर्थ में निरीक्षण का अर्थ किसी चीज की बारीकी के साथ जाँच एवं देखरेख करना है जबकि पर्यवेक्षण का अर्थ दूर तथा स्थान से नीचे के स्थानों का अवलोकन करना है। तकनीकी अर्थ में शैक्षिक पर्यवेक्षण से हमारा तात्पर्य एक ऐसे सुनियोजित कार्यक्रम से है जिसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षण-प्रक्रियाओं में उन्नति तथा प्रभावशीलता लाना है। **फ्रान्सेथ जाम** (Franseth Jam) के अनुसार, "उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण व्यक्तिगत तथा सामान्य समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्तियों की ऊर्जा को रचनात्मक विधियों में संलग्न करने की प्रक्रिया है।" मलैया एवं मलैया ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण में शैक्षिक पर्यवेक्षण' की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—

"शैक्षिक पर्यवेक्षण यह प्राविधिक सेवा है जो शिक्षकों को अपनी व्यावसायिक कुशलता वृद्धि के लिए उचित व्यावसायिक नेतृत्व तथा सहयोग प्रदान करती है, शिक्षण-स्तर को उच्च बनाने हेतु उन्हें पाठ्यक्रम सुधार से परिचित कराती है एवं अपने छात्रों को और अच्छी तरह समझने, शिक्षण-सामग्री निर्माण करने, शिक्षण विधियों का विकास करने, उचित मूल्यांकन-विधियों का उपयोग करने आदि के कौशल-विकास में सहायक होती है। इस दृष्टि से शैक्षिक पर्यवेक्षण एक लोकतंत्रीय तथा सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षण-स्तर को उच्च बनाने हेतु शिक्षक, पर्यवेक्षक तथा बालक सभी हिल-मिल कर कार्य करते हैं।"

इस प्रकार से निरीक्षक एवं आलोचक, गलतियाँ निकालने वाला तथा दण्डाधिकारी होता है, किन्तु पर्यवेक्षक एक मित्र, परामर्शदाता, निर्देशनकर्त्ता तथा शुभचिन्तक होता है। पर्यवेक्षक जहाँ कमियों तथा गलतियों की ओर इशारा करता है, वहीं पर वह उनके निराकरण हेतु उपयोगी परामर्श भी देता है। उसका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होता है।

13.3 : शैक्षिक पर्यवेक्षण के उद्देश्य (OBJECTIVES OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा निम्नांकित उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास किये जाते है–

1. शिक्षकों के सम्मुख शिक्षा के उद्देश्य, मूल्य तथा उपलब्धियों को सुनिश्चित तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना।
2. शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि कर उनके शिक्षण को प्रभावकारी बनाना।
3. शिक्षकों को छात्रों तथा समाज की आवश्यकताओं से परिचित कराकर उनकी परिपूर्ति करने हेतु अध्यापकों को प्रोत्साहित करना।
4. शिक्षकों को उनकी योग्यता, शिक्षा तथा क्षमताओं के अनुसार कार्य विभाजन करना।
5. शिक्षकों को नवीनतम शैक्षिक विकासों से परिचित करना।
6. अप्रशिक्षित शिक्षकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों से परिचित करना।
7. शिक्षकों को समुचित समायोजन करने में सहायता देना।
8. शिक्षकों के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यालय में आवश्यक वातावरण तथा शिक्षण सुविधाएँ प्रदान करना।

13.4 : शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार (TYPES OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकारों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है–

1. **शिक्षण पर्यवेक्षण** (Teaching Supervision)–शिक्षण के समग्र रूप या शिक्षण के किसी अंग को सुधारने तथा इस क्षेत्र में अध्यापकों की सहायता करने हेतु किया गया पर्यवेक्षण इस श्रेणी में आता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण द्वारा सेवारत शिक्षकों का शिक्षण सुधारा जाता है। शिक्षण पर्यवेक्षण सतत्-प्रक्रिया के रूप में हो सकता है अथवा किसी विशेष अवसर पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। कभी-कभी किसी विशेष कार्य हेतु भी पर्यवेक्षण आयोजित किया जा सकता है। जैसे–दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रयोग की विधियों से अवगत कराने हेतु पर्यवेक्षण। इस प्रकार का पर्यवेक्षण विशेष-शिक्षण-सेवा-पर्यवेक्षण कहलाता है। शिक्षण प्रशासन के सुधार हेतु किया गया पर्यवेक्षण भी इसी श्रेणी में आता है।

2. **सुधारात्मक पर्यवेक्षण** (Corrective Supervision)–शिक्षा के सम्मुख अनेक समस्याएँ तथा कमियाँ है। इनके निवारण हेतु किया गया पर्यवेक्षण सुधारात्मक पर्यवेक्षण कहलाता है। वैज्ञानिक पर्यवेक्षण का प्रमुख उद्देश्य प्राप्त तथ्यों के आधार पर शिक्षा तथा शिक्षण समस्याओं का समाधान प्राप्त करना है।

3. **वैज्ञानिक पर्यवेक्षण** (Scientific Supervision)–पर्यवेक्षण के फलस्वरूप शिक्षण कार्यों में हुए सुधार आदि मापनीय तथा नियत्रणशील हो तो वह वैज्ञानिक पर्यवेक्षण कहलाता है। वैज्ञानिक पर्यवेक्षण का प्रमुख उद्देश्य प्राप्त तथ्यों के आधार पर शिक्षा तथा शिक्षण समस्याओं का समाधान प्राप्त करना है।

4. **नेतृत्व पर्यवेक्षण** (Leadership Supervision)–जब सम्पूर्ण शिक्षण कार्य में पर्यवेक्षण का नेतृत्व हो जाये तो वह नेतृत्व पर्यवेक्षण कहलाता है। इस अवस्था में शिक्षण से सम्बन्धित कार्य पर्यवेक्षण

की योजना अनुसार ही सम्पादित किये जाते है। वह पर्यवेक्षण लोकतन्त्रीय तथा यथार्थवादी होता है तथा यह शिक्षक व छात्रों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने पर बल देता है।

5. रचनात्मक पर्यवेक्षण (Creative Supervision)—रचनात्मक पर्यवेक्षण का उद्देश्य ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिसमें शिक्षा से सम्बन्धित सभी व्यक्ति सशक्त बौद्धिक तथा सृजनात्मक जीवन व्यतीत कर ले। व्यावहारिक शिक्षा तथा अवकाश के सदुपयोग की शिक्षा के लिए रचनात्मक पर्यवेक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

6. संकेतात्मक पर्यवेक्षण (Indicative Supervision)—संकेतात्मक पर्यवेक्षण के द्वारा शिक्षण कार्य में भावी समय में अध्यापको के समक्ष जो समस्याएँ आने वाली है उनसे अवगत तथा सचेत कर दिया जाता है। समस्याओं के पूर्व ज्ञान के कारण अध्यापक उन समस्याओं का हल कुशलतापूर्वक कर लेते है और उनका कार्य निर्विघ्न रूप से चलता रहता है।

7. निर्देशात्मक पर्यवेक्षण (Instructional Supervision)—यदि पर्यवेक्षण निर्देशन (Guidance) प्रदान करने हेतु किया जाता है तो वह निर्देशात्मक पर्यवेक्षण कहलाता है। निर्देशात्मक पर्यवेक्षण की आवश्यकता विशेष रूप से शिक्षको को शाला के नवीन वातावरण के साथ समायोजन करने मे शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों को शाला में क्रियान्वित करने मे, नवीन अनुशासनहीनता की समस्याओं के समाधान करने मे तथा अन्य नवीन कार्यों का सचालन करने मे पड़ती है।

8. लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण (Democratic Supervision)—पर्यवेक्षण की सफलता सफल नेतृत्व, मानवीय सहानुभूति तथा पूर्ण सहयोग पर आधारित है। यदि पर्यवेक्षण सहयोग, सहानुभूति तथा नेतृत्व पर आधारित है तो वह लोकतत्रीय पर्यवेक्षण कहलाता है। लोकतत्रीय पर्यवेक्षण मे शिक्षको का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त किया जाता है, शिक्षको की समस्याओ को ध्यान से सुना जाता है, शिक्षको के सुझावो को आवश्यक सम्मान प्रदान किया जाता है। लोकतत्रीय पर्यवेक्षता की सफलता योग्य विचारशील सहानुभूतिपूर्ण तथा उदार विचारो वाले नेता पर निर्भर करती है।

9. अधिकारिक पर्यवेक्षण (Authoritative Supervision)—लोकतत्रीय पर्यवेक्षण के विपरीत अधिकारिक पर्यवेक्षण होता है। अधिकारिक पर्यवेक्षण मे पर्यवेक्षणकर्त्ता अपने उच्च अधिकारो तथा सत्ता को अधिक प्रयोग मे लाता है, वह शिक्षको का कम सहयोग प्राप्त करता है तथा उन्हे आवश्यक सम्मान नही देता है। यह पर्यवेक्षण स्वभाव से निरकुश तथा प्रभुत्वपूर्ण होता है। अधिकारिक पर्यवेक्षण पूर्व नियोजित तथा विशेष एव निश्चित उद्देश्यो की परिपूर्ति हेतु किया जाता है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि अधिकार तथा प्रभुत्व के कारण कार्य शीघ्र हो जाता है।

10. नियंत्रणविहीन पर्यवेक्षण (Uncontrollable Supervision)—जहाँ पर्यवेक्षक की ओर से पर्यवेक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षको को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो, शिक्षको की इच्छा ही सर्वोपरि हो तथा उन पर किसी भी प्रकार का नियत्रण न हो तो वह नियत्रणविहीन पर्यवेक्षण कहलाता है। वास्तव मे इस प्रकार का पर्यवेक्षण शिक्षण कार्य को सुधारने हेतु नहीं होता है, वरन् इसका प्रयोजन शाला भवन, वातावरण, उपकरण आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने हेतु किया जाता है।

13.5 : शैक्षिक पर्यवेक्षण का कार्यक्षेत्र (SCOPE OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

विद्यालय पर्यवेक्षण का क्षेत्र बहुत व्यापक है, दिन-प्रतिदिन के समस्त कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रधानाचार्य तथा उसके वरिष्ठ सहयोगियो को तो विभिन्न कार्यों की देखरेख व जाँच करनी ही पड़ती है, परन्तु इनके अतिरिक्त, जैसा कि पहले प्रस्तावित किया गया है, शिक्षा विभाग द्वारा

नियुक्त विशेषज्ञ परिनिरीक्षक विभिन्न विषयो की शिक्षण व्यवस्था का दायित्व सँभाल ले और प्रशासन कार्यों के लिए 'जिला विद्यालय परिषद' को उत्तरदायी ठहराया जाये तो इन दोनो की देखरेख का प्रबन्ध अधिक प्रभावकारी हो जाये। यदि 'जिला विद्यालय परिषद' की स्थापना न हो तो शिक्षा विभाग द्वारा ही प्रशासकीय कार्यों की जाँच-पड़ताल के लिए पृथक् परिनिरीक्षक नियुक्त किये जाये। समस्त प्रकार के परिनिरीक्षको का कार्यक्षेत्र शैक्षिक एव प्रशासन सम्बन्धी प्रक्रियाओ मे मुख्यत सहायता व उन्नति करना होगा। इन परिनिरीक्षको के कार्यक्षेत्र का तीन शीर्षको के अन्तर्गत वर्णन किया जा रहा है–

1. **सामान्य प्रशासन** (General Administration)–विद्यालय के कार्यालय सम्बन्धी कार्यों की निरन्तर देखभाल करना प्रधानाध्यापक का कर्त्तव्य है। इसके फलस्वरूप क्लर्क आदि अपने कार्य को अधिकाधिक कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने का प्रयत्न करते है तथा पत्र-व्यवहार व विभिन्न अभिलेखों आदि की पूर्ति उचित समय पर तथा विधिपूर्वक होती रहती है। निरन्तर परिनिरीक्षण के अभाव मे प्राय क्लर्कों का बहुत-सा कार्य बिना किये हुए या अधूरा ही पड़ा रहता है जिससे कार्यालय मे धीरे-धीरे अव्यवस्था बढ़ती जाती है।

प्रतिदिन के हिसाब-किताब की भी निगरानी रखने से एकाउण्टेण्ट सतर्क रहते है जिसके फलस्वरूप वे विभिन्न त्रुटियो एव झझटो से मुक्त रहते है। प्रधानाध्यापक से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वार्षिक बजट के निर्माण के अतिरिक्त सहायता अनुदानो का प्रयोग विधिवत् करवाये तथा विद्यालय के सम्पूर्ण वित्तीय मामलो की सन्तोषजनक ढग से व्यवस्था करे।

प्रधानाध्यापक का परिनिरीक्षण के सम्बन्ध मे एक अन्य उत्तरदायित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वह है–विद्यालय की सामूहिक चारित्रिक भावना का विकास। विद्यालय के सभी कार्यकर्त्ताओं–शिक्षक, क्लर्क व निम्न श्रेणी के कर्मचारी आदि की मनोभावना (Mental Attitude) व पारस्परिक व्यवहार व सम्बन्धो पर ही विद्यालय का उत्तम वातावरण निर्भर करता है। ऐसे वातावरण का निर्माण प्रधानाध्यापक अपने स्वार्थ-रहित चरित्र तथा निष्ठापूर्ण शिष्ट व्यवहार द्वारा कर सकता है। शिक्षको तथा छात्रो मे उचित कार्यभार का वितरण करना तथा विद्यालय समय-तालिका का बनाना भी सरल कार्य नही। यदि इसमे तनिक भी असावधानी हुई तो शिक्षको मे व्यर्थ ही असन्तोष की लहर फैल जाती है। पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओ का सचालन इस दिशा मे विशेष रूप से सहायक होता है।

'जिला विद्यालय परिषद' अथवा सरकार द्वारा नियुक्त विद्यालय परिनिरीक्षक को विभिन्न प्रशासकीय कार्यों की जाँच तथा आवश्यकतानुसार सहायता प्रदान करेगा। सहायता अनुदानो के प्रयोग तथा अन्य वित्तीय मामलो की जाँच करना तो उसका मुख्य कर्त्तव्य होता है। सरकार जब इतनी धनराशि विद्यालयो को देती है तो उसका सदुपयोग कराना भी उसका दायित्व हो जाता है।

शिक्षको का चयन, नियुक्ति, स्थान परिवर्तन से सम्बन्धित कार्य भी परिनिरीक्षक की सहायता से सरल हो जाते है। कभी-कभी शिक्षको तथा प्रबन्ध समितियो के बीच मतभेद होने पर उनमे समझौता कराना भी बाह्य परिनिरीक्षक का दायित्व होता है। सरकारी व अनुदान-प्राप्त विद्यालयो को शिक्षा विभाग के आदेशो व नियमो का पालन करना होता है जिनकी जाँच भी सरकारी परिनिरीक्षक करते है। जहाँ कही उल्लघन होता है, उसकी सूचना वे शिक्षा विभाग को देते है।

2. **शैक्षिक कार्य** (Educational Work)–विद्यालय के शिक्षण कार्य को श्रेष्ठतम बनाने मे भी परिनिरीक्षकगण बहुत सहायक हो सकते है। जब शिक्षको को यह विश्वास हो जाता है कि उनका परिनिरीक्षक या प्रधानाध्यापक या विभागाध्यक्ष उनकी कठिनाइयो को दूर करके, उनको आवश्यकतानुसार परामर्श देकर या नवीन विधियो का प्रयोग बताकर सहानुभूतिपूर्वक उनके कार्य को उन्नत बनाने मे सहयोग दे सकता है तो वह अपनी समस्याएँ उनके सामने प्रस्तुत करने मे नही झिझकते है। विभिन्न शैक्षिक कार्यों की उन्नति के लिए आवश्यक है कि शिक्षकगण हिचकिचाहट एव सकोच के बिना

समस्याओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। ऐसे वातावरण के निर्माण में प्रधानाध्यापक व वरिष्ठ शिक्षकों का बहुत हाथ रहता है। वे सेमीनार, विचारगोष्ठी आदि के आयोजन द्वारा अपने सहयोगियों की समस्याओं के समाधान की ओर ध्यान ही आकृष्ट नहीं करता वरन वह उनको सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। परिनिरीक्षकगण विभिन्न विषयों की सर्वोत्तम शिक्षण विधियों व सामग्री के प्रयोग की यथोचित व्यवस्था करके शिक्षकों का आभार ग्रहण करने के अधिकारी हो जाते हैं। प्रयोगशालाओं में उचित सामग्री व फर्नीचर के अभाव में कार्य कदापि सन्तोषजनक ढंग से नहीं हो सकता है और न उपयुक्त पुस्तकालय के अभाव में स्वाध्ययन की आदत को विकसित किया जा सकता है। पुस्तकों के चयन में प्रधानाध्यापक अपने सहयोगियों के ज्ञान, योग्यता व रुचि से पर्याप्त रूप से सहायता प्राप्त कर सकता है।

कार्यभार के उचित विभाजन व पूर्णत विचार-विमर्श के पश्चात समय सारिणी बनाने से शिक्षकों के मन में प्रधानाध्यापक के प्रति अविश्वास एवं अन्याय की भावना उत्पन्न नहीं होती है और विद्यालय के शैक्षिक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाते हैं। विभिन्न व्यक्तियों के कार्यभार के निर्धारण में पाठ्यक्रम सम्बन्धी तथा विद्यालय की अन्य सभी क्रियाओं को ध्यान में रखना चाहिए। कार्य का निर्धारण करते समय शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों की योग्यता व रुचि का ध्यान रखने से भी प्रधानाध्यापक विद्यालय की भलाई भली-भाँति कर सकेगा।

शिक्षण कार्य को उन्नत बनाने के लिए वह प्रदर्शनात्मक शिक्षण की व्यवस्था में बहुत सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यह स्वय तथा उसके वरिष्ठ सहयोगी कक्षाओं में अनौपचारिक परिदर्शन से अथवा साधनों द्वारा, जैसे—गृह-कार्य की जाँच करके, आन्तरिक परीक्षाओं की पुस्तिकाओं की देखभाल करके शिक्षण में जो कमियाँ पायेंगे, उनको शिक्षकों से वैयक्तिक और सामूहिक रूप से विचार-विमर्श करके दूर किया जा सकता है। प्रधानाध्यापक उनकी व्यावसायिक उन्नति के लिए विभिन्न सेमीनारों, विचारगोष्ठियों, सम्मेलन, वर्कशॉप, ग्रीष्मकाल के संस्थानों (Summer Institutes), अभिनव पाठ्यक्रम (Refresher Courses) आदि का तो स्वय आयोजन करेंगे अथवा शिक्षकों को अन्य स्थानों पर जाने की अनुमति देकर उचित प्रबन्ध करेंगे।

सरकार द्वारा नियुक्त परिनिरीक्षक या जो भी इस कार्य के लिए नियुक्त हो वह विद्यालय के कार्यकर्त्ताओं—प्रधानाध्यापकों व शिक्षकों—के लिए मित्र, परामर्शदाता एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करे तो विद्यालय में भयोत्पादक स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। ये परिनिरीक्षक अपने व्यापक अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर विभिन्न विषयों के शिक्षण को उन्नत बनाने के लिए शिक्षकों को सहायता एवं प्रेरणा प्रदान करके अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकते हैं तथा नवीनतम शिक्षण विधियों और प्रक्रियाओं तथा सहायक साधनों से अवगत कराकर और उनको व्यवहार में लाने के लिए प्रयास करवा सकते हैं।

शिक्षकों की व्यावसायिक उन्नति के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था उत्तम है। इसके लिए सरकारी परिनिरीक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों एवं कॉलेजों में अभिनवन कोर्स, प्रसार-सेवा, पत्राचार पाठ्यक्रम (Correspondence Courses), विभिन्न सेमीनारों आदि के आयोजन के लिए कार्य करें तो शिक्षक की व्यावसायिक प्रगति में वृद्धि होगी।

3. पर्यवेक्षण एवं अनुसन्धान (Supervision and Research)—शिक्षकों को दिन-प्रतिदिन के कार्य में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे—बालकों की पढ़ाई के प्रति अरुचि व उदासीनता, कुछ बालकों का पिछड़ापन, वैयक्तिक एवं सामूहिक अनुशासनहीनता, पारिवारिक परिस्थितियाँ जो बालकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास में बाधा डालती हैं। प्रधानाध्यापक व उनके सहयोगी विद्यालय की ऐसी असन्तोषजनक परिस्थितियों व बालकों की शैक्षिक व विकास सम्बन्धी समस्याओं का पर्यवेक्षण करके उनके समाधान के लिए कार्य कर सकते हैं। अनुसन्धान की विधि जो आजकल सभी

क्षेत्रो मे प्रगति का मुख्य साधन है, शिक्षा-क्षेत्र मे भी उतनी ही सहायक हो सकती है। शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करके नवीन शैक्षिक विधियो व साधनो को प्रयोगात्मक रूप दिया जा सकता है।

एक कुशल परिनिरीक्षक अपने क्षेत्र की शैक्षिक प्रगति एव उसकी शैक्षिक आवश्यकताओ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पर्यवेक्षण कराये जिसके आधार पर वह सरकार की अनुमति से अपने सुझाव देकर शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार ला सकता है। विभिन्न विद्यालयो के शिक्षको के लिए भी शैक्षिक अनुसन्धान करने के लिए उचित व्यवस्था कराये, जिससे नवीन शैक्षिक विचारधाराओं को प्रयोगात्मक रूप देने के लिए विद्यालयो को जागरूक किया जा सके। वह शिक्षको से विभिन्न विषयो में निष्पत्ति जाँचो (Achievement Tests) को निर्मित करवाकर उसको प्रमापीकृत (Standardized) करवा सकता है।

13.6 : शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य (FUNCTIONS OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

पर्यवेक्षक को अपने व्यवसाय से सम्बन्धित निम्न कार्य करने पड़ते है–

1. कक्षा-निरीक्षण करना जिससे शिक्षक के शिक्षण-स्तर का पता चल सके।
2. शिक्षक गोष्ठियाँ आयोजित करना।
3. सभा, समितियो मे भाग लेना।
4. अभिभावको से सम्पर्क स्थापित करना।
5. कार्यालय कार्य का सचालन।
6. प्रधानाध्यापको के साथ कार्य करना।
7. प्रदर्शन-पाठो का आयोजन करना।
8. पर्यवेक्षण-पत्रिका का प्रकाशन।
9. परामर्शदाता के रूप में कार्य करना।
10. अभिनव पाठ्यक्रमो का आयोजन करना।
11. अनुसधान कार्य करना।

अनुसधान कार्यों के अन्तर्गत पर्यवेक्षक उन्ही समस्याओ के सम्बन्ध मे लघुस्तरीय अनुसधान कर सकता है जो उसके क्षेत्र के अध्यापको के सम्मुख सामान्यत आती है। एक प्रकार से यह सामूहिक क्रियात्मक अनुसधान है। इसके अन्तर्गत वह अनुशासनहीनता की समस्या, शैक्षिक पिछड़ापन, बड़ी मात्रा मे अनुपस्थिति आदि का अध्ययन कर सकता है। कभी-कभी वह परीक्षणो का भी निर्माण करवा सकता है।

13.7 : शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्व (IMPORTANCE OF EDUCATIONAL SUPERVISION)

शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा की उन्नति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्त्व निम्न कारणो से और भी अधिक बढ़ गया है–

1. **सामाजिक आवश्यकता के कारण** (Cause of Social Necessity)–आज प्रत्येक समाज क्रमश भौतिकवादी होता जा रहा है। उसकी आवश्यकताएँ, मान्यताएँ, मूल्य तथा प्रकृति मे तीव्र गति से उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है। इसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षा के स्वभाव एव प्रकृति पर पड़ रहा है। इससे

शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। विश्व में लोकतंत्रीय जीवन दर्शन व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। इसमें जाति, रंग आदि का भेदभाव न रखते हुए सभी को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके लिए बड़े पैमाने पर विद्यालयों की व्यवस्था करने की आवश्यकता है, साथ ही साथ कक्षाओं में छात्रों की संख्या भी आशा से अधिक बढ़ानी है। यह वास्तव में हो भी रहा है। इसके अलावा शिक्षा का भौतिकीकरण भी हो रहा है। इस नये परिवेश में शिक्षा को नई-नई समस्याओं जैसे—अनुशासनहीनता, व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना, कक्षाओं में अधिक व्यक्तिगत विभिन्नताओं का होना, लोकतन्त्रात्मक दृष्टिकोण का विकास करना आदि का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा का समुचित पर्यवेक्षण करने की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

2. अध्यापक पर अधि-भार (Teacher Overload)—आज के अध्यापक का पहले की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है। आज का अध्यापक केवल एक अध्यापक ही नहीं है वरन् वह मित्र, निर्देशक तथा दार्शनिक के रूप में छात्र के समक्ष प्रस्तुत होता है। इस स्थिति में अध्यापक को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। वह शिक्षण करता है, व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता लगाता है, संचयी आलेख पत्र तथा छात्र से सम्बन्धित उपयोगी सूचनाएँ एकत्रित करता है, उसका पथ-प्रदर्शक बनता है, परिणाम-पत्र बनाता है तथा अन्य अनेक कार्य करता है। इन सहगामी कार्यों के बढ़ने के साथ ही साथ उसके मूल कार्य शिक्षण में भी तीव्रता के साथ वृद्धि हुई है। उसे अब आठ कालांशों में से कभी-कभी तो सभी और सामान्यतया छः या सात कालांश शिक्षण करना पड़ता है। अब उसे कक्षा में दस-पन्द्रह छात्रों के स्थान पर पचास-पचास और इनसे भी अधिक छात्रों को पढ़ाना पड़ता है। अध्यापक अपने इस अधि-भार को सफलता एवं सुविधापूर्वक वहन कर सके, इसके लिए समुचित शैक्षिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा उसकी अनेक समस्याएँ सुलझाई जा सकती है।

3. नवीन शिक्षण विधियों का विकास (Development of New Teaching Methods)—लोकतांत्रिक शिक्षा के अन्तर्गत आजकल अनेक आधुनिक शिक्षण विधियों का विकास हो चुका है। इन नवीन विधियों का कक्षा शिक्षण में व्यावहारिक प्रयोग बिना पूर्व प्रशिक्षण के सम्भव नहीं है। साथ ही साथ नवीन शिक्षण विधियाँ अध्यापकों से कुछ आकांक्षाएँ रखती है। शिक्षण पर्यवेक्षण के द्वारा नवीन शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग, सफलता, असफलता तथा सुधारों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

4. अप्रशिक्षित अध्यापक (Untrainned Teacher)—तीव्र गति से बढ़ती हुई शैक्षिक सुविधाओं की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में अप्रशिक्षित अध्यापकों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी है। अप्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों का ज्ञान तथा कौशल प्रदान किया जा सकता है।

5. प्रशिक्षित अध्यापकों का अभिनवीकरण (Innovation of Trainned Teachers)—शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण का काल छोटा होता है। वहाँ शिक्षण कौशल का पूर्ण विकास नहीं किया जा सकता है। सेवा-रत स्थिति में सामयिक शिक्षा पर्यवेक्षण के द्वारा इन प्रशिक्षित शिक्षकों में वांछनीय शिक्षण कौशल विकसित किया जा सकता है।

शिक्षा एक जीवित एवं विकासमान शास्त्र एवं विज्ञान है। इनमें नित नये-नये विकास होते रहते है। शिक्षा पर्यवेक्षण के द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले नवीनतम विकासों से परिचित कराया जा सकता है।

6. विद्यालय कार्यों में वृद्धि (Growth in School Works)—आज विद्यालय का कार्य केवल विषयगत शिक्षा प्रदान करना मात्र ही नहीं रह गया है, वरन् आज के विद्यालय से यह आशा की जाती है कि वह छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे। इस कार्य हेतु विद्यालय के शिक्षण के अलावा और अनेक कार्य सम्पादित करने पड़ते है। उसे अनेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं संचालन

करना पड़ता है. छात्रो मे लोकतात्रिक भावानाओ का विकास करने हेतु आवश्यक कदम उठाने पड़ते है तथा व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है। इन कार्यों की सफलता भी उपयुक्त शिक्षा पर्यवेक्षण पर निर्भर है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1 शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ एव उद्देश्यो की विवेचना कीजिए।

2 शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्यक्षेत्र का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 पर्यवेक्षण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2 शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य बताइए।

3 शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकारो को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 "परिनिरीक्षण एक उत्तम शिक्षण अधिगम परिस्थिति के विकास मे सहायता देता है।" किसका कथन है ?

(अ) किम्बल (ब) विलियम

(स) एडम (द) इनमे से कोई नही। **उत्तर**–(अ)

2 शैक्षिक पर्यवेक्षण के प्रकार है–

(अ) सुधारात्मक (ब) वैज्ञानिक

(स) नेतृत्व (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

3 शैक्षिक पर्यवेक्षण का कार्य है–

(अ) अभिभावको से सम्पर्क स्थापित करना (ब) अनुसधान कार्य करना

(स) परामर्शदाता के रूप मे (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

□□

अध्याय

14

निर्णयन निर्माण : विशेषताएँ, प्रकार, प्रविधि एवं विधियाँ

[DECISION MAKING : CHARACTERISTICS, TYPES, TECHNIQUES AND METHODS]

प्रबन्धन के क्या कार्य है ? इस पर विभिन्न विद्वान एकमत नही है, क्योंकि विभिन्न विद्वानो ने प्रबन्धन के कार्यों का अलग-अलग उल्लेख किया है, इन सब विद्वानो ने प्रबन्धन के कार्यों की जो सूची दी है, उनमे से निम्न 9 कार्य ऐसे है, जिनका उल्लेख प्रत्येक विद्वान की सूची मे पाते है – (1) नियोजन (Planning), (2) सगठन (Organisation), (3) नियन्त्रण (Controling), (4) निर्देशन (Direction), (5) समन्वय (Co-ordination), (6) निर्णयन-निर्माण (Decision-Making), (7) बजट निर्माण (Budgeting), (8) नवाचार (Innuagration) तथा (9) कर्मचारी भर्ती (Staffing)। इन सभी कार्यों मे निर्णयन-निर्माण सबसे महत्त्वपूर्ण है।

प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य निर्णय लेना है। प्रबन्धक अनेक तथ्यो से सम्बन्धित निर्णय लेता है जैसे किसी प्रतिष्ठान की स्थापना का निर्णय, स्थापना कब, कहाँ व किस आकार की हो, ससाधन जुटाने के सम्बन्ध मे निर्णय, ससाधनो के कार्य पर लगाने के सम्बन्ध मे निर्णय, उत्पादन की किस्म व मात्रा के सम्बन्ध मे निर्णय, नीति निर्धारण तथा नियन्त्रण के सम्बन्ध मे निर्णय आदि।

निर्णय-निर्माण के सम्बन्ध मे एक तथ्य स्पष्ट है कि निर्णय तभी सम्भव होता है जब हमारे पास कई विकल्प उपलब्ध हो तथा इन विकल्पो मे से हमे कोई एक सर्वोत्तम विकल्प चुनना हो। जहाँ विकल्प उपलब्ध न हो, वहाँ चयन के सम्बन्ध मे निर्णय सम्भव नही है। निर्णय-निर्माण पर ही किसी प्रतिष्ठान की सफलता निर्भर है। निर्णय निश्चय रूप से प्रबन्धक की दूरदर्शिता, समझ व बौद्धिक स्तर पर निर्भर करता है। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि निर्णय-शैली प्रजातान्त्रिक हो अर्थात निर्णय-निर्माण मे सभी की भागीदारी हो।

14.1 : निर्णयन का अर्थ (MEANING OF DECISION)

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, निर्णयन तभी सम्भव है, जब किसी समस्या के समाधान के कई विकल्प उपलब्ध हो, इन समाधानों में से सर्वोत्तम का चुनाव करने के लिए ही निर्णय किया जाता है। यदि समस्या का समाधान का केवल एक ही विकल्प हो, तो निर्णयन लेना सम्भव नही है, क्योंकि वहाँ

पर चयन का विकल्प नही होता है। निर्णय लेते समय निर्णय लेने वाला व्यक्ति सभी उपलब्ध विकल्पात्मक मार्गों की समीक्षा करता है और कार्यान्वयन के लिए किसी एक उपयुक्त मार्ग का चयन करता है। यही निर्णयन-निर्माण है। इसी तथ्य को नेजेविच ने इस प्रकार लिखा है– निर्णयन अकेले या चुनावों की कड़ी मे सर्व प्रमुख अनुक्रम प्रक्रिया है जो क्रियाओ को सचालित करती है।" (Decision making is a sequertial process culminating in a single on series of decisions which stimulate moves or actions)

14.2 : निर्णयन निर्माण की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF DECISION MAKING)

निर्णयन-निर्माण की विशेषताएँ निम्न है–

1. **आन्तरिक तथा बाह्य नीतियाँ** (Internal and External Policy)–निर्णय लेते समय विद्यालय की आन्तरिक एव बाह्य नीतियो को ध्यान मे रखना चाहिये और सम्पूर्ण विद्यालय की गतिविधियो मे सन्तुलन बनाये रखना चाहिये।

2. **परिवर्तनों से अवगत कराना** (Inform of Change)–यदि विद्यालय मे उचित एव उपयोगी क्रियाओ को प्रारम्भ करना है तो प्राचार्य को विद्यालय के सभी सम्बन्धित व्यक्तियो को होने वाले परिवर्तनो से अवगत कराना चाहिये और उन्हे बलपूर्वक न थोपकर सबकी राय से निर्णय लेकर लागू करना चाहिये।

3. **वातावरण का ध्यान** (Attention to Environment)–निर्णय लेते समय प्राचार्य को विद्यालय के वातावरण, नैतिक मूल्यो, प्रशासनिक सरचना एव कर्मचारियो तथा शिक्षको की प्रवृत्तियो का भी ध्यान रखना चाहिये। इनकी अवहेलना करने पर कोई भी निर्णय कार्यरूप मे परिणित नहीं हो सकता है।

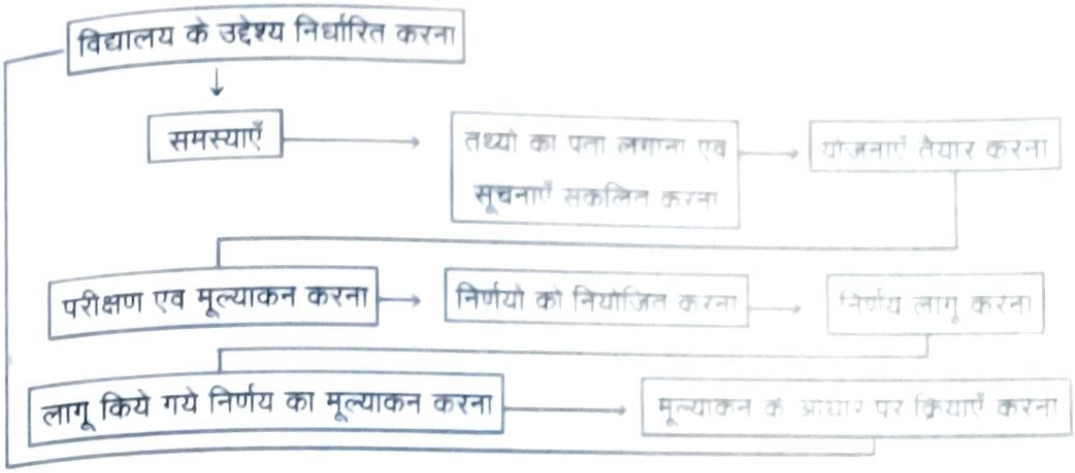
4. **नेतृत्व** (Ledership)–प्राचार्य को विद्यालय मे ऐसा नेतृत्व प्रदान करना है जिससे नवीनता एव सृजनात्मक विचार और क्रियाएँ विद्यालय मे प्रस्फुटित तथा विकसित हो सके।

5. **प्रबन्ध विद्या का ज्ञान** (Knowledge of Management)–प्राचार्य को वर्तमान प्रबन्धीय तकनीकी (मैनेजमेण्ट्स टेक्नीक्स) का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये क्योकि इस ज्ञान के अभाव मे वह सही निर्णय नही ले सकता है।

6. **विवाद से बचाव** (Dispute avoidance)–निर्णय लेते समय हमे सस्था एव व्यक्तियो दोनो की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखना चाहिये जिससे दोनो के बीच उत्पन्न विवाद से किसी को हानि न हो सके।

14.3 : निर्णय लेने की विधि (METHOD OF DECISION MAKING)

निर्णय लेने की एक विशेष विधि होती है। कभी हम व्यक्तिगत रूप से और कभी हम सामूहिक रूप से निर्णय लेते है। जो भी व्यक्ति अथवा समूह निर्णय लेता है उसे किसी-न-किसी विधि का सहारा लेना होता है। विद्यालय से सम्बन्धित प्रकरणो एव समस्याओ पर निर्णय लेने के लिये निम्नलिखित विधि अपनानी चाहिये। निर्णय लेने की सम्पूर्ण विधि का हम अग्र प्रारूप मे अध्ययन कर सकते है–



इस प्रारूप के आधार पर निर्णय लेने हेतु प्राचार्य को निम्नलिखित क्रियाओं को अपनाना आवश्यक होगा—

1. समस्या का अर्थ जानकर उसे परिभाषित करना।
2. समस्या का विश्लेषण करके सूचनाएँ एकत्रित करना।
3. समस्या के समाधान हेतु वैकल्पिक हल खोजना।
4. सर्वश्रेष्ठ समाधान को स्वीकार करना।
5. लिये गये निर्णय को कार्यरूप मे परिणत करना।

1. समस्या को परिभाषित करना (Defining the Problem)—प्राचार्य को इस क्रिया को करते समय गम्भीरता से विचार करना चाहिये और पर्याप्त समय समस्या के समझने एव उसको परिभाषित करने मे लगाना चाहिये। प्रत्येक समस्या किसी-न-किसी स्थिति से जुड़ी रहती है जिसके कारण असन्तोष पनपने लगता है। व्यक्ति इसी असन्तोष को दूर करने के उद्देश्य से निर्णय लेने की प्रक्रिया मे प्रवेश करता है। वह सर्वप्रथम समस्या को समझकर उसका अर्थ जानने का प्रयास करता है। यदि समस्या को बगैर समझे व्यक्ति किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है तो उससे समस्या का समाधान होने के स्थान पर वह और जटिल रूप धारण कर लेती है। ऐसी स्थिति मे सारे निर्णय गलत सिद्ध होते है और वास्तविक समस्या जैसी की तैसी बनी रहती है। प्राचार्य को चाहिये कि वह ऐसी स्थिति मे समस्या के प्रत्येक पहलू पर अलग से विचार करे और विश्लेषण क्रिया के माध्यम से समस्या को समझने का प्रयास करे। बगैर समस्या को समझे निदानात्मक प्रयास करना उसके लिये अहितकर सिद्ध होगे। प्रशासक को इस स्तर पर समस्या के समाधान हेतु उन शर्तों एव स्थितियों का भी पता लगाना चाहिये जिन पर निर्णय लेकर हम समस्या से छुटकारा पा सकते है।

2. समस्या का विश्लेषण करके (Analysing the Problem)—प्रथम चरण मे समस्या का अवलोकन करने के पश्चात् सम्बन्धित उद्देश्यों को निर्धारित करके समस्या के पहलुओं पर गहन विचार किया जाता है और दूसरे चरण मे समस्या का विश्लेषण करके उसका वर्गीकरण किया जाता है और सम्बन्धित तथ्यो का पता लगाया जाता है। समस्या का वर्गीकरण करने से यह विदित हो जाता है कि किसे निर्णय लेना है। निर्णय लेते समय किन-किन व्यक्तियों से सम्पर्क करके सलाह लेता है और किन व्यक्तियो को लिये गये निर्णयो से अवगत कराता है। समस्या के वर्गीकरण से हम यह भी जान जाते है कि निर्णयो को व्यावहारिक रूप मे किस प्रकार उतारे ? वर्गीकरण के चार प्रमुख सिद्धान्त है—

1. निर्णयो का भविष्य मे होने वाला प्रभाव।
2. निर्णयो का विद्यालय की क्रियाओ एव विभिन्न गतिविधियो पर प्रभाव।

3 निर्णय मे सम्मिलित होने वाले सख्यात्मक विचार।

4 निर्णय की विशिष्टता।

वर्गीकरण से यह भी विदित हो जाता है कि निर्णयो मे विद्यालय ने प्रगति मे क्या योगदान दिया है। वर्गीकरण के लिये समस्या से सम्बन्धित प्रत्येक तथ्य को देखना पड़ता है। प्राचार्य को चाहिये कि वह यह निश्चित करे कि किन तथ्यो की जानकारी उसे लेनी है और यह जानकारी वह कैसे प्राप्त कर सकता है। तथ्यो को सगठित करने के लिये विशेष कुशलता की आवश्यकता है, अत प्राचार्य को निर्णय लेने की दृष्टि से इस क्षेत्र मे प्रवीण होना आवश्यक है। प्राचार्य को यह ध्यान रखना चाहिये कि जो भी तथ्य सकलित किये जाये उनसे समस्या का समाधान हो सके। केवल तथ्यो का सकलन करना पर्याप्त नही है वरन् प्राचार्य को यह भी जानना आवश्यक है कि उन तथ्यो को किस प्रकार और किस रूप मे प्रयोग किया जाये जिससे कोई निर्णय लेकर समस्या का समाधान हो सके।

3. समस्या के समाधान हेतु वैकल्पिक हल खोजना (Searching Alternatives Solution for the Problem)—निर्णय लेने का तीसरा चरण समस्या के सुलझाने हेतु विभिन्न वैकल्पिक समाधानो को प्रस्तुत करना है क्योकि यदि ऐसा नही किया गया तो गलत समाधान प्रस्तुत होने का भय बना रहता है। ऐसी स्थिति मे प्राचार्य वास्तविकता से दूर हटकर अपनी कल्पनाओ के आधार पर निर्णय लेने लगता है और साथ ही गलत क्रियाएँ भी करने लगता है। प्राचार्य को सदैव सतर्क रहना चाहिये और समस्या के विभिन्न वैकल्पिक समाधानो पर गहनता से विचार करना चाहिये। जब प्राचार्य विभिन्न वैकल्पिक समाधानो को प्रस्तुत करने लगता है तो उसके पास स्वाभाविक ढग से विभिन्न विचार आने लगते है जिनसे अनिश्चितता के बादल छँट जाते है और वह सही वैकल्पिक समाधान को चुनकर सही निर्णय ले लेता है। यही कारण है कि समस्या के समाधान हेतु विभिन्न वैकल्पिक हल खोजना निर्णय लेने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

4. सर्वश्रेष्ठ समाधान को स्वीकार करना (Accepting the Best Solution)—जब विभिन्न प्रकार के समाधान खोज निकालते है तो अगला कदम प्रत्येक समाधान का विश्लेषण करके एक-दूसरे से तुलना करना है और यह पता लगाना है कि सभी समाधानो मे सर्वश्रेष्ठ समाधान कौन-सा है। निर्णय लेते समय सही और श्रेष्ठ समाधान को ही चुनना चाहिये जिससे न तो समय और न ही श्रम व्यर्थ जाता है। विभिन्न समाधानो मे से सर्वश्रेष्ठ समाधान का चयन निम्न बातो के आधार पर किया जा सकता है-

(i) सम्भावित जोखिम का अनुमान—जो अपेक्षाएँ एव आशाएँ हमारी है और जिनके अनुरूप क्रियाएँ की जाती है उनमे सम्भावित जोखिमो का अनुमान लगाना, क्योकि ऐसी कोई स्थिति नही होती है जिसमे जोखिम सम्मिलित न हो। जिस समाधान एव कार्य मे जोखिम कम हो और उससे होने वाले लाभ की आशा अधिक हो तो हमे उस समाधान का चयन कर लेना चाहिये।

(ii) विद्यालय के क्रियाकलापों में बाधा न होना—प्राचार्य को चाहिये कि यह विद्यालय की गतिविधियो मे कम-से-कम बाधा डाले और कम प्रयासो से विद्यालय के स्रोतो एव साधनो को अच्छे परिणामो की प्राप्ति की आशा से विभिन्न क्रियाओ मे प्रयोग करे। जो प्राचार्य विद्यालय के स्रोतो एव साधनो का अधिकतम प्रयोग सृजनात्मक रूप से करते है वे सदैव सही समाधान खोज निकालने मे समर्थ रहते है।

(iii) महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की खोज—प्राचार्य को चाहिये कि वह यह पता लगाये कि सम्पूर्ण विद्यालय की गतिविधियो मे कौन-सी स्थिति अथवा क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण है और किस प्रकार के निर्णय से कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सफलतापूर्वक सबके हित मे किया जा सकता है। जो समाधान अधिक फलदायी हो उसी का चयन करके कार्य करने की योजना बनानी चाहिये।

(iv) सर्वश्रेष्ठ समाधान का चयन–विभिन्न समाधानो मे सर्वश्रेष्ट समाधान का चयन तभी किया जा सकता है जब निर्णय लेने से सम्बन्धित तथ्यो का स्पष्ट ज्ञान हो। प्रत्येक क्षेत्र मे निर्णय लेने के लिये कुछ निश्चित तथ्य होते है जिनके आधार पर यह आँका जा सकता है कि इन तथ्यो से निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव है अथवा नही। जिन तथ्यो से निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है उन्ही तथ्यो पर आधारित समाधान का चयन करना चाहिये। प्राचार्य को सर्वश्रेष्ट समाधान खोजने के लिये सम्बन्धित व्यक्तियो की कार्य करने की कुशलता, कार्य करने की दशाओ, उनकी योग्यताओ एव अनुभवो का भी ध्यान रखना चाहिये। उसे यह देखना है कि विद्यालय मे जो भी साधन उपलब्ध है वह सर्वश्रेष्ठ समाधान से तालमेल खाते है अथवा नही।

5. लिये गये निर्णयों को कार्यरूप में परिणत करना (Put into action the Decisions taken)–यदि कोई निर्णय ऐसा है जो व्यावहारिक रूप मे लागू नही किया जा सकता है तो वह निर्णय न होकर केवल एक कल्पना होगी। प्राचार्य द्वारा लिये गये निर्णय का महत्त्व इस बात मे निहित है कि विद्यालय के सभी कर्मचारीगण उस निर्णय के आधार पर प्रभावी रूप से कार्य करे। केवल तभी प्रभावी माना जाता है जब सम्बन्धित व्यक्ति यह समझते हो कि निर्णय मे किन-किन बातो का समावेश किया गया है, उस निर्णय के आधार पर उनसे क्या अपेक्षाएँ है तथा उन्हे कौन-सी नवीन भूमिकाएँ निभानी है। प्राचार्य के लिये यह आवश्यक है कि यदि उसे कर्मचारियो द्वारा निर्णयो का पालन कराना है तो उसे कर्मचारियो को भी निर्णय लेने की प्रक्रिया मे सम्मिलित करना चाहिये। कोई भी प्रशासक यदि अपने अधीन कर्मचारियो के विचारो का आदर करता है अथवा निर्णय लेते समय उनसे चर्चा करता है तो वह अपने निर्णयो को कार्यरूप मे परिणत कराने मे सफल रहता है। प्राचार्य को चाहिये कि वह नियमित निर्णयो मे विद्यालय के कर्मचारियो को भी सम्मिलित करे जिससे उनको कार्यरूप मे परिणत करने के लिये कर्मचारियो का सहयोग बगैर किसी कठिनाई के प्राप्त हो सके।

14.4 : निर्णयन निर्माण की प्रविधि (TECHNIQUE OF DECISION MAKING)

सगठनो के प्रबन्धको को अक्सर आम सहमति के आधार पर निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। उन्हे टीम के सदस्यो के साथ चर्चा करने, बहस करने और पारस्परिक रूप से सहमत होकर निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। इसके लिये पाँच प्रविधियो पर निम्नलिखित वर्णन करेगे–

1. मंथन (Brainstorming)–यह समस्या हल करने और चर्चाओ का एक सयोजन यह इस धारणा पर काम करता है कि विचारो की जितनी अधिक सख्या होगी समस्या को हल करने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। जो सभी के लिये स्वीकार्य है। यह समूह जनरेटिग विचारो से शुरू होता है। उसके बाद उसका विश्लेषण किया जाता है।

2. नाममात्र समूह तकनीकी (Nominal Group Technique)–इस तकनीक मे टीम खुद को छोटे-छोटे समूहो मे विभाजित करती है और विचारो को उत्पन्न करती है। टीम के सदस्यो के सामने सम्भावित विकल्प प्रस्तुत किये जाते है तथा उस पर सबसे अच्छा विकल्प चुनने पर चर्चा की जाती है तथा वोटिग की जाती है। जिस विकल्प को सबसे अधिक वोट प्राप्त होते है उसे स्वीकार किया जाता है।

3. बहुमतदान (Multivoting)–इसमे एक व्यक्ति को शार्टलिस्ट किया जाता है। उस व्यक्ति को विकल्प से चुनकर मत डाला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति एक समय मे एक वोट दे सकता है। अधिकतम सख्या वाले मतो वाले व्यक्ति को अगले दौर मे ले जाया जाता है। एक स्पष्ट जीत प्राप्त होने पर प्रक्रिया को दोहराया जाता है।

4. **डेल्फी विधि** (Delphi Method)—इस पद्धति मे सुविधाकर्ता टीम के सदस्यो को व्यक्तिगत रूप से मथन और उसके विचारो को (अनाम रूप से) प्रस्तुत करने की अनुमति देता है। अन्य टीम के सदस्य अनाम व्यक्ति को नही जानते है। सुविधाकर्ता सभी अदानो को एकत्रित करता है और उन्हे दूसरो के बीच प्रसारित करता है। जब तक अतिम निर्णय सही किया जाता प्रक्रिया जारी रहती है।

14.5 : निर्णयन निर्माण का महत्व (IMPORTANCE OF DECISION MAKING)

मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र मे प्राय निर्णय लेता है, जहाँ भी कोई समस्या पैदा होती है और समस्या के कई विकल्प खुले होते है, वही पर निर्णयन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रो मे समय-समय पर निर्णय लेना होता है।

शिक्षा प्रबन्धन के क्षेत्र मे निर्णय लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। शिक्षा के आवश्यक अवसरो पर शैक्षिक प्रबन्धको को कोई-न-कोई निर्णय लेने ही पड़ते है, वह वास्तव मे निर्णयन, प्रबन्धन का ही कार्य है। यह हम गत अध्याय मे अध्ययन कर चुके है। निर्णय लेना प्रशासक की प्रक्रिया का एक अभिन्न अग है। मैक्केमी का कहना है कि निर्णय निर्माण प्रशासकीय प्रक्रिया का एक अभिन्न तत्त्व है, जबकि 'जैकोवसन' ने निर्णय को सम्पूर्ण प्रशासकीय प्रक्रिया का केन्द्र-बिन्दु माना है। संक्षेप में, जैसा कि ग्रेग ने कहा है कि निर्णयन सम्पूर्ण शैक्षिक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग है।

14.6 : निर्णयन निर्माण के प्रकार (TYPES OF DECISION MAKING)

हम निर्णयन लेने की प्रक्रिया को कई प्रकारो मे विभक्त कर सकते है—

1. **राजतान्त्रिक** (Autocratic)—जब निर्णयन किसी एक व्यक्ति के द्वारा लिया जाता है और किसी अन्य व्यक्ति को उसमे सम्मिलित नही किया जाता है, तो उसे 'राजतान्त्रिक' कहते है। प्राचीन समय मे राजा सम्राट व सामतो द्वारा प्राय इसी प्रकार के निर्णय लिये जाते थे।

2. **प्रजातान्त्रिक** (Democratic)—जब निर्णयन-निर्माण मे सभी सम्बन्धित पक्षो की भागीदारी हो, तो उसे हम 'प्रजातान्त्रिक' निर्णय कहते है। इसमे छात्र, प्रधानाध्यापक, प्रबन्धक, स्टॉफ सदस्य आदि सभी से परामर्श लिया जाता है।

राजतान्त्रिक, निर्णय के स्थान पर प्रजातान्त्रिक निर्णय अधिक लाभदायक होता है, क्योकि—(i) विभिन्न पक्षो के विचार सुनने को मिलते है। (ii) सभी पक्ष निर्णय को अपना समझते है, इसलिए उसके क्रियान्वयन पर तहेदिल से काम करते है, जबकि राजतान्त्रिक निर्णय ऊपर से थोपा हुआ माना जाता है। (iii) प्रजातान्त्रिक निर्णय मे प्रत्येक सदस्य, प्रबन्धन का अपने को एक सक्रिय सदस्य मानते है।

निर्णयन-निर्माण को हम (1) तुरन्त (Immediate) तथा (2) दीर्घकालीन (Long-term) दो भागो मे विभाजित कर सकते है।

प्रबन्धक के सामने कभी-कभी ऐसी समस्याएँ आ जाती है, उनके सम्बन्ध मे निर्णय उसे तुरन्त लेना पड़ता है, यहाँ पर वह अपने विवेक से ही काम करता है, क्योकि उसके पास दूसरो व्यक्तियो से परामर्श करने का समय नही होता है, जैसे—विद्यालय मे कोई बच्चा सीढ़ियो से गिरकर बेहोश हो जाता है, उसके सम्बन्ध मे उसे तुरन्त निर्णय लेना पड़ेगा, कि क्या करे ? या छात्रो ने भयानक हड़ताल कर दी है, या किसी अध्यापक द्वारा किसी साथी महिला अध्यापक को छेड़े जाने पर हगामा हो गया है, तो

ऐसे मामलों में प्रबन्धन या प्रशासन को तुरन्त निर्णय लेने पड़ते हैं, किन्तु कुछ निर्णय ऐसे होते हैं, जिनको लेने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय होता है जैसे—विद्यालय-भवन का विस्तार करना या खेल-कूद आदि क्रियाओं का आयोजन करना. इनके सम्बन्ध में प्रबन्धक के पास समय होता है कि वे सभी से आवश्यक परामर्श लेकर निर्णय ले।

रेलर ने निर्णय को निम्न तीन वर्गों में विभक्त किया है—

(i) सजकताविहीन निर्णय (Conscious Decision)—यह निर्णय सामान्य रूप से अपनी आदत के कारण लेता है। इन निर्णयों से आत्मगत सजकता का अभाव होता है. उदाहरण के लिए, सुबह बिस्तर से उठते ही मजन करना है या चाय पीनी है. इसका निर्णय व्यक्ति अपनी आदत के अनुसार करता है। यदि उसकी आदत चाय पीने की है, तो पहले चाय पीयेगा और यदि मजन करने की है तो मजन करेगा।

(ii) नीतिगत निर्णय (Policy Decision)—जब व्यक्ति बनाई गई नीतियों के अनुसार निर्णय लेता है, तो वह नीतिगत निर्णय कहलाता है। उदाहरण के लिए जब एक गाँव के सभी लोग मिलकर एक नीति निर्धारित कर लेते हैं, कि अमुक देवता की पूजा करनी है, तो इस स्थिति में निर्णय लेना सरल हो जाता है।

(iii) अनीतिगत निर्णय (Ethical Decision)—इस प्रकार के निर्णय लेना सबसे कठिन होता है क्योंकि निर्णय लेने के सम्बन्ध में स्पष्ट नीति का अभाव होता है। इस प्रकार के निर्णय सामान्यतः नीति-निर्धारण अथवा नीति परिवर्तन के सम्बन्ध में लिये जाते हैं। हेमर्स तथा क्वार्टर्स आदि विद्वानों ने निर्णय के निम्न प्रकार बताये हैं—

(i) सामूहिक निर्णय (Group Decisions)—इस प्रकार के निर्णय एक समूह के द्वारा लिये जाते हैं। इस प्रकार के निर्णय लेने में समूह के प्रत्येक सदस्य को बोलने या परामर्श देने का अधिकार होता है।

(ii) संगठनात्मक निर्णय (Organisational Decisions)—इस प्रकार के निर्णय संगठनात्मक प्रतिष्ठानों में लिये जाते हैं और यह समूह निर्णय के समान होता है, अन्तर केवल इतना होता है कि यहाँ पर संगठन के सभी सदस्य उपस्थित नहीं रहते हैं, जबकि सामूहिक निर्णय में समूह के सभी सदस्य उपस्थित रहते हैं। किसी विद्यालय की कार्यकारिणी द्वारा जब कोई निर्णय लिया जाता है उसमें विद्यालय-समूह के सभी सदस्य उपस्थित नहीं रहते।

(iii) व्यक्तिगत निर्णय (Individual Decisions)—इस प्रकार के निर्णय मुख्य रूप से प्रमुख कार्यकर्त्ता या मुखिया के द्वारा लिए जाते हैं। जैसे—किसी परिवार के मुखिया द्वारा लिए निर्णय, विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा लिए गए निर्णय, या किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान के संचालक मैनेजर द्वारा लिए गए निर्णय।

निर्णय के तत्त्व (Element of Decisions)—टेलर ने निर्णय के तीन तत्त्व बताये—

(i) मूल्य, (ii) तथ्य व (iii) निराधार सूचना।

(i) मूल्य—व्यक्ति, संगठन अथवा समूह के मूल्य उनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए—विद्यालय के प्रधानाध्यापक के जो दार्शनिक मूल्य होंगे उनका प्रभाव उसके द्वारा लिए गए निर्णयों पर पड़ेगा। यह मूल्य पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकते हैं। जब हम निर्णय लेते हैं कि हमारे विद्यालय का प्रधानाध्यापक किसी अमुक जाति या वर्ग का होगा, यह निर्णय व्यक्ति के मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता है।

(ii) तथ्य—निर्णय लेने के लिए किसी निजी तथ्य का होना आवश्यक है। यह तथ्य किसी दशा स्थिति, वस्तु या घटना के रूप मे हो सकती है। ये तथ्य निर्णय लेने के सम्बन्ध मे प्रेरक का काम करते है। जैसे—किसी चौराहे से किस सड़क पर चला जाए, यह निर्णय सड़को की दिशा पर निर्भर करता है क्योकि व्यक्ति जिस दिशा मे सड़क नही है, उस दिशा मे जाने का निर्णय नहीं लेगा।

(iii) निराधार सूचना—कभी-कभी निर्णय व्यक्ति के द्वारा निराधार सूचना के आधार पर लिए जाते है, व्यवहार मे देखा जाता है कि कई बार निर्णय अफवाहो के आधार पर लिए जाते है। उदाहरण के लिए, साम्प्रदायिक दगो की अफवाहो के कारण कभी-कभी बड़े घातक निर्णय लिए जाते है। इसी प्रकार चुगली, गपशप तथा मिथ्या कथनो के आधार पर भी निर्णय ले लिए जाते है।

14.7 : निर्णयन लेने के चरण (STEPS OF DECISIONS MAKING)

निर्णय लेने के लिए अग्र छ चरणो की आवश्यकता पड़ती है—

(i) लक्ष्यो का निर्धारण या ज्ञान,

(ii) तथ्यो का सकलन,

(iii) तथ्यो का विश्लेषण व विवेचन,

(iv) उपकल्पनाओ का निर्माण या विकल्पो का संकलन,

(v) विकल्पो का मूल्याकन,

(vi) सही विकल्प का चयन।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. निर्णयन से आपका क्या तात्पर्य है ? इसके प्रमुख तत्त्व बताओ।
2. निर्णयन-निर्माण के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. निर्णयन-निर्माण कितने प्रकार का होता है ? विवेचन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निर्णयन-निर्माण की विशेषताएँ बताइए।
2. निर्णय लेने की विधि सक्षेप मे बताइये।
3. निर्णयन के विभिन्न तत्त्वो पर प्रकाश डालिए।
4. निर्णयन-निर्माण की तकनीकी को बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. टेलर ने निर्णय के तत्व बताये—

(अ) तथ्य (ब) मूल्य

(स) निराधार सूचना (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर—(द)

2. निर्णयन–निर्माण की तकनीकी है–

(अ) मथन (ब) डाल्टन विधि

(स) समस्या–समाधान विधि (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर—

3. निर्णयन–निर्माण को विभाजित किया जाता है–

(अ) दो में (ब) तीन में

(स) चार में (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर—

□□

Unit-III

भारत में शैक्षिक प्रशासन का तन्त्र
[Machinery of Educational Administration in India]

अध्याय 15

शिक्षा का केन्द्रीय प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका

[CENTRAL ADMINISTRATIVE MACHINERY OF EDUCATION AND ITS ROLE]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत ने स्वयं को लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया और आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था को अपनाया। इस क्षेत्र में प्रस्तावित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए देश के कर्णधारों ने पचवर्षीय योजनाओ का नियोजन किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि शिक्षा के अभाव में न तो लोकतन्त्र सफल हो सकता है और न आर्थिक समृद्धि ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा को भी स्थान दिया। तृतीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में यह घोषित किया—"मनुष्य मशीनो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है इसलिए भौतिक योजनाओ की अपेक्षा मनुष्य के लिए विनियोजन (Investment) करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार हमारे देश के योजना बनाने वालों ने यह अनुभव किया कि जनता की आर्थिक दशा को सुधारने एवं लोकतन्त्र की दिशा में किये जाने वाले महान् प्रयोग की सफलता केवल शिक्षा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। शिक्षा को व्यक्ति एवं समाज—दोनों की प्रगति के लिए परमावश्यक समझ कर राष्ट्र के कर्णधारों ने उसकी प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाने के प्रयास किए।

15.1 : केन्द्र में शिक्षा का प्रशासन
(EDUCATIONAL ADMINISTRATION AT CENTRE)

1947 ई. में भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1954 ई. में केन्द्र में स्थापित शिक्षा-विभाग (Department of Education) को शिक्षा-मन्त्रालय में परिवर्तित कर दिया गया। 1957 ई. में शिक्षा-मन्त्रालय के साथ वैज्ञानिक अनुसन्धान को और जोड़ दिया गया। 1958 ई. में इस मन्त्रालय को दो भागों—(अ) शिक्षा-मन्त्रालय (Ministry of Education) तथा (ब) वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं सास्कृतिक मामलों का मन्त्रालय (Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs) में विभक्त किया गया। 1963 ई. में इन दोनों मन्त्रालयों को जोड़ दिया गया जिसे दो भागों—(अ) शिक्षा-विभाग (Department of Education) तथा (ब) विज्ञान-विभाग (Department of Science) में विभक्त किया गया। 1967-68 ई. में इस मन्त्रालय को पुन गठित किया गया और इसमें निम्न ब्यूरोज को स्थान दिया गया—

1. सास्कृतिक क्रियाओं का ब्यूरो (Bureau of Cultural Activities),

2. ब्यूरो ऑफ प्लानिंग एण्ड कोरडीनेशन (Bureau of Planning and Coordination),
3. ब्यूरो ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (Bureau of Administration),
4. ब्यूरो ऑफ जनरल एजूकेशन (Bureau of General Education),
5. ब्यूरो ऑफ टेक्नीकल एजूकेशन (Bureau of Technical Education),
6. ब्यूरो ऑफ स्कॉलरशिप्स एण्ड यूथ सर्विसेज (Bureau of Scholarships and Youth Services),
7. ब्यूरो ऑफ लैंग्वेजेज एण्ड बुक प्रोमोशन (Bureau of Language and Book Promotion)

26 सितम्बर, 1985 को मानव ससाधन विकास नामक नवीन मन्त्रालय का गठन किया गया। इस मन्त्रालय मे निम्नांकित विभाग है–

1. शिक्षा-विभाग (Department of Education),
2. सस्कृति विभाग (Department of Culture),
3. कला विभाग (Department of Arts),
4. युवा कार्य एव खेल विभाग (Department of Youth Affairs and Sports) तथा
5. महिला एवं बाल विकास विभाग (Department of Women and Child Care)

15.2 : शिक्षा मन्त्रालय (MINISTRY OF EDUCATION)

किसी भी राष्ट्र के विकास का पैमाना उस देश की शिक्षा व्यवस्था को माना जाता है क्योंकि शिक्षा ही किसी देश के सामाजिक, आर्थिक, पक्षों में सन्तुलन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्र के नागरिको को बेहतर जीवन गुणवत्ता प्रदान करने के लिए बुनियादी शिक्षा के रूप मे पोषण और देखभाल की आवश्यकता है। चूँकि देश के नागरिक इसके बहुमूल्य ससाधन होते है अत नागरिकों के समग्र विकास की जरूरत है, जिसे शिक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार द्वारा आजादी के बाद से शिक्षा मन्त्रालय का गठन किया गया था उस समय देश के प्रथम शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद थे किन्तु करीब 35 वर्ष पूर्व श्री राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल मे भारत सरकार (व्यवसाय का आबटन) नियम 1961 के 1 जुलाई सशोधन के माध्यम से शिक्षा मन्त्रालय का नाम बदलकर मानव ससाधन विकास मन्त्रालय कर दिया गया था और इसके अन्तर्गत सस्कृति युवा कल्याण, खेल और महिला व बाल विकास जैसे – कई और विभाग भी सम्मिलित कर दिए गए। इस मन्त्रालय का कार्य भारत में सभी प्रकार के मानव ससाधनों का विकास करना था। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार जुलाई 2020 में मानव ससाधन विकास मन्त्रालय का नाम पुन बदल कर शिक्षा मन्त्रालय रखा गया जिससे कि मन्त्रालय ज्यादा स्पष्टता एव फोकस के साथ अपने काम को परिभाषित कर सके। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP), 2020 में जारी की गई थी। डॉ के कस्तूरीरगन इसे बनाने वाली समिति के चेयरमैन है।

15.2.1 शिक्षा मन्त्रालय के उद्देश्य (Objective of Minestry Education)

शिक्षा मन्त्रालय के निम्न उद्देश्य हैं–

1. मन्त्रालय का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाना तथा उसका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना है।

2. सम्पूर्ण देश साथ ही ऐसे दुर्गम क्षेत्र जहाँ लोगों तक शिक्षा की पहुँच सुलभ नहीं है, में शैक्षिक सस्थानों की पहुँच में विस्तार और गुणवत्ता में सुधार करना है तथा उनका सुनियोजित विकास करना है।

3. निर्धनो, महिलाओं तथा अल्पसंख्यकों, जैसे–वंचित वर्ग की ओर विशेष ध्यान देना व विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराना है।

4. समाज के वंचित वर्गों के पात्र विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, ऋण, सब्सिडी आदि के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान कराना।

5. शिक्षा के क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना, जिसमें यूनेस्को तथा विदेशी सरकारो के साथ-साथ विश्वविद्यालयों के सहयोग से कार्य करना सम्मिलित है, जिससे कि देश के शैक्षिक अवसरों मे वृद्धि हो सके।

15.2.2 शिक्षा मन्त्रालय के विभाग (Department of Ministry Education)

शिक्षा मन्त्रालय मे मुख्यत: दो विभाग हैं–

1. स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग (School Education and Literacy Department)–यह विभाग देश मे स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता के विकास के लिए उत्तरदायी है। इस विभाग का लक्ष्य शिक्षा का सार्वभौमिकरण है तथा देश के लिए बेहतर व जिम्मेदार नागरिक तैयार करना है। इसके लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर नियमित रूप से योजनाएँ व पहले (Initiatives) प्रारम्भ की जाती है।

(i) प्रमुख पहल "स्कूल शिक्षा शगुन"–स्कूल शिक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने के उद्देश्य से स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग द्वारा 'स्कूल शिक्षा शगुन' नामक मंच पहल प्रारम्भ की गयी है। इस पहल के द्वारा भारत सरकार और सभी राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों में स्कूल शिक्षा विभाग के सभी पोर्टल व वेबसाइट के लिए एक जक्शन (मंच) बनाना सम्मिलित किया गया है।

'शगुन' शब्द दो अलग-अलग शब्दों शाला व गुणवत्ता अर्थात् विद्यालय की गुणवत्ता को सुधारना ही इसका मुख्य अर्थ है, से लिया गया है। शाला का अर्थ स्कूल या विद्यालय तथा गुणवत्ता का अर्थ विशेषता है। इस प्रकार स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार व निगरानी के दृष्टिकोण से 'स्कूल शिक्षा शगुन' पहल प्रारम्भ किया गया। विभाग ने स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में नवाचारों को अपनाने, प्रदर्शित करने व सर्व शिक्षा अभियान की निगरानी तन्त्र के रूप में शगुन रिपॉजिटरी एवं ऑन लाइन निगरानी वेबसाइट प्रारम्भ किया।

(ii) स्वच्छ भारत स्वच्छ विद्यालय–यह भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा चलाया जा रहा एक व्यापक राष्ट्रीय अभियान है। इस अभियान का उद्देश्य भारत के प्रत्येक स्कूल में अच्छी तरह से अनुरक्षित जल, साफ-सफाई व स्वच्छता से जुड़ी समस्त सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। यदि प्रत्येक विद्यालय परिसर में विद्यार्थियों व शिक्षकों के लिए स्वच्छ पीने के पानी, शौचालय, बाथरूम एवं साबुन की सुविधाएँ उपलब्ध हों तो विद्यालय में एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करने की उचित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता की परम्परा को विकसित किया जा सकता है। यदि विद्यालय का वातावरण अस्वस्थ होगा तो छात्रों में भी अस्वस्थता देखी जायेगी, अत: यहाँ वातावरण को स्वच्छ रखना अनिवार्य है। साथ ही छात्रों में साफ-सफाई एवं स्वच्छता से जुड़ी आदतों का विकास किया जा सकता है। जिसके दूषित पानी, साफ-सफाई एवं स्वच्छता सम्बन्धी बीमारियों को रोकने में सहायता मिलेगी व स्वस्थ भारत के निर्माण की परिकल्पना साकार होगी।

(iii) एक भारत श्रेष्ठ भारत–भारत एक बहुभाषी व विविध संस्कृति वाला अनोखा राष्ट्र है। इस विविधता मे एकता का भाव जनमानस में पोषित व अभिलक्षित करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा यह पहल प्रारम्भ की गयी है। वर्ष 2015 में राष्ट्रीय एकता विकास के आयोजन के दौरान प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने यह प्रतिपादित किया कि देश भर में समझ की एक सामान्य भावना विकसित करने के लिए देश के प्रत्येक राज्य और केन्द्रशासित प्रदेश का एक वर्ष के लिए अन्य राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश के

साथ जोड़ा बनाया जाएगा, जो एक-दूसरे के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करेंगे। जोड़े गए राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेश आपसी सहमति से पूरे वर्ष भर विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित करने हेतु एक गतिविधि कैलेण्डर तैयार करेंगे। विभिन्न गतिविधियों के दौरान वे आपस में भाषा, साहित्य, वेषभूषा, सास्कृतिक कार्यक्रम, त्योहार, मेले, पर्यटन आदि क्षेत्रों से जुड़ेंगे तथा जुड़ाव की एक साल की लम्बी अवधि के दौरान राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रत्येक जोड़े की आबादी एक-दूसरे को सास्कृतिक दृष्टिकोण से स्वीकार करेंगे, एक-दूसरे के प्रति प्रशसा का भाव उत्पन्न होने से आपसी सम्बन्ध मजबूत होंगे, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास होगा।

(iv) नागरिक कर्त्तव्य पालन अभियान—सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय ने 19 नवम्बर, 2015 को नागरिकों के बीच सवैधानिक मूल्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 26 नवम्बर को संविधान दिवस के रूप में मनाने के निर्णय को अधिसूचित किया। शिक्षा मन्त्रालय का स्कूली शिक्षा एवं साक्षरता विभाग विद्यार्थियों में सवैधानिक मूल्यों की भावना विकसित करने के लिए विद्यालयों में विभिन्न गतिविधियों का आयोजन कर रहा है। ये मूल्य बालकों को भावी जीवन के लिये अति उपयोगी व आवश्यक होते हैं। कार्यक्रम का नोडल मन्त्रालय न्याय विभाग है।

युवा सांसद कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए संसदीय कार्य मन्त्रालय द्वारा एक वेबपोर्टल तैयार किया गया है, जिसमें प्रतिभागियों के ई-प्रशिक्षण, ट्यूटोरियल, साहित्य, प्रशिक्षण वीडियो आदि ससाधन शामिल हैं।

(v) फिट इण्डिया मूवमेण्ट—राष्ट्र को स्वास्थ्य व आरोग्यता की दिशा में ले जाने के उद्देश्य से एक जनआन्दोलन के रूप में 29 अगस्त, 2019 को 'फिट इण्डिया मूवमेंट' प्रारम्भ किया गया। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य आसान एवं स्वस्थ जीवन-शैली के साथ-साथ दैनिक जीवन में शारीरिक रूप से छात्रों को सक्रिय बनाना है।

प्रमुख योजनाएँ—स्कूली शिक्षा एवं साक्षरता विभाग द्वारा उपरोक्त अभियान या पहल के अतिरिक्त कुछ योजनाएँ भी संचालित की जा रही हैं—

(i) राष्ट्रीय साक्षरता एवं संख्या ज्ञान मिशन—(निपुण भारत) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लिखित प्राथमिकताओं को पूर्ण करने के दृष्टिगत शिक्षा मन्त्रालय द्वारा एक राष्ट्रीय मूलभूत साक्षरता एवं संख्या ज्ञान मिशन की स्थापना की गयी है। इस मिशन का उद्देश्य मूलभूत साक्षरता एवं संख्या ज्ञान के सार्वभौमिक अर्जन को सुनिश्चित करने हेतु एक सक्षम परिवेश का सृजन करना है, जिसमें 3 से 9 वर्ष की आयु के बच्चों को सम्मिलित किया गया है। इस मिशन के क्रियान्वयन द्वारा प्रत्येक बालक ग्रेड III के बाद पठन, लेखन और संख्या ज्ञान कौशल की अपेक्षित शिक्षण क्षमताओं को प्राप्त कर सकेगा।

(ii) समग्र शिक्षा।

(iii) मिड-डे मील योजना (विद्यालयों में खाना प्रदान करना)।

(iv) मदरसों/अल्पसंख्यकों को शिक्षा प्रदान करने की योजना।

(v) राष्ट्रीय साधन-सह-योग्यता छात्रवृत्ति योजना।

(vi) माध्यमिक शिक्षा द्वारा लड़कियों को प्रोत्साहन हेतु राष्ट्रीय योजना।

2. उच्च शिक्षा विभाग (Higher Education Department)—उच्चतर शिक्षा विभाग शिक्षा के क्षेत्र में आधारभूत संरचना के समग्र विकास के लिए जिम्मेदार है। यह देश को मानव ससाधन क्षमता को पूर्ण रूप से समानता और समावेशिता के साथ उच्चतर शिक्षा क्षेत्र में सम्मिलित करता है। उच्च शिक्षा विभाग के अग्रलिखित उद्देश्य हैं—

(i) उच्चतर शिक्षा क्षेत्र का विस्तार करके सकल नामांकन अनुपात में वृद्धि करना।

(ii) नए शैक्षिक सस्थाओ की स्थापना करना तथा वर्तमान में मौजूद संस्थाओं की क्षमता का विस्तार एव सुधार करना।

(iii) सामाजिक रूप से वचित वर्ग को उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान करना तथा उनके सवर्धन द्वारा भेदभाव को दूर करना।

(iv) भारतीय भाषाओ के विकास का संवर्धन करना।

(v) उच्च अधिगम सस्थानो मे नवाचार द्वारा शैक्षिक गुणवत्ता मे सुधार करना तथा शैक्षिक सुधारो का सवर्धन करना।

(vi) उच्चतर शिक्षा मे प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा देना।

(vii) विश्वविद्यालयो तथा महाविद्यालयों में शोध सुविधाओ मे विस्तार कर ज्ञान अर्जन हेतु स्थितियाँ उत्पन्न करना।

(viii) शिक्षा के क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ साहयोग का संवर्धन करना।

(ix) व्यावसायिक शिक्षा तथा कौशल शिक्षा का विस्तार करना।

(x) असेवित तथा अल्पसेवित क्षेत्र मे नई सस्थाओ की स्थापना द्वारा सभी को उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान कर क्षेत्रीय असमानता को दूर करना।

योजनाएँ–

1. विश्वविद्यालय एवं उच्चतर शिक्षा–
   (i) राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (रूसा) (Rusa)
   (ii) राष्ट्रीय अनुससाधन प्रोफेसरशिप (एन. आर. पी.) (NRP)
2. तकनीकी शिक्षा–
   (i) कौशल विकास के लिए समन्वित कार्रवाई के तहत पॉलीटैक्निकों का उपमिशन।
   (ii) शिक्षुता प्रशिक्षण की योजना।
3. उच्चतर शिक्षा साख्यिकी और जन-सूचना प्रणाली।
4. शिक्षकों और शिक्षण पर पण्डित मदन मोहन मालवीय राष्ट्रीय मिशन।

उपर्युक्त कार्यालयों के अतिरिक्त शिक्षा-विभाग से निम्नलिखित स्वायत्त संगठन सम्बन्धित है–

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training),

2. राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजना तथा प्रशासन संस्थान (National Institute of Educational Planning and Administration–NIEPA),

3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission),

4. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council of Technical Education–AICTE),

5. राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (National Council of Teacher Education–NCTE)।

निम्नलिखित सस्थाएँ उच्चतर शैक्षिक अनुसन्धान के लिए कार्य कर रही है–

1. भारतीय उच्च अध्ययन सस्थान, शिमला,
2. भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली,
3. भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली,

4. भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली।

भाषाओं की प्रोन्नति के क्षेत्र में प्रमुख संगठन इस प्रकार

1. डॉ बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
2. केन्द्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली,
3. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा,
4. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली। यह संस्थान संस्कृत की उन्नति, प्रसार तथा अनुसन्धान में लगा हुआ है।

3. स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में संगठन (Organization in the Field of School Education)—विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्र सरकार से निम्नलिखित संगठन सम्बद्ध है—

1. केन्द्रीय विद्यालय संगठन, नई दिल्ली,
2. नवोदय विद्यालय समिति, नई दिल्ली,
3. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली,
4. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय, नई दिल्ली,
5. एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली।

4. प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में संगठन (Organization in the Field of Elementry Education)—बाल भवन सोसायटी, नई दिल्ली। यह सोसायटी 5 से 16 वर्ष के आयु-वर्ग के बच्चो मे सृजनात्मक कार्यकलापो को बढ़ावा देने में योगदान दे रही है।

5. पुस्तक संवर्द्धन के क्षेत्र में संगठन (Organization in the field of Book Promotion)—राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली के शिक्षा विभाग का एक स्वायत्तशासी संगठन है। पुस्तकों को बढ़ावा देने और पुस्तकें पढ़ने की आदत विकसित करने के उद्देश्य से 1957 मे इसकी स्थापना की गई थी। बच्चो के लिए पुस्तकों और नव-साक्षरों के लिए साक्षरता के बाद की पठन सामग्री तैयार करने के अलावा, ट्रस्ट हिन्दी व अंग्रेजी सहित 13 भारतीय भाषाओं में सामान्य पाठकों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करता है। ट्रस्ट सामान्य पाठकों के लिए भौतिक पर्यावरण, वनस्पति व जीव-जन्तुओं, भारत की लोक कथाओं, प्रख्यात भारतीयों की जीवनियों, भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों के अनुवाद तथा लोकप्रिय विज्ञान विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करता है. नेहरू बालक पुस्तकमाला के अन्तर्गत बच्चों के लिए प्रकाशित होने वाले ट्रस्ट के प्रकाशनों का उद्देश्य बच्चों के लिए ऐसा मनोरंजक व शिक्षाप्रद साहित्य प्रकाशित करना है जो बच्चे अपने आप पढ़ना पसन्द करें। ये प्रकाशन ढेर सारे विषयों पर भारत भर के बच्चो की मातृभाषा में समान पठन सामग्री प्रस्तुत करते है जिससे राष्ट्रीय एकता को भी बढ़ावा मिलता है।

ट्रस्ट, भारतीय विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों के छात्रों व शिक्षकों के लिए उचित मूल्य पर मान्य स्तर की पुस्तकें तैयार करने में लेखकों व प्रकाशकों को सहायता प्रदान करता है। ट्रस्ट, देश भर मे पुस्तक मेलो, उत्सवो, संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं के आयोजनों के माध्यम से पुस्तकों को बढ़ावा देने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

6. तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र मे संगठन (Organization in the Field of Technical Education)—तकनीकी शिक्षा मानव ससाधन विकास मन्त्रालय के शिक्षा विभाग के महत्त्वपूर्ण संघटकों मे से एक है जिसमे सेवाओं और उत्पादों की किस्म में सुधार लाने तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे योगदान देने की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। इस क्षेत्र के मुख्य संगठन अग्रांकित है—

1. भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर।
2. भारतीय खान स्कूल, धनबाद।
3. राष्ट्रीय औद्योगिकी इन्जीनियरी प्रशिक्षण संस्थान, मुम्बई।
4. राष्ट्रीय ढलाई तथा गढ़ाई प्रौद्योगिकी, राँची।
5. आयोजना तथा वास्तुकला स्कूल, नई दिल्ली।
6. भारतीय प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज, हैदराबाद।
7. अहमदाबाद, बंगलौर, कोलकाता तथा लखनऊ स्थित भारतीय प्रबन्ध संस्थान।
8. मुम्बई, दिल्ली, गोहाटी, कानपुर तथा खड़गपुर स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान।
9. 17 क्षेत्रीय इन्जीनियरी कॉलेज।

15.3 : प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार की भूमिका (ROLE OF CENTRAL GOVERNMENT IN ELEMENTARY EDUCATION)

प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक एवं निःशुल्क बनाने के महान् कार्य में केन्द्रीय सरकार साझीदार है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा की पुनर्रचना में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच एक क्रियात्मक साझेदारी का विकास हुआ। केन्द्र सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र के दायित्व को पूर्ण करने के लिए शिक्षा-मन्त्रालय में 'अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-परिषद्' नामक प्रमुख संगठन की व्यवस्था की है, जो प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार एवं उन्नति हेतु केन्द्रीय सरकार को एक विशेषज्ञ संस्था के रूप में सलाह देती है। इस समय शिक्षा विभाग में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए संयुक्त शिक्षा सलाहकार, निदेशक आदि अधिकारी हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए जो कार्य किये जाते हैं, उनको निम्नलिखित तीन वर्गों में रखा जा सकता है–

1. केन्द्र सरकार द्वारा क्रियान्वित कार्यक्रम–इस वर्ग के कार्यक्रम पूर्णतः केन्द्रीय सरकार द्वारा ही आयोजित एवं क्रियान्वित किए जाते है।

2. केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों के कार्यक्रमों को आर्थिक सहायता–वस्तुतः इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का पूर्ण दायित्व राज्य सरकारों पर होता है, परन्तु वे इनके लिए केन्द्र से आर्थिक सहायता प्राप्त करती हैं।

3. केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम–इस वर्ग में वे कार्यक्रम आते हैं जो केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं, परन्तु इनको राज्य सरकारों द्वारा ही क्रियान्वित किया जाता है।

15.4 : शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार की भूमिका (ROLE OF THE CENTRAL GOVERNMENT IN EDUCATION)

अब केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। यह माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित मामलों में राज्य सरकारों को परामर्श एवं वित्तीय सहायता प्रदान करती है तथा उनका पथ-प्रदर्शन एवं नेतृत्व भी करती है। इसके अतिरिक्त केन्द्र-सरकार माध्यमिक शिक्षा में सुधार करने के लिए बहुत-से कार्यक्रम प्रस्तावित करती है, जैसे–शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए राज्यीय ब्यूरो की स्थापना (Establishment of State Bureau Educational and Vocational

Guidance), राज्यीय मूल्याकन एकक (State Evaluation Unit) विज्ञान के राज्यीय संस्थान (State Institute of Science) आदि। केन्द्र सरकार, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य कर रही है, उनका संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

1. शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (Educational and Vocational Guidance)—केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के विभाग 'Development of Psychological Foundation' के अन्तर्गत केन्द्रीय, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो की स्थापना की है। इस ब्यूरो के मुख्य कार्य हैं—निर्देशन सेवाओं की प्रकृति तथा उसकी आवश्यकताओं के लिए जागरूकता विकसित करना, व्यावसायिक निर्देशन सामग्री एकत्रित करना, निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य तैयार करना आदि। इसके सुझाव पर केन्द्रीय सरकार ने राज्यों में शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो स्थापित करने की योजना प्रस्तावित की। अब सभी राज्यों में ऐसे ब्यूरो स्थापित हो गये हैं। केन्द्रीय सरकार इन राज्यीय ब्यूरो को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

2. पर्यावरण-शिक्षा (Environmental Education)—केन्द्र सरकार ने विद्यालय शिक्षा को पर्यावरणीय आधार प्रदान करने के लिए सन् 1988-89 में एक योजना बनाई जिसमें स्थानीय पर्यावरण तथा शिक्षा-कार्यक्रमों के बीच सश्लेषण किया गया। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए भारत सरकार ने राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों को शत-प्रतिशत आधार पर आर्थिक सहायता प्रदान की। इस योजना में नर्सरी स्थापित करने पर बल दिया गया। साथ ही दृश्य-श्रव्य उपकरणों के माध्यम से पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करने पर भी बल दिया गया। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में पर्यावरण के सम्बन्ध में एक स्वस्थ एवं सही दृष्टिकोण तथा जागरूकता विकसित करना है।

3. केन्द्रीय विद्यालय (Central School)—द्वितीय वेतन आयोग (Second Pay Commission) की सिफारिश पर भारत सरकार ने केन्द्रीय विद्यालय खोलने की योजना को कार्यान्वित किया। वर्तमान समय में भारत में केन्द्रीय विद्यालयों की संख्या 1,225 है। इन विद्यालयों में पाठ्यक्रम तथा शिक्षण का माध्यम एक-सा है। इनमें कक्षा 8 तक निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है और 9, 10 तथा 11वीं कक्षाओं में फीस का निर्धारण पढ़ने वाले बालकों के अभिभावकों के वेतन के अनुकूल किया जाता है। ये विद्यालय उन कर्मचारियों के बच्चों के लिए खोले गये हैं जिनके पद स्थानान्तरित (Transferable) होते हैं। इन विद्यालयों का संचालन **'केन्द्रीय विद्यालय संगठन'** नामक स्वायत्त संस्था द्वारा किया जाता है। इन विद्यालयों के छात्र केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की अखिल भारतीय हायर सेकण्डरी परीक्षा में बैठते हैं। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य—कम खर्च पर शिक्षा के स्तर को कायम रखना है।

4. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (Central Board of Secondary Education)—भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा के ढाँचे में अनुरूपता लाने तथा उन छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए जिनके अभिभावक एक राज्य से दूसरे राज्य में समय-समय पर स्थानान्तरित होते रहते हैं, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (Central Board of Secondary Education) की जुलाई, 1952 में स्थापना की। यह परिषद् अखिल भारतीय उच्चतर माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक (त्रिवर्षीय कोर्स), उच्चतर माध्यमिक, बहुद्देश्यीय तथा उच्चतर माध्यमिक (एक वर्षीय कोर्स) परीक्षाएँ लेती है। अब तक इस परिषद् में 1389 विद्यालय इस बोर्ड से सम्बद्ध है। इनमें एक विद्यालय तेहरान (Tehran) में स्थित है। इस विद्यालय का संचालन 'Central Tibetan Schools Administration' नामक स्वायत्त संस्था द्वारा किया जाता है।

5. नवोदय विद्यालय (Navodaya Vidhyalaya)—यह सर्वमान्य है कि विशिष्ट प्रतिभा के बच्चों को तेजी से प्रगति के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि देश के विभिन्न भागो मे एक निश्चित आधार पर ऐसे विद्यालय स्थापित किये जाय जिनमे नई-नई खोजो तथा प्रयोगो के लिए समुचित अवसर प्राप्त हो सकें। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने एक योजना के अन्तर्गत फैसला किया कि प्रत्येक जिले मे कम से कम एक ऐसा सह-शिक्षा आवासीय विद्यालय स्थापित किया जाय। ऐसे विद्यालय को 'नवोदय विद्यालय' का नाम दिया गया। नवोदय विद्यालय के प्रमुख उद्देश्य है, यथा—

1. प्रतिभावान बच्चो की पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के भेदभाव के बिना उनके सर्वांगीण विकास के लिए आधुनिकतम तकनीकी सुविधाओ सहित श्रेष्ठ स्तर की आधुनिक शिक्षा उपलब्ध कराना।

2. त्रि-भाषाई फार्मूले के अनुसार तीन भाषाओ में उचित योग्यता, तथा

3. अनुभव और सुविधाओ के आधार पर शिक्षा मे सुधार के लिए केन्द्र के रूप में कार्य करना।

नवोदय विद्यालयो के सचालन हेतु 'नवोदय विद्यालय समिति' की स्थापना की गई जो कि मानव ससाधन विकास मन्त्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त संस्था है। यह संस्था समिति के रूप में 28 फरवरी, 1985 को पजीकृत की गई थी। वह केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा मण्डल से सम्बद्ध है।

ग्रामीण बहुल क्षेत्रों के प्रतिभाशाली छात्रों को अच्छे स्तर की आधुनिक शिक्षा उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने सन् 1985-86 मे प्रत्येक जिले में एक के औसत से नवोदय विद्यालय स्थापित करने की एक योजना शुरू की। वर्ष 2020-21 में भारत मे कुल कार्यरत विद्यालयों की सख्या 645 है, जिसमे विद्यार्थियो की सख्या 2,87,967 है।

नवोदय विद्यालय में दाखिला छठी कक्षा से होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विद्यालयो मे भर्ती होने वाले अधिकाश विद्यार्थियों ने इससे पूर्व शिक्षा मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से ग्रहण की है, उन्हे छठी या आठवीं कक्षा तक उसी माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है और इस प्रकार इस अवधि के दौरान उन्हें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषा का, विषय और सह-माध्यम के रूप मे गहन अध्ययन करवाया जाता है। इसके पश्चात् हिन्दी/अंग्रेजी सामान्य माध्यम होता है। इस अवस्था तक भिन्न भाषाई क्षेत्रों में प्रत्येक नवोदय विद्यालय से दूसरे अन्य नवोदय विद्यालय मे 30 प्रतिशत विद्यार्थियों का अन्तरण होता है। वर्ष 2020-21 मे नवोदय विद्यालयो मे चयनित विद्यार्थियो का ब्यौरा इस प्रकार है—

छात्र	छात्राएँ	ग्रामीण	शहरी	सामान्य	अनु. जाति	अनु. जनजाति	ओ.बी.सी.
59.27%	40.73%	80.03%	16.97%	20.36%	25.13%	20.30%	34.21%

6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training)—इस परिषद् ने अपने प्रमुख अभिकरण (Agency) स्थापित करके माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में बड़े ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये है। ये अभिकरण राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान (National Institute of Education) तथा क्षेत्रीय प्रशिक्षण कॉलेज (Regional College of Education) है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद् विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को आवश्यक शैक्षिक सामग्री उपलब्ध करवाने के लिए राज्यों के शिक्षा अधिकारियो एवं संस्थानों से सम्पर्क रखती है। इसने छोटे बच्चो की देखभाल तथा शिक्षा, पढ़ाई के न्यूनतम स्तर, विद्यालय स्तर पर शिक्षा प्रक्रिया एव विषय-वस्तु की ओर झुकाव, विद्यालय मे विज्ञान की शिक्षा मे सुधार, कम्प्यूटर साक्षरता, अध्यापक

शिक्षा, महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा, शिक्षा का व्यवसायीकरण, विकलांगों की शिक्षा, अनुसूचित जातियों/जनजातियों एवं अल्पसंख्यकों की शिक्षा, शैक्षिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल, शैक्षिक सर्वे और डाटा-प्रोसेसिंग, राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति, शिक्षा-अनुसन्धान को बढ़ावा तथा देश भर में माध्यमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड से सम्बद्ध विद्यालयों के लिए पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन कराता है।

क्षेत्रीय प्रशिक्षण कॉलेजों की स्थापना अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर तथा मैसूर में की गयी है। ये कॉलेज शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीन प्रयोग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन कॉलेजों के द्वारा शिक्षक-प्रशिक्षण के व्यापक पाठ्यक्रम प्रदान किये जाते हैं। इसमें प्रशिक्षण काल में विषय-वस्तु एवं शैक्षिक सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का भी ज्ञान प्रदान किया जाता है। इनमें ही एन. डी. ए. के छात्रों के लिए समर स्कूल एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों की स्थापना कर दी गई है।

7. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय (National Open School)—सन् 1979 में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) दिल्ली द्वारा देश में अपनी तरह का पहला 'खुला विद्यालय' दिल्ली में खोला गया। भारत सरकार ने नवम्बर, 1779 में एक परियोजना रपट के आधार पर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के प्रशासकीय नियन्त्रण में एक स्वायत्तशासी (Autonomous) निकाय तथा पंजीकृत समिति के रूप में राष्ट्रीय खुले विद्यालय की स्थापना का निर्णय लिया और मुक्त विद्यालय को इसमें मिला लिया। अक्टूबर, 1990 में भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय को माध्यमिक उच्च माध्यमिक परीक्षाएँ आयोजित करने तथा प्रमाण-पत्र जारी करने का अधिकार दिया गया। राष्ट्रीय खुला विद्यालय सुदूर शिक्षा के माध्यम से लाखों लोगों को वैकल्पिक खुली शिक्षा-व्यवस्था कराता है जिनमें ग्रामीण जन, शहरी क्षेत्रों के गरीब लोग, महिलाएँ, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोग, कामगार, वयस्क तथा स्कूलों से छूट चुके वे लोग शामिल हैं जो औपचारिक विद्यालय व्यवस्था में जुड़ने में असमर्थ हैं। यह शिक्षा को प्रेरित शिक्षार्थियों तक ले जाता है और उन्हें उनकी सहूलियत के समय, स्थान एवं क्षमतानुसार पढ़ने की इजाजत देता है। हाल में राष्ट्रीय खुले विद्यालय ने कई व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की शुरुआत की है।

8. शैक्षिक टेक्नालॉजी कार्यक्रम (Educational Technology Programme)—शिक्षा में व्यापक गुणात्मक सुधार लाने तथा उन तक पहुँच बढ़ाने के लिए चौथी योजना अवधि के दौरान सन् 1972 में शैक्षिक टेक्नालॉजी कार्यक्रम शुरू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् में एक शैक्षिक टेक्नोलॉजी केन्द्र स्थापित किया गया।

इनसैट के साथ प्रसारण सुविधाओं के विस्तार और शैक्षिक सॉफ्टवेयर की बढ़ती हुई माँग को ध्यान में रखते हुए शिक्षा मन्त्रालय ने कृत्रिम उपग्रहों के माध्यम से प्रसारित किये जाने वाले शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों को तैयार करने की जिम्मेदारी लेने का निश्चय किया है। तदनुसार एन. सी. ई. आर. टी. में एक केन्द्रीय शैक्षिक टेक्नोलॉजी संस्थान (Central Institute of Educational Technology—CIET) तथा छ: राज्यों—आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश में राजकीय शैक्षिक टेक्नोलॉजी संस्थान (State Institute of Educational Technology—SIET) स्थापित करके तथा अन्य राज्यों के टेक्नोलॉजी कक्षों को सशक्त करके विकेन्द्रीकृत आधार पर शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम निर्माण सुविधाओं को सुलभ करवाने के लिए शिक्षा मन्त्रालय द्वारा एक योजना तैयार की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति, 1986 के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सन् 1987 में शैक्षिक टेक्नोलॉजी योजना में संशोधन किया गया। इसका उद्देश्य शैक्षिक दूरदर्शन एवं अन्य कार्यक्रम निर्माण सुविधाओं को

सशक्त करना था। अब तक केन्द्रीय शैक्षिक टेक्नोलॉजी संस्थान तथा राज्य शैक्षिक टेक्नालॉजी संस्थानों ने 5000 शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम तथा 950 भाषायी अनुवाद तैयार किये। एन. सी. ई. आर. टी. ने एक समिति का गठन करके उसके संरक्षण में बाहर के निर्माताओं को भी नौ शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम बनाने का कार्य सौंपा गया।

9. विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा में सुधार (Improvement in Science Education in School)—सन् 1987-88 में केन्द्र द्वारा प्रायोजित विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा में सुधार की एक योजना शुरू की गई। इस योजना के तहत माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान प्रयोगशालाओं को आधुनिक बनाने तथा और अधिक उपकरण एवं सामग्री जुटाने, विज्ञान एवं गणित के शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने के लिए राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को सहायता दी गयी। इस योजना में विज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में नई परियोजनाएँ बनाने तथा संसाधन सम्बन्धी साधन जुटाने के काम में लगे स्वयंसेवी संगठनों को सहायता देना भी शामिल है। इस योजना का लक्ष्य यह है कि आठवीं योजना के अन्त तक देश के सभी उच्च प्राथमिक, सेकण्डरी तथा हायर सेकण्डरी स्कूलों को इस योजना से लाभान्वित किया जायेगा।

10. विद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा (Computer Education in Schools)—कम्प्यूटर के विविधतापूर्ण उपयोग और एक शिक्षा-माध्यम के रूप में इसकी सम्भावनाओं से छात्रों और शिक्षकों को परिचित करवाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक विभाग और शिक्षा-विभाग द्वारा संयुक्त रूप से सन् 1984-85 में 248 चुने हुए माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में कम्प्यूटर ज्ञान और अध्ययन पर एक मार्गदर्शी परियोजना प्रारम्भ की गई। इन विद्यालयों को संचार-तन्त्र आधार उपलब्ध करवाने तथा शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए 65 संसाधन केन्द्रों की स्थापना की गई है। हार्डवेयर लगाने तथा इसके रख-रखाव की जिम्मेदारी कम्प्यूटर अनुरक्षण निगम की है। साफ्टवेयर विकास, शैक्षिक सहायता तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् एक प्रमुख एजेन्सी के रूप में कार्य करती है।

11. केन्द्रशासित प्रदेश (Union Territory)—भारत सरकार केन्द्रशासित प्रदेशों की शिक्षा के लिए पूर्णत उत्तरदायी है। केन्द्र ही वहाँ प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था करता है। यही सभी प्रकार की शिक्षा का व्यय-भार उठाता है।

केन्द्रीय सरकार संघीय क्षेत्रों के माध्यमिक स्कूलों के अतिरिक्त पब्लिक स्कूलों तथा केन्द्रीय विद्यालयों का भी संचालन करती है जो माध्यमिक शिक्षा की उन्नति एवं सुधार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उनमें से मुख्य को नीचे दिया जा रहा है—

1. राष्ट्रीय अनुशासन योजना (National Discipline Scheme)।
2. लक्ष्मीबाई कॉलेज ऑफ फिजीकल एजूकेशन (Lakshmibai College of Physical Education), ग्वालियर। इसको डीम्ड विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त हो गया है।
3. केन्द्रीय अंग्रेजी संस्थान (The Central Institute of English), हैदराबाद।

केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की सुलभता को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपायों की परिकल्पना की है—

1. अल्पकालिक उपाय के रूप में, विज्ञान, वाणिज्य तथा व्यावसायिक विषयों सहित विविध पाठ्यक्रमों के लिए विद्यमान संस्थाओं में आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सलाह दी जायेगी।

2. स्कूलविहीन क्षेत्रों का पता लगाने तथा इन स्कूलविहीन क्षेत्रों में ब्लाक को एक इकाई मानते हुए हाई स्कूल खोलने के लिए तत्काल कदम उठाने हेतु भी राज्य की सरकारों के माध्यम से कार्य तथा उच्च प्राइमरी स्कूलों का अनुपात 1 : 1 86 से कम न रहे।

3. स्कूलविहीन आबादियों में विद्यमान स्कूलों की दूरी पर संशोधन [illegible]

4. मध्य और दीर्घकालीन उपाय के रूप में स्पष्ट व परिभाषित मानदण्डों [illegible] आधार पर प्रत्येक राज्य में स्कूल स्थापित करने के लिए स्कूल स्थापित करने [illegible] जायेगा।

5. लड़कियों, अनुसूचित जातियों एव जनजातियों तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े अन्य वर्गों के नामांकन में वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए राज्यों/सघ शासित प्रदेशों से सक्षम कदम [illegible] योजना बनाने के लिए आग्रह किया जायेगा।

6. ऐसे लोग जिनका पूर्णकालिक स्कूल मे जा पाना कठिन है तथा जो लोग माध्यमिक स्कूल की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके है उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को मुक्त विद्यालय प्रणाली (Open School System) में विस्तार करके तथा उन्हे सुदृढ़ बनाकर पूरा किया जायेगा।

12. वित्तीय सहायता (Financial Help)—केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित कार्यों के लिए राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है—

1. 14-16 आयु-वर्ग के बालकों तथा बालिकाओं के लिए अधिक विद्यालयों की स्थापना के लिए।

2. हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित करने हेतु।

3. शिक्षकों की उपयुक्त पूर्ति के लिए।

4. उन शिक्षकों के प्रशिक्षण के हेतु चलाये गये कार्यक्रमों के लिए अनुदान दिये जाते हैं [illegible] नौकरी में हैं, परन्तु प्रशिक्षित नहीं हैं।

5. पुस्तकालयों के सुधार के लिए।

6. विज्ञान-शिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए।

7. केन्द्र द्वारा प्रस्तावित योजनाओं के संचालन के लिए।

13. समग्र शिक्षा अभियान (Samagra Shiksha Abhiyan)—समग्र शिक्षा अभियान वर्ष (2018-2019) में प्रस्तावित किया गया। यह केन्द्र द्वारा प्रवर्तित व्यापक कार्यक्रम है, जिसे विद्यालयों में आसान पहुँच के लिए व्यापक अवसर प्रदान करना, बेहतर शिक्षण परिणामों के लिए समान अवसर प्रदान करना और स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए पूर्व-प्राथमिक से बाहरवीं कक्षा के स्तर तक एकीकृत करके शुरू किया गया है। समग्र शिक्षा, सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए), राष्ट्रीय मध्यम शिक्षा अभियान (आरएमएसए) और शिक्षक शिक्षा (टीई) की तीन योजनाओं को समेकित करती है।

विद्यालय यिाक्षा के लिए एकीकृत योजना 75,000 करोड़ रुपये के व्यय के साथ 31 अगस्त 2020 तक रखा गया। "समग्र शिक्षा अभियान पोर्टल (Samagra Shiksha Abhiyan Portal)" के माध्यम से शिक्षक शिक्षा सस्थानों (TEI) को मजबूत बनाने के लिए शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच, गुणवत्ता और शिक्षा के व्यावसायीकरण में सहायता मिलेगी।

यह योजना सतत् विकास लक्ष्य के साथ प्री-नर्सरी से कक्षा 12वीं तक के छात्रों के लिए शिक्षा के समावेशी और उच्च मानक को भी सुनिश्चित करती है।

14. समग्र शिक्षा अभियान 2.0 (Samagra Shiksha Abhiyan 2.0)—समग्र शिक्षा अभियान 2.0 केंद्र सरकार द्वारा मजूरी प्रदान कर दी गई है। यह मजूरी 4 अगस्त 2021 को प्रदान की गई है। इस योजना के माध्यम से प्री स्कूल से लेकर बारहवी कक्षा के सभी आयामों को शामिल किया जाएगा। यह योजना राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सिफारिशों के अनुरूप बनाई गई है, जिसमे शिक्षा संबधी विकास लक्ष्य भी शामिल है। समग्र शिक्षा अभियान–2.0 के अतर्गत आने वाले वर्षों में चरणबद्ध तरीके से स्कूल मे बाल वाटिका, स्मार्ट कक्षा, प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था की जाएगी। इसके अलावा एक आधारभूत ढाँचा, व्यावसायिक शिक्षा एव रचनात्मक शिक्षण विधियों की व्यवस्था की जाएगी। विद्यालयो मे ऐसा वातावरण तैयार किया जाएगा जिसमे विविध पृष्ठभूमि, बहुभाषी आवश्यकता एवं बच्चों की विभिन्न क्षमताओ पर जोड़ दिया जाए। इसके अलावा इस योजना के माध्यम से शिक्षक पाठ्य सामग्री भी तैयार की जाएगी।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. केन्द्र मे शिक्षा के प्रशासन को समझाते हुए विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार की भूमिका को विस्तृत रूप में समझाइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. केन्द्रीय सरकार की प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में क्या भूमिका है ? संक्षेप मे समझाइये।
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को संक्षेप में समझाइये।
3. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय कब आरम्भ हुआ ? इसके कार्यों को समझाइये।
4. केन्द्रशासित प्रदेश के बारे मे संक्षेप में समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. शिक्षा मन्त्रालय का नाम बदलकर मानव संसाधन विकास मन्त्रालय कब किया गया ?

   (अ) 1961 ई. (ब) 1945 ई.

   (स) 1965 ई. (द) 1958 ई. **उत्तर**–(अ)

2. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना कब हुई ?

   (अ) जुलाई, 1952 (ब) अगस्त, 1957

   (स) नवम्बर, 1960 (द) इनमे से कोई नही **उत्तर**–(अ)

3. वर्तमान मे केन्द्रीय विद्यालयों की संख्या है–

   (अ) 1,225 (ब) 1,226

   (स) 1,227 (द) इनमें से कोई नही **उत्तर**–(अ)

□□

अध्याय

16

शिक्षा का राज्य प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका

[STATE ADMINISTRATION MACHINERY OF EDUCATION & ITS ROLE]

शिक्षा-विभाग के अधिकारी तीन स्तरों पर कार्य करते है। ये स्तर है -

(1) निदेशालय स्तर, (2) क्षेत्रीय स्तर, (3) जिला स्तर।

कुछ राज्यों मे एक और स्तर है जो कि ब्लॉक स्तर (Block level) के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार राज्य में शिक्षा-प्रशासन निम्नलिखित स्तरों पर सचालित होता है –

16.1 : राज्य का शिक्षा–विभाग (EDUCATION DEPARTMENT OF STATE)

अधिकारी	स्तर
शिक्षामन्त्री	राज्य का शिक्षा-मन्त्रालय
शिक्षा-सचिव	शिक्षा-सचिवालय
शिक्षा-निदेशक या सार्वजनिक शिक्षा-निदेशक	शिक्षा-निदेशालय
सर्किल शिक्षा-अधिकारी या उप-शिक्षा-निदेशक	क्षेत्रीय या सर्किल स्तर
जिला विद्यालय अधिकारी या जिला विद्यालय निरीक्षक	जिला स्तर
ब्लॉक शिक्षा-अधिकारी	ब्लॉक स्तर

इन विभिन्न स्तरों के प्रशासकीय संगठन एवं उनके अधिकारियों का पृथक्-पृथक् विवेचन नीचे दिया जा रहा है—

1. **शिक्षा-मन्त्रालय** (Ministry of Education)—राज्य स्तर पर शिक्षा-मन्त्रालय का प्रमुख अधिकारी **शिक्षामन्त्री** होता है। इसकी सहायता के लिए एक या दो उपमन्त्री भी हो सकते हैं जैसे—महाराष्ट्र, मैसूर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर में। शिक्षामन्त्री जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि होता है तथा राज्य के विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। वह शिक्षा की नीति का निर्धारण एवं उसको क्रियान्वित भी करता है। परन्तु शिक्षामन्त्री सम्पूर्ण शिक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं होता। राज्यों में कुछ ऐसे विभाग एवं मन्त्रालय हैं जो अपने विशेष क्षेत्रों की शिक्षा के लिए उत्तरदायी होते हैं। कृषि, इंजीनियरिंग, वाणिज्य एवं उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं पशु-चिकित्सा आदि सरकारी विभाग अपने नियन्त्रण में विभिन्न विद्यालयों व कॉलेजों को रखते हैं। प्रायः ये विभाग एक-दूसरे की क्रियाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और न ही शिक्षा-विभाग इनकी क्रियाओं में कोई समन्वय स्थापित कर पाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इनको गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाय। इस सम्बन्ध में '**कोठारी कमीशन**' का सुझाव है कि प्रत्येक राज्य में एक शिक्षा-परिषद् (Council of Education) की स्थापना की जाये। इसका चेयरमैन शिक्षामन्त्री हो तथा उसमें राज्य के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों, शिक्षा की विभिन्न शाखाओं के संचालकों (Directors) तथा कुछ शिक्षा-प्रेमियों को सदस्यता प्रदान की जाये। इसका कार्य-क्षेत्र विद्यालय-शिक्षा तक सीमित हो। यह विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित मामलों में राज्य सरकार को परामर्श दे। इसके अतिरिक्त यह विभिन्न साधनों के माध्यम से विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के संचालित कार्यक्रमों का मूल्यांकन तथा राज्य में शिक्षा के विकास का पुनरीक्षण करे। इस परिषद् को प्रमुख सलाहकार समिति का स्थान प्रदान किया जाय। यह अपने कार्यों को पूर्ण करने के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण कर सकती है। इस परिषद् के वार्षिक प्रतिवेदनों को इसकी सिफारिशों के साथ राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाये।

शिक्षामन्त्री के कार्य—इसके महत्त्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं—

1. शिक्षा नीति का निर्धारण तथा राज्य की शिक्षा-पद्धति के लिए नेतृत्व प्रदान करना।
2. शिक्षा से सम्बन्धित विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का विधान-मण्डल के समक्ष उत्तर देना तथा शिक्षा-सम्बन्धी विधायन में विधान-मण्डल को परामर्श देना।
3. निजी प्रबन्धकों तथा स्थानीय संस्थाओं को स्कूलों के संचालन में सहायता देना।
4. शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए अनुसन्धान कार्यों को प्रोत्साहन देना एवं राज्य की शैक्षिक क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना तथा विभिन्न कार्यक्रमों के परिणामों की जाँच करना।

उपर्युक्त कार्यों को पूर्ण करने के लिए राज्य के शिक्षा-विभाग के दो अंग होते हैं—शिक्षा-सचिवालय (Secretariat of Education) तथा शिक्षा निदेशालय (Directorate of Education)।

2. **शिक्षा-सचिवालय** (Secretariat of Education)—सचिवालय प्रत्यक्ष रूप से शिक्षामन्त्री तथा उपमन्त्री से सम्बन्धित है। शिक्षा से सम्बन्धित सभी नीतियाँ शिक्षा-सचिवालय में निर्णीत की जाती हैं। सचिवालय का अध्यक्ष शिक्षा-सचिव होता है और उसकी सहायता के लिए उपसचिव तथा अधीन सचिव आदि भी नियुक्त किये जाते हैं। यह 'अखिल भारतीय सेवा' (Indian Administrative Service) का सदस्य होता है। पश्चिमी बंगाल के सिवाय प्रत्येक राज्य में शिक्षा-सचिव का पद शिक्षा-संचालक (Director of Education) के पद से पृथक् होता है। प्रतिदिन के मामलों को शिक्षा-सचिव द्वारा पूरा किया जाता है और सरकार के सभी आदेश उसी के नाम से निकलते हैं। शिक्षा संचालक द्वारा जो नीतियाँ एवं प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं, वे पहले सचिवालय के अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा अध्ययन किये जाने के पश्चात् शिक्षा-सचिव के पास जाते हैं और तब वह उन्हें शिक्षामन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करता है।

3. शिक्षा-निदेशालय (Directorate of Education)—यह एक कार्यपालक [illegible] है। वस्तुत यह सरकार तथा राज्य में फैली हुई सैकड़ो शिक्षा संस्थाओं के बीच एक [illegible] है। यह सरकार को शिक्षा की विभिन्न शाखाओं की दशाओं से पूर्णतया परिचित कराता है तथा सरकार की शिक्षा–नीति के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया, उनकी आवश्यकता [illegible] कराता है।

इसका सबसे बड़ा अधिकारी शिक्षा-निदेशक है जो कि शिक्षा सम्बन्धी मामलों में [illegible] विशेषज्ञ परामर्शदाता होता है। वह शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च कार्यपालक होता है और सम्पूर्ण राज्य की शिक्षा के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। उसका विभिन्न जिलों के सरकारी एवं [illegible] कॉलेजों से सम्बन्ध है। उसको प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिए ही उसे स्थानीय संस्थाओं से भी सम्बन्ध स्थापित करना होता है। प्राथमिक शिक्षा के लिए उत्तरदायी है। शिक्षा-संचालक लड़कियों की शिक्षा के लिए भी उत्तरदायी है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राज्य की सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति का उस पर उत्तरदायित्व है। इसके अतिरिक्त वह राज्य के विश्वविद्यालय के सिण्डीकेट या कार्यकारिणी परिषद् लोक-सेवा आयोग, माध्यमिक शिक्षा परिषद् आदि का पदेन सदस्य होता है।

परन्तु यह स्पष्ट है कि अकेले ही शिक्षा-संचालक सम्पूर्ण कार्य को नहीं कर सकता है। इसलिए उसकी सहायता के लिए विभिन्न शिक्षा-अधिकारी—उपशिक्षा-संचालक, सहायक शिक्षा-संचालक आदि होते हैं। इन संचालकों के अधीन विद्यालय निरीक्षक, विद्यालय निरीक्षिका, उप-विद्यालय निरीक्षक, उप-विद्यालय निरीक्षिका, सहायक उप-विद्यालय निरीक्षक आदि होते है।

4. क्षेत्रीय या सर्किल स्तर (Regional Level)—सामान्यत प्रत्येक राज्य को शिक्षा प्रशासन की दृष्टि से कई क्षेत्रों या सर्किलों या डिवीजनों में विभाजित कर दिया गया है। उत्तर प्रदेश में ये क्षेत्र उपशिक्षा निदेशक के अधीन हैं। पजाब में ये क्षेत्र सर्किल शिक्षा अधिकारी के अधीन है। [illegible] डिवीजन इन्सपेक्टर या सुपरिण्टेण्डेण्ट के अधीन है। क्षेत्रीय व्यवस्था इस कारण की जाती है [illegible] क्षेत्र में आने वाले जिला-अधिकारियों के कार्यों में समन्वय एवं सुव्यवस्था स्थापित की जा सके।

5. जिला-स्तर (District Level)—शिक्षा-प्रशासन में यह स्तर सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस कार्य-संचालन पर ही विद्यालय-शिक्षा के किसी कार्यक्रम की सफलता या असफलता निर्भर है। [illegible] स्तर पर शिक्षा का प्रमुख अधिकारी जिला विद्यालय निरीक्षक या जिला शिक्षा-अधिकारी होता है। [illegible] सहायता के लिए अन्य बहुत-से अधिकारी रहते हैं।

6. ब्लॉक स्तर (Block Level)—कुछ राज्यों में शिक्षा-प्रशासन का एक स्तर ब्लॉक या [illegible] स्तर है। पजाब तथा हरियाणा में प्राइमरी शिक्षा-प्रशासन के लिए इस स्तर का प्रशासन बहुत [illegible] महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। जिन राज्यों में प्राथमिक शिक्षा राज्य के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में है, वहाँ स्थानीय बोर्डों का इस सम्बन्ध में कोई उत्तरदायित्व नहीं है। कुछ राज्यों में ब्लॉक शिक्षा-अधिकारी का कार्य उपविद्यालय निरीक्षक द्वारा किया जाता है परन्तु इन अधिकारियों को जिला स्तर से सम्बन्धित करके उन्हें प्राइमरी विद्यालयों के निरीक्षण का कार्य सौंप दिया गया है। साथ ही ये अधिकारी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने के लिए कार्य करते है।

16.2 : राज्य शिक्षा–परामर्शदाता मण्डल (STATE ADVISORY BOARD OF EDUCATION)

सरकार को शिक्षा सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए लगभग सभी राज्यों में शिक्षा-परामर्शदाता मण्डलों की व्यवस्था है। परन्तु इनके संगठनों में विभिन्नता पायी जाती है। कुछ राज्यों में शिक्षा की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाला एक ही शिक्षा-परामर्शदाता मण्डल है और कुछ में प्रत्येक से सम्बन्धित

पृथक्-पृथक् मण्डल है। कुछ राज्य सामान्य परामर्शदाता मण्डल के साथ-साथ विशेष मण्डलों को भी बनाते है। इस सम्बन्ध मे माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने सुझाव दिया है– "राज्य का शिक्षा-परामर्शदाता मण्डल केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की भाँति ही कार्य करे और उसका सगठन शिक्षण-व्यवसाय, विश्वविद्यालय हाईस्कूल एव उच्चतर माध्यमिक स्कूलो की प्रबन्धक समितियो, शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाले विभागों के अध्यक्षो, उद्योग, व्यापार तथा विधानमण्डल एव जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए। शिक्षामन्त्री इस बोर्ड का चेयरमैन तथा शिक्षा-सचालक या शिक्षा-सचिव इसका सचिव होना चाहिए।" माध्यमिक शिक्षा-आयोग द्वारा प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार बिहार तथा केरल में ऐसे ही शिक्षा-परामर्शदात्री मण्डल स्थापित किये गये है। सन् 1986 की शिक्षा नीति मे इस बात पर बल दिया गया है कि राज्य सरकारे केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की भाँति राज्य शिक्षा-सलाहकार बोर्ड स्थापित करेगी।

16.3 : राज्य शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् (एस. सी. ई. आर. टी.) [STATE COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING (SCERT)]

भारत सरकार की शैक्षिक नीति एवं सुझाव को दृष्टिगत रखते हुए उत्तर प्रदेश शासन द्वारा वर्ष 1981 मे राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना "प्रारम्भिक शिक्षा विभाग" के रूप मे की गई है। परिषद् की स्थापना का मूल उद्देश्य–शैक्षिक शोध, प्रावधान, प्रकाशन एवं विस्तार कार्य है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान में प्रतिस्थापित मूल्यों तथा समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्रात्मकता एव अन्य तत्वों, जैसे–सास्कृतिक धरोहर, मानवीय मूल्यों, नर–नारी समानता, पर्यावरण सरक्षण, परिवार नियोजन तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आदि को क्रियान्वित करना है। परिषद् प्रारम्भिक एवं माध्यमिक क्षेत्र मे शैक्षिक गुणवत्ता की वृद्धि करने की दिशा में लगातार प्रयत्नशील है।

राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् के विभाग (Departments of the State Council of Educational Research and Training)

1. प्रारम्भिक शिक्षा विभाग (राज्य शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद)
2. विज्ञान और गणित विभाग (राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद)
3. मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग (राजकीय सी.पी.आई., इलाहाबाद)
4. मनोविज्ञान और निर्देशन विभाग (मनोविज्ञान शाला, इलाहाबाद)
5. हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा विभाग (राज्य हिन्दी सस्थान, वाराणसी)
6. अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषा विभाग (आंग्ल भाषा शिक्षण संस्थान, इलाहाबाद)
7. श्रव्य–दृश्य तथा शिक्षा प्रसार विभाग (शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद)
8. पाठ्यक्रम और मूल्यांकन विभाग, लखनऊ
9. शैक्षिक प्रशासन और नियोजन विभाग, लखनऊ
10. व्यवसायपरक शिक्षा विभाग, लखनऊ
11. अनौपचारिक शिक्षा एकक, लखनऊ

उक्त विभागों के अतिरिक्त परिषद् के नियन्त्रण में 2 शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय, 65 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण सस्थान तथा 2 राजकीय दीक्षा विद्यालय संचालित है।

राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् के उद्देश्य और कार्यक्षेत्र (Objective and Scope of State Council of Educational Research and Training)

परिषद् के बहुआयामी कार्यक्रमों के सतत् संचालन हेतु अग्रलिखित उद्देश्यों को संकल्पित किया गया है–

1. शिक्षा का विकास करने और उसके स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से क्रियात्मक अनुसधान करना, अनुसन्धानों का समन्वयन करना, क्रियान्वयन करना तथा उन्हें प्रोत्साहन देना तथा नये-नये शोधों पर चर्चा करना।

2. सेवापूर्व तथा सेवारत प्रशिक्षणों की उचित व्यवस्था करना।

3. शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत सस्थाओं को आवश्यक परामर्श देना।

4. नवीनतम एवं श्रेष्ठ शिक्षण विधियों तथा विशिष्ट कार्यक्रमों को विकसित करना तथा शैक्षिक आयोजकों तक पहुँचाना।

5. अपने शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन हेतु राज्य के शिक्षा विभाग, विश्वविद्यालयों, अन्य शैक्षिक संस्थाओं और कतिपय अभिकरणों से सहयोग प्राप्त करना तथा कार्यक्रमों को उचित प्रकार से क्रियान्वित करना।

6. शैक्षिक नवाचारों, अभिनव प्रवृत्तियों, नवीन प्रविधियों तथा अद्यतन सूचनाओं का संग्रह और प्रचार करना।

7. विद्यालयीय शिक्षा के स्तर को उन्नत करने की दृष्टि से राज्य प्रशासन तथा अन्य अभिकरणों को परामर्श देना।

8. पाठ्य पुस्तक, शिक्षण सामग्री तथा अन्य उपयोगी साहित्य का निर्माण तथा प्रकाशन करना।

9. परिषद् के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सभी प्रकार के आवश्यक कार्यों का सम्पादन करना।

10. सरकार द्वारा सन्दर्भित शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण सम्बन्धी अन्य कार्यक्रमों का आयोजन करना।

नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत विभिन्न राज्यों में बच्चों को स्थानीय भाषाओं में उनके पाठ्यक्रम उपलब्ध कराने को लेकर राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद (SCERT) ने काम शुरू किया। पहले चरण में स्थानीय बोलियों के विवरण जुटाये गये। इसके बाद जिले के प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक कक्षाओं के बच्चों द्वारा बोली जाने वाली स्थानीय भाषा की जानकारी माँगी। शिक्षकों व सहायक शिक्षकों की सूची लेकर उनकी डिग्री व राज्य के आधार पर उन्हें कक्षाएँ प्रदान की जायेंगी।

अतः यह सभी कार्य नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत अनिवार्य किये गये।

इस प्रकार राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद शिक्षा के विकास हेतु सतत प्रयत्नशील है।

16.4 : जिला स्तरीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान (डायट)
[DISTRICT INSTITUTE OF EDUCATION AND TRAINING (DIET)]

नई शिक्षा नीति, 1986 में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के विकास तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के क्रियान्वयन हेतु सन् 1988 में जिला स्तरीय या मण्डलीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण सस्थानों की स्थापना की गई। इसकी सकल्पना 1986 की नई शिक्षा नीति तथा क्रियान्वयन के कार्यक्रम (NPE & POA) में की गई थी। डायट (DIET) के माध्यम से प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों, औपचारिकेत्तर तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को उनके शैक्षिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक किया जाता है। ग्राम तथा नगर में शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों को शैक्षिक पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति से परिचित कराना है। प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनिक बनाने तथा शिक्षकों में आत्मविश्वास, स्वाभिमान एवं व्यवसाय के प्रति निष्ठा का भाव उत्पन्न करने में डायट का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

डायट का सम्बन्ध राज्य स्तर पर एस. सी. ई. आर. टी. तथा प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय से है। राष्ट्रीय स्तर पर एन. सी. ई. आर. टी. तथा नीपा जैसे संस्थान अपने शैक्षणिक अनुसन्धान तथा विचारों से इसे लाभान्वित करेंगे।

पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक सेवा पूर्व (Pre-Service) तथा सेवारत (In-Service) अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों से परिचित कराने का कार्य डायट की जिम्मेदारी होगी। यह आवासीय संस्था होगी जहाँ रहकर अध्यापकगण साहित्यिक तथा अन्य क्षेत्रों में भाग लेकर सामूहिक सहयोग तथा मण्डलीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान में अध्यापक शिक्षा तथा प्रशिक्षण कार्य के साथ ही शिक्षण सामग्री निर्माण, शैक्षिक प्रौद्योगिकी (Educational Technology), तथा शैक्षिक प्रयोग एवं अनुसन्धान (Experimentation & Research) का कार्य भी होगा। इस संस्थान द्वारा विभिन्न विषयों के लिए पाठ्यक्रम की रचना तथा मूल्यांकन की पद्धतियों का निर्धारण करने में भी अध्यापक की सहायता की जाएगी। औपचारिकेत्तर तथा प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे अध्यापकों की आवश्यकता के अनुरूप कार्यक्रम, पाठ्यचर्या तथा शिक्षण सामग्री के प्रयोग आदि के प्रशिक्षण हेतु कार्य गोष्ठियों का संचालन भी डायट के विशेषज्ञ करेंगे।

डायट की योजना तथा प्रबन्ध शाखा (Planning and Management Branch) प्रधानाध्यापकों तथा शिक्षा-निरीक्षकों को प्रशिक्षण देने के साथ ही शैक्षिक योजना तथा प्रशासन की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अनुसन्धान कार्य में भी प्रवृत्त होगी। कार्यानुभव (Work Experience) शाखा सेवारत तथा सेवापूर्व अध्यापकों को प्रशिक्षण तथा गोष्ठियों द्वारा बाल केन्द्रित शिक्षा के लिए शिक्षण सामग्री निर्माण तथा सामूहिक सेवा सम्बन्धी कार्यों में रुचि उत्पन्न करेगी।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन (Curriculum & Evaluation) शाखा क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधि में सुधार या परिवर्तन का प्रयास करेगी। डायट सेवारत तथा उपचारात्मक सेवापूर्व अध्यापकों के प्रशिक्षण का मूल्यांकन करने के लिए मार्गदर्शन निर्देश (Guidelines) तैयार करेगा। अध्यापकों को विभिन्न विषयों में उपलब्धि-परीक्षण, निदानात्मक परीक्षण तथा उपचारात्मक शिक्षण के लिए प्रश्न निर्माण एवं अभ्यास करने का प्रशिक्षण भी डायट ही देगा। यह संस्थान औपचारिकेत्तर तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को भी पाठ्यक्रम निर्माण तथा मूल्यांकन प्रविधि के निर्धारण में सहायता प्रदान करेगा।

16.5 : माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार की भूमिका (ROLE OF THE STATE GOVERNMENT IN SECONDARY LEVEL)

माध्यमिक शिक्षा राज्य के प्रत्यक्ष एवं पूर्ण नियन्त्रण में है। यह नियन्त्रण निम्नलिखित साधनों के द्वारा रखा जाता है।

1. **शिक्षा-मन्त्रालय** (Ministry of Education)—यह शिक्षा के सम्बन्ध में नीति के प्रस्तावन एवं नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी है। यह माध्यमिक शिक्षा की अवधि का निर्धारण एवं पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में सुझाव प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, माध्यमिक शिक्षा-संहिता (Education Code) को स्वीकृत एवं बजट निर्धारित करता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा-मन्त्रालय के समक्ष माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं जिनको उसे हल करना पड़ा; जैसे—शिक्षकों के वेतन, पाठ्यक्रम, हिन्दी तथा अंग्रेजी का स्थान, पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण आदि। इसके सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य अपनी स्वयं की नीति निर्धारित करता है। इसीलिए सम्पूर्ण देश की शिक्षा नीति में अनुरूपता का अभाव रहता है। यद्यपि केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुरूपता लाने के लिए समय-समय पर बहुत-से निर्देशन दिए जाते हैं, फिर भी स्थानीय स्थितियों व नीतियों की विभिन्नता आदि के कारण एकरूपता का अभाव होना स्वाभाविक ही है।

2. शिक्षा विभाग (Education Department)—यह शिक्षा मन्त्रालय द्वारा निर्धारित नीतियों को क्रियान्वित करता है। शिक्षा विभाग यह भी देखता है कि अनुदानों के नियमों का पालन किया जा रहा है या नहीं। यह सरकारी तथा सहायता-प्राप्त स्कूलों के उपयुक्त संचालन के लिए भी उत्तरदायी है। इसके द्वारा समस्त स्कूलों का निरीक्षण किया जाता है। शिक्षा विभाग इस कार्य को निरीक्षकों एवं निरीक्षिकाओं द्वारा करता है। अधिकांश राज्यों में इसके लिए एक उप-संचालक नियुक्त किया जाता है जो कि माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा-संचालक को सहायता देता है। शिक्षा-विभाग द्वारा भी स्वयं माध्यमिक विद्यालयों का संचालन किया जाता है। वस्तुतः सरकार पाँच में से एक स्कूल का स्वयं संचालन करती है जिसके संचालन के लिए उसे माध्यमिक शिक्षा के बजट का बहुत बड़ा भाग व्यय करना पड़ता है। इनका संचालन बहुत-सी समस्याएँ भी उत्पन्न करता है उदाहरणार्थ—इनके शिक्षकों के वेतनादि तथा गैर-सरकारी स्कूलों के शिक्षकों के वेतनादि में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। गैर-सरकारी स्कूलों के शिक्षकों ने सरकार से यह माँग की कि उनके वेतनादि में इस प्रकार की असमानता न रखी जाय। इस विषय में शिक्षा-आयोग ने सुझाव दिया है कि इन स्कूलों के शिक्षकों की असमानता को समाप्त किया जाय और उसने दोनों प्रकार के स्कूलों के शिक्षकों के लिए समान वेतनक्रमों की सिफारिश की। उत्तर प्रदेश में इस असमानता को समाप्त कर दिया गया।

हण्टर कमीशन ने सुझाव दिया था—"माध्यमिक शिक्षा को, जहाँ तक सम्भव हो सके, अनुदानों के आधार पर प्रदान किया जाना चाहिए और सरकार को उन विद्यालयों के प्रत्यक्ष प्रबन्ध से स्वयं को पृथक कर लेना चाहिए।" इस आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि सरकार को व्यावसायिक स्कूलों तथा लड़कियों के लिए विद्यालयों की व्यवस्था करनी चाहिए और उसे उन क्षेत्रों में विशेष रूप से विद्यालय स्थापित करने चाहिए, जहाँ के निवासी स्वयं अपने स्कूल संचालित करने में समर्थ नहीं हैं। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सरकारी स्कूलों को रखना ही है तो उनके आन्तरिक प्रशासन में प्रजातन्त्र तथा विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को स्थान दिया जाना चाहिए तथा सरकारी स्कूलों का समाज से भी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए परामर्शदात्री परिषदों की स्थापना की जाय जिनमें समाज के लोगों को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

3. माध्यमिक शिक्षा परिषदें (Secondary Education Council)—कलकत्ता-विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिश के अनुसार भारत में 15 माध्यमिक शिक्षा-परिषदों की स्थापना हुई थी। परिषदों के कार्य विभिन्न राज्यों में भिन्न हैं। अधिकांश परिषद् परीक्षाओं के संचालन एवं उनके लिए पाठ्यक्रम के निर्धारण का कार्य कर रही हैं। कुछ परिषदें शिक्षा-विभाग को परामर्श देने का भी कार्य करती हैं। कुछ परिषदें, जैसे—विदर्भ की माध्यमिक परिषद् शिक्षा-विभाग के प्रशासकीय कार्यों को भी प्रभावित करती हैं। बिहार की माध्यमिक परिषद् सरकार के निरीक्षकों या स्वयं के द्वारा नियुक्त निरीक्षकों से स्कूलों का निरीक्षण कराती है।

16.6 : राज्य सरकार के माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालय सम्बन्धी कार्य
(FUNCTIONS OF THE STATE GOVERNMENT RELATED TO THE SECONDARY AND HIGHER SECONDARY SCHOOL)

राज्य सरकार मुख्यतः माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों का संचालन करती है। राज्य सरकार को इन विद्यालयों का निर्वाह करने के लिये विभिन्न कार्य करने होते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है—

1. विद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था करना (Arrange for School Education)—शिक्षा की व्यवस्था करना, स्तर निर्धारित करना एवं आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करना राज्य सरकार का

कार्य है। पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, निम्न माध्यमिक (Junior High School), माध्यमिक (Secondary) एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था करना राज्य सरकार का कार्य है। इन सभी शिक्षण संस्थाओं का आर्थिक दायित्व सरकार वहन करती है और इनके स्तरों की व्याख्या एवं उनमें परिवर्तन आवश्यकतानुसार करती है तथा स्तर को किस प्रकार सुधारा जा सकता है, यह परामर्श भी देती है।

2. शैक्षिक स्तर का मूल्यांकन करना (Assessing Educational Level)—शैक्षिक स्तर सुधारने के लिये कोठारी आयोग का सुझाव है कि स्कूल संकुल अथवा समन्वय के द्वारा शिक्षा के स्तर में सुधार के लिये राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का विकास किया जाये, जिससे ऐसी दशाओं का निर्माण किया जा सके कि प्रत्येक स्कूल सर्वोत्तम परिणामों को प्राप्त कर सके। इस समिति का कार्यक्षेत्र पड़ौसी उच्च प्राथमिक स्कूलों का पर्यवेक्षण करना, उनके लिये आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करना और शिक्षा के स्तर का निर्धारण करना होगा। इस प्रकार समन्वित रूप से स्कूल में सुधार सम्भव हो सकेगे और निरीक्षण व पर्यवेक्षण मे सरलता होगी। अत: मूल्यांकन की अच्छी विधियों का प्रयोग करके, अच्छी योजना का निर्माण करके, पाठ्यक्रम मे आवश्यक परिवर्तन करके, विद्यालयो की उचित सजावट और अध्यापको की अन्तर्सेवा शिक्षा की व्यवस्था करके शिक्षा का स्तर सुधारा जा सकता है।

3. पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-पुस्तकें निर्माण में सलाह देना (Advising on Curriculum and TextBook Development)—राज्य सरकार राज्य में शिक्षा के विकास के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। **शिक्षा आयोग** का मत है कि शिक्षा के उचित पर्यवेक्षण और उचित विकास के लिये राज्य शिक्षा संस्थान (State Institute of Education) की स्थापना की जाये। वर्तमान में यह संस्थान शिक्षा विभाग का महत्त्वपूर्ण अग है। यह संस्थान, विभागीय अधिकारियों के लिये सेवाकालीन पाठ्यक्रम की व्यवस्था करता है, पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तकें आदि के मार्गदर्शन तथा मूल्यांकन सम्बन्धी कार्यों को पूर्ण करता है। यह अध्यापक शिक्षा का विकास करता है और अनुसंधान सम्बन्धी कार्यों का आयोजन भी करता है।

4. व्यावसायिक शिक्षा का विकास करना (Develop Vocational Education)—राज्य सरकार शिक्षा को व्यावसायिक रूप में विकसित करने का प्रयास कर रही है ताकि छात्र को आगे जाकर व्यवसाय की दृष्टि से किसी प्रकार के अहित का सामना न करना पड़े। व्यावसायिक प्रणाली के विकास के लिये राज्य स्तर, जिला स्तर और ब्लॉक स्तर पर विषय विशेषज्ञों की सेवाएँ उपलब्ध होनी चाहिये और ये विशेषज्ञ छात्रों के सम्पर्क में रहें तथा विषय और तकनीकी का आधुनिकतम ज्ञान छात्रों को प्रदान करते रहें। शिक्षण का दायित्व अध्यापक पर निर्भर करता है, इसलिये आवश्यक है कि शिक्षक की शिक्षण क्षमता एवं योग्यता का विकास हो इसके लिये अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

5. शिक्षा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करना (Education Administration and Decentralization)—राज्य सरकार प्रत्येक क्षेत्र का विकास करना चाहती है इसलिये ग्रामीण क्षेत्रों को भी उचित शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध हों, वहाँ भी अच्छे विद्यालयों की स्थापना हो और ग्रामीण जनता को भी उसी प्रकार लाभ मिले जो नगरीय जनता को उपलब्ध है, इसके लिये सरकार विकेन्द्रीकरण पर बल देती है, अत: शैक्षिक प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिये, अर्थात् शिक्षा नियोजन और प्रशासन में जिले को महत्त्व दिया जाये और जिले में भी ग्रामीण क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। **कोठारी आयोग** का सुझाव है कि प्रत्येक जिले में **जिला शिक्षा समिति** होनी चाहिये। इसका अधिकारी जिला शिक्षा अधिकारी होना चाहिये और जिले की सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि इसके सदस्य होने चाहिये। यह समिति राज्य द्वारा निर्धारित, शैक्षिक योजनाओं को स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप आगे बढ़ाये। अत: वांछित दिशा में शिक्षा के विकास के लिये विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता है।

6. शैक्षिक योजना बनाना एवं शिक्षा विभाग में समन्वय स्थापित करना (Making Educational Plans and Establishing Coordination in the Education Department) – राज्य सरकार शैक्षिक योजना का निर्माण करती है ताकि नामांकन और वित्त स्थिति तकनीकी और सामान्य स्थिति में सन्तुलन बना रहे। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों से सम्बन्धित शैक्षिक कार्यक्रम को रूपरेखा तैयार हो सके और आवश्यकतानुसार इन्हें लागू किया जा सके। शैक्षिक योजनाओं को लागू करने के लिये विभिन्न प्रशासनिक स्तरों पर संगठन आवश्यक है इसलिये यह आवश्यक है कि सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों में समन्वय होना चाहिये। शिक्षा नियोजन को प्रभावशाली बनाने के लिये शैक्षिक और प्रशिक्षण सम्बन्धी समन्वय के लिये शिक्षा विभाग में नियोजन उपविभाग होना चाहिये इससे स्कूल शिक्षा, उच्च माध्यमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और श्रम रोजगार के संस्थानों पर नियन्त्रण हो सकेगा। शिक्षा निदेशालय द्वारा यह उपविभाग नियन्त्रित होना चाहिये। शिक्षा की योजनाओं को सफलतापूर्वक बनाने के लिये स्थानीय व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। शिक्षा विभाग तकनीकी और प्रशासनिक नियन्त्रण रखे, संस्थाओं को योजना चलाने में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

7. जिला स्तरीय विद्यालयों में सुधार करना (Improve District Level School) – शैक्षिक योजना की सफलता जिला स्तर पर सशक्त प्रशासन से सम्भव है। सशक्त प्रशासन उच्चस्तरीय एवं योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करा सकता है तथा उपलब्ध आर्थिक स्रोतों का उपयोग करना सम्भव कर सकता है; अतः विद्यालय का सम्बन्ध प्रशिक्षण कॉलेज एवं राज्य शिक्षा संस्थान (SCERT) से होना चाहिये। इस प्रकार माध्यमिक विद्यालय प्राथमिक विद्यालय से जुड़े और साथ ही प्रशिक्षण कॉलेज से भी जुड़े, अतः छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक अनेक संस्थाओं का संगम होगा जो एक-दूसरे के सम्पर्क में आने से एक-दूसरे के साधनों, शिक्षकों आदि के प्रयोग करने से विद्यालयों में सुधार करना सम्भव होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में राज्य सरकार के प्रति कुछ सुझाव दिये गये –

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अनुसार राज्य स्तर पर माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों में एनसीसी विंग को खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

2. वर्ष 2025 तक स्कूलों के समूह बनाने या उनकी संख्या को समुचित रूप देने के लिए न्याय प्रक्रिया को अपनाकर समाधान किया जाएगा।

3. फाउंडेशन स्तर एवं सेकण्डरी स्तर विद्यालयों के समूह को एक एकीकृत अर्द्ध-स्वायत्त इकाई के रूप में देखा जाएगा।

4. प्रत्येक राज्य और जिले को 'बाल–भवन' स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. राज्य के शिक्षा विभाग का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. राज्य के शैक्षिक अनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद् का क्या कार्य है ? विस्तृत वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. शिक्षा मन्त्रालय से आप क्या समझते है ? इसके कार्यों को लिखिए।
2. शिक्षा निदेशालय का क्या कार्य है ? संक्षेप में बताइये।
3. माध्यमिक स्तर पर शिक्षा मन्त्रालय का कार्य बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. शिक्षा विभाग के अधिकारी कितने स्तर पर कार्य करते हैं ?

(अ) 2 (ब) 3

(स) 4 (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(ब)

2. शिक्षा निदेशालय कैसी संस्था है ?

(अ) कार्यपालक (ब) कार्यकारिणी

(स) स्थानीय (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)

3. राज्य शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना हुई

(अ) 1981 (ब) 1982

(स) 1986 (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)

4. राज्य शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् में जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान हैं–

(अ) 65 (ब) 66

(स) 70 (द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर**–(अ)

□□

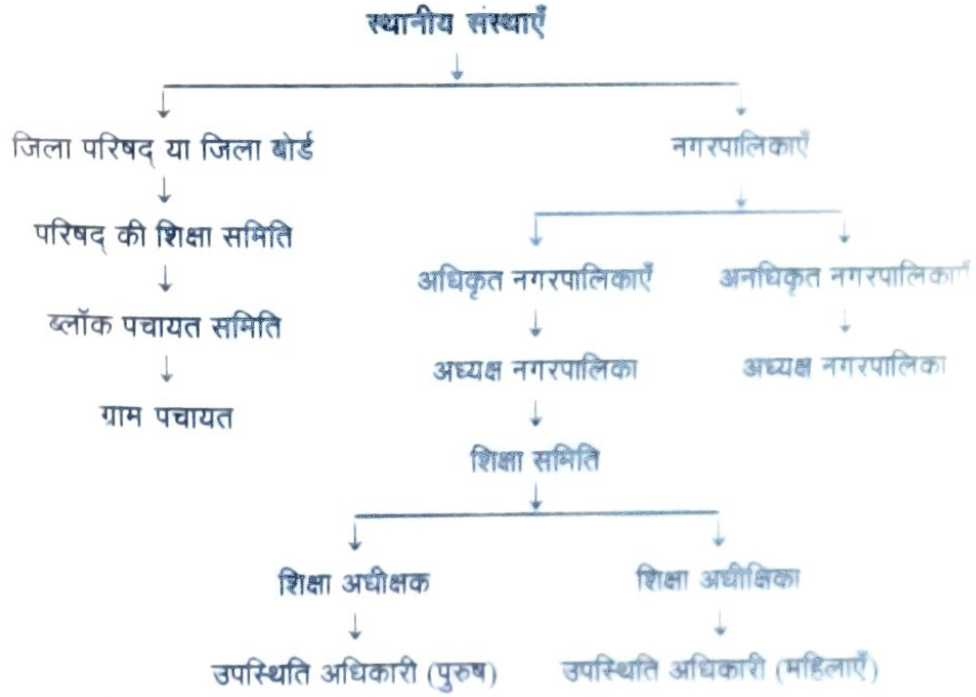
अध्याय

17

शिक्षा का स्थानीय प्रशासनिक तन्त्र और इसकी भूमिका

[LOCAL ADMINISTRATION MACHINERY OF EDUCATION & ITS ROLE]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत ने लोकतन्त्र को अपनाने के साथ-साथ लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralization) के सिद्धान्त को भी अपनाया। इस सिद्धान्त के अनुसार स्थानीय संस्थाओं को बहुत-से अधिकार एवं उत्तरदायित्व प्रदान किये गये। भारत के अधिकांश राज्यों में स्थानीय संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा के लिए पूर्णतया उत्तरदायी ठहराया गया है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुछ राज्यों में पंचायती राज को क्रियान्वित किया गया है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस स्तर के प्रशासकीय ढाँचे का रेखाचित्र प्रस्तुत है—



1. **नगरपालिकाएँ तथा शिक्षा** (Municipalities and Education)—भारत में दो प्रकार की नगरपालिकाएँ पायी जाती हैं—अधिकृत तथा अनधिकृत। अधिकृत नगरपालिकाएँ वे हैं जो प्राथमिक

शिक्षा पर एक लाख रुपये की वार्षिक धनराशि से कम व्यय नही करती है। अनधिकृत नगरपालिकाओं की कोटि मे वे सब आती है, जो इस धनराशि से कम व्यय करती है। अधिकृत नगरपालिकाओं को अपनी शिक्षा-समिति या विद्यालय बोर्ड बनाने का अधिकार है। शिक्षा के प्रशासन मे उनको बहुत सा अधिकार प्राप्त है। वे अपने विद्यालयो का निरीक्षण स्वय के द्वारा नियुक्त अधिकारियो द्वारा करती है। अनधिकृत नगरपालिकाएँ प्राथमिक शिक्षा के लिए अपना योगदान तो देती है, परन्तु उनको इनके प्रशासन मे कोई अधिकार प्राप्त नही होते। उनके क्षेत्र की शिक्षा का प्रबन्ध या तो अधिकृत नगरपालिका करती है जिसके क्षेत्र मे वह अनधिकृत नगरपालिका स्थित है या जिला परिषद् की शिक्षा समिति करती है।

भारत के अधिकाश राज्यो मे नगरपालिकाओ को प्राथमिक शिक्षा के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है। कुछ राज्यो—महाराष्ट्र, गुजरात आदि मे नगरपालिकाएँ माध्यमिक एव उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों इण्टरमीडिएट कॉलेजो तथा डिग्री कॉलेजो का सचालन भी कर रही है।

2. जिला परिषद् या जिला-बोर्ड तथा शिक्षा (District Council and Education)—ग्रामीण क्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा के लिए जिला-बोर्डों को उत्तरदायी ठहराया गया है। कुछ राज्यो मे जिला-बोर्डों के स्थान पर इसका नाम जिला-परिषद् कर दिया गया था, उदाहरणार्थ—उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश आदि। अब जिला बोर्डों को जिला पचायतो के नाम से पुकारा जाने लगा है। कुछ जिला-बोर्ड माध्यमिक विद्यालयो का भी सचालन कर रहे थे। उत्तर प्रदेश, मद्रास, पजाब आदि मे 30 प्रतिशत से अधिक माध्यमिक विद्यालयो का सचालन इनके द्वारा किया जा रहा था। राज्यो मे ग्रामीण क्षेत्रो की शिक्षा के प्रशासन के लिए दो प्रणालियाँ अपनाई जा रही है। कुछ राज्यो मे जिला-बोर्ड तथा ग्राम पचायत इसका प्रबन्ध कर रही है, जैसे—गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, पश्चिम बगाल आदि। कुछ राज्यो मे जिला-परिषद् पचायत समिति तथा ग्राम पचायतो के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है, जैसे—आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि।

जिला परिषद् अपनी एक शिक्षा-समिति बनाती थी जो प्राथमिक बेसिक तथा माध्यमिक विद्यालयो की व्यवस्था एव उनका सचालन करती है। उत्तर प्रदेश मे उप-विद्यालय निरीक्षक शिक्षा-समिति का मुख्य अधिकारी होता था। मेहता समिति ने यह सुझाव दिया कि जिला-परिषद् को इन पचायत समितियो के बजट को मान्यता प्रदान करने का अधिकार होना चाहिए। साथ ही जिला-परिषदो को क्षेत्रो (Blocks) की पचायत समितियो की माँगो को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने तथा सरकार से प्राप्त धनराशि को क्षेत्रो मे वितरित करने का अधिकार होना चाहिए। पचायत समितियो के प्रमुख कार्य—जिला-बोर्ड की शिक्षा समितियो को प्राथमिक शिक्षा के विकास तथा उनकी अन्य क्रियाओ मे सहायता करना है। इसके अतिरिक्त उसके कार्य नवीन प्राथमिक विद्यालयो की स्थापना, भवनो का निर्माण, उपयुक्त साज-सज्जा प्रदान करना, प्रारम्भिक स्कूलो के कार्यों का परिषद् की समिति के आदेशो के अनुसार निरीक्षण करना ग्राम पचायतो के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण, ग्राम पचायतो का अनुदान निर्धारित करना है।

17.1 : स्थानीय निकायों का कार्य–क्षेत्र
(SCOPE OF LOCAL BODIES)

यद्यपि राज्य सरकारो ने प्राथमिक शिक्षा का दायित्व स्थानीय निकायो को सौपा है, परन्तु उनको सीमित अधिकार प्रदान किए है। स्थानीय निकायो को प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे जो अधिकार प्रदान किये है, उनका सक्षिप्त विवेचन आगे दिया जा रहा है।

राज्य सरकारो ने निरीक्षण, शिक्षको का प्रशिक्षण, पाठ्य-निर्धारण तथा वित्तीय व्यवस्था पर अपना नियन्त्रण रखा है। इन चारो दायित्वो के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य स्थानीय निकायो को सौप गये है।

1. शिक्षकों की नियुक्ति—स्थानीय निकायो को शिक्षको की नियुक्ति का कार्य सौपा गया है परन्तु राज्य सरकार ने इस सम्बन्ध मे यह प्रावधान कर दिया है कि इनकी नियुक्ति चयन समिति के द्वारा होगी जिसमे राज्य सरकार का प्रतिनिधि रहेगा। प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षक स्थानीय निकायो के कर्मचारी माने जायेंगे।

2. सेवा-दशाएँ—शिक्षको की सेवा-दशाओ (Service conditions) का निर्धारण स्थानीय सस्थाओ द्वारा ही होगा, परन्तु उन्हे राज्य सरकार से इनके सम्बन्ध मे स्वीकृति प्राप्त करनी होगी।

3. अन्य कर्मचारी—राज्य सरकार प्राथमिक विद्यालयो के अन्य कर्मचारियो जैसे चपरासी आदि की नियुक्ति, उनके वेतनमानो आदि के सम्बन्ध मे स्थानीय निकायो के लिए कोई विनियमन नही करेगी अर्थात् इस क्षेत्र मे स्थानीय निकाय पूर्णत स्वतन्त्र है। ये सस्थाएँ आवश्यकतानुसार इन कर्मचारियो की सख्या का निर्धारण, उनके वेतनमान एव दशाएँ निर्धारित करने की अधिकारिणी होगी।

4. पाठ्य-पुस्तकें—पाठ्य-पुस्तक निर्धारित करने का अधिकार राज्य सरकार को है। परन्तु यदि सरकार किसी विषय मे एक से अधिक पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित करती है तो स्थानीय निकायो को उनमे से किसी एक पाठ्य-पुस्तक का चयन करने का पूर्ण अधिकार होगा। स्थानीय निकाय प्रस्तावित पाठ्य-पुस्तको मे से अपने विद्यालयो के लिए पाठ्य-पुस्तक चुनने के लिए स्वतन्त्र होगा।

5. विद्यालय दिवस तथा छुट्टियाँ—राज्य सरकारे केवल यह निर्धारित करेगी कि वर्ष मे कितने दिन विद्यालय खुलेगा। परन्तु छुट्टियो के निर्धारण का अधिकार स्थानीय निकायो को प्रदान किया गया। वे आवश्यकतानुसार छुट्टियो का निर्धारण कर सकती है।

भारत मे स्थानीय सस्थाओ के समक्ष बहुत-सी समस्याएँ है, जो उनके कार्य मे बाधा उत्पन्न करती है, जैसे—धन का अभाव। फिर भी उनका कार्य पर्याप्त सीमा तक सराहनीय है। ये सस्थाएँ प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। उत्तर प्रदेश मे इनके द्वारा ४। प्रतिशत से अधिक प्राथमिक स्कूलो को सचालित किया जा रहा था। अब उत्तर प्रदेश सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को पूर्णत अपने हाथ मे ले लिया है। परन्तु लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को ग्रहण करने से इनके ऊपर बहुत बड़ा दायित्व आ गया था। इस सम्बन्ध मे राज्य सरकारो का भी यह दायित्व है कि वे इनको उपयुक्त निर्देशन प्रदान करे, क्योकि अधिकाश जनता अभी तक निरक्षर एव अनुभवहीन है।

स्थानीय स्तर पर शिक्षा के प्रशासन मे सुधार लाने के लिए कोठारी कमीशन ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक जिले मे एक विद्यालय बोर्ड (School Board) की स्थापना की जाय जिसमे निम्नलिखित व्यक्तियो को सदस्यता प्रदान की जाये—

1 जिला-परिषद् के प्रतिनिधि।

2 जिले की नगरपालिकाओ के प्रतिनिधि।

3 राज्य सरकार द्वारा मनोनीत शिक्षा-मर्मज्ञ।

4 अपदेन सदस्य, जैसे—शिक्षा, कृषि, उद्योग या अन्य विभागो के अधिकारीगण।

कोठारी कमीशन ने यह भी सुझाव दिया है कि जिला-परिषद् तथा नगरपालिकाएँ अपने प्रतिनिधियो को अपने सदस्यो मे से निर्वाचित कर भेजे। जो नगरपालिकाएँ स्वय अपनी पृथक विद्यालय परिषद स्थापित करती है, वे इस परिषद् के लिए सदस्य नही भेजेगी। अभी तक इन सुझावो को कार्यान्वित नही किया गया।

सन् 1986 की शिक्षा-नीति मे इस बात पर बल दिया गया है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए जिला शिक्षा बोर्ड (District Board of Education) स्थापित किये जाये। इनकी स्थापना के लिए राज्य सरकारे यथाशीघ्र कदम उठाये। शैक्षिक विकास के विभिन्न स्तरो पर

आयोजना, समन्वयन, मॉनीटरिंग तथा मूल्यांकन मे केन्द्रीय, राज्य, जिला तथा स्थानीय स्तर की एजेन्सियाँ सहभागिता निभाये।

सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के लिए पचायती राज निकायो को 'प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलो सहित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ तथा गैर-औपचारिक शिक्षा (Non-formal Education) पुस्तकालय तथा सास्कृतिक कार्यकलाप' सौपने का प्रावधान किया गया। प्रत्येक पचायत एक ग्राम शिक्षा समिति का गठन करेगी जो ग्राम स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र मे निर्धारित कार्यक्रमो के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होगी। जिला स्तर पर जिला निकाय गठित किया जायेगा जो गैर-औपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा, उच्चतर माध्यमिक स्तर तक स्कूल शिक्षा सहित सभी शैक्षिक कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार होगा। इस निकाय मे शिक्षाविदो, महिलाओ, युवको का प्रतिनिधित्व, अभिभावको, अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो, अल्पसख्यको तथा जिले की उपयुक्त सस्थाओ के प्रतिनिधियो का प्रतिनिधित्व होगा। जिला निकाय जिला स्तर पर प्रारम्भिक शिक्षा, गैर-औपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के सभी कार्यक्रमो मे पर्याप्त पाठ्यचर्या एवं शैक्षिक निवेशो के लिए जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण सस्थान (District Institute of Education and Training–DIET) और अन्य सस्थाओ की विशेषज्ञता प्राप्त करेगा।

17.2 : बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन एवं कार्य (FUNCTIONS AND ORGANISATION OF BASIC EDUCATION COUNCIL)

बेसिक शिक्षा परिषद् की स्थापना करने और तत्सम्बन्धी विषयो की व्यवस्था करने के लिए भारत गणराज्य के तेइसवे वर्ष मे उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 बनाया गया।

1. ऐसे दिनाक से, जिसे राज्य सरकार गजट मे अधिसूचना द्वारा नियत करे उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् के नाम से एक परिषद् स्थापित की जायेगी।

2. परिषद् शाश्वत उत्तराधिकारी और सामान्य मुद्रा वाली एक निगमित निकाय होगी तथा इस अधिनियम के उपबन्धो के अधीन रहते हुए, उसे सम्पत्ति का अर्जन और धारण करने की शक्ति होगी तथा अपने नाम से वह वाद प्रस्तुत कर सकेगी और उसके विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया जा सकेगा।

3. परिषद् मे निम्नलिखित सदस्य होगे–

(i) निदेशक, पदेन, जो अध्यक्ष होगा,

(ii) दो व्यक्ति जो राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद् अधिनियम, 1961 की धारा 17 के अधीन स्थापित जिला परिषद् के अध्यक्षो मे से यदि कोई हो नाम निर्दिष्ट किये जायेगे,

(iii) एक व्यक्ति जो राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 की धारा 9 के आधीन सघटित महापालिकाओ के नगर प्रमुखो मे से, यदि कोई हो, नाम निर्दिष्ट किया जायेगा,

(iv) एक व्यक्ति जो राज्य सरकार द्वारा यू पी म्यूनिसिपैलिटीज एक्ट 1961 के अधीन स्थापित नगर महापालिका बोर्डो के प्रेसीडेन्टो मे से यदि कोई हो नाम निर्दिष्ट किया जायेगा,

(v) सचिव राज्य सरकार, वित्त विभाग पदेन,

(vi) प्रिसिपल राज्य शिक्षा सस्थान पदेन,

(vii) सचिव माध्यमिक शिक्षा परिषद् इलाहाबाद पदेन,

(viii) अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षक सघ पदेन

(ix) दो शिक्षाविद् जो राज्य सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट किये जायेंगे,

(x) एक अधिकारी जिसका पद उप-निदेशक, शिक्षा के पद से कम न हो, राज्य सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट किया जायेगा और जो सदस्य सचिव होगा।

4. उपधारा '3' के खण्ड 'ड' मे अभिदिष्ट अधिकारी परिषद की बैठक म स्वय उपस्थित होने की बजाय अपने विभाग के किसी अधिकारी को जिसका पद राज्य सरकार के उप-सचिव के पद से कम न हो बैठक में उपस्थित होने के लिए प्रतिनियुक्ति कर सकता है. इस प्रकार प्रतिनियुक्ति अधिकारी की बैठक में बोलने और उसकी कार्यवाहियो मे अन्यथा भाग लेने का अधिकार होगा तथा उसे मत देने का भी अधिकार होगा।

5. पदेन सदस्यों से भिन्न परिषद् के सदस्यगण सामान्यतया नियुक्ति आदेशो मे निर्दिष्ट अवधि के लिए पद धारण करने के हकदार होगे जब तक राज्य सरकार द्वारा उनकी नियुक्ति पहले ही समाप्त न कर दी जाये,

प्रतिबन्ध यह है कि पदेन सदस्य से भिन्न कोई सदस्य किसी समय राज्य सरकार को सम्बोधित लिखित नोटिस देकर अपना पद त्याग सकता है।

6. परिषद् की सदस्यता में किसी रिक्ति के दौरान बने रहे सदस्य कार्य कर सकते है मानो कोई रिक्ति न हुई हो ।

7. परिषद् के सगठन मे केवल किसी रिक्ति या किसी दोष होने के कारण परिषद का कोई कार्य अथवा कार्यवाही अविधिमान्य न समझी जायेगी।

17.2.1 बेसिक शिक्षा परिषद् के कृत्य (Functions of Basic Educational Council)

1. इस अधिनियम के उपबन्धो के अधीन रहते हुए परिषद् का कृत्य राज्य मे बेसिक शिक्षा तथा उसके लिए अध्यापक प्रशिक्षण दिए जाने को सगठित करना, उसका समन्वय करना तथा उस पर नियन्त्रण करना व उसके स्तर को ऊँचा उठाना और उसे राज्य की सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली से परस्पर सम्बद्ध करना होगा।

2. उपधारा (1) के उपबन्धों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना परिषद को विशेषत निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त होगी–

(i) बेसिक शिक्षा और उस हेतु अध्यापक प्रशिक्षण के लिए सशिक्षण क्रम तथा पुस्तक विहित करना,

(ii) जूनियर हाई स्कूल तथा बेसिक प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र तथा ऐसी अन्य परीक्षाओ का सचालन करना जिन्हे राज्य सरकार समय-समय पर सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अभ्यर्पित करे और ऐसी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण परीक्षार्थियो को डिप्लोमा या प्रमाण-पत्र प्रदान करना,

(iii) जिला बेसिक शिक्षा समितियो अथवा नगर बेसिक शिक्षा समितियो द्वारा सस्थाओ की स्थापना के सम्बन्ध मे तदर्थ सामान्य या विशेष आदेश द्वारा स्तर मापक निर्धारित करना तथा उक्त सस्थाओ द्वारा सशिक्षण प्रदान करना और परिषद् द्वारा सचालित परीक्षाओं में प्रवेश दिलाने के लिए परीक्षार्थियो को तैयार करने के सम्बन्ध मे उनके प्रशासन पर अधीक्षण रखना,

(iv) उन सभी बेसिक स्कूलों का प्रबन्धन लेना जो नियत दिनाक के पूर्व किसी स्थानीय निकाय के थे,

प्रतिबन्ध यह है कि इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व विहित सशिक्षण क्रम और पुस्तके और मान्यता प्राप्त सस्थाये इस अधिनियम के अधीन परिषद् द्वारा विहित या मान्यता प्राप्त समझी जायेगी।

(v) बेसिक स्कूलो, नॉर्मल स्कूलो, बेसिक प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र, इकाइयो तथा राज्य शिक्षा संस्थान का पर्यवेक्षण करना और उन पर नियत्रण रखना,

(vi) किसी जिले मे या राज्य मे अथवा उसके किसी भाग मे बेसिक शिक्षा के विकास, प्रसार या सुधार और उसमे अनुसधान के लिए जिला बेसिक शिक्षा समिति या नगर बेसिक शिक्षा समिति द्वारा तैयार की गयी योजनाओ का (परिष्कार सहित या रहित) अनुमोदन करना,

(vii) किसी सगम या स्थावर सम्पत्ति का अर्जन करना, धारण करना या निस्तारण करना और विशेषत किसी बेसिक स्कूल या नॉर्मल स्कूल के लिए किसी भवन अथवा उपस्कर का दान ऐसी शर्तो पर जिन्हे वह उचित समझे, स्वीकार करना,

(viii) राज्य सरकार से अनुदान, आर्थिक सहायता और ऋण प्राप्त करना,

- जिला बेसिक शिक्षा समितियो तथा नगर बेसिक शिक्षा समितियो पर इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यो के सम्पादन मे अधीक्षण रखना और राज्य सरकार के नियत्रण के अधीन रहते हुए समितियो को निर्देश देना जो ऐसी समितियो पर बधनकारी होगे,
- ऐसे प्रयोजनो के लिए जिसे परिषद् उचित समझे (जिला बेसिक शिक्षा समितियो तथा नगर बेसिक शिक्षक समितियो के सदस्यो मे से) उप-समितियो का गठन करना।

(ix) ऐसे सभी कार्य करना जो इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त या आरोपित किसी शक्ति का प्रयोग या किसी कृत्य का सम्पादन अथवा कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक या सुविधाजनक अनुषगिक हो।

(x) उपधारा '2' के खण्ड (गग) या खण्ड (घ) के अधीन बेसिक स्कूलो की जो नियत दिनाक के पूर्व स्थानीय निकाय के थे, प्रबन्ध, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए ऐसे स्कूलो के सम्बन्ध मे स्थानीय निकायो की शक्ति और कृत्य परिषद् को अन्तरित हो जायेगा।

17.2.2 बेसिक शिक्षा परिषद् का कार्य संचालन (Work Organization of the Basic Educational Council)

1. परिषद् और धारा 10 मे अभिदिष्ट प्रत्येक जिला बेसिक शिक्षा समिति तथा धारा 11 मे अभिदिष्ट गॉव शिक्षा समिति का कार्य ऐसे विनियमो के अनुसार सचालित किया जायेगा जिन्हे परिषद राज्य सरकार के पूर्वानुमोदन से तदर्थ बनाए।

2. विशेषत और पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमो मे निम्नलिखित सभी या किसी विषय की व्यवस्था की जा सकती है अर्थात्-

(i) परिषद् अथवा उपधारा (1) मे अभिदिष्ट किसी समिति की बैठक बुलाना और करना, ऐसी बैठको का कार्य सचालन और ऐसी बैठक मे गणपूर्ति के लिए अपेक्षित सदस्यो की सख्या,

(ii) परिषद् के अध्यक्ष, सचिव तथा अन्य अधिकारियो की शक्ति और कर्तव्य,

(iii) इस अधिनियम के अधीन परिषद् या किसी समिति के कृत्यो को कार्यान्वित करने की प्रक्रिया,

(iv) परिषद् द्वारा धृत अथवा उनके नियत्रणाधीन स्कूलो और अन्य सस्थाओ का प्रबन्धन।

3. जब तक की उपधारा (1) के अधीन परिषद् द्वारा कोई विनियम न बनाया जाये, नियम जो उक्त उपधारा के अधीन बनाया जा सकता है, राज्य सरकार द्वारा बनाया जा सकता है। इस प्रकार

बनाये गये विनियम में परिषद उपधारा (1) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग कर पारेषण कर सकती है अथवा उसे विखण्डित कर सकती है।

17.2.3 नई शिक्षा नीति 2020-2021 व बेसिक शिक्षा (New Education Policy 2020-2021 and Basic Education)

नई शिक्षा नीति 2020-2021 के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा में अनेक बुनियादी बदलाव किये गये जो कि निम्नलिखित है–

1. नई शिक्षा नीति स्वतन्त्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है जिसमें बुनियादी तौर पर बदलाव किए गए है।

2. नई शिक्षा नीति के तहत शैक्षिक क्षेत्र को तकनीकी से भी जोड़ा जाएगा जिसमें स्कूलों में ज्यादा से ज्यादा डिजिटल एक्यूमेंट दिए जाएगे।

3. नई शिक्षा नीति में सभी प्रकार की शैक्षिक विषय वस्तु को प्रमुखता उस क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषा में भी ट्रासलेट किया जाएगा जिससे शैक्षिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा को बढ़ावा मिल सके।

4. छठवीं कक्षा से बच्चों को व्यावसायिक परीक्षण इटर्नशिप दे दी जाएगी।

5. नई शिक्षा नीति के भीतर अब पढ़ाई में कई प्रकार के अन्य विकल्प बच्चों को दिए जाएगे। अब दसवीं कक्षा में अन्य विकल्पों को भी रखा जाएगा, जिसमें छात्र कोई स्ट्रीम न चुनकर अपनी इच्छा अनुसार विषयों को चुन सकेगा।

6. नई शिक्षा नीति के अतर्गत छात्रों को छठवीं कक्षा से सिखाई जाएगी।

7. शैक्षिक क्षेत्र में वर्चुअल लैब को भी बनाया जाएगा जिससे शैक्षिक क्षेत्रों की गुणवत्ता को उच्च किया जा सके।

8. नई शिक्षा नीति के तहत वर्षों से चली आ रही 10 + 2 के शैक्षिक पैटर्न को बदलकर ५ + 3 + 3 + 4 के नए शैक्षिक पैटर्न को चुना गया है जिसमें 3 साल की फ्री स्कूली शिक्षा बच्चों को दी जाएगी।

9. शिक्षा को चार चरणों में विभक्त किया गया 5 + 3 + 3 + 4 (उम्र 3-18)

(i) मूलभूत चरण– (पूर्व प्राथमिक व ग्रेड 1-2)

(ii) प्रारंभिक चरण– ग्रेड 3-5

(iii) मध्य चरण– ग्रेड 6-8

(iv) माध्यमिक चरण (ग्रेड 9-12)

(v) केवल शैक्षिक पुनर्संरचना स्कूलों की कोई भौतिक पुनर्संरचना नहीं।

1. **फाउण्डेशन स्टेज**– नई शिक्षा नीति के फाउण्डेशन स्टेज में 3 से 8 साल तक के बच्चों को सम्मिलित किया गया है। जिसमें 3 साल की प्री स्कूली शिक्षा को सम्मिलित किया गया है जिसके अतर्गत छात्रों का भाषा कौशल तथा शैक्षिक स्तर का मूल्याकन किया जाएगा और उसके विकास में ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

2. **प्रीपेटरी स्टेज**– इस स्टेज में 8 से 11 साल के बच्चों को सम्मिलित किया गया है जिसमें कक्षा 3 से कक्षा 5 तक के बच्चे होंगे। नई शिक्षा नीति के इस स्टेज में छात्रों के सख्यात्मक कौशल को मजबूत करने पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाएगा, वही सभी बच्चों को क्षेत्रीय भाषा का भी ज्ञान दिया जाएगा।

3. **मिडिल स्टेज**– इस स्टेज के भीतर छठवी से आठवी कक्षा तक के बच्चो को सम्मिलित किए गया है जिसमे छठवी कक्षा के बच्चो से ही कोडिग सिखाना शुरू किया जाएगा, वही सभी बच्चो का व्यावसायिक परीक्षण के साथ–साथ व्यवसाय इटर्नशिप के अवसर भी प्रदान किए जायेगे।

4. **सेकण्डरी स्टेज**– इस स्टेज मे आठवी कक्षा से 12वी कक्षा तक के छात्रो को सम्मिलित किए गया है। इस स्टेज के भीतर आठवी कक्षा से 12वी कक्षा के शैक्षिक पाठयक्रम को भी खत्म करके वह वैकल्पिक शैक्षिक पाठ्यक्रम को शुरू किया गया है। छात्र किसी निर्धारित स्ट्रीम के भीतर नही बल्कि अपनी मनपसद के अनुसार अपने विषयो को चुन सकते है। नई शिक्षा नीति के अतर्गत छात्रो को विषयो को चुनने को लेकर स्वतत्रता दी गई है, छात्र साइस के विषयो के साथ–साथ आर्ट्स या कॉमर्स के विषयो को भी एक साथ पढ़ सकते है।

I. **नेशनल एजुकेशन पॉलिसी के माध्यम से छात्रों के लिए निर्णय** (Decisions for the Student According to New Education Policy)–नई शिक्षा नीति के माध्यम से बताया गया है की छात्रो के लिए होमवर्क व स्कूल बैगो का वजन कम किया जाएगा। जो छात्र 1 से 10 की कक्षा मे पढ़ते है उनके स्कूल बैग का वजन उनके वजन का 10% होना चाहिए। छात्रो को केवल आवश्यक पुस्तको को ले कर ही विद्यालय जाना होगा। छात्रो के बैग का वजन चेक करने के लिए विद्यालयो मे डिजिटल वेइग मशीन लगाई जाएगी जिसमे छात्रो के बैग का वजन चैक किया जाएगा। छात्रो को स्कूल बैग लाने मे किसी भी प्रकार की परेशानी नही होनी चाहिए।

II. **गृहकार्य सम्बन्धी संशोधन** (Home work Amendments)–

(i) कक्षा तीसरी से पाँचवी तक के छात्रो को प्रतिदिन 2 घटे का गृह कार्य दिया जाएगा।

(ii) कक्षा 6 से 8वी तक के विद्यार्थियो को 1 घटे का होम वर्क दिया जाएगा।

(iii) कक्षा 9 से 12वी तक छात्रो को 2 घटे का होम वर्क दिया जाएगा।

(iv) जो छात्र एलकेजी, यूकेजी मे पढ़ते है उन्हे कोई होम वर्क नही दिया जाएगा।

(v) इसके अलावा पहली कक्षा व दूसरी कक्षा मे पढ़ने वाले छात्रो को भी गृह कार्य नही दिया जाएगा।

(vi) जब छात्रो के लिए पुस्तको का चयन किया जाएगा उसके साथ किताबो के वजन पर भी ध्यान दिया जाएगा।

(viii) छात्रो के लिए स्कूलो मे बाथरूम व पानी की सही सुविधा होनी चाहिए।

III. **कोरोना के कारण कम किया गया पाठ्यक्रम** (Curriculum Cut Due to Covid)–कोरोना वायरस के चलते पढ़ाई मे छात्रो को बहुत सी समस्याओ का समाना करना पड़ा। इन परेशानियो को देखते हुई छात्रो के लिए 30% सिलेबस को कम कर दिया गया है। छात्रो को परीक्षा मे कम किये गए पाठयक्रम मे से ही प्रश्न पूछे जाएँगे।

IV. **बेसिक शिक्षा विभाग के तीन मॉड्यूल्स** (Three Modules of the Basic Education)–बेसिक शिक्षा विभाग ने तीन मुख्य मॉड्यूल्स पर बल दिया–

(i) आधारशिला मॉड्यूल्स

(ii) ध्यानाकर्षण मॉड्यूल्स

(iii) शिक्षण सग्रह मॉड्यूल्स

1. आधारशिला मॉड्यूल क्या है? (What is Adharshila Module) – आधारशिला मॉड्यूल उन सभी रोचक तरीको एव गतिविधियों का समूह है जिनके द्वारा प्रारम्भिक स्तर पर कक्षा 1 व 2 में भाषा व गणित विषयों का शिक्षण कार्य किया जाएगा।

आधार शिला मॉड्यूल के भाग (Parts of Adharshila)

- **मॉड्यूल के कुल 6 भाग हैं** –फाउण्डेशन लर्निंग की अवधारणा एव आवश्यकता, फाउण्डेशन लर्निंग शिविर आरभिक स्तर पर भाषा विकास, भाषा शिक्षण के लक्ष्य, भाषा सीखने–सिखाने का क्रम आरभिक स्तर पर गणितीय क्षमता विकास, गणित सीखने का क्रम EVS कक्षा 1, 2 एव 3 में भाषा, गणित एव परिवेशीय अध्ययन – कौशल विकास के तरीके एव गतिविधियाँ आकलन परिशिष्ट।

आधारशिला मॉड्यूल्स के सीखने के चरण (Steps for Adharshila) – आधारशिला मॉड्यूल्स के सीखने चार चरण होते हैं–

(i) अनुभव (Experience)

(ii) चिन्तन व विश्लेषण (Reflection)

(iii) अनुप्रयोग (Application)

(iv) निष्कर्ष/समेटना (Consolidation)।

आधारशिला के अुनसार गणित कक्षाएँ–आधारशिला के अनुसार गणित विषय की कक्षाएं निम्नलिखित प्रकार की होगी –

1. गणित सीखने–सिखाने के क्रम का प्रयोग हो रहा होगा।
2. बच्चे छोटे–बड़े समूह मे कार्य कर रहे होगे।
3. सीखने–सिखाने की प्रक्रिया मे परिवेशीय वस्तुओ का प्रयोग हो रहा होगा।
4. बच्चे एक-दूसरे से एव शिक्षक के साथ सम्बोधो पर चर्चा कर निष्कर्ष निकाल रहे होगे।
5. बच्चों को अभ्यास-पुस्तिका पर कार्य के साथ श्यामपट पर भी सवाल हल करने का मौका मिल रहा होगा।
6. बच्चे एक-दूसरे की अभ्यास-पुस्तिकाओं मे किये गए कार्यों की जाँच व सुधार कर रहे होगे।

2. ध्यानाकर्षण मॉड्यूल (Whishlebower Module)–लर्निंग गैप को कम करने के लिए सत्र के प्रारभ मे 50 दिवसीय ध्यानाकर्षण शिविर का आयोजन करने हेतु हस्तपुस्तिका का निर्माण किया गया। प्रारभिक कक्षाओ मे कक्षा शिक्षण रुचिकर, आनदमय, जीवत व प्रभावी बनाने के लिए शिक्षको के उपयोग हेतु आधारशिला शिक्षण हस्त-पुस्तिका का निर्माण किया गया है। जिसे शिक्षक अपने दैनिक कक्षा शिक्षण को रोचक व बाल-केंद्रित बना सकते है। इसमे प्रारभिक स्तर पर कक्षा 1 व 2 मे भाषा व गणित विषयो को किस प्रकार रोचक तरीको मे गतिविधि से शिक्षण कराया जाए ताकि इन विषयो पर बच्चो की समझ का विकास हो सके और उनकी मजबूत आधारशिला रखी जा सके, भाषा व गणितीय विकास के द्वारा बच्चो के व्यक्तित्व एव भावी जीवन को उन्नत बनाया जा सके।

इस मॉडल के 6 भाग है–

भाग–1 : इसमे अधिगम आधारित शिक्षण की अवधारणा व आवश्यकता की चर्चा की गई है।

भाग–2 : इसमे बच्चो की प्रगति के आकलन के विषय मे चर्चा की गई है।

भाग–3 : इस भाग मे प्रारभिक कक्षा मे गणित के लर्निंग आउटकम व गणित की अवधारणा के बारे मे चर्चा की गई है।

भाग–4 : इसमे कक्षा 3, 4 व 5 मे भाषा, गणित एव परिवेश अध्ययन से सबधित लर्निंग आउटकम तथा सबधित दक्षता मे कौशल के विकास के तरीके व गतिविधियो पर चर्चा की गई है।

भाग–5 : इस भाग मे आकलन क्या है, इसकी समझ बनाने पर चर्चा कर बच्चो के व्यक्तिगत आकलन प्रपत्र पर भी चर्चा की गई है।

भाग–6 : इसमे कुछ परिशिष्ट दिए गए है जिसमे शैक्षिक बदलाव एव स्वय विकास की योजना के बारे मे दिया गया है। अत सभी शिक्षक–शिक्षिकाएँ प्राथमिक स्तर पर शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उक्त मॉड्यूल का अवश्य अध्ययन करे।

3. **शिक्षण संग्रह** (Teaching Collection)–शिक्षण सग्रह एक पुस्तिका है जिसे प्राथमिक शिक्षा को रुचिकर तथा प्रभावी बनाने हेतु प्रयोग किया जाता है। इसमे प्रभावी कक्षा शिक्षण योजना हेतु योजना निर्माण, सक्रिय पुस्तकालय तथा भवन के विषय मे बताया गया। इसने आकर्षक विद्यालय परिसर शिक्षण कौशल तथा योजनाओ को महत्व दिया गया है।

इस मॉड्यूल मे निम्नलिखित बिन्दुओ का समावेश किया गया–

(i) विद्यालय समय सारणी

(ii) सह शैक्षिक गतिविधियाँ

(iii) कक्षा के ICT का प्रयोग

(iv) प्रभावी कक्षा शिक्षण व्यवस्था

(v) विद्यालय व समुदाय का सहयोग।

17.3 : प्रारम्भिक शिक्षा में पंचायतों तथा स्थानीय निकायों की भूमिका (PRIMARY EDUCATION IN JURY AND ROLE OF LOCAL BODY)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 मे शिक्षा के प्रबन्ध के सन्दर्भ मे आम जनता को शामिल करने को पहले से महत्ता दी गयी है। इसमे गैर-सरकारी एजेन्सियो का सहयोग तथा स्वैच्छिक प्रयत्न भी शामिल है। लोगो की भागीदारी का अर्थ है–सभी स्तरो पर शैक्षिक प्रक्रियाओ के साथ गैर-सरकारी एजेन्सियो, स्वैच्छिक सगठनो, माता-पिता, विकासात्मक एजेन्सियो, नियोक्ताओ, व्यावसायिक रूप से सक्षम शिक्षको तथा वित्त व्यवस्था करने वाले निकायो के प्रतिनिधियो को शामिल करना। लोगो की सहभागिता हमे शैक्षिक सस्थाओ तथा समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने, शिक्षा की उपयोगिता तथा कोटि मे सुधार करने, अनुपस्थिति तथा गैर-जिम्मेदारी को कम करने, समुदाय-ससाधनो तक अधिक पहुँच तथा शैक्षिक सस्थाओ के प्रबन्ध मे बेहतर अनुशासन की ओर ले जायेगी। साथ ही इससे शैक्षिक सस्थाओ मे स्थानीय राजनीति तथा सत्ता के दखल को भी दूर रखा जा सकेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा के प्रबन्ध के लिए निम्न पर बल दिया जायेगा–

(अ) जिला शिक्षा बोर्डो, जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना,

(ब) प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण,

(स) स्वायत्तता की व्यवस्था,

(द) सस्थाओ, पद्धतियो तथा शिक्षको का दायित्व निश्चित करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और कार्य-योजना, 1992 मे सभी स्तरो पर शिक्षा की आयोजना तथा प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण और इस प्रक्रिया मे लोगो की सहभागिता के महत्त्व पर बल दिया गया है। विकेन्द्रीकरण

का अभिप्राय है कि जिला, उपजिला तथा पचायत स्तरो पर निर्णय लेने मे लोगो के चुने हुए प्रतिनिधियो की लोकतान्त्रिक सहभागिता।

पचायती राज सम्बन्धी, 1991 के सविधान सशोधन विधेयक मे जिला, उपजिला और पचायत स्तरो पर लोकतान्त्रिक ढग से चुने गये निकाय स्थापित करने की परिकल्पना की गयी। ये निकाय आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए आयोजना तैयार करने के लिए जिम्मेदार होगे। इस विधेयक मे महिलाओ, अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियो को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने का प्रावधान है।

सविधान की प्रस्तावित ग्यारहवी अनुसूची मे अन्य बातो के साथ-साथ पचायत राज निकायो को अग्रलिखित को सौपने का प्रावधान है–

"प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलो सहित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ शिक्षा, गैर-औपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय तथा सास्कृतिक कार्यकलाप।

पचायती राज निकायो को शिक्षा से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध विषय अर्थात् स्वास्थ्य कल्याण, महिला तथा बाल विकास भी सौपे जाने है।

सविधान के अनुच्छेद 40 मे सुरक्षित किये गये राज्यो के नीति निदेशक सिद्धान्तो मे से एक मे यह कहा गया है कि राज्यो को ग्राम पचायतो का गठन करने तथा उन्हे ये सभी अधिकार प्रदान करने के लिए कदम उठाने चाहिए जो उन्हे एक स्वायत्तशासी सरकार की इकाइयो के रूप मे काम करने के लिए अति आवश्यक है।

ऊपर दिये गये प्रावधानो को ध्यान मे रखते हुए सविधान मे पचायत से सम्बन्धित एक नया भाग 9 जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य अन्य चीजो के अलावा एक गाँव मे अथवा गाँवो के समूह मे ग्राम सभा स्थापित करना, गाँव के स्तर पर अन्य स्तरो पर पचायतो का गठन करना, गाँव और उसके बीच के स्तर पर पचायतो की सभी सीटो के लिए सीधे चुनाव करना, ऐसे स्तरो पर पचायतो के यदि सरपच है तो उनका चुनाव कराना, पचायतो मे सदस्यता के लिए और सभी स्तरो पर पचायत के पदाधिकारियो के चुनाव के लिए जनसख्या के आधार पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटो का आरक्षण, महिलाओ के लिए कम से कम एक-तिहाई सीटो का आरक्षण, पचायतो के लिए पाँच साल की कार्यावधि तय करना और यदि कोई पचायत भग हो जाती है तो छ महीने के भीतर उसका चुनाव कराने की व्यवस्था करना है।

सविधान के 74वे सशोधन के अनुसार पालिकाओ के सम्बन्ध मे एक नया भाग 9A शामिल किया गया है, ताकि अन्य चीजो के अलावा निम्नलिखित प्रावधान किये जा सके–

तीन प्रकार की पालिकाओ का गठन –(i) ग्रामीण से शहरी क्षेत्र मे परिवर्तन हो रहे क्षेत्रो के लिए नगर पचायते, (ii) छोटे शहरी क्षेत्रो के लिए नगरपालिकाएँ या नगर परिषदे, तथा (iii) बड़े शहरी क्षेत्रो के लिए नगर निगम।

पचायती राज विधेयक एक उपयुक्त विधान है। राज्यो को अपनी ओर स्वय के विधान तैयार करने है। इन राज्यो को ऐसे उपयुक्त विधान तैयार करने की आवश्यकता होगी जिनमे अन्य बातो के साथ-साथ पचायती राज शिक्षा समितियो का प्रावधान अवश्य हो।

उक्त जिला निकाय को आयोजन तथा प्रबन्ध की जिम्मेदारी सौपी जाये। यह निकाय जिला स्तर पर विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमो के कार्यान्वयन का प्रशिक्षण तथा निरीक्षण करेगा।

जिला निकाय जिला स्तर पर प्रारम्भिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के सभी कार्यक्रमो मे पर्याप्त पाठ्यचर्या एव शैक्षिक निवेशो के लिए जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण सस्थान (डायट) तथा अन्य सस्थाओ की विशेषज्ञता प्राप्त करेगा। यह जिले की उच्च शिक्षा सस्थाओं के सहयोग की भी अपेक्षा कर सकता है। स्कूलो के सभी स्तरो, प्रौढ़ तथा अनौपचारिक शिक्षा की देखभाल करने के लिए एक प्रमुख जिला शिक्षा अधिकारी होगा। उसके अधीन स्थापना, बजट तैयार करने, आयोजना तथा शैक्षिक आँकड़ा आधार की देखभाल करने वाला एक जिला शिक्षा अधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रमो से सम्बद्ध उपयुक्त रैक के जिला स्तर के अधिकारी होगे। प्रमुख शिक्षा अधिकारी जिला निकाय का मुख्य शिक्षा अधिकारी होगा।

17.4 : ग्राम शिक्षा समिति (GRAM SHIKSHA SAMITI)

ग्राम शिक्षा समिति, शिक्षा के विकेन्द्रीकरण को ध्यान मे रखकर सशोधित पचायती राज अधिनियम के अन्तर्गत लागू किया गया। इस समिति मे ग्राम प्रधान–अध्यक्ष, सम्बन्धित विद्यालय के प्रधानाध्यापक–सचिव, एक अनुसूचित जाति और जनजाति के प्रतिनिधि, एक महिला सदस्य तथा एक छात्र अभिभावक होते हैं। जिस गाँव मे एक से अधिक विद्यालय है वहाँ वरिष्ठ प्रधानाध्यापक सचिव होता है।

इस समिति की स्थापना का मुख्य लक्ष्य गाँव की शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित कर सबको शिक्षा का समान लाभ देना है तथा विद्यालय के क्रियाकलापो मे सामाजिक सहभागिता को सुनिश्चित करना है।

17.4.1 ग्राम शिक्षा समिति के कार्य (Functions of Gram Shiksha Samiti)

सविधान सशोधन विधेयक के अन्तर्गत, किसी ग्राम या ग्रामो के समूह के लिए पचायते बनायी जायेगी। इस पचायत मे चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। इसके अलावा प्रत्येक पचायत एक ग्राम शिक्षा समिति गठित कर सकती है जो ग्राम स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र मे निर्धारित कार्यक्रमो के प्रशासन के लिए जिम्मेदार होगी। इन ग्राम शिक्षा समितियो की प्रमुख जिम्मेदारी व्यवस्थित रूप से घर-घर सर्वेक्षण करके और अभिभावको के साथ समय-समय पर चर्चा करके गाँव मे सूक्ष्म स्तर की आयोजना तैयार करने तथा स्कूल मानचित्रण की होनी चाहिए। कार्य योजना, 1992 के अनुसार, राज्य सरकारें ग्राम शिक्षा समिति को निम्नलिखित कार्य सौपने पर विचार करे–

1. ग्राम समुदाय के बीच जागरूकता बढ़ाना तथा उसे पोषित करना, जिसके साथ यह सुनिश्चित किया जा सके कि इसमे सभी वर्गों के लोग भाग लेगे।

2. स्कूलो और केन्द्रो के कारगर तथा नियमित कार्यकरण का निरीक्षण व प्रबन्ध करने के लिए शिक्षक अनुदेशक तथा समुदाय की सहभागिता बढ़ाना।

विभिन्न राज्यो मे ग्राम शिक्षा समितियो की स्थापना की जा चुकी है। ये समितियाँ समुदाय तथा प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के बीच अन्तरापृष्ठीय भूमिका निभाती है। इन समितियो के प्रमुख कार्य निम्नांकित है–

1. समुदाय को गतिशील बनाना।
2. अभिभावको को अपने बच्चो को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करना।
3. प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा के प्रबन्धन मे सहायता प्रदान करना।

4 वैकल्पिक केन्द्रों की स्थापना करना।

5 विद्यालय भवन तथा कक्षाकक्षों के निर्माण तथा उसके निरीक्षण करने के लिए ग्राम निर्माण समिति बनाना। यह समिति ग्राम शिक्षा समिति की देखरेख में श्रमिकों, निर्माण सामग्री आदि की व्यवस्था करती है। साथ ही निर्माण कार्य का निरीक्षण करती है।

6 विद्यालय के लिए दान प्राप्त करना।

7 ग्राम के शैक्षिक कार्यक्रमों की आयोजना।

8 घर-घर सर्वेक्षण करके सूक्ष्म आयोजना तैयार करना।

9 नामांकन, धारण तथा शाला-त्याग की दर में कमी लाने के लिए कार्य करना।

10 विद्यालय की सुविधाओं को उन्नत बनाना जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिन पंचायतों तथा ग्राम शिक्षा समितियों में महिलाएँ अध्यक्षता कर रही हैं, उन्होंने शैक्षिक कार्यक्रमों को बड़े ही सुचारु रूप से संचालित किया।

17.5 : वैकल्पिक शाला (ALTERNATIVE SCHOOL)

यह औपचारिक शाला के समान ही है। जिन परिवारों के बच्चे पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से औपचारिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते हैं, उनकी शिक्षा की व्यवस्था के लिए स्थानीय निकायों के माध्यम से वैकल्पिक शालाओं का अनुसरण किया जाता है, जो एक विकल्प के रूप में कार्य करती है।

वैकल्पिक शाला का उद्देश्य

वैकल्पिक शालाओं का समय एवं कार्यक्रम परिवर्तित होता रहता है। अतः परिस्थितियों के अनुरूप इनका मुख्य उद्देश्य बालक को गृहकार्य कराने के साथ-साथ शिक्षा प्रदान करना है।

वैकल्पिक शालाओं के लाभ

वैकल्पिक शालाओं के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं–

1 कामकाजी छात्र/छात्राओं को भी शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिलता है।

2 छात्र संख्या कम होने के कारण शिक्षा कार्य भली-भाँति सम्पन्न होता है।

3 इन शालाओं के माध्यम से बालक का चहुँमुखी विकास होता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1 जिला स्तरीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान का विस्तृत वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 स्थानीय स्तर पर नगरपालिका तथा जिला परिषद् की क्या भूमिका है ? संक्षेप में बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 भारत मे नगरपालिका पायी जाती है–

(अ) अधिकृत (ब) अनधिकृत

(स) (अ) व (ब) दोनो (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर–(स)

2 बेसिक शिक्षा अधिनियम बनाया गया–

(अ) 1972 (ब) 1982

(स) 1992 (द) इनमे से कोई नहीं उत्तर–(अ)

3 सविधान के 74वे सशोधन मे पालिकाओ के सम्बन्ध मे एक नया विभाग शामिल किया गया है–

(अ) 9A (ब) 9B

(स) 9A और B (द) इनमे से कोई नहीं उत्तर–(अ)

□□

अध्याय

18

यू.जी.सी., एन.सी.ई.आर.टी., एन.यू.ई.पी.ए., एन.सी.टी.ई., एस.आई.ई.एम.ए.टी. एवं डाइट के कार्य

[FUNCTIONS OF UGC, NCERT, NUEPA, NCTE, SIEMAT AND DIET]

18.1 : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग [UNIVERSITY GRANTS COMMISSION (UGC)]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1948 में नियुक्त 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' के सुझाव के अनुसार 28 दिसम्बर, 1953 ई. में की गई। संसद ने अधिनियम द्वारा 1956 में इसे वैधानिक संस्था (Statutory Body) स्वीकार कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार चेयरमैन तथा सचिव के अतिरिक्त इसके 9 सदस्य होंगे। इसके 9 सदस्यों में से 3 सदस्य विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति, 4 प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञ एवं दो केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। UGC में दो उत्तरदायित्व निहित हैं। (1) पहला है, निधि उपलब्ध कराना। (2) दूसरा उच्च शिक्षण संस्थानों में परस्पर समन्वय निर्धारण व मानकों का अनुरक्षण करना। इस आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करने एवं शिक्षण स्तर को उच्च बनाने के लिए विश्वविद्यालयों को सलाह प्रदान करना।

2. भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तर में समन्वय रखने तथा विश्वविद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर एक विशेषज्ञ संस्था के रूप में भारत सरकार को परामर्श प्रदान करना।

3. विश्वविद्यालयों को अपने कोष से दी जाने वाली धनराशि का वितरण करना तथा इस सम्बन्ध में अपनी नीति का निर्धारण करना।

4. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं प्रचलित विश्वविद्यालयों के कार्यक्षेत्र की वृद्धि पर पूछे जाने पर अपना मत प्रकट करना।

5. भारत सरकार एवं विश्वविद्यालयों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना तथा उनकी शंकाओं का समाधान करना।

6. विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थितियों की जाँच करना और केन्द्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता-अनुदान में दी जाने वाली धनराशि के सम्बन्ध में सुझाव देना।

7. विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार एवं विकास से सम्बन्धित आवश्यक कार्य को पूरा करना।

8. विश्वविद्यालयो से उनकी परीक्षाओ, पाठयक्रमो , अनुसन्धान कार्यों आदि के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त करना।

9. विश्वविद्यालयो के लिए उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओं को भारत तथा विदेशों से एकत्रित करके विश्वविद्यालयो को भेजना।

10. विश्वविद्यालय तथा विविधि सेवाओ के लिए प्रदान की गई उपाधियो के सम्बन्ध मे भारत सरकार तथा राज्य सरकारो को अपनी सलाह तथा सुझाव देना।

आचार्य राममूर्ति समिति ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पुनर्गठन के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये थे–

1. आयोग के पाँच सदस्य पूर्णकालिक होने चाहिए। ये सदस्य शिक्षण, अनुसन्धान, प्रसार (Extension), प्रबन्ध (Management) तथा वित्त से सम्बन्धित होने चाहिए।

2. इनके अतिरिक्त आयोग के चेयरमैन के साथ–साथ वाइस चेयरमैन भी होने चाहिए।

3. आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये जाने चाहिए जिससे समस्याओ का तत्काल निबटारा किया जा सके।

वर्तमान मे विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग निम्नाकित उत्क्रमित क्षेत्रों (Thurst areas) मे महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है–

1. स्वायत्त कॉलेजों (Autonomous Colleges) की स्थापना।

2. शिक्षको के प्रबोधन के लिए शैक्षिक स्टॉफ कॉलेजों की स्थापना।

3. प्रवक्ताओं की नियुक्ति के लिए पात्रता परीक्षा–आयोग लेक्चररशिप हेतु पात्रता निर्धारित करने या मानविकी व सामाजिक विज्ञान में जूनियर रिसर्च फैलोशिप प्रदान करने के लिए पात्रता परीक्षा आयोजित करता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा सी.एस.आई.आर. (CSIR) विज्ञान विषयो मे तथा आई. सी. ए. आर. (ICAR) कृषि विषयो में इसी प्रकार की परीक्षाएँ आयोजित करते है।

4. सामान्य शिक्षा में अवर स्नातक पाठ्यक्रमों की पुनर्संरचना की योजना लागू की गई जिसमे पाठ्यक्रमों को पर्यावरण के प्रति और अधिक सगत तथा रोजगारोन्मुख बनाया जा सके। इन पाठ्यक्रमो को आधुनिक बनाने, इनकी पुनर्संरचना करने तथा वैकल्पिक शैक्षणिक मॉडलो को विकसित करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

5. आयोग ने विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों को कुछ विषयो मे स्नातकोत्तर स्तर पर अतिरिक्त विषय आरम्भ करने के लिए संगणक (Computers) सुविधाएँ स्वीकृत की है। वर्तमान परिस्थितियो के अनुसार नये–नये विषयों को भी शुरू किया जाता है।

6. आयोग उच्च अध्ययन के विभिन्न केन्द्रों तथा विज्ञान, इजीनियरी तथा प्रौद्योगिकी के विभिन्न विभागो को विशेष सहायता प्रदान कर रहा है।

7. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समग्र साक्षरता के कार्यान्वयन के लिए विश्वविद्यालयो को अपने प्रौढ़ सतत् व विस्तार शिक्षा विभागों द्वारा सहायता प्रदान करता है।

8. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्चतर शिक्षा के लिए दिये गये समय का उपयोग करने तथा 'देशव्यापी कक्षा' (Countrywide Classroom) शीर्षक से उच्चतर शिक्षा मे दूरदर्शन पर कार्यक्रमो को प्रसारित कराने की पहल की है। इस समय आयोग विभिन्न विश्वविद्यालयो तथा केन्द्रीय अंग्रेजी एव

विदेशी भाषा संस्थान (हैदराबाद) में स्थित शैक्षिक साधन अनुसन्धान केन्द्र (Educational Media Research Centres—EMRC) को सहायता प्रदान कर रहा है।

9. आयोग विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में अनुसन्धान के विकास के लिए विभिन्न विषयों में पुरस्कार अनुसन्धान शिक्षावृत्तियाँ प्रदान करता है। उत्कृष्ट योग्यता वाले शिक्षकों को अनुसन्धान तथा संबंधित कार्य में प्रवृत्त करने के लिए विशिष्ट अवधि हेतु राष्ट्रीय शिक्षावृत्तियाँ प्रदान करता है।

10. आयोग विजिटिंग प्रोफेसरों की नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालयों को सहायता प्रदान करता है तथा योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करता है।

11. आयोग अल्पसंख्यक समुदायों में कमजोर वर्गों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के विशेष प्रयोग कक्षाओं के आयोजन में सहायता प्रदान करता है।

12. आयोग विश्वविद्यालयों को महिला अध्ययन में अनुसन्धान के लिए सम्पर्क केन्द्रों की स्थापना शुरू करने तथा अपर स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर एवं सामाजिक उपयोगी कार्यों (Socially useful activities) में पाठ्यचर्या के विकास के लिए सहायता प्रदान करता है।

18.2 : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् [NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING (NCERT)]

शैक्षिक, अनुसन्धान की उन्नति, प्रकाशन एवं समन्वय तथा प्रशिक्षण एवं प्रसार सेवाओं की उन्नति करने हेतु शिक्षा मन्त्रालय ने सन् 1961 में एक संगठन की नई दिल्ली में स्थापना की। इस संगठन (National Council of Educational Research and Training) के नाम से प्रसिद्ध है।

यह एक स्वायत्तता प्राप्त संगठन है। इस परिषद् का प्रमुख उद्देश्य शैक्षिक क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन देना व उच्चस्तरीय प्रशिक्षण प्रदान करना है। वर्तमान में यह संस्था शिक्षा मन्त्रालय की तकनीकी संस्था के रूप में कार्य कर रही है। यह परिषद् शिक्षा मन्त्रालय (वर्तमान नाम मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अतिरिक्त समाज कल्याण मन्त्रालय की स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं और बड़े-बड़े कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में सहायता करती है। इस परिषद् का खर्च भार केन्द्र सरकार वहन करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अनुसार NCERT (क) प्रारम्भिक शिक्षा (NCECCE) (ख) स्कूल शिक्षा तथा (ग) वयस्क शिक्षा के लिये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) विकसित करने के लिये नोडल एजेन्सी है।

18.2.1 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के उद्देश्य (Functions of National Council of Educational Research and Training)

1. इस परिषद् की स्थापना का मुख्य उद्देश्य शिक्षा, विशेषकर विद्यालयीय शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों और मुख्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में मानव संसाधन विकास मन्त्रालय को सहायता व परामर्श देना है।
2. इस परिषद् की स्थापना का अन्य उद्देश्य शिक्षा और शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों और कार्यक्रमों के प्रतिपादन तथा कार्यान्वयन के लिए मन्त्रालय द्वारा इसकी विशेषज्ञता का उपयोग करना है।
3. शिक्षा के समस्त क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य करना तथा उसकी प्रगति और समन्वय के प्रयास।
4. क्षेत्रीय शिक्षा कॉलेजों की स्थापना।
5. प्रसार सेवाओं का आयोजन।

18.2.2 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् का संगठन (Structure of National Council of Educational Research and Training)

1. **सामान्य निकाय** (General Body)
2. **अध्यक्ष** (President)–
   (i) केन्द्रीय मानव ससाधन विकास मन्त्री,
   (ii) भारत सरकार का शिक्षा परामर्शदाता,
   (iii) दिल्ली विश्वविद्यालय का कुलपति,
   (iv) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का चेयरमैन,
   (v) प्रत्येक राज्य सरकार का एक–एक प्रतिनिधि,
   (vi) भारत सरकार द्वारा मनोनीत 12 सदस्य।

18.2.3 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के कार्य (Functions of National Council of Educational Research and Training)

यह संगठन मानव ससाधन विकास मंत्रालय के शैक्षिक विंग (Academic Wing) के रूप में कार्य करता है। यह मंत्रालय समाज कल्याण मंत्रालय (Social Welfare Ministry) को विद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित नीतियों और बड़े–बड़े कार्यक्रमों के निर्माण एवं कार्यान्वयन में सहायता करता है। साथ ही यह विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र मे उसकी नीति निर्धारण तथा प्रमुख कार्यक्रमो के सचालन में उसको सहायता प्रदान करता है। विद्यालय शिक्षा में सुधार लाने के लिए यह परिषद् समस्त देश में फैलकर अपने सघटको के माध्यम से निम्नलिखित कार्य करती है–

1. विद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित अध्ययन व पर्यवेक्षण करना तथा उसमे गुणात्मक सुधार हेतु सारे प्रयास करना।

2. विद्यालयीय शिक्षा और शिक्षक शिक्षा की सभी शाखाओं में अनुसधान सम्बन्धी कार्य करना उसमे सहायता पहुँचाना एवं उसे सम्बर्द्धित और समन्वित करना।

3. शिक्षको के लिए सेवा पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम उच्च स्तर पर आयोजित करना तथा उन्हें अच्छा प्रशिक्षण प्रदान करके उच्च कोटि की शिक्षा हेतु तैयार करना।

4. शैक्षिक पुनर्निर्माण में संलग्न संस्थाओं, संगठनों एवं एजेन्सियो के लिए विस्तार सेवाएँ आयोजित करना।

5. परिष्कृत शैक्षिक, तकनीको, पद्धतियों एवं नूतन प्रक्रियाओं की विकास एव प्रयोग सम्बन्धी कार्य करना।

6. विद्यालयों में उन्नत शैक्षिक प्रविधियों एवं व्यवहारो को लागू करना।

7. विद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित सभी मामलों में विचारों व सूचनाओ के लिए एक निकासी–गृह (Clearing house) के रूप मे कार्य करना तथा उनके समाधान भी निकालना।

8. यूनेस्को (UNESCO), यूनिसेफ (UNICEF), यू. एन. डी. पी. (U.N.D.P.) एवं यू. एन. एफ. पी. ए. (U.N.F.P.A.) जैसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो एव अन्य देशो की राष्ट्रीय स्तर की शैक्षिक सस्थाओं के साथ सहयोग करना।

9. शिक्षा से सम्बन्धित जानकारी संकलित, प्रक्रमित तथा प्रसारित करना।

10. अन्य देशो के शैक्षिक कार्मिको (Personnal) को प्रशिक्षण एव अध्ययन की सुविधाएँ प्रदान करना।

11. राष्ट्रीय शिक्षक–शिक्षा परिषद तथा एशिया एव प्रशान्त के शैक्षिक नवाचारो के विकास कार्यक्रम के राष्ट्रीय विकास समूह के अकादमिक सचिवालय के रूप मे कार्य करना।

18.2.4 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के विभाग (Departments of National Council of Educational Research and Training)

इस परिषद् ने 'राष्ट्रीय शिक्षा सस्थान' की दिल्ली मे स्थापना की। यह सस्थान एक अनुसधान सगठन है, जिसके अपने शैक्षणिक विभाग तथा एकाश (Unit) है जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित है –

1. केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (Central Institute of Education) – अब इस सस्थान को कोठारी आयोग की सिफारिश पर दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से सम्बद्ध कर दिया गया है।

2. शिक्षण सामग्री विभाग (Department of Teaching Aids) – यह सन् 1948 से एक पूर्ण विकसित संस्थान के रूप मे परिवर्तित हो गया, जो कि सेन्ट्रल इन्स्टीटयूट ऑफ टेक्नोलॉजी के नाम से प्रसिद्ध है।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण इकाई (Educational Survey Unit)

4. बेसिक शिक्षा विभाग (Department of Basic Education)

5. विज्ञान शिक्षा विभाग (Department of Science Education)

6. समाज विज्ञान तथा मानवीय शास्त्र विभाग (Department of Social Science and Humanities)

7. अभिलेख तथा सूचना इकाई (Documentation and Information Unit)

8. पूर्व–प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षा विभाग (Department of Pre-Primary and Primary Education)

9. शिक्षक शिक्षा विभाग (Department of Teacher Education)

10. पाठ्य-पुस्तक विभाग तथा प्रकाशन इकाई (Department of Text-book and Publication Unit)

इस परिषद् ने विभिन्न राज्यो में 17 क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किये है। क्षेत्रीय कार्यालय परिषद् को राज्यो में क्रियान्वित किये जाने वाले कार्यक्रमों के बारे मे जानकारी देते है और राज्यो को परिषद् द्वारा किये गये कार्य का उपयोग करने में सहायता देते है। परिषद् निम्नलिखित पत्र–पत्रिकाओ का प्रकाशन भी करती है–

1. Indian Educational Review
2. Journal of Indian Education
3. School Science
4. Primary Teacher
5. भारतीय आधुनिक शिक्षा
6. प्राइमरी शिक्षक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् अपने विभिन्न विभागों, एकाशों, क्षेत्रीय कार्यालयो आदि के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने में लगी हुई है। इसने अग्रलिखित क्षेत्र में कार्य किया है–

शैक्षिक अनुसधान (Educational Research)–यह परिषद् विद्यालयीय शिक्षा के सम्बन्ध मे अनुसधान कार्य कर रही है। इस परिषद की अनुसधान सम्बन्धी क्रियाओ का सचालन एक विशेष

समिति द्वारा किया जाता है। यह समिति–'Educational Research and Innovation Committee (ERIC) है। यह प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण, शिक्षा के व्यावसायीकरण तथा पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित क्षेत्रो मे अनुसधान कार्य करा रही है।

शिक्षा निदेशालय ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) द्वारा जारी नई स्कूल बैग नीति, 2020' (School Bag Policy, 2020) का पालन करने के लिए सभी स्कूलों को एक परिपत्र जारी किया है।

1. परिपत्र के मुताबिक, शिक्षको के ऐल यह अनिवार्य है कि वे छात्रो को पहले से ही यह सूचित करे कि किसी विशिष्ट दिवस पर कौन–सी किताबे और नोटबुक स्कूल में लानी हैं, साथ ही शिक्षक समय–समय पर यह भी जाँच करेगे कि छात्र अनावश्यक किताबे या नोटबुक तो नहीं ला रहे है।

2. विद्यालय प्रबधन का यह कर्त्तव्य और दायित्व है कि वे सभी छात्रों को पर्याप्त मात्रा मे गुणवत्तापूर्ण पीने योग्य पानी उपलब्ध कराएँ, ताकि छात्रो को अपने घर से पानी की बोतल लाने की आवश्यकता न हो।

स्कूल बैग नीति, 2020 (School Bag Policy, 2020)

1. इस नीति मे कक्षा–I से XII तक के छात्रो के होमवर्क और उनके बैग के वजन से सबधित दिशा-निर्देश शामिल किये गए है।

(i) नीति के मुताबिक, कक्षा I से X तक के छात्रों का स्कूल बैग उनके शरीर के वजन के 10 प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए, साथ ही पूर्व–प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों के लिये स्कूल बैग होना ही नही चाहिये।

(ii) कक्षा II तक के छात्रों को कोई भी होमवर्क नहीं दिया जाना चाहिये, जबकि कक्षा III से V तक के छात्रो को प्रति सप्ताह अधिकतम दो घटे, कक्षा VI से VIII तक के छात्रों को प्रतिदिन अधिकतम एक घटे और कक्षा IX तथा उससे अधिक के छात्रों को प्रतिदिन अधिकतम दो घटे का ही होमवर्क दिया जाना चाहिये।

2. इस नीति में विद्यालयों के लिए अवसरचनात्मक बदलाव की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है, क्योकि छात्र प्रतिदिन कई सारी पुस्तकें साथ ले जाने में सक्षम नहीं है।

(i) स्कूलो को प्री–स्कूल से सीनियर सकेंडरी तक के छात्रों को लॉकर उपलब्ध कराने चाहिये, ताकि वे कुछ किताबे विद्यालय में ही छोड़ सकें और आवश्यकतानुसार घर ले जा सकें।

3. इसमें कहा गया है कि शिक्षको को प्रत्येक तीन महीने पर छात्रों के स्कूल बैग के वजन की जाँच करने की जिम्मेदारी लेनी चाहिये और माता–पिता को भारी बैग के बारे मे जानकारी देनी चाहिये।

(i) इसके अनुसार, भारी भरकम किताबों की तुलना में हल्की और कम वजन वाली किताबों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

18.3 : राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजना तथा प्रशासन विश्वविद्यालय [NATIONAL UNIVERSITY OF EDUCATIONAL PLANNING AND ADMINISTRATION—(NUEPA)]

राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) शैक्षिक आयोजना एवं प्रशासन के क्षेत्र मे राष्ट्रीय शीर्षस्थ सस्था के रूप मे भारत सरकार द्वारा गठित एक स्वायत्तशासी निकाय है। यह सस्थान 1962 मे यूनेस्को (UNESCO) के साथ दस वर्षीय सविदा के आधार पर स्थापित किया गया। उस समय इसका नाम था–'एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (Asian Institute of Educational Planning and Administration)। इस सविदा की समाप्ति के

बाद भारत सरकार ने शिक्षा आयोग की सिफारिश पर इस संस्थान को अपने हाथ में ले लिया और उसका विश्वविद्यालय नाम 'नेशनल स्टॉफ कॉलेज फॉर एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (National Staff College for Educational Planning and Administration) रखा। सन् 1979 में भारत सरकार ने इस संस्थान को वर्तमान नाम 'राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय' (National University of Educational Planning and Administration - NUEPA) दिया। यह संस्थान नई दिल्ली में स्थित है।

न्यूपा में 10 विभाग हैं। न्यूपा के शोध कार्यक्रमों में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के शिक्षा के सभी स्तरों व प्रकारों को शामिल किया जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजना तथा प्रशासन का कार्यक्षेत्र (Main Areas of National University of Educational Planning and Administration)—संस्थान के कार्यकलापों का मुख्य क्षेत्र शैक्षिक आयोजकों और प्रशासकों का प्रशिक्षण, अनुसन्धान, नवाचारों तथा परामर्श से सम्बन्धित कार्य शामिल है। इसके प्रमुख कार्यों का संक्षेप में वर्णन निम्नलिखित है—

1. शिक्षा नियोजकों तथा प्रशासकों का प्रशिक्षण (Training of Educational Planners and Administrators)—यह संस्थान भारत के शैक्षिक कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। यह शैक्षिक नीतियों पर विचार-विमर्श करने के लिए विभिन्न सेमीनारों तथा वर्कशॉपों (Seminars and Workshops) का भी आयोजन करता है। न्यूपा ने अब तक भारत के विभिन्न राज्यों तथा संघ प्रदेशों के हजारों अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। संस्थान ने शिक्षा अधिकारियों के लिए डिप्लोमा कोर्स भी संचालित कर रहा है। इनमें से प्रमुख कोर्स DEPA (Diploma in Educational Planning and Administration) है जिसकी अवधि छ: माह की है। इस अवधि में उनको तीन माह में पाठ्यक्रम कार्य कराया जाता है और शेष तीन माह में व्यवसाय से सम्बन्धित प्रोजेक्ट कार्य कराया जाता है। यह संस्थान विदेशी कर्मचारियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान द्वारा आयोजित सेमीनार तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भारत के अतिरिक्त अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, चीन, इथोपिया, हंगरी, इण्डोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, नेपाल, मॉरीशस, पाकिस्तान, फिलीपीन्स, श्रीलंका, थाईलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूगोस्लाविया आदि देशों ने भाग लिया है।

2. अनुसन्धान (Research)—यह संस्थान अनुसन्धान के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय भूमिका निर्वहन करता है तथा शैक्षिक आयोजना एवं प्रशासन के विभिन्न पक्षों में अनुसन्धान कार्य शुरू करने में सहायता प्रदान करता, बढ़ावा देता तथा समन्वित करता है। इसकी अनुसन्धानात्मक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की है। इनमें सर्वेक्षण विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा अनुसन्धान प्रयोजनाएँ प्रमुख है। साथ ही विभिन्न प्रकार के शोधों को करने हेतु प्रोत्साहित करता है।

3. नवाचारों का प्रसार (Range of Invatation)—यह संस्थान नवाचारों के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस उद्देश्य से 1983 में इस संस्थान ने अन्तर्राज्यीय भ्रमणों (Visits) का आयोजन किया। इसके साथ ही उसने विभिन्न राज्यों में प्रयुक्त नवाचारों को प्रसारित करने के लिए अन्य माध्यमों का भी उपयोग किया।

4. परामर्शदात्री सेवा (Consultant Service)—यह संस्थान विभिन्न राज्यों तथा संघशासित प्रदेशों के लिए परामर्शदात्री सेवाएँ भी प्रदान करता है। इसने जम्मू व कश्मीर, सिक्किम, दादर व नगर हवेली तथा हरियाणा आदि में सेवाएँ प्रदान की है। संस्थान ने हरियाणा की प्रार्थना पर विद्यालयों की स्थापना तथा विद्यालयों को प्रोन्नत करने के मानकों का निर्माण किया। न्यूपा ने जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के आयोजन में सहायता प्रदान की है, साथ ही यह केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड

(CABE) की विभिन्न समितियो को व्यावसायिक सहायता भी प्रदान करता है। सस्थान ने नौ सदस्य
क जनसख्या वाले देशो की सभी के लिए शिक्षा समिति के सगठन मे शैक्षिक सहायता प्रदान की

5. **प्रकाशन कार्यक्रम** (Publication Programmes)—सस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशनो को प्रकाशित कर रहा है। इनमे पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन आदि प्रमुख है—

(i) **पुस्तकें**—
- एजूकेशन एण्ड दी न्यू सोशल ऑर्डर (Education and the New Social Order)
- रीवाइटलाइजिग स्कूल कॉम्प्लैक्सेज इन इण्डिया (Revitalising School Complexes in India)।

(ii) **पत्रिकाएँ**—सस्थान की पत्रिका 'शैक्षिक योजना और प्रशासन' प्रमुख है। यह हिन्दी तथा अग्रेजी दोनो भाषाओं में प्रकाशित होती है।

(iii) **प्रतिवेदन**—सस्थान ने विभिन्न प्रायोजनाओं के प्रतिवेदनों को भी प्रकाशित कराया है।

(6) सहयोग (Coopration)—यह सस्थान विभिन्न राष्ट्रीय सगठनो—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research—CSIR), योजना आयोग, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड मैनपॉवर रिसर्च, केन्द्रीय विद्यालय सगठन एवं प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय आदि से सहयोग तथा सम्बन्ध रखती है। यह सस्थान अन्तर्राष्ट्रीय सगठनों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इनमे यूनेस्को रीजनल ऑफिस, बैकॉक, इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशनल प्लानिंग, पेरिस, कॉमन वेल्थ सचिवालय, लन्दन आदि प्रमुख है।

18.4 : राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की भूमिका व कार्य [ROLE AND FUNCTIONS OF NATIONAL COUNCIL OF TEACHER EDUCATION (NCTE)]

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, ससद द्वारा पारित अधिनियम (1995) के अन्तर्गत स्थापित एक वैधानिक सस्था है, जिसका कार्य सम्पूर्ण भारत मे अध्यापक शिक्षा का नियोजन एवं समग्र विकास करना है। अध्यापन शिक्षा मे नई शिक्षा नीति, 2020 मे निम्नलिखित सुधार किये गये—

1. शिक्षकों की नियुक्ति मे प्रभावी व पारदर्शी प्रक्रिया का पालन व समय-समय पर कार्य प्रदर्शन करना।

2. वर्ष 2022 तक शिक्षको हेतु राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक का विकास करना।

3. वर्ष 2030 तक अध्यापन हेतु न्यूनतम डिग्री योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत बी एड डिग्री होना आवश्यक है।

18.4.1 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का इतिहास (History of the National Council of Teacher Education)

भारत सरकार द्वारा मई, 1973 मे राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) की स्थापना इस धारणा से की गई थी कि यह अध्यापक शिक्षा सम्बन्धी सभी पक्षों पर परामर्श देती रहेगी। इसकी वार्षिक बैठक मार्च 1976 मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा इस परिषद् को मिलाकर हुई। बाद मे एक राष्ट्रीय सम्मेलन किया गया, उसमें एक समिति गठित की गई। 1973 से 1993 तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के लिये सचिवालय के रूप में

कार्य करती रही, क्योंकि यह परिषद् अभी तक असंवैधानिक संस्था थी। सन् 1993 में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को संसद् के अधिनियम (1993 का अधिनियम संख्या 73) द्वारा पूर्ण संवैधानिक संस्था के रूप में स्थापित किया गया जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण देश में शिक्षक शिक्षा पद्धति का योजनाबद्ध एवं समन्वित विकास तथा शिक्षक शिक्षा के मानकों एवं स्तरों का नियमन व उचित अनुरक्षण करना है। इस परिषद् ने 1 जुलाई, 1995 से विधिवत् अपना कार्य करना शुरू किया था।

8.4.2 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के उद्देश्य (Aims of National Council of Teacher Education)

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थापना निम्न उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए की गई थी—

1. मापदंडों का निर्धारण और संचालन के लिये एक प्रणाली की रचना करना।
2. निम्नस्तरीय और फर्जी संस्थानों को बंद करने के उद्देश्य से शिक्षक शिक्षा संस्थाओं का नियमन।
3. अध्यापकों की सतत् शिक्षा पर बल देना।
4. प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग और आपूर्ति की खाई को कम करना।

उपर्युक्त विधेयक में राष्ट्रीय शिक्षा अध्यापक शिक्षा परिषद् के लिये निम्नलिखित कार्यों की परिकल्पना की गयी है—

1. शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रमों और इन पाठ्यक्रमों को संचालित करने वाले संस्थानों के लिये मानदंड और दिशा-निर्देश बनाना और उनका पालन सुनिश्चित करना।

2. शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था और अन्य संबंधित व्यवस्थाओं के विभिन्न घटकों के बीच समन्वय को बढ़ावा देना, शिक्षक शिक्षा के सभी क्षेत्रों में नवाचार व अनुसंधान को बढ़ावा देना और इनके नतीजों का प्रचार करना तथा देश में शिक्षक-शिक्षा की प्रतिष्ठा को बढ़ावा देना।

3. शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षकों के सतत् शिक्षा व व्यावसायिक प्रगति के कार्यक्रमों और प्रौढ़ व औपचारिकेतर शिक्षा के कार्यकर्ताओं की शिक्षा व प्रशिक्षण के लिये मानदंड व दिशा-निर्देश बनाना।

4. शिक्षक शिक्षा से सम्बन्धित सभी प्रकरणों और उनके विकास, खासकर प्राथमिकताओं, नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों के मामले में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालयों और अन्य एजेन्सियों को सलाह देना।

18.4.3 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की समितियाँ (Committees of National Council of Teacher Education)

उपर्युक्त कार्यों के संचालन हेतु चार क्षेत्रीय समितियाँ (प्रत्येक क्षेत्र में एक) भी स्थापित की गई जो इस प्रकार है—

1. उत्तर क्षेत्रीय समिति,
2. दक्षिण क्षेत्रीय समिति,
3. पूर्वी क्षेत्रीय समिति,
4. पश्चिमी क्षेत्रीय समिति।

1. उत्तर क्षेत्रीय समिति (North Regional Committee)—राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद् की उत्तर क्षेत्रीय समिति की स्थापना जयपुर, राजस्थान में की गई है। इस समिति के अन्तर्गत उत्तर भारत के राज्य दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और चण्डीगढ़ है।

2. दक्षिण क्षेत्रीय समिति (South Regional Committee)—परिषद् की दक्षिण क्षेत्रीय समिति

बगलौर मे स्थापित की गई है। इसका कार्यालय मेडमोवा में है। इस समिति के अन्तर्गत दक्षिण भारत के राज्य–आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, लक्षय द्वीप और पाण्डिचेरी सम्मिलित किये गये हैं।

3. **पूर्वी क्षेत्रीय समिति** (Eastern Regional Committee)–राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की पूर्वी क्षेत्रीय समिति भुवनेश्वर, उड़ीसा में स्थापित हुई है। पूर्वोत्तर भारत के राज्य–अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैण्ड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह इस समिति के अन्तर्गत रखे गये हैं।

4. पश्चिमी क्षेत्रीय समिति (Western Regional Committee)–राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की पश्चिमी क्षेत्रीय समिति भोपाल, मध्यप्रदेश मे स्थापित की गई है। इस समिति में पश्चिमी भारत के गोवा, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दादर एण्ड नगर हवेली, दमन एण्ड द्वीप राज्य शामिल है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थायी समितियाँ–

1. प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षक–शिक्षा पर समितियाँ
2. प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षक–शिक्षा और तकनीकी व्यावसायिक व कार्य अनुभव शिक्षा पर समितियाँ
3. उच्च माध्यमिक शिक्षक–शिक्षा पर समिति
4. सेवारत शिक्षा पर समिति
5. सेवापूर्व शिक्षक–शिक्षा के लिये समिति

18.4.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का संगठन [Organisation of National Council for Teacher Education]

1993 के अधिनियम द्वारा परिषद् मे निम्नलिखित को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है–

1. भारत सरकार द्वारा नियुक्त चेयरमैन
2. भारत सरकार द्वारा नियुक्त वाइस चेयरमैन
3. भारत सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य सचिव (Member Secretary)
4. शिक्षा विभाग मे भारत सरकार का सचिव, पदेन सदस्य
5. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का चेयरमैन या उसके द्वारा मनोनीत सदस्य
6. राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजन एवं प्रशासन (न्यूपा) का निदेशक, पदेन सदस्य
7. आयोजन आयोग का (शिक्षा) सलाहकार, पदेन सदस्य
8. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) का चेयनमैन, पदेन सदस्य
9. शिक्षा विभाग में भारत सरकार का वित्त सलाहकार, पदेन सदस्य
10. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् का सदस्य सचिव, पदेन सदस्य
11. क्षेत्रीय समितियाँ (पूर्वी, उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी) के चेयरमैन, पदेन सदस्य
12. शिक्षा या प्रशिक्षण के क्षेत्र के 13 व्यक्ति, जिनको भारत सरकार द्वारा इस प्रकार नियुक्त किया जायेगा–
    (i) 4 शिक्षा सकाय तथा प्रोफेसर
    (ii) माध्यमिक शिक्षक–शिक्षा का एक विशेषज्ञ
    (iii) तीन पूर्व–प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षक–शिक्षा के विशेषज्ञ
    (iv) दो प्रौढ़ शिक्षा एव गैर–औपचारिक शिक्षा के विशेषज्ञ

(v) तीन प्राकृतिक विज्ञानों, समाज विज्ञान, भाषाशास्त्री, व्यावसायिक शिक्षा, कार्य अनुभव, शैक्षिक तकनीकी तथा विशेष शिक्षा के विशेषज्ञ।

13. भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीन ससद सदस्य जिनमे से दो लोकसभा तथा एक राज्य सभा का सदस्य होना चाहिये।

14. भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीन सदस्य जो प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलो के अध्यापक में से होंगे

15. भारत सरकार द्वारा नियुक्त 9 सदस्य राज्यो तथा सघ शासित प्रदेशो के प्रतिनिधित्व होगा

18.4.5 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के कार्य (Functions of National Council for Teacher Education)

1. शिक्षक शिक्षा के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सर्वेक्षण एव अध्ययन करना व प्राप्त परिणामो को प्रकाशित करना।

2. शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न उपयुक्त कार्यक्रमो की भारत तथा राज्य सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा स्वीकृत सस्थाओ को सस्तुति करना।

3. देश में शिक्षक शिक्षा का विकास नये मानको के अनुसार करना साथ ही इसका नियन्त्रण व समन्वय करना।

4. स्कूलो तथा मान्यता प्राप्त सस्थाओं मे शिक्षक के रूप मे नियुक्ति के लिए न्यूनतम अहताओ के सम्बन्ध में मार्ग–निर्देश तैयार करना।

5. स्वीकृत सस्थाओं की जबाबदेही के लिए मानदण्ड व मूल्याकन पद्धति का निर्धारण करना।

6. शिक्षक–शिक्षा के लिए विशिष्ट प्रकार के पाठ्यक्रमो या प्रशिक्षण के लिए मानक निर्धारित करना। इसमें उनके प्रवेश के लिए पात्रता मानक, उम्मीदवारो की चयन पद्धति, पाठ्यक्रम की अवधि, पाठ्यक्रम, विषय–वस्तु तथा पाठ्यचर्या प्रकार भी शामिल है।

7. नये पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण प्रारम्भ करने और भौतिक आधार–सरचनात्मक सुविधाएँ सुनिश्चित कराने, स्टाफिंग पैटर्न तथा स्टाफ, अहर्ताओं के सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त सस्थाओ द्वारा अनुपालनार्थ मार्ग–निर्देश निर्धारित करना।

8. शिक्षक–शिक्षा के व्यावसायीकरण को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाना तथा व्यवसायीकरण को बढ़ावा देना।

9. शिक्षक विकास कार्यक्रमो के लिए नवीन सस्थाओं की स्थापना करना।

10. शिक्षक–शिक्षा सस्थाओं की स्वीकृति या सम्बद्धीकरण से सम्बन्धित नियमो का निर्धारण करना आदि।

11. अन्य वे सभी कार्य, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा सौपे जायें, उन्हें सफलतापूर्वक करना।

18.5 : राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान [STATE INSTITUTE OF EDUCATIONAL MANAGEMENT AND TRAINING (SIEMAT)]

शैक्षिक प्रबधन एक विशेष प्रक्रिया है। मानव समूह तथा सचालन के लिए अर्थात् विद्यालय कर्मियों तथा विद्यालयी सस्था के सचालन के लिए शैक्षिक प्रबधन का होना अत्यन्त आवश्यक है। राज्य शैक्षिक प्रबधन तथा प्रशिक्षण सस्थान (SIEMAT) प्रबधन तथा नियोजन के विषय में प्रशिक्षण

का प्रमुख सस्थान है। यह सस्थान शैक्षिक प्रबधन के विविध प्रकार, प्रभावी नियोजन, प्रबधन वि आदि विषयो पर शोध करता है।

सीमैट सर्वप्रथम 1995 मे इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में स्थापित किया गया। उत्तर प्रदेश विकेन्द्रीकृत रूप से शैक्षिक नियोजन तथा प्रबधन के क्षेत्र में कुशलता व निपुणता लाने के लिए इसक गठन किया गया। इसवेफ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. शोध तथा मूल्यांकन
2. प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन
3. विस्तार।

सस्थान निदेशक द्वारा संचालित होता है, जो राज्य सरकार के शिक्षा मंत्री इसके प्रमुख होत है, तथा एक कार्यकारी समिति होती है, जिसका प्रमुख शिक्षा सचिव होता है। सस्थान के पाँच विभाग होते है–

1. नीति तथा नियोजन
2. प्रबधन
3. शिक्षा वित्त
4. शोध, मूल्यांकन तथा शैक्षिक इनोवेशन
5. प्रबंधन सूचना प्रणाली।

सीमेट के उद्देश्य–सीमेट का उद्देश्य विद्यालय शिक्षा से संबंधित प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय अधिकारियों तथा कर्मचारियों को शैक्षिक प्रबंधन का प्रशिक्षण प्रदान करना है ताकि शिक्षण संस्थाओं मे शिक्षण व्यवस्था को गुणवत्ता पूर्ण, पारदर्शी, विकासोन्मुखी, परिणामोन्मुखी एवं प्रभावी बनाया जा सके।

1. सीमेट की स्थापना का मुख्य उद्देश्य शैक्षणिक योजना एवं शैक्षणिक प्रबंधकीय क्षमता का विकास करना।

2. विकेन्द्रीकरण के संबंध में उचित प्रक्रिया निर्धारित व विकसित करना।

3. व्यावसायिक दक्षता विकसित करना, शिक्षा से जुड़े कार्यपालक अधिकारियों की क्षमता संवर्धन करना।

4. प्रशिक्षण वातावरण का निर्माण करने में सहयोग करना, जिससे इस योजना का सफल क्रियान्वयन हो सके।

5. यह संस्था शैक्षणिक व्यवस्था, प्रक्रिया, गुणवत्ता अध्ययन/अध्यापन के नये तरीकों इत्यादि के क्षेत्र में अनुसंधान का कार्य भी करेगी।

6. जिला एवं तहसील स्तर पर स्तरीय शैक्षणिक अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।

7. विद्यालय स्तर की सूक्ष्म योजना करते हुये नवीन गतिविधियों के विकास के लिये क्षमताएँ विकसित करना।

8. शैक्षणिक विकास के सूचकांकों को विकसित करने में सहयोग/परामर्श देना।

9. अधीनस्थ प्रशिक्षण संस्थाओं/स्वय सेवी संस्थाओं/अन्य चिन्हित सक्षम संस्थाओं के माध्यम से अधीनस्थ स्तर पर क्षमता विकास एवं प्रशिक्षण की जिला स्तरीय व्यवस्था विकसित करना।

18.6 : जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) [DISTRICT INSTITUTE OF EDUCATION AND TRAINING (DIET)]

देश में शिक्षा के पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तरों में गुणात्मक सुधार इन विद्यालयों के शिक्षकों की उन्नति के लिये, इस स्तर पर शोध कार्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के तहत 33 जिलों में जिला स्तर पर एक ऐसी संस्था स्थापित करने की बात कही गई है जो जिले के इन अध्यापकों की व्यावसायिक उन्नति तथा विकास के लिये समुचित कार्य कर सके। इस प्रकार की संस्था को D. I. E. T कहा जाता है। इसे शिक्षा के क्षेत्र का 'लाईट हाउस' कहा जाता है।

18.6.1 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान डाइट की स्थापना (Establishment of District Institute of Education and Training)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में निर्धारित शिक्षा नीति के अधीन अक्टूबर 1986 में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ। इन संस्थानों की स्थापना का उद्देश्य प्राथमिक एवं प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में अपनाई गई विभिन्न नीतियों व कार्यक्रमों को निचले स्तर पर सफलता के लिये शैक्षिक एवं स्रोतपरक सहयोग प्रदान करना है। इन उद्देश्यों के साथ जनपदों के प्राथमिक स्तरीय विद्यालयों से संबंधित क्षेत्रों, शिक्षकों तथा निरीक्षकों आदि की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा समस्याओं को दृष्टिगत रखकर उन्हें अपेक्षित शैक्षिक सहायता एवं निर्देशन प्रदान करने के साथ-साथ समाधान प्रस्तुत करने का कार्य जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा किया जाता है।

18.6.2 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के उद्देश्य व भूमिका (Objective and Role of District Institute of Education and Training)

डाइट का उद्देश्य विभिन्न रणनीतियों (Strategies) व कार्यक्रमों के माध्यम से प्रारम्भिक व प्रौढ़ शिक्षा को निचले स्तर (Grassroot level) से मजबूती प्रदान करना है।

इस दिशा में इसके उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में सार्वभौमिकरण को बल देना,
2. प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन।
3. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अन्तर्गत 15-35 आयु वर्ग के लोगों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त डाइट के कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी है जो सम्बन्धित राज्यों व जिलों की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित किये जाते है और उन्हें व्यक्तिगत डाइट की तरफ से विशेष तय किये गये मानकों के अनुसार क्रियान्वित भी किया जाता है।

डाइट गति निर्धारक (Pace setting) की भूमिका भी अदा करता है जिससे किसी भी संस्थान को श्रेष्ठता से कार्य करने के तरीकों की जानकारी दी जाती है और इसके द्वारा जिले के प्रारम्भिक व प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली को भी श्रेष्ठता हासिल करने हेतु बाध्य किया जाता है। इसके लिये डाइट द्वारा सभी आवश्यक भौतिक व मानवीय संसाधन उपलब्ध कराये जाते है ताकि इन संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा श्रेष्ठता को हासिल किया जा सके। इसी प्रकार गति निर्धारक की भूमिका के रूप में डाइट एक मॉडल संस्थान के रूप में कार्य करते है तथा अपने प्रभावी संचालन संतुलित व सृजनात्मक संगठनात्मक वातावरण व प्रभावी नियोजन द्वारा दूसरे शिक्षण संस्थानों हेतु एक आदर्श स्थापित करते है।

18.6.3 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के विभिन्न विभाग (Various Component of District Institute of Education and Training)

डाइट (DIET) के सभी कार्यों को सुचारु रूप से चलाने हेतु संस्थान में निम्नलिखित विभाग होते है–

1. सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण विभाग
2. कार्यानुभव विभाग
3. प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा विषय–वस्तु जिला साधन इकाई
4. सेवारत कार्यक्रम, क्षेत्रीय सम्पर्क तथा प्रवर्तन समन्वय विभाग
5. पाठ्यक्रम, सामग्री विकास एवं मूल्यांकन विभाग
6. शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग
7. नियोजन तथा प्रबन्धन विभाग

18.6.4 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान हेतु मानवीय तथा भौतिक संसाधन (Physical and Human Resources for District Institute of Education and Training)

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान हेतु प्रस्तावित मानवीय तथा भौतिक ससाधनो को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है–

(i) डाइट (DIET) के अधिकारी व कर्मचारी

(ii) डाइट के भौतिक संसाधन

18.6.5 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के कार्य [Functions of District Institute of Education and Training]

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है–

1. जिला स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
2. कार्यशाला, सम्मेलन तथा सेमिनार आदि का आयोजन करना।
3. अध्यापकों के लिये शैक्षिक प्रतियोगिताओ का आयोजन करना।
4. जिला स्तर पर शोध कार्य करना एवं जिले के अध्यापको को इस कार्य के लिये प्रोत्साहित करना तथा इस कार्य में आवश्यक सहायता प्रदान करना।
5. शिक्षक प्रशिक्षण को व्यावहारिक बनाना तथा उसे वास्तविक शिक्षण से सम्बन्धित करना।
6. शिक्षकों के लिये सतत् तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
7. अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के अनुदेशकों एवं पर्यवेक्षकों के लिये सेवापूर्व एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
8. विद्यालय के प्रधानाध्यापकों के लिये संस्थागत नियोजन, प्रबन्धन तथा सूक्ष्म नियोजन हेतु प्रशिक्षण तथा अभिनवीकरण कार्यक्रम संचालित करना।
9. विद्यालय सकुलों तथा जिला शिक्षा बोर्डों को सहयोग प्रदान करना।
10. प्राथमिक विद्यालयो, अपर प्राथमिक विद्यालय, अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमो के लिये मूल्याकन केन्द्र के रूप मे कार्य करना।
11. शिक्षको तथा अनुदेशको के लिये साधन केन्द्र के रूप मे सेवाएँ उपलब्ध कराना।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग कब स्थापित हुआ? इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का क्या उद्देश्य है? इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्रीय शैक्षिक योजना तथा प्रशासन विश्वविद्यालय के कार्यक्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
4. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की भूमिका क्या है तथा इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना कब हुई? इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के विभागों का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का संगठन किनके द्वारा किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
3. राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान के कार्यों का वर्णन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective Type Questions)

1. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं विकास परिषद् के मुख्य विभाग है–
   (अ) प्रारम्भिक शिक्षा विभाग
   (ब) भारतीय भाषा विज्ञान विभाग
   (स) मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग
   (द) उपरोक्त सभी। उत्तर
2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना कब हुयी?
   (अ) 1 सितम्बर, 1961 में (ब) 2 अक्टूबर, 1962 में
   (स) 16 अगस्त, 1986 में (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर
3. N.C.E.R.T. की स्थापना किसके द्वारा हुयी थी?
   (अ) भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा (ब) राज्य सरकार के द्वारा
   (स) उपरोक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर–(अ)
4. N.C.E.R.T. के कितने संघटक है?
   (अ) 5 (ब) 6
   (स) 8 (द) 10. उत्तर–(स)
5. N.C.E.R.T. का मुख्यालय कहाँ है?
   (अ) नयी दिल्ली (ब) कलकत्ता
   (स) चेन्नई (द) मुम्बई। उत्तर–(अ)
6. N.C.E.R.T. किस प्रकार का संगठन है?
   (अ) संवैधानिक (ब) स्वायत्तशासी
   (स) वैधानिक (द) (अ) एवं (स) दोनों। उत्तर–(ब)

7. निम्न में से किस संस्थान की स्थापना स्कूली शिक्षा तथा शिक्षक प्रशिक्षण में गुणात्मक सुधार के लिए की गयी थी?

(अ) न्यूपा (ब) U.G.C.

(स) N.C.E.R.T. (द) उपरोक्त सभी। उत्तर–(स)

8. N.C.E.R.T. में किसको सदस्यता प्राप्त है?

(अ) दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति

(ब) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अध्यक्ष

(स) भारत सरकार का शिक्षा परामर्शदाता

(द) उपर्युक्त सभी। उत्तर–(द)

9. भारत सरकार के प्रत्येक राज्य से कितने प्रतिनिधी N.C.E.R.T. में सदस्य होते हैं?

(अ) दो (ब) एक

(स) चार (द) तीन। उत्तर–(ब)

10. N.C.E.R.T. में भारत सरकार कितने सदस्यों को मनोनीत करती है?

(अ) 8 (ब) 16

(स) 13 (द) 12. उत्तर–(द)

12. UGC का अध्यक्ष निम्न में से किस संस्था का प्रतिनिधी होता है?

(अ) डीपा (ब) N.C.E.R.T.

(स) UGC (द) न्यूपा। उत्तर–(ब)

14. N.C.E.R.T. के कितने क्षेत्रीय कार्यालय भारत के राज्यों की राजधानी में स्थित हैं?

(अ) 15 (ब) 17

(स) 14 (द) 11. उत्तर–(ब)

15. N.C.E.R.T. निम्न में से कौन–सा कार्यक्रम संचालित करता है ?

(अ) अनुसंधान (ब) विकास

(स) प्रशिक्षण (द) उपरोक्त सभी। उत्तर–(द)

❑❑

अध्याय
19

प्रबंधक एवं प्रशासक के रूप में संस्था के प्रधानाचार्य के गुण एवं कर्तव्य

[QUALITIES AND DUTIES OF HEAD MASTER OF INSTITUTION AS MANAGER AND ADMINISTRATOR]

प्रधानाचार्य प्रशासन की धुरी है। विद्यालय का सुप्रशासन प्रधानाचार्य की योग्यता पर निर्भर करता है। प्रधानाचार्य अपने कुशल नेतृत्व, व्यक्तित्व, अनुभव, योग्यता तथा कार्यक्षमता के द्वारा विद्यालय को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा सकता है। वह विद्यालय मे प्रधानाचार्य ही नही वरन प्रशासक के रूप मे सगठनकर्त्ता, सयोजक, पर्यवेक्षक अथवा निरीक्षक है। वह निर्देशक अथवा परामर्शदाता, शिक्षको का नेता तथा एक योग्य अध्यापक भी है। शिक्षा प्रशासक की दृष्टि से विद्यालय मे प्रधानाचार्य का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रधानाचार्य विद्यालय के साथ-साथ समाज का भी नेता होता है। विद्यालय समाज का अग होता है। विद्यालय एक सामाजिक सस्था है। समाज को विद्यालय एव विद्यालय को समाज के समीप लाना एक नेता के रूप मे प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व है। प्रधानाचार्य ही वह कड़ी है जो विद्यालय के सुसचालन द्वारा समाज की आवश्यकताओ एव माँगो की पूर्ति मे सहायक होती है। समाज की प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर आदर्श समाज की स्थापना मे अपना अमूल्य योगदान देता है।

प्रधानाचार्य विद्यालय के समस्त कर्मचारियो, शिक्षको, छात्र-छात्राओ एव अभिभावको के क्रिया-कलापो और गतिविधियो को निरीक्षित कर नेतृत्व प्रदान करता है। प्रधानाचार्य अध्यापको का अध्यापक होता है। वह शैक्षणिक कार्यों मे अध्यापको का मार्गदर्शन करता है। शिक्षण क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओ का समाधान कर शैक्षिक स्तर का उन्नयन करता है। जैसा प्रधानाचार्य होगा वैसा ही विद्यालय और उसकी व्यवस्था तथा शिक्षण-प्रशिक्षण का स्तर होगा।

श्री रॉस एल. फिन्नी ने प्रधानाचार्य की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "विद्यालय प्रशासन के कार्य को दो प्रमुख भागो, यथा—प्रशासकीय कार्य एव नीति निर्धारण मे विभाजित किया जा सकता है। शिक्षा प्रशासक अपनी प्रथम स्थिति मे विद्यालय अब तक जिस रूप मे है, उसी का सचालन करता है, अपनी दूसरी स्थिति मे वह शैक्षिक नीतियो के नाते विद्यालय को वैसा बनाता है जैसा कि उसे होना चाहिए, एक रूप मे आज के विद्यालय को चला रहा है और दूसरे रूप मे वह कल के विश्व को चला रहा है।"

19.1 : विद्यालय प्रशासन में प्रधानाचार्य की स्थिति या महत्व (POSITION OR IMPORTANCE OF HEADMASTER IN SCHOOL ADMINISTRATION)

विद्यालय प्रशासन मे प्रधानाचार्य की स्थिति या महत्त्व को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है–

1. **विद्यालय प्रशासन में प्रधानाचार्य की केन्द्रीय स्थिति**–विद्यालय मे प्रधानाचार्य ही केन्द्र बिन्दु है जिसके चारो ओर प्रशासक, कर्मचारी, अधिकारी, प्रबन्धक, शिक्षक-शिक्षार्थी आदि समस्त विद्यालयी गतिविधियाँ चक्कर लगाती है। इसकी स्थिति ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री सदृश्य है, जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि "वह आकाश मे सूर्यपिण्ड है, जिसके चारो ओर समस्त नक्षत्र चक्कर लगाते है।" प्रधानाचार्य की केन्द्रीय स्थिति के सम्बन्ध में **श्री पी. सी. रैन** (P. C. Wren) ने लिखा है– "एक घड़ी मे स्थान मुख्य स्प्रिंग का है और मशीन में जो स्थान पहिये का है या जो स्थान पानी के जहाज मे इजन का है वही स्थान विद्यालय मे प्रधानाचार्य का है।"

"What the main spring at the watch, the fly wheel at the machine or the engine at the steam ship, the headmaster is to the school." **–P. C. Wren**

2. **विद्यालयी नेता** (Leader of the School)–प्रधानाचार्य एक नेता के समान होता है। एक नेता के रूप मे अच्छा प्रधानाचार्य अच्छे विद्यालय का निर्माण करता है। वास्तव मे सभी विद्यालयी क्रियाओ का मार्गदर्शक प्रधानाचार्य ही है। **टी. पी. नन** के शब्दो में, "एक राष्ट्र के विद्यालय उनके जीवन के अग है जिनका विशेष कार्य है–उनकी आध्यात्मिक शक्ति को सुदृढ़ बनाना, उनकी ऐतिहासिक निरन्तरता बनाये रखना, उनकी भूतकालीन सफलताओ को सुरक्षित रखना और उनके भविष्य की गारण्टी करना।"

"A nation's school are an organ of its life, whose special function is to consolidate its the spirihial strength to maintion its historic continuity, to secure its past achievement and guarantee its future." **–T. P. Nunn**

प्रधानाचार्य विद्यालय की रीढ़ होता है, जिस पर विद्यालय का अस्तित्व टिका होता है। एक नेता के रूप मे अध्यापको का मार्गदर्शक बनकर शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाता है। शिक्षको की शिक्षण क्षेत्र से सम्बन्धित तथा अन्य शिक्षणेत्तर विद्यालयी समस्याओ का समाधान कर वह अध्यापको का मार्गदर्शन करता है। **गैण्ड** एव **शर्मा** के शब्दो मे–"वह (प्रधानाचार्य) सम्पूर्ण समूह का नेता होता है। सभी शिक्षक एव शिक्षार्थी उसके व्यक्तित्व से प्रोत्साहन प्राप्त करते है। वे इससे पथ-प्रदर्शन, सहायता एव परामर्श प्राप्त करते है।"

गैण्ड एव **शर्मा** ने और भी कहा है–"एक योग्य प्रधानाचार्य समाज का नेता होता है। उसके शब्द बहुत ही प्रभावशाली होते है, उसके व्यवहार के तरीके बहुत ही अच्छे होते है और उसकी प्रकृति बहुत ही प्रिय होती है।"

3. **संयोजक या एकीकरण का साधन** (Co-ordinating Agency)–**रायबर्न** ने समायोजक के रूप मे प्रधानाचार्य की स्थिति के सम्बन्ध मे लिखा है–"प्रधानाचार्य एकीकरण के सूत्र मे बाँधने वाला ऐसा साधन है जो सम्पूर्ण सस्था मे सन्तुलन बनाये रखता है और उसके सर्वांगीण विकास की चेष्टा करता है। वह विद्यालय की गति का निर्धारण करता है और वह उन परम्पराओ को, जो समय के साथ-साथ विकसित होती रहती है, निश्चित रूप देने वाली प्रमुख शक्ति है।" समस्त विद्यालयी शिक्षण प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त होने से बचाने के लिए प्रधानाचार्य विद्यालय एव समाज के साथ समायोजन

स्थापित करता है तथा विद्यालय के समस्त कार्यकर्ताओं–शिक्षक-शिक्षार्थी, अभिभावक, प्रबन्धक आदि को एकीकरण के सूत्र में पिरोने का एक सशक्त साधन है।

4. प्रेषक स्थान (Despatching Station)–**प्रो. बी. सी. राय** के शब्दों में– प्रधानाचार्य वास्तव में एक प्रेषक स्थान होता है। वह विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में सयोजन स्थापित करने का प्रयास करता है। उसी के माध्यम से सूचनाएँ विभिन्न सस्थाओं या साधनों को भेजी जाती है और उससे प्राप्त की जाती है।" **प्रधानाचार्य की स्थिति एक प्रेषक स्थान** की होती है जहाँ से सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। **विद्यालय की समस्त योजनाओं का क्रियान्वयन** होता है। प्रधानाचार्य विद्यालय रूपी शरीर में आत्मा है। जिस तरह आत्मा के बिना शरीर अस्तित्वहीन है उसी तरह प्रधानाध्यापक के बिना विद्यालय का कोई अस्तित्व नहीं है। सस्था का प्रधान ही अपनी बौद्धिक एवं प्रशासनिक क्षमता से विद्यालय को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाता है। समस्त शिक्षण एवं शिक्षणेत्तर विद्यालयी कार्यकर्त्ताओं को दिशा-निर्देश देना सूचना प्राप्त करना उसका विकेन्द्रीकरण करने का कार्य सस्था का प्रधान करता है

19.2 : प्रधानाचार्य के गुण
(QUALITIES OF HEADMASTER)

प्रधानाचार्य का पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। जैसा प्रधानाचार्य होगा वैसा ही विद्यालय। विद्यालय का सम्पूर्ण विकास प्रधानाचार्य के कुशल सचालन पर निर्भर करता है। एक सफल प्रधानाचार्य में कौन-कौन से गुण होने चाहिए, इस पर कुछ विद्वानों के विचार निम्नलिखित है –

मायर्स (Robert B. Myers) ने एक अध्ययन द्वारा एक प्रशासक एवं नेतृत्वकर्त्ता के इन गुणों की पहचान की है–

1. सम्प्रेषण कौशल (Communication Skill)
2. महत्त्वाकाक्षी (Ambition)
3. अन्तर्दृष्टि (Insight)
4. सहयोग (Co-operation)
5. मौलिकता (Originality)
6. अगुवाई (Leadership)
7. लोकप्रियता (Popularity)
8. निर्णय-शक्ति (Desigion Making)
9. कार्यशील (Persistence)
10. सवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability)

प्राय सभी शिक्षाशास्त्री इस विषय में एकमत है कि प्रधानाचार्य पद के दायित्वों का निर्वाह करने के लिए कुछ प्रमुख गुणों का होना आवश्यक है। **हार्ड जी. रीडर** तथा **ब्रे** ने उत्तम व्यक्ति, चरित्र की शुद्धता एव दृढ़ता और नेतृत्व शक्ति पर अधिक बल दिया है।

पी. रेन के शब्दों में–"प्रधानाचार्य जन्मजात तथा निर्मित दोनों होता है। ऐसे कुछ गुण है जो प्रधानाचार्य की प्रकृति से प्राप्त होते है, यथा–दृढ़ता, साधन-सम्पन्नता, व्यक्तित्व निर्माण की क्षमताएँ, सहृदयता। परन्तु इन गुणों के होते हुए भी उसे अपने व्यवसाय के अध्ययन, अनुभव तथा दूसरों के आधार पर सीखकर एक आदर्श प्रधानाचार्य बनना होता है।"

कुबर्ली (Cubberly) के अनुसार, "उसमें तर्क-शक्ति, ज्ञान तथा अदम्य उत्साह होना चाहिए।

श्री एस. ई. ब्रे ने 'विद्यालय सगठन' 'School organization' नामक अपनी पुस्तक मे प्रधानाचार्य के कुछ प्रमुख गुणो का उल्लेख किया है, यथा–कर्तव्यपरायणता (Lofly sense of duty), दृढ़ता (Firmness), सगठन शक्ति (Organising power), आत्म-नियन्त्रण (Self-control), अपने कार्य से प्रेम (Love of his work), व्यापक सहानुभूति (Boart sympathy), उचित निर्णय (Sound judgement) तथा चरित्र को समझने की शक्ति (Power of Insight into character) और चरित्र की सामान्य शुद्धता एव उसे विद्यालय मे प्रवाहित करने की क्षमता (General purity of character and ability to breath the spirit of it into the school)।

प्रधानाचार्य को प्रशासक के रूप मे अत्यन्त गम्भीर दायित्व निभाने होते है। इसलिए अपने महत्त्वपूर्ण दायित्वो को निर्वहन करने के व्यक्तित्व मे कुछ विशेष गुणो का होना आवश्यक माना गया है जो निम्न प्रकार है–

1. वैयक्तिक गुण (Individual Qualities)
2. प्रशासकीय गुण (Administrative Qualities)
3. व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)

एक आदर्श प्रधानाचार्य के गुण

(Qualities of an Ideal Headmaster)

वैयक्तिक गुण (Individual Qualities)	**प्रशासकीय गुण** (Administrative Qualities)	**व्यावसायिक गुण** (Professional Qualities)
1. उच्च चरित्र	1. कुशल प्रशासक	1. व्यवसाय मे निष्ठा
2. उत्तम स्वास्थ्य	2. लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण	2. सामान्य ज्ञान
3. प्रतिभाशाली व्यक्तित्व	3. प्रवीण संगठनकर्त्ता	3. व्यवसाय का ज्ञान
4. नेतृत्व की क्षमता		4. ज्ञान-प्राप्ति के लिए उत्सुकता एवं विद्वता
5. आत्मविश्वास		5. कुशल प्रवक्ता
6. कर्तव्यनिष्ठता		6. समय की नियमितता
7. निष्पक्षता एवं न्यायप्रियता		
8. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार		
9. लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण		
10. सहसम्बन्ध की क्षमता		

चित्र 19.1 : आदर्श प्रधानाचार्य के गुणों से सम्बन्धित चार्ट

19.2.1 वैयक्तिक गुण (Individual Qualities)

प्रधानाचार्य मे निम्नलिखित वैयक्तिक गुणो का होना आवश्यक है–

1. **उच्च चरित्र** (High Character)–प्रधानाचार्य का चरित्र उज्ज्वल होना चाहिए। **श्री मुखर्जी** के शब्दो मे–"प्रधानाचार्य को उत्तम चरित्र, श्रेष्ठ सयोजक, दार्शनिक दृष्टिकोण एव कुशल प्रशासक

होना चाहिए।" उसका आचरण समस्त विद्यालय के मानवीय तत्वों–शिक्षक-शिक्षार्थी, प्रशासक एवं अन्य कर्मचारियों आदि के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत कर सकता है। प्रशासक के उत्तम चारित्रिक गुणों से शिक्षा के चारित्रिक विकास के उद्देश्य की पूर्ति करनी चाहिए।

2. उत्तम स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति (Sound Health and Efficiency)–प्रधानाचार्य का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए। अच्छा स्वास्थ्य शारीरिक स्फूर्ति देता है तथा स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है' अच्छे स्वास्थ्य एवं स्वस्थ मस्तिष्क से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, जिससे वह अपने दैनिक विद्यालय सचालन सम्बन्धी क्रियाओं को रुचि एवं स्फूर्ति के साथ कर

3. प्रतिभाशाली व्यक्तित्व (Impressive Personality)–प्रधानाचार्य का व्यक्तित्व प्रतिभाशाली होना चाहिए, क्योंकि प्रभावशाली व्यक्तित्व विद्यालय सगठन एवं प्रशासन को सफल बनाने में सहयोग मिलेगा। प्रभावशाली व्यक्तित्व व्यक्ति के 'मनोदैहिक' व्यवस्थाओं का गत्यात्मक सगठन है। मनो–मानसिक और दैहिक–शारीरिक गुण अर्थात् आन्तरिक एवं बाह्य गुणों का समावेश प्रधानाचार्य को अपने उद्देश्यों में सफल बनाता है।

4. नेतृत्व की क्षमता (Capacity of Leadership)–प्रधानाचार्य में नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिए। वह विद्यालय का सफल सचालक तभी बन सकता है जब समान शैक्षिक योग्यता वाले अध्यापकों, अभिभावकों एवं प्रबन्धकों को उचित मार्गदर्शन दे सके। प्रत्येक सगठन के सचालन के लिए नेतृत्व की आवश्यकता होती है, उसी तरह विद्यालय भी एक लघु सगठित समाज है जिसको चलाने के लिए एक नेता की आवश्यकता होती है। नेता वही होता है जिसमें नेतृत्व के गुण हों। एक प्रधानाचार्य होने के कारण प्रशासनिक क्षमता के साथ-साथ नेतृत्व की क्षमता भी होनी चाहिए, तभी उसे विद्यालयी परिवार से सहयोग प्राप्त होगा। विद्यालय एवं उनके लोगों में जनतान्त्रिक भावना का विकास होगा। नेतृत्व शक्ति द्वारा प्रधानाचार्य लोगों को उनका कर्तव्यबोध करा सकता है। उनकी बौद्धिक क्षमता का लाभ उठाकर उनके सहयोग से सही दिशा, निर्देशन द्वारा शिक्षा जगत् को लाभ पहुँचा सकता है।

5. आत्मविश्वास (Self-confidence)–प्रधानाचार्य को अपने में दृढ़ आत्मविश्वास होना चाहिए, क्योंकि "आत्मविश्वास ही सफलता की सीढ़ी है।" किसी कार्य के सफल सम्पादन के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति एवं दृढ़ आत्मविश्वास का होना जरूरी है। प्रधानाचार्य के पास यदि आत्मविश्वास एवं इच्छा-शक्ति की कमी है तो वह कोई कार्य अच्छी तरह नहीं कर सकता है।

6. कर्तव्यनिष्ठता (Objectivity)–प्रधानाचार्य को कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। वह अपनी शिक्षाओं अर्थात् जिन नियम, सिद्धान्त, कानून की शिक्षा अपने सहयोगियों एवं छात्रों को देना चाहता है उसे क्रिया रूप में परिणत करना चाहिए। स्वयं उन नियमों, सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर चलकर आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे उनकी परिधि में आने वाले सहयोगी अध्यापक छात्र में कर्तव्य-परायणता की भावना विकसित कर सकें।

7. निष्पक्षता एवं न्यायप्रियता (Impartiality and Love for Justice)–प्रधानाचार्य को निष्पक्ष एवं न्यायप्रिय होना चाहिए। विद्यालय के सौहार्दपूर्ण वातावरण एवं आपसी द्वेष तथा कटुता की समाप्ति के लिए प्रधानाचार्य को अपने शिक्षण संस्थान में कार्यरत लोगों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करना चाहिए। न्याय का पक्षधर होना चाहिए।

8. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार (Tolerenceful Behaviour)–प्रधानाचार्य का व्यवहार सहानुभूति-पूर्ण होना चाहिए। उसे अपने शिक्षकों, छात्रों, सहयोगी कर्मचारियों के प्रति नम्रनीयता एवं सहानुभूति-

पूर्वक व्यवहार करना चाहिए, तभी वह अपनी एव विद्यालयी समस्याओ से उन्हे अवगत करायेगे और विद्यालय के कार्यो मे अपना अमूल्य योगदान देने के लिए तत्पर रहेगे।

9. **लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण** (Democratic Outlook or Approach)—प्रधानाचार्य का दृष्टिकोण लोकतान्त्रिक होना आवश्यक है। अधिनायकवादी दृष्टिकोण अनुचित है और विद्यालय के विकास में बाधक। जब तक प्रशासक लोकतान्त्रिक भावना का नही होगा तब तक विद्यालय मे प्रजातन्त्र की कल्पना करना एक दिवास्वप्न है। प्रजातान्त्रिक भावना वाले प्रधानाचार्य को निश्चय ही लोगो का सहयोग प्राप्त होगा।

10. **सहसम्बन्ध की क्षमता** (Correlation Capacity)—शैक्षिक कार्यों की सफलता के लिए अपने आचरण को अच्छा बनाना होगा। शिष्ट एव स्नेहपूर्ण व्यवहार मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते है। एक अच्छे प्रधानाचार्य मे सहसम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता होनी चाहिए। प्रधानाचार्य का शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रबन्ध तन्त्र, अभिभावक और समाज के मध्य सम्बन्ध, शिक्षक-छात्र, शिक्षक-शिक्षक, छात्र-छात्र, विद्यालय-समाज के मध्य मानवीय सहसम्बन्ध होना चाहिए। मानवीय गुणो के आधार पर वही शैक्षिक, सामाजिक, विद्यालयी एव अपनी व्यक्तिगत समस्याओ का समाधान कर सकता है तथा अपने सहयोगियो का सहयोग प्राप्त कर सकता है। प्रधानाचार्य को मानवीय सम्बन्धो की स्थापना के लिए शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ नियमो एव कानूनो का ज्ञाता भी होना चाहिए, जिससे मानवीय सम्बन्धो की स्थापना जनहित मे कर सके।

19.2.2 प्रशासकीय गुण (Administrative Qualities)

एक कुशल प्रशासक के लिए प्रशासकीय क्षमता योग्यता का होना आवश्यक है। प्रशासक मे विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाने, क्रियान्वित करने तथा उन्हे संगठित करने की विशेष योग्यता होनी चाहिए। आय-व्यय की विभिन्न मदो को ध्यान मे रखते हुए प्रशासक को बजट तैयार करने मे निपुण होना चाहिए। विद्यालय के आदर्शों, सिद्धान्तो और आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर विद्यालय के मानवीय तत्त्वो अर्थात् विद्यालय परिवार एव अभिभावको के साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास करना चाहिए। आपस मे एक-दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार, आपसी तालमेल एव सहयोग से कार्य करना चाहिए।

प्रशासकीय गुणो मे निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है—

1. **कुशल प्रशासक** (Efficient Administrator)—प्रधानाध्यापक को एक कुशल प्रशासक होना चाहिए। इसके लिए उसमे अच्छा नियोजन करने, सगठन करने, योग्य शिक्षको एव कर्मचारियो की नियुक्ति करने की योग्यता एव उनके कार्यों की व्यवस्था करने, समन्वय, सचालन और रिपोर्ट एव बजट बनाने की क्षमता आदि प्रशासकीय गुणो का होना आवश्यक है। **डॉ0 एस0 एन0 मुखर्जी** के शब्दो मे—"प्रधानाध्यापक विद्यालय के आन्तरिक एव बाह्य प्रशासन के मध्य एक कड़ी है। वह विद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था का सम्बन्ध बाह्य प्रशासन से स्थापित करता है। वह प्रशासन मे गुम्बद का आधार रूपी पत्थर है।"

2. **लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण** (Democratic Attitude)—प्रशासक को लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण वाला होना चाहिए। विद्यालय प्रशासन को स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व तथा न्यायप्रियता के लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो पर चलना चाहिए। उसे समाज की आवश्यकताओ, सास्कृतिक मूल्यो, मान्यताओ, रीति-रिवाजो इत्यादि से पूर्ण अवगत होना चाहिए। तभी वह समाज के साथ सामजस्य स्थापित कर अभिभावको एव

समाज के नागरिकों के साथ सम्पर्क करके विद्यालय को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत कर सकता है। उसे छात्रों को अधिकाधिक विद्यालय प्रबन्ध में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित कर, जिससे विद्यालय प्रबन्ध को सफल बनाया जा सके तथा देश के भावी नागरिकों में जनतान्त्रिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो सके।

3. प्रवीण संगठनकर्त्ता (Efficient Organizer)—प्रधानाचार्य को एक कुशल संगठनकर्त्ता होना चाहिए, जिससे वह छात्रों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करते हुए विद्यालय में सुव्यवस्था स्थापित कर सके। इसके लिए उसको विद्यालय संगठन के मूल सिद्धान्तों, समाज के [illegible] आदर्शों का ज्ञान होना आवश्यक है।

19.2.3 व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)

प्रधानाचार्य में अधोलिखित व्यावसायिक गुणों का होना आवश्यक है—

1. व्यवसाय में निष्ठा (Faith in Profession)—प्रधानाचार्य में अपने व्यवसाय के प्रति, शिक्षकों, छात्रों तथा अभिभावकों एवं मानवता के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। प्रधानाचार्य का [illegible] एवं उत्तरदायी होना ही पर्याप्त नहीं, न ही अच्छा प्रशासक, बल्कि व्यावसायिक निष्ठा सर्वोपरि होनी चाहिए। व्यावसायिक निष्ठा के अभाव में एक प्रधानाचार्य कभी सफल नहीं हो सकता।

2. सामान्य ज्ञान (General Knowledge)—प्रधानाचार्य को विश्व की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि घटनाओं का व्यापक ज्ञान होना चाहिए, उसका सामान्य ज्ञान उच्च श्रेणी का होना चाहिए, जिससे शिक्षक उसकी विद्वता के कारण उसका सम्मान करें।

3. व्यवसाय का ज्ञान (Professional Knowledge)—प्रधानाचार्य को अपने व्यावसायिक ज्ञान को नवीनतम बनाये रखने के लिए एवं उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए व्यावसायिक साहित्य का अध्ययन करते रहना चाहिए। शिक्षण कार्य ही एक शिक्षक का मुख्य व्यवसाय है। प्रधानाचार्य को एक शिक्षक के रूप में बाल-मनोविज्ञान, शिक्षण कला, शैक्षिक तकनीकी, शिक्षण आव्यूह एवं सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिए। एक प्रशासक के रूप में विद्यालय प्रशासन एवं संगठन का ज्ञान, पाठ्यक्रम निर्माण एवं निर्धारण के सिद्धान्त का ज्ञान होना चाहिए। तभी वह अपने प्रशासकीय पद का निर्वहन प्रधानाचार्य के रूप में कर सकता है।

4. ज्ञान-प्राप्ति के लिए उत्सुकता एवं विद्वता (Desire for Attaining Knowledge and Good Scholar)—एक योग्य प्रधानाचार्य में ज्ञान-प्राप्ति की लालसा होनी चाहिए। उसे अपने सहयोगी अध्यापकों से अधिक ज्ञान होना चाहिए। अज्ञानी प्रधानाचार्य को अपने छात्रों एवं शिक्षकों से कभी सम्मान प्राप्त नहीं होता है। उसे एक विषय का ही ज्ञाता नहीं होना चाहिए, बल्कि कई विषयों का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए। कुछ अन्य विषयों, जैसे—समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति इत्यादि का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रधानाचार्य का अपना एक पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमें शैक्षिक साहित्य उपलब्ध हो। प्रधानाचार्य शिक्षक, छात्र तथा अपनी स्वयं की उन्नति तब तक नहीं कर सकता जब तक उसे अपने विषय एवं व्यवसाय का ज्ञान न हो।

5. कुशल प्रवक्ता (Good Speaker)—प्रधानाचार्य को एक कुशल प्रवक्ता भी होना चाहिए। उसे एक प्रशासक एवं स्कूल नेता होने के कारण स्कूल एवं समाज में अपने विचार को प्रकट करने का अवसर प्राप्त होता रहता है। यदि उसमें विचार प्रकट करने एवं भाषण की कुशलता विद्यमान है तो वह छात्र, शिक्षकों, अभिभावकों एवं अन्य नागरिकों को प्रभावित कर सकता है। इससे इसकी स्वयं की विद्यालय एवं जन-समुदाय को विद्यालय के आदर्शों, उद्देश्यों एवं उसकी उपयोगिता एवं महत्ता का ज्ञान होगा।

6. **समय की नियमितता** (Regularity of Time)—प्रधानाचार्य का सबसे बड़ा गुण समय के महत्त्व को समझना और समय का पाबन्द होना है। कोई भी प्रधानाचार्य यदि समय की नियमितता का ध्यान नही रखेगा, स्वय समय पर विद्यालय नही जायेगा तो वह अपने अध्यापको एव अधीनस्थ कर्मचारियो और छात्रो को समय से विद्यालय आने के लिए प्रेरित नही कर सकता। इस प्रकार न तो विद्यालय का विकास होगा और न ही विद्यालय के छात्रों, शिक्षको एव कर्मचारियो मे समय की नियमितता की आदत बन पायेगी। इस प्रकार विद्यालय, विद्यालय नही बाजार परिलक्षित होगा। विद्यालय तो वह महत्त्वपूर्ण स्थान है जहाँ पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है, मानवता का विकास एव राष्ट्र की प्रगति का निर्माण होता है। **बालकृष्ण जोशी** ने ठीक ही लिखा है—"किसी की राष्ट्र की प्रगति का निर्णय विधान सभाओ, न्यायालयो और फैक्ट्रियो मे नही वरन् विद्यालयो मे होता है।"

"The progress of a nation is decided not in legislatures, not in courts, not in factories, but in schools."

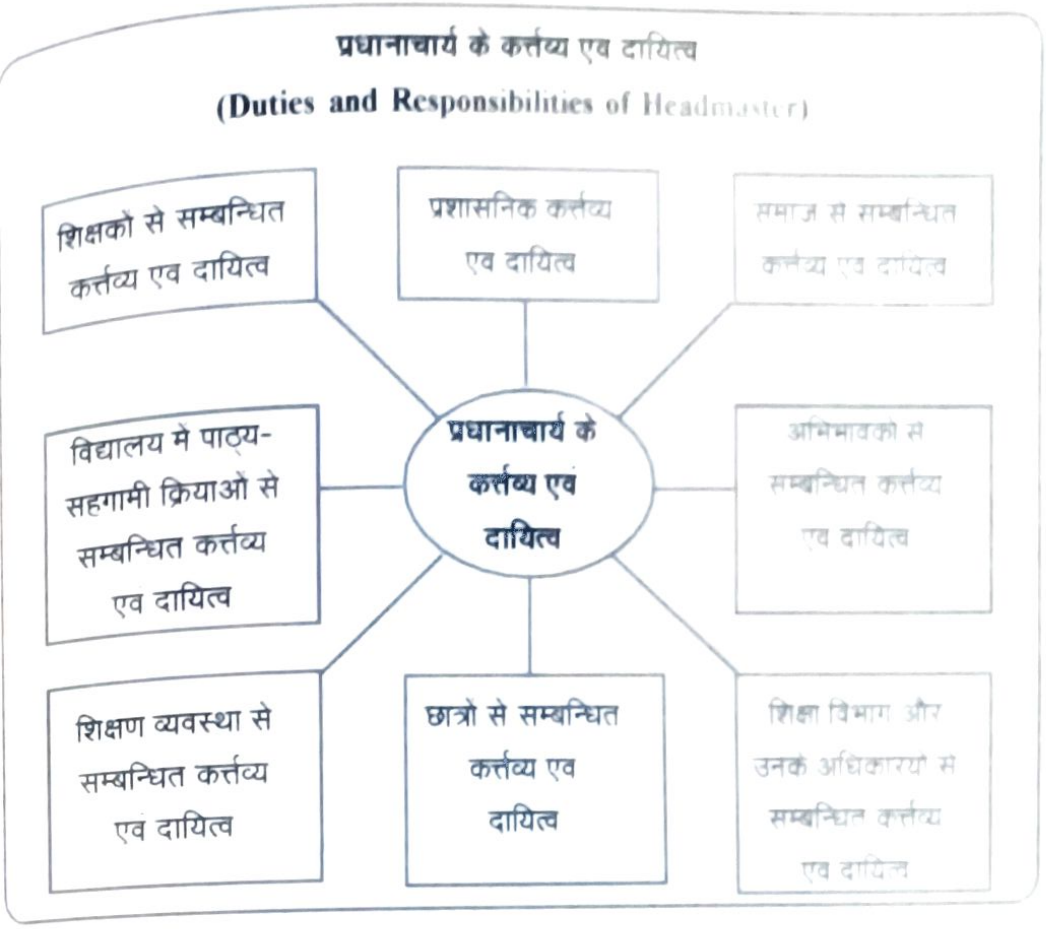
—**S. Balkrishna Joshi**

19.3 : प्रधानाचार्य के कर्तव्य एवं दायित्व
(DUTIES AND RESPONSIBILITIES OF HEADMASTER)

प्रधानाचार्य विद्यालय एवं समाज दोनों की प्रगति के लिए उत्तरदायी है। उसे विद्यालय को एक सामाजिक सस्था के रूप मे चलाना है, जिससे शिक्षा के माध्यम से वह विद्यालय की प्रगति के साथ ही समाज की भी प्रगति कर सके। प्रधानाचार्य के इस गम्भीर उत्तरदायित्व के आधार पर प्रशासक के रूप मे उसे केवल विद्यालय को ही नेतृत्व प्रदान नही करना है, वरन् सम्पूर्ण समाज को नेतृत्व प्रदान करने हेतु तत्पर रहना चाहिए(क्योकि विद्यालय मे उन भावी नागरिको का निर्माण होता है जिन पर समाज, राष्ट्र एव विश्व के सचालन का भार रहता है।

बालकृष्ण जोशी (S. Balkrishna Joshi) के शब्दों मे—"विद्यालय ईंट और गारे की बनी हुई इमारत नही, जिसमे विभिन्न प्रकार के छात्र और शिक्षक होते है। विद्यालय बाजार नही है, जहाँ विभिन्न योग्यताओ वाले अनिच्छुक व्यक्तियो को ज्ञान प्रदान किया जाता है। विद्यालय रेल का प्लेटफार्म नही है जहाँ विभिन्न उद्देश्यो से विभिन्न व्यक्तियों की भीड़ जमा होती है। विद्यालय कठोर सुधार-गृह नही है जहाँ किशोर अपराधियो पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। विद्यालय आध्यात्मिक सगठन है, जिसका अपना स्वय का विशिष्ट व्यक्तित्व है। विद्यालय गतिशील सामुदायिक केन्द्र है जो चारो ओर जीवन और शक्ति का सचार करता है। विद्यालय एक आश्चर्यजनक भवन है, जिसका आधार सद्भावना है—जनता की सद्भावना, माता-पिता की सद्भावना, छात्रो की सद्भावना। साराश मे एक सुसचालित विद्यालय एक सुखी परिवार, एक पवित्र मन्दिर, एक सामाजिक केन्द्र, लघु रूप मे एक राज्य और मनमोहक वृन्दावन है। इसमे इन बातो का सुन्दर मिश्रण होता है।"

विद्यालय एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसका प्रतिनिधित्व प्रधानाचार्य को करना पड़ता है। जैसा प्रधानाचार्य होगा वैसा ही विद्यालय होगा। एक योग्य एव विद्वान प्रधानाचार्य, जिसमे प्रशासनिक क्षमता होगी वही अपने कर्त्तव्यों एव दायित्वो का निर्वहन कर सकता है। प्रधानाचार्य अपने दायित्वो का निर्वहन शिक्षा के माध्यम से करता है।



चित्र 19.2 : प्रधानाचार्य के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्वों का चार्ट

प्रधानाचार्य शिक्षा के उन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करता है जिनसे बालकों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं, आदर्शों एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके। अत प्रधानाचार्य को विद्यालय का मुखिया होने के कारण अग्रलिखित कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता है–

19.3.1 प्रशासनिक कर्तव्य एवं दायित्व (Administrative Duties and Responsibilities)

प्रधानाचार्य का पद अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों से दबा हुआ है। विद्यालय की प्रगति के लिए योजना बनाना, उन्हें सचालित करना एवं सफल बनाने का प्रयास करना प्रधानाचार्य का कर्त्तव्य है। उसे एक प्रशासक के रूप में सगठनकर्त्ता के दायित्वों को पूरा करना पड़ता है। विद्यालय में सहयोगी शिक्षकों के मध्य उनकी रुचि के अनुकूल कार्यों का विभाजन करना, उनमें समायोजन क्षमता उत्पन्न करना, विद्यालय प्रशासन को बनाये रखना, शिक्षक-शिक्षार्थी एवं अभिभावकों को शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों से अवगत करना, पुस्तकालय की उचित व्यवस्था करना, शिक्षकों की भर्त्सना न करना तथा उन्हें आत्म-मथन एवं मूल्याकन का अवसर देना, कार्य का सचालन सुव्यवस्थित, सुसगठित, सुनियोजित ढग से करना आदि। कार्य को सम्पादित करने में सम्पूर्ण स्टाफ की सयुक्त शक्ति का उपयोग करना प्रधानाचार्य के मुख्य दायित्व है। प्रशासनिक दृष्टि से निरीक्षक के रूप में उसके निम्न दायित्व है–

1. **निरीक्षण** (Supervision)–प्रधानाचार्य के निरीक्षण सम्बन्धी कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक है। निरीक्षण द्वारा वह विद्यालय की गतिविधियों पर नजर रखता है। वह यह देखता है कि विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रम समुचित रूप से चल रहे है या नहीं। **श्री रायबर्न** (W M Ryburn) के

शब्दो मे निरीक्षण विस्तृत होना चाहिए, विद्यालय की समस्त क्रियाएँ इसके अधिकार क्षेत्र के अन्त दी जाती है। विद्यालय जीवन का कोई भी अग अछूता नही रहना चाहिए, जिसका कि प्रधानाचार्य नि निरीक्षण किया जाये, क्योकि छात्र को बनाने एव बिगाड़ने मे विद्यालय की सभी बाते कुछ न कुछ अ योगदान देती है। केवल शिक्षण कार्य का ही निरीक्षण करना पर्याप्त नही, बल्कि विद्यालय के बाहर छात्र जो क्रियाएँ करते है, उनकी देखभाल करना आवश्यक है। प्रधानाचार्य के निरीक्षण सम्बन्धी क एव दायित्व निम्नवत् है–

(i) **शिक्षण कार्य का निरीक्षण** (Supervision of teaching work)–शिक्षको के कार्य निरीक्षण करके उन्हे समय-समय पर निर्देश देना एव प्रगति हेतु प्रेरित करते रहना चाहिए। प्रधानाच को निरीक्षण के कार्यक्रम की योजना बनाने और कक्षा मे निरीक्षण कार्य करने के लिए उसके साथ पुस्तिका रखनी चाहिए। कक्षावार सभी विषयो का निरीक्षण करता हुआ पुस्तिका मे उन सुझावो कमियो को लिखता रहे जिनके द्वारा शिक्षण कार्य में सुधार लाया जा सके, उसके स्तर को ऊँचा उ सके।

(ii) **शिक्षण पद्धतियों एवं सहायक सामग्री का निरीक्षण** (Superivision of teaching metho and helpful material)–शिक्षको द्वारा शिक्षण कार्य मे अपनायी जाने वाली विधियो, प्रविधियो, प्रवृत्ति शिक्षा-दर्शन एव सहायक सामग्री का निरीक्षण करना चाहिए। प्रधानाचार्य को यह भी देखभाल कर चाहिए कि शिक्षण मे किस प्रकार की सामग्री एव विधि का प्रयोग हो रहा है। प्रधानाचार्य को अपने सुझा अध्यापक पर जबर्दस्ती नही लादने चाहिए। उनसे विचार-विमर्श करके ही समझाने का प्रयास कर चाहिए। शिक्षक की त्रुटियो को कक्षा मे नही बताना चाहिए। कक्षा के बाद बुलाकर व्यक्तिगत रूप बताना चाहिए। प्रधानाचार्य का निरीक्षण एक अधिकारी के रूप मे भयभीत करने वाला नही होना चाहि बल्कि उसका निरीक्षण मित्र, सहयोगी, परामर्शदाता एव दार्शनिक के रूप मे होना चाहिए।

(iii) **छात्रों में लिखित कार्यों का निरीक्षण** (Supervision of writing work i students)–प्रधानाचार्य को छात्रो के लिखित कार्यों का समय-समय पर निरीक्षण करते रहना चाहि जिससे छात्र एव अध्यापक दोनो के कार्यो का अनुमान हो सके। इसके अतिरिक्त उसे लिखित कार्य हे एक रजिस्टर रखवाना चाहिए, जिससे अध्यापक के सम्बन्ध मे विषय से सम्बन्धित सुझाव दिये ज सके। समय-समय पर ऐसा करते रहने से अध्ययन-अध्यापन मे सुधार होगा।

(iv) **कार्यालय कार्य एवं रजिस्टरों का निरीक्षण** (Supervision of office work and registers)–प्रधानाचार्य को कार्यालय के कार्यों का समय-समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। उस प्रत्येक तीन महीने पर एक बार कम से कम प्रवेश रजिस्टर (Admission register) एव सम्पत्ति रजिस्टर (Property register) का भी निरीक्षण करना चाहिए। उसे आय-व्यय के ब्यौरे का प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिए। वेतन रजिस्टर (Salary register) उसी दिन ठीक होना चाहिए जिस दिन वेतन दिया जाये। कक्षा रजिस्टर (Class register) का प्रतिमास निरीक्षण करना चाहिए। इससे अधयापक के प्रतिमास के कार्यों का ज्ञान हो जाता है। उसे छोटे व्ययो का हिसाब-किताब वाले रजिस्टर (Contigency register) का भी निरीक्षण महीने मे एक बार करना चाहिए। प्रॉविडेण्ट फण्ड (Provident fund) का निरीक्षण वर्ष मे एक बार करना चाहिए। खेलकूद फण्ड (Sport fund), पुस्तकालय फण्ड (Library fund) आदि छात्रो से सम्बन्धित अनेक फण्ड होते है, जिसकी देखभाल प्रधानाचार्य को करनी चाहिए। उपस्थिति रजिस्टर, सम्पत्ति रजिस्टर जो छात्रावास से सम्बन्धित होते है आदि की भी जाँच प्रधानाचार्य को करनी चाहिए। विद्यालय मे छात्रो की प्रवेश सख्या, शिक्षको की सख्या तथा अन्य कर्मचारियो की

संख्या में सन्तुलन बनाये रखने हेतु निरीक्षण करना चाहिए। विद्यालय के भौतिक [illegible] शारीरिक क्रियाओं, विद्यालय सहकारी भण्डार, कैण्टीन आदि का निरीक्षण करते रहना चाहिए।

विद्यालय के पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं भवन फर्नीचर आदि का भी निरीक्षण करते रहना चाहिए। विद्यालय में गठित की जाने वाली पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का निरीक्षण करना चाहिए। इन माध्यम से बालकों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास होता है।

(v) छात्रों को शिक्षकों द्वारा प्राप्त ट्यूशनों का निरीक्षण (Supervision of student tution by teachers)—प्रधानाचार्य को शिक्षकों द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले ट्यूशन पर भी ध्यान देना चाहिए। शिक्षकों द्वारा कक्षा शिक्षण की उपेक्षा कर छात्रों को ट्यूशन पढ़ाने की [illegible] उनका कक्षा शिक्षण कार्य मात्र दिखावटी होता है। प्रधानाचार्य को चाहिए कि वह [illegible] ट्यूशनों की आज्ञा प्रदान न करे।

(vi) शिक्षकों की डायरी का निरीक्षण (Supervision of diary of teachers)—प्रधानाचार्य को समय-समय पर शिक्षकों की डायरी का निरीक्षण करना चाहिए। यह देखना चाहिए कि वे [illegible] भरते है या नहीं। बहुत से शिक्षक ऐसे होते है जो माह या वर्ष के अन्त में बैठकर समस्त डायरी भर डालते है। इस तरह के गलत कार्य को रोकने के लिए प्रधानाचार्य को शिक्षकों [illegible] करते रहना चाहिए।

(vii) प्रश्न-पत्रों का निरीक्षण (Supervision of question papers)—विद्यालय में समय-समय वाली विभिन्न परीक्षाओं एवं प्रश्न-पत्रों का निरीक्षण करते रहना चाहिए, जिससे पाठ्य-वस्तु एवं प्रश्न-पत्रों में साम्यता बनी रहे। प्रधानाचार्य शिक्षकों द्वारा बनाये गये प्रश्न-पत्रों का [illegible] स्वयं जाँच करे कि प्रश्न-पत्र बच्चों की आयु, योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप है या नहीं। [illegible] मूल्यांकन एवं अंकन (Marking) पर भी ध्यान देना चाहिए कि वे सही मूल्यांकन एवं अंकन [illegible] या नहीं।

(viii) अनुशासन व्यवस्था का निरीक्षण (Supervision of discipline management)—विद्यालय में अनुशासन व्यवस्था बनाये रखना प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व है। वह शिक्षकों, कर्मचारियों एवं छात्रों में अनुशासन स्थापित करता है। विद्यालय में अनुशासन व्यवस्था बनाये रखने में वह शिक्षकों, सहपाठियों एवं प्रशासकों से भी मदद लेता है।

(ix) पाठ्य-पुस्तकों का चयन (Selection of text-books)—प्रधानाचार्य विभिन्न कक्षाओं के लिए पुस्तकों का चयन करता है। पाठ्य-पुस्तकों का चयन विभिन्न कक्षाओं एवं विभिन्न विषयों के लिए उनसे सम्बन्धित अध्यापकों के परामर्श से करता है। पाठ्य-पुस्तकों का चयन छात्रों के स्तर को देखते हुए करना चाहिए। पाठ्य-पुस्तक उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक होनी चाहिए, जिससे बच्चे का सर्वांगीण विकास हो सके।

(x) विद्यालय की स्वच्छता एवं सौन्दर्यीकरण का निरीक्षण (Supervision of cleaning and aesthetic of school)—विद्यालय की स्वच्छता एवं साफ-सफाई का ध्यान रखना प्रधानाचार्य का दायित्व है। विद्यालय को आकर्षक बनाने के लिए बाग-बगीचे लगवाना, फुलवारी लगवाकर विद्यालय का सौन्दर्यीकरण करना प्रधानाचार्य का कर्त्तव्य है। विद्यालय प्रांगण की स्वच्छता, कक्षाकक्षों (Classrooms) की सफाई प्रधानाचार्य के कुशल व्यक्तित्व का परिचायक है।

(xi) छात्रावास का निरीक्षण (Supervision of hostel)—प्रधानाचार्य को समय-समय पर छात्रावास, पुस्तकालय, प्रयोगशाला इत्यादि अभिन्न विद्यालयी अंगों का निरीक्षण करते रहना चाहिए।

छात्रावास मे छात्रो की सुविधा, पुस्तकालयो मे पुस्तको की स्थिति, प्रयोगशाला मे सामानो एव साज सज्जा की व्यवस्था का निरीक्षण करना होता है।

प्रधानाचार्य को छात्रावास की विभिन्न गतिविधियो का निरीक्षण करना चाहिए, जो इस प्रकार है–

1. छात्रावास के इर्द-गिर्द मँड़राने वाले ऐसे तत्त्वो का निरीक्षण करना एव उन पर नियन्त्रण रखना, जिससे छात्रावास को एव उनमे रहने वाले लोगो को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।

2. उसे छात्रावास की नियमावली, उपस्थिति रजिस्टर, स्टाक रजिस्टर, लॉग बुक आदि का निरीक्षण करना चाहिए।

3. प्रधानाचार्य को कभी-कभी छात्रो के साथ बैठकर खाना चाहिए, जिससे छात्रो की भोजन, खाना बनाने के प्रबन्ध, खाने एव पीने की व्यवस्था, बर्तनो एव रसोई की साफ-सफाई का पता लग सके। छात्र को पौष्टिक भोजन मिल पा रहा है या नहीं, इसका ध्यान रखना प्रधानाचार्य की जिम्मेदारी है।

4. प्रधानाचार्य को छात्रो के शयन-कक्ष का निरीक्षण करना चाहिए। कमरो की साफ-सफाई एव रोशनी की व्यवस्था का ध्यान रखना चाहिए।

5. छात्रावास मे खेल के मैदान, पुस्तकालय, वाचनालय, कॉमन रूम आदि का निरीक्षण करना चाहिए। यह देखना चाहिए कि बच्चो को इनके उपयोग की सुविधा मिल रही है या नहीं।

6. छात्रो की सुरक्षा एव सुविधा को ध्यान मे रखते हुए छात्रावास मे वार्डन की नियुक्ति अवश्य होनी चाहिए तथा उनसे भी समय-समय पर छात्रावास की जानकारी लेते रहना चाहिए, जिससे छात्रावास से सम्बन्धित समस्याओ को जानकर उनको दूर किया जा सके।

19.3.2 समाज से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Society)

प्रधानाचार्य को सदैव समाज-सेवा, श्रमदान आदि रचनात्मक कार्यों के लिए शिक्षको एव छात्रो को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा समाज के सुधार हेतु परामर्श देना चाहिए। इस कार्य मे समाज के नेताओ, सम्भ्रान्त व्यक्तियो, सामाजिक कार्यकर्त्ताओ, सुधारको से सहयोग लेना चाहिए। विद्यालय समाज का लघु रूप है। इसका निर्माण समाज की आवश्यकताओ, आदर्शों एव प्रोन्नति के लिए किया गया है। अत प्रधानाध्यापक को समाज के साथ मधुर सम्बन्ध एव सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। विद्यालय के कार्यक्रमो, समारोहो मे समाज के लोगो को आमन्त्रित करना चाहिए।

प्रधानाचार्य के समाज से सम्बन्धित कर्त्तव्य एव दायित्व निम्न प्रकार है–

1. विद्यालय मे कार्यक्रम इस प्रकार आयोजित किये जाये कि उससे सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके।

2. विद्यालय की विकास समिति मे समाज के प्रमुख सदस्यो को स्थान दिया जाये।

3. विद्यालय मे शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार किया जाये कि बालक का स्वाभाविक ढग से समाजीकरण हो सके।

4. समाज और विद्यालय का सम्बन्ध इस प्रकार का हो कि समाज के रचनात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव विद्यालय पर पड़ सके।

5. सामुदायिक विद्यालय के रूप मे विद्यालय को विकसित करने का उत्तरदायित्व प्रधानाचार्य का होता है।

6. समाज की स्थानीय आवश्यकताओ से अवगत होकर विद्यालय के माध्यम से उसकी पूर्ति करना प्रधानाचार्य का कर्त्तव्य है, जिससे समाज का सहयोग विद्यालय के विकास के लिए प्राप्त हो सके।

19.3.3 अभिभावकों से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Gardian)

प्रधानाचार्य को अभिभावकों से सहयोग एवं सम्पर्क के लिए विद्यालय के विभिन्न अवसरों या समारोहों में उन्हें आमन्त्रित करना चाहिए और विद्यालय की प्रगति से उन्हें अवगत कराना चाहिए। प्रत्यक्ष सम्पर्क कर उनसे प्रेम, उत्साह एवं सद्भावना से मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त अभिभावकों से पत्र, प्रगति कार्ड आदि से सम्पर्क बनाये रखना चाहिए।

प्रधानाचार्य के अभिभावकों से सम्बन्धित कर्त्तव्य एवं दायित्व इस प्रकार है–

1. विद्यालय में अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समय-समय पर प्रधानाचार्य को बालक/बालिकाओं की प्रगति के सम्बन्ध में सूचना देते रहना चाहिए।

2. प्रधानाचार्य को बालकों के घर जाकर यदा-कदा उनके अभिभावकों से सम्पर्क रखना चाहिए।

3. विद्यालयी समारोहों में अभिभावकों को आमन्त्रित करते रहना चाहिए।

4. विद्यालय में विशिष्ट व्यक्तियों एवं विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यान आयोजित करते रहना चाहिए।

5. प्रधानाचार्य विद्यालय में पारिवारिक जीवन के गुणों का समावेश करे जिससे छात्रों को विद्यालय में पारिवारिक वातावरण मिल सके।

6. विद्यालय के कार्यक्रमों का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन से अवश्य होना चाहिए।

19.3.4 शिक्षा विभाग और उनके अधिकारियों से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Education Department and Its Officers)

विद्यालय में शिक्षा विभाग की सामान्य नीतियों को अमल में लाना एवं उनकी प्रगति के लिए योजना बनाना प्रधानाचार्य का दायित्व है। शिक्षा विभाग एवं विद्यालय के बीच की कड़ी है प्रधानाचार्य, जो अपने कुशल व्यक्तित्व एवं उत्तम गुणों के आधार पर विद्यालय में शिक्षा विभाग की नई नीतियों को अपना लेते है। प्रधानाचार्य को शिक्षा विभाग एवं उनके अधिकारियों के साथ मजबूत सम्बन्ध स्थापन हेतु निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. शिक्षा विभाग की नीतियों के आधार पर शासन द्वारा प्राप्त सहायता, अनुदान, छात्रवृत्तियां तथा शुल्क सम्बन्धी नियमों को अमल में लाना।

2. शिक्षा विभाग को समय-समय पर विद्यालय के मान्यता सम्बन्धी नियमों तथा उनकी प्रगति से अवगत कराते रहना। विद्यालय भवन, विद्यालय उपकरणों एवं साज-सज्जा, छात्रावासों, विद्यालयी अभिलेखों इत्यादि की सूचना समय-समय पर शिक्षा विभाग को देते रहना।

3. शिक्षा विभाग की अनुमति से विभिन्न कक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्यचर्या तथा पाठ्य- पुस्तकों का चयन करना।

4. अपराध करने पर दण्ड देना तथा समय सारणी आदि को नियमबद्ध रूप से लागू करना, माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित सभी नियमों तथा उपनियमों, जिनका सम्बन्ध छात्रों को विद्यालय में प्रवेश पाने, विद्यालय में उपस्थित रहने और उन्हें कक्षोन्नति देने से है। शिक्षा विभाग द्वारा उपर्युक्त को नियमबद्ध रूप से लागू करना।

5. शिक्षकों एवं कर्मचारियों की गतिविधियों एवं कार्य-प्रणालियों से शिक्षा विभाग को अवगत कराते रहना।

6. विद्यालय मे होने वाली शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध मे अधिकारियो को सूचित करना।

7. शिक्षा विभाग को विद्यालयी शिक्षा की भिन्न-भिन्न शाखाओ से सम्बन्धित परिस्थितियो से परिचित कराना।

8. अधिकारियो को विद्यालय से सम्बन्धित जरूरतो से परिचित कराना।

9. विद्यालय की प्रगति मे बाधक तत्त्वो से अधिकारियो को अवगत कराना, जिसमे विद्यालय का अनुशासन बना रहे।

10. विद्यालय के शिक्षको व कर्मचारियो की गतिविधियो एव कार्य-प्रणालियो से शिक्षा विभाग को अवगत कराना।

19.3.5 छात्रो से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Students)

एक प्रशासक के रूप मे छात्रो के प्रति गम्भीर उत्तरदायित्व है–

1. विद्यालय मे प्रत्येक मानसिक योग्यता वाले–प्रतिभावान, पिछड़े, अपराधी, कुसमायोजित तथा समस्यात्मक बालको को ध्यान मे रखकर पठन-पाठन की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

2. बालको मे समय-समय पर पनपने वाली आदतो एव कुप्रवृत्तियो पर निगाह रखना एव मनोवैज्ञानिक रूप से उसे दूर करने का प्रयास करना प्रधानाचार्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है।

3. छात्रो मे उत्तम शीलगुणो–आत्म-सयम, आत्म-प्रकाशन, श्रेष्ठ तर्क, न्यायसगत आदि उचित दृष्टिकोणो का विकास करना।

4. छात्रो मे विद्यालय के नियमो, नीतियो एव आदतो, आदर्शों के प्रति आस्था एव विश्वास को दृढ करना, जिससे उनमे कर्त्तव्यपराणता की भावना का दृष्टिकोण विकसित हो सके।

5. छात्रो के ज्ञानवर्द्धन के लिए उन्हे अध्यवसायी बनने की प्रेरणा देना तथा नवीनतम सूचनाओ को सग्रहीत करने के लिए अभिप्रेरित करना।

6. विद्यालय मे एकरूपता एव समभाव के दृष्टिकोण का छात्रो मे विकास करने के लिए प्रधानाचार्य को वेशभूषा मे एकरूपता लानी चाहिए तथा उनमे प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तो–स्वतन्त्रता, समानता, भातृत्व एव न्यायप्रियता के व्यावहारिक एव मानवतावादी दृष्टिकोणो का विकास करना चाहिए।

7. विद्यालय मे 'फालोअप सेवाएँ' गठित करानी चाहिए, जिससे छात्रो को विद्यालय छोड़ने पर रोजगार दिलाने के लिए उनके व्यावसायिक जीवन को सफल बनाने हेतु समय-समय पर उनकी सहायता करना।

8. विद्यालय मे छात्रो के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्य-सहगामी क्रियाओ का आयोजन करना चाहिए, जिससे छात्रो मे कल्पना-शक्ति, सौन्दर्यानुभूति, अच्छी आदतो का भी विकास हो सके।

9. छात्रो की प्रगति का प्रतिवेदन प्रतिमाह अभिभावको को भेजना और उनका सहयोग प्राप्त करना।

10. छात्रो को समस्याओ के निराकरण के लिए 'निर्देशन एव परामर्श' सेवाओ की व्यवस्था करना।

11. छात्रो को अनुशासन की शिक्षा प्रदान करना।

12. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर छात्रो को विभिन्न वर्गों, विषयों तथा समूहो मे वर्गीकृत करना।

13. छात्रो के व्यक्तित्व एव उपलब्धियो का समय-समय पर शिक्षको की सहायता से मूल्याकन करना।

विद्यालयी शिक्षा के माध्यम से हमें उत्तरदायी स्व-नियन्त्रित योग्य एवं [illegible] भावी नागरिक उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे व्यक्ति और समाज [illegible] विकास हो सके। प्रधानाचार्य को अपने विद्यालय में इस प्रकार की प्रशासनिक [illegible] जिससे शिक्षा के लक्ष्य, बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जा सके।

9.3.6 शिक्षण व्यवस्था से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Teaching Management)

विषयों के शिक्षण के लिए अलग-अलग कक्षों की व्यवस्था करना और [illegible] विशेषज्ञ शिक्षकों की नियुक्ति करवाना प्रधानाचार्य का प्रमुख दायित्व है। विद्यालय [illegible] ऊपर उठाने के लिए प्रधानाचार्य को सहयोग और सद्भावना के साथ [illegible] चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रधानाचार्य के निम्नलिखित दायित्व है–

1. छात्रों को अपनी योग्यता एवं अभिरुचि के अनुसार विषय को चुनने की [illegible]

2. कक्षा में छात्रों की संख्या सामान्य होनी चाहिए। न अधिक और न ही [illegible] चाहिए।

3. समस्त विद्यालयी विषयों का शिक्षण समुचित रूप से किया जाये।

4. अध्यापकों को उनकी रुचि, योग्यता एवं क्षमता के आधार पर विभिन्न विषयों [illegible] सौंपा जाये।

5. कक्षा में तथा कक्षा के बाहर आते-जाते समय छात्रों में अनुशासन बनाये रखना।

6. सम्पूर्ण शिक्षण सत्र के लिए शिक्षण कार्य हेतु योजनाएँ तैयार की जाये।

7. प्रशासनिक व्यवस्था और शिक्षण कार्य में तालमेल बनाये रखना।

8. विद्यालय में शिक्षण कार्य की प्रगति के लिए समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा [illegible] सभाओं तथा विचारगोष्ठियों का विद्यालय में आयोजन करवाना।

9. विद्यालय में शिक्षकों के अभाव को दूर करने के लिए जिन विषयों में शिक्षकों की [illegible] हुई है उन विषयों में शिक्षकों की नियुक्ति करवाना।

19.3.7 विद्यालय में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Co-ordination Activities in School)

विद्यालय के पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के संचालन सम्बन्धी प्रधानाचार्य के उत्तरदायित्व [illegible] लिखित है–

1. विद्यालय में स्काउटिंग, गाइडिंग, एन0 सी0 सी0, ए0 सी0 सी0, बालचर आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था कराना।

2. छात्रों को उनकी अभियोग्यता, क्षमता, रुचि एवं आदतों के आधार पर विभिन्न समितियों में विभाजित करना तथा विद्यालय में समय-समय पर खेलकूद, वाद-विवाद, निबन्ध प्रतियोगिता, भाषण-माला, अन्त्याक्षरी, साहित्यिक गोष्ठियाँ, कवि सम्मेलन व अभिनय आदि का आयोजन करवाना।

3. आर्थिक एवं भौतिक संसाधनों के अनुसार विभिन्न विद्यालयी क्रियाओं का संगठन करना।

4. विभिन्न सामाजिक संगठनों के सहयोग से छात्रों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम विकसित करना चाहिए।

5. विद्यालय में एक ही छात्र से अनेक कार्य न लिये जाये। छात्रों को उनकी रुचि एवं योग्यता के अनुसार कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए।

6. विद्यालय की पाठ्य-सहगामी विभिन्न क्रियाओं का चयन शैक्षिक महत्ता की दृष्टि से करना चाहिए तथा योजना बनाते समय विद्यालय की स्थिति पर भी विचार करना चाहिए।

7. विद्यालय मे बाल-सभा, सघ अथवा समितियो का गठन करना, जिसमे क्रियाओं के सचालन नेतृत्व करने से छात्रो का सहयोग प्राप्त हो सके।

8. शिक्षक एव छात्र विद्यालय की विभिन्न क्रियाओ मे स्वतन्त्र रूप से भाग ले सके, इसके विद्यालय का वातावरण स्वस्थ एव सुन्दर निर्मित किया जाये।

9. छात्रो मे सहयोग, धैर्य, कर्त्तव्यपरायणता, सामाजिकता एव नेतृत्व के गुणो का विकास करने लिए विद्यालय की विभिन्न क्रियाओ का सचालन उपयुक्त एव अच्छे ढग से करना चाहिए।

10. बालक के सर्वांगीण विकास के लिए प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व है कि वह विद्यालय विभिन्न पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था करे तथा यह ध्यान रखे कि विभिन्न क्रियाओं के सचालन मे शैक्षिक सन्तुलन एव सगठन बना रहे, जिससे उनके द्वारा विद्यालय के किसी भी पहलू या अग को हानि न पहुँचे। आज पाठ्यक्रम के साथ ही विभिन्न क्रियाकलापों का महत्त्व प्रतिदिन विद्यालयों मे बढ़ा जा रहा है। इसलिए प्रधानाचार्य का यह नैतिक दायित्व है कि वह बालक की आयु, रुचि, मानसिक एव शारीरिक क्षमता, सवेगात्मक तथा सामाजिक, छात्रो की आदतों इत्यादि के विकास की दृष्टि से विद्यालय मे पाठ्य-सहगामी क्रियाओ का आयोजन करे।

19.3.8 शिक्षकों से सम्बन्धित कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and Responsibilities from Related to Teachers)

विद्यालय के प्रधानाचार्य का एक प्रशासक के रूप मे प्रमुख उत्तरदायित्व योग्य, अनुभवी एव कुशल प्रशिक्षित शिक्षको की नियुक्ति कराना है। शिक्षको के साथ प्रेम तथा सहयोग एव उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। शिक्षको को आत्म-मूल्याकन के लिए प्रेरित करना एव समय-समय पर कर्त्तव्यबोध कराना परम कर्त्तव्य है। अध्यापको को समस्त शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना चाहिए। शिक्षको को कार्य के प्रति प्रेरित करना एव अपने ओजस्वी विचारो से उनमे ऊर्जा का सचार करना परम कर्त्तव्य है। एक प्रशासक के रूप मे प्रधानाचार्य का शिक्षकों के प्रति अधोलिखित दायित्व है–

1. शिक्षण सुविधा की दृष्टि से शिक्षको को उपयुक्त सहायक सामग्री की व्यवस्था करना।

2. शिक्षको की शिक्षण एवं शिक्षणेतर (व्यक्तिगत एव सामूहिकद्ध समस्याओ का निराकरण करने मे उनकी मदद करना।

3. शिक्षको को शिक्षण कार्य के लिए अभिप्रेरित करना।

4. शिक्षण की नई-नई तकनीको, विधियो, प्रविधियो से शिक्षको को अवगत कराते रहना।

5. समस्त शिक्षको के साथ समभाव एव समान व्यवहार और बर्ताव करना चाहिए।

6. विद्यालय के कार्यों मे शिक्षको का सहयोग प्राप्त करना, उनकी भावनाओ, विचारो, तर्कों, निर्णयों एव प्रस्तावो का स्वागत करते हुए लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण से विचार करना।

7. शिक्षको के सृजनात्मक दृष्टिकोण एव नेतृत्व प्राप्ति हेतु उनसे समय-समय पर सम्पर्क बनाये रखना, जिससे उनकी अभियोग्यता एव तार्किक चिन्तन से शिक्षण एव प्रशिक्षण कार्य को बेहतर बनाया जा सके।

8. शिक्षको की प्रगति हेतु नियम एव नियम बनाना।

9. शिक्षको के बच्चो की नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना।

10. शिक्षको को निवास-स्थान दिलाना, उनके वेतनमान मे वृद्धि करना।

11 पेंशन, प्रॉविडेण्ट फण्ड तथा बीमा की व्यवस्था कराना, रेलवे कन्सेशन की व्यवस्था कराने में कराना इत्यादि दायित्व शिक्षकों के प्रति प्रधानाचार्य के है।

12 विज्ञान विषयों के शिक्षण के लिए प्रयोगशालाओं की समुचित व्यवस्था कराना।

13 शिक्षकों के कार्यों का विभाजन पक्षपात रहित होकर करना तथा उनकी शैक्षिक योग्यता अनुभव, शिक्षण-कुशलता के आधार पर शिक्षण कार्य को सौंपना।

14 शिक्षकों की सेवा-शर्तों में स्पष्टता लाना तथा उनकी नौकरियों में स्थायित्व लाना।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. विद्यालय में प्रधानाचार्य की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए। यह कहाँ तक उचित है कि प्रधानाचार्य उसके व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है ?
2. प्रधानाचार्य को विद्यालय को सुचारु रूप से चलाने के लिए किन कर्त्तव्यों एवं दायित्वों को ग्रहण करना आवश्यक है ?
3. "एक माध्यमिक स्कूल के प्रिंसिपल के कर्त्तव्य केवल विद्यालय कार्यक्रम के सम्पादन से कहीं अधिक व्यापक है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. "विश्व के कुछ ही व्यक्ति प्रधानाध्यापक से अधिक उच्च कर्त्तव्य एवं दायित्व रखते है।" इस कथन की सत्यता को स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रधानाचार्य के गुणों पर प्रकाश डालिए।
2. प्रधानाचार्य के विद्यालय निरीक्षण सम्बन्धी क्या कर्त्तव्य है ?
3. "विद्यालय का प्रधानाचार्य उसका आधार-स्तम्भ है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
4. प्रधानाचार्य के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. प्रधानाचार्य के गुण होते है–

   (अ) महत्वाकांक्षी (ब) सहयोग

   (स) मौलिकता (द) उपर्युक्त सभी उत्तर–(द)

2. "एक योग्य प्रधानाचार्य समाज का नेता होता है। उसके शब्द बहुत ही प्रभावशाली होते है। उसके व्यवहार के तरीके बहुत ही अच्छे होते है और उनकी प्रकृति बहुत ही प्रिय होती है।" किसका कथन है?

   (अ) गैण्ड एवं शर्मा (ब) पी रैन

   (स) रायबर्न (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर–(अ)

□□

अध्याय

20

अध्यापक के गुण एवं कर्तव्य
[QUALITIES AND DUTIES OF TEACHER]

20.1 : अध्यापक की भूमिका एवं महत्व
(ROLE OR IMPORTANCE OF THE TEACHER)

किसी भी शिक्षा पद्धति में अध्यापक का प्रमुख स्थान होता है। समूची शिक्षा पद्धति अध्यापक के इर्द-गिर्द घूमती है (The whole system of education revolves around the teacher.)। अध्यापक के बिना स्कूल एक निर्जीव शरीर के समान है। वह विद्यार्थियों का आध्यात्मिक एवं बौद्धिक पिता है। वह विद्यार्थियों को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है और सभ्यता के दीपक को हमेशा प्रज्वलित रखता है। वह विद्यार्थियों के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। वह विद्यार्थियों को पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर ले जाता है। यह अध्यापक ही है जो किसी के जीवन को जीने योग्य बनाता है। वह राष्ट्र-निर्माता होता है। उसका प्रभाव केवल किसी प्रदेश या प्रान्त तक ही सीमित नहीं होता बल्कि समूचे राष्ट्र में और राष्ट्र से भी बाहर विदेशों में फैला रहता है। प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, गुरु नानक, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी जैसे महान अध्यापकों का प्रभाव समूचे विश्व में फैला हुआ है। पश्चिमी और पूर्वी देशों के कई महान व्यक्तियों ने अध्यापकों की महानता को स्वीकार किया है।

मनु का विचार (Manu's view)—भारत के प्राचीन मुनि **मनु** ने कहा है—"अध्यापक ब्रह्म का रूप है, पिता प्रजापति का रूप है और माता धरती का रूप है।" उन्होंने कहा है—"माता की भक्ति से बच्चा इस संसार को प्राप्त करता है, पिता की भक्ति से वह अन्तरिक्ष को प्राप्त करता है।"

"A teacher is the image of Brahma, a father is the image of Prajapati, a mother is the image of the Earth.....By devotion to his mother, the child obtains this world, by devotion to his father, the middle world, by devotion to his teacher the Brahmana world."

—**Manu**

एक भारतीय प्रार्थना (An Indian Prayer)—"गुरु ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है। वह समस्त ब्रह्माण्ड है। उसे प्रणाम है।"

"The teacher is Brahma; the Creator, he is God Vishnu, he is God Maheshwara
He is the entire universe, salutation to him."
– An Indian Prayer

कबीर का विचार (Kabir's view)– "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।"

"Teacher and God both are standing before me
Whom should I pay my obeisance ?
I bow to you my teacher
Who guided me to God."
– Kabir

हुमायूँ कबीर का विचार (Humayun Kabir's view)– अध्यापक वास्तव में राष्ट्र के भाग्य निर्माता है।"

"Teachers are literally the arbiters of a nation's destiny. –Humayun Kabir

डॉ. जाकिर हुसैन का विचार (Dr. Zakir Hussain's view)– "निःसन्देह अध्यापक हमारे भविष्य का निर्माता है।"

"The teacher is, indeed, the architect of our future." Dr. Zakir Hussain

दूसरी पंचवर्षीय योजना के निर्माता (Authors of the Second Five Year Plan)– "सदैव में अध्यापक ही शिक्षा पद्धति का केन्द्र होता है। बुनियादी परिवर्तन तथा नवीनता के इस काल में यह विशेष रूप से सत्य है।"

"At all times, the teacher is the pivot of the system of education. This is especially the case in a period of basic change and reorientation."

–**Authors of the Second Five Year Plan**

टिनडाल का विचार (Tyndall's view)– "यदि कोई व्यवसाय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तो मेरे विश्वास में वह स्कूल अध्यापक का है।"

"If there is any profession of a paramount importance, I believe it is that of the school master."
– Tyndall

सर जॉन एडम का विचार (Sir John Adam's view)– "अध्यापक मनुष्य का निर्माता है।"

"The teacher is maker of man."
–**Sir John Adam**

एच. जी. वल्ज का विचार (H. G. Wells' view)– "अध्यापक ही इतिहास का वास्तविक निर्माता है।"

"The teacher is the real maker of History."
–**H. G. Wells**

अध्यापक की भूमिका संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है–

1. अध्यापक एक सशक्त तत्त्व के रूप में (Teacher as the Most Vital Factor)–शिक्षा पद्धति में अध्यापक को ही अत्यन्त सशक्त तत्त्व समझा जाता है। **कोठारी आयोग** (Kothari Commission) के **अनुसार**–"शिक्षा के स्तर तथा राष्ट्रीय विकास में सहयोग को प्रभावित करने वाले सभी विभिन्न तत्त्वों में अध्यापकों का गुण, चरित्र तथा उनकी योग्यता ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।" वह शिक्षा के गुणात्मक स्तर की कुंजी है। शिक्षा का समूचा ढाँचा उसके प्रशिक्षण तथा उसकी शैक्षणिक योग्यताओं पर आधारित होता है। **सेकण्डरी शिक्षा आयोग** (Secondary Education Commission) ने भी इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा है कि सर्वोत्तम पाठ्यक्रम भी तब तक जीवित रहता है जब

तक उचित शिक्षण विधियों तथा अच्छे अध्यापकों द्वारा उनमें साँस फूँकी जाये। **हुमायूँ कबीर** का कथन है, "अच्छे अध्यापकों के अभाव में सर्वोत्तम विधियाँ भी असफल हो जाती हैं। अच्छे अध्यापकों के द्वारा पद्धति के दोषों को भी अधिकांश रूप से दूर किया जा सकता है।"

"Without good teachers, even the best of the systems is bound to fail. With good teachers even the defects of a system can be largely overcome."—**Humayun Kabir**

2. अध्यापक हमारे भविष्य का संरक्षक और निर्माता (Teacher as Custodian and Architect of our Future)—अध्यापक हमारे भविष्य का संरक्षक है। भूतपूर्व प्रधानमन्त्री **श्रीमती इन्दिरा गाँधी** के कथनानुसार—"राष्ट्र का हित अध्यापक के हित पर निर्भर है। हमारे बीस लाख अध्यापक हमारे भविष्य के संरक्षक हैं। हम अध्यापकों को सम्मानित करने तथा पालने की बात करते हैं, परन्तु क्या हमारे कार्य हमारी कथनी के अनुरूप हैं ? हमें केवल अध्यापकों को आत्म-बलिदान की शपथ से बाँध रखने का कोई अधिकार नहीं। अध्यापक हमारे भविष्य का निर्माता है। कोई भी समाज उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

3. अध्यापक राष्ट्र-निर्माता के रूप में (Teacher as the Nation Builder)—अध्यापक को राष्ट्र-निर्माता समझा जाता है। (Teacher is the architect of nation.) **प्रो. हुमायूँ कबीर** अध्यापकों को राष्ट्र का भाग्य-निर्माता कहते हैं। उसका सम्बन्ध उन बच्चों के साथ होता है जिन्हें कल देश का सशक्त नेता बनना है। राष्ट्र का भविष्य विद्या के मन्दिरों में शिक्षा प्राप्त कर रहे भावी नागरिकों पर निर्भर करता है। राष्ट्र-निर्माण का दायित्व अध्यापकों पर है।

4. अध्यापक समाज की रीढ़ की हड्डी (Teacher as the Backbone of Society)—अध्यापक हमारे समाज की रीढ़ की हड्डी है, विशेषकर उन सुदूर गाँवों में जहाँ स्कूल सामुदायिक जीवन का केन्द्र होता है। अध्यापक पढ़े-लिखे परिवारों के बीच में महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। वह राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोता है तथा लोगों का मित्र, सहायक एवं निर्देशक होता है। वह सभ्यता के दीप को हमेशा प्रज्ज्वलित करता है। वह हमारे भविष्य का निर्माता है।

5. अध्यापक एक सामाजिक इंजीनियर एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता (Teacher as the Social Engineer and Social Worker)—अध्यापक सामाजिक इंजीनियर तथा उपयोगी सामाजिक कार्यकर्त्ता होता है। वह समाज के आदर्शों, मूल्यों तथा उसकी परम्पराओं को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह समुदाय का परामर्शदाता होता है और विद्यार्थियों तथा उनके माता-पिता के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है, यहाँ तक कि लोग अपने पारिवारिक कार्यों में भी अध्यापक का परामर्श लेते हैं। लगभग सभी प्रगतिशील देशों में अध्यापकों ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है और अपने समाज को समृद्ध तथा प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया है।

6. अध्यापक सतत् प्रभावशाली (Teacher the Affector of Eternity)—अध्यापक विद्यार्थियों की आदतों, रुचियों तथा उनके व्यवहारों एवं चरित्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। (The teacher plays an important role in shaping and moulding the habits, interests, behaviour and character of the pupils.) अच्छी शिक्षा के लिए अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता होती है। वह आदिकाल से प्रभावित करता आया है और हमेशा प्रभावित करता रहता है। उसका प्रभाव कभी भी समाप्त नहीं होता।

अध्यापक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक (Dynamic) शक्ति है। यह सत्य है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ, निर्देशन कार्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें आदि सभी वस्तुएँ शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। परन्तु जब तक उनमें अच्छे अध्यापकों द्वारा

जीवन-शक्ति प्रदान नहीं की जायेगी, तब तक वे निरर्थक रहेंगी। अध्यापक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली संततियों पर अपना प्रभाव डालती है। अध्यापक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर विश्व-व्यवस्था तथा मानव-जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है अतः यह कहा जा सकता है कि मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम अध्यापकों पर निर्भर है

20.2 : अध्यापक के गुण (QUALITIES OF AN TEACHER)

समाज के भविष्य का निर्माण करने वाले प्राध्यापकों में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है। यह हमेशा से एक विचारणीय प्रश्न रहा है। शिक्षा मनीषियों ने अध्यापक की एक महान व्यक्तित्व के रूप में कल्पना की है। गुरु को केवल सैद्धान्तिक रूप से ग्रन्थ का ज्ञाता ही नहीं होना चाहिए वरन उसे स्वयं ब्रह्मानुभूति से सम्पन्न होना चाहिए। उसमें नैतिक गुणों तथा चारित्रिक सबलता का पूर्ण विकास होना चाहिए। अतः मानसिक शान्ति एवं जितेन्द्रियता तथा सब प्रकार के भोगों से विरक्त व अहंकारशून्यता और परोपकारशीलता आदि गुण अध्यापक के आभूषण हैं। नैतिक गुणों के साथ ही अध्यापक में शैक्षिक योग्यता, अध्यापन-कुशलता तथा अध्ययनप्रियता की उत्कृष्टता होनी चाहिए। समाज के विभिन्न स्तरों पर एवं क्षेत्रों में अन्धकार और निराशा हमें घेरे हुए है, उसमें आशा की किरण अध्यापकों से ही प्राप्त हो सकती है। अनेक अध्ययनोपरान्त शिक्षा मनीषियों ने एक आदर्श अध्यापक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक माना है–

डॉ. क्लैप (Dr. Clapp) के अनुसार–इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर एक आदर्श अध्यापक के निम्नलिखित गुण बताये हैं–

1. विद्वता (Scholarship)
2. स्फूर्ति या जीवन शक्ति (Vitality)
3. सहानुभूति (Sympathy)
4. कार्य सलग्नता (Sincerity)
5. स्पष्ट चिन्तन (Fairness of Mind)
6. उत्साह (Enthuriasm)
7. सुरक्षित (Reserve)
8. आशावादिता (Optimism)
9. वैयक्तिक आकृति (Personal Appearance)
10. सम्बोधन (Address)

संयुक्त राज्य अमेरिका में **डॉ. एफ. एल. क्लैप** ने सन् 1913 में अपने एक अध्ययन के उपरान्त उपर्युक्त दस गुणों का उल्लेख किया है।

अमेरिका में **बागले** तथा **कीथ** ने अपने अध्ययन में उक्त गुणों में तीन गुण और जोड़े हैं–चातुर्य, नेतृत्व की क्षमता तथा अच्छा स्तर। इन सूचियों को विद्यालयों के प्रधानाध्यापक, अध्यापक, निरीक्षक तथा अधीक्षकों की सम्मतियों के आधार पर विद्वानों ने बनायी थी। **बॉसिंग** ने अपने अध्ययन में छात्रों की सम्मति भी ली थी, जिसके आधार पर उक्त गुणों की सूची में दो अन्य गुणों–विनोदप्रियता तथा छात्रों के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण को भी सम्मिलित किया।

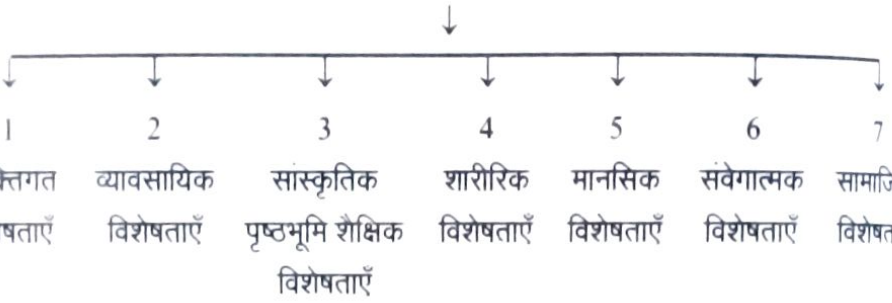
चार्ट्स एवं **वेपल्स** (Charters and Waples) ने अध्यापक में 25 गुणों तथा **श्री एस. एन. मुकर्जी** (S. N. Mukerji) ने एक आदर्श अध्यापक के व्यक्तित्व में मुख्य सात गुणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है–

1. व्यक्तिगत विशेषताएँ
2. व्यावसायिक विशेषताएँ
3. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक विशेषताएँ
4. शारीरिक विशेषताएँ
5. मानसिक विशेषताएँ
6. संवेगात्मक विशेषताएँ
7. सामाजिक विशेषताएँ

श्री एस. एन. मुकर्जी ने व्यक्तित्व के इन सात गुणों के अन्तर्गत कुछ अन्य गुणों को श्रेणीबद्ध किया है, जो इस प्रकार है–

आदर्श अध्यापक के गुण

(Qualities of an Ideal Teacher)



टी. रेमॉण्ट (T. Raymont) का मन्तव्य है कि समस्त छात्रों की दृष्टि अध्यापक पर लगी होती है इसलिए उनको उन सभी बातों का त्याग करना चाहिए जो तुच्छ एवं हीन हो। इसलिए यह आवश्यक है कि वे सदैव उच्च आदर्शों एवं विचारों को मन, वचन तथा कर्म से व्यवहार में लायें, जिनका उत्तम प्रभाव बालकों पर पड़ सके।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अध्यापक के व्यक्तित्व के प्रमुख गुणों को दो भागों में विभाजित कर अध्ययन कर सकते हैं–

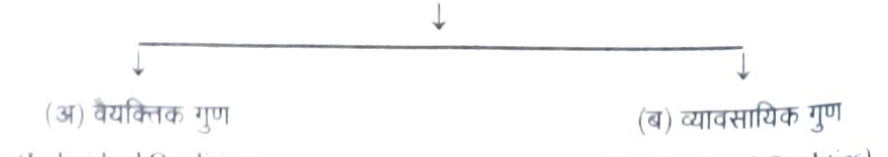
(अ) वैयक्तिक गुण (Individual Qualities)

(ब) व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)।

इन दोनों भागों के अन्तर्गत आने वाले आदर्श अध्यापक के अन्य गुणों को नीचे दिये गये रेखाचित्र के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं–

आदर्श अध्यापक के प्रमुख गुण

(Main Qualities of Ideal Teacher)



↓

1. उत्तम स्वास्थ्य एवं जीवन-शक्ति (Good Health and Vitality)
2. संवेगात्मक स्थिरता एवं सन्तुलन (Emotional Stability and Balance)
3. लोकतन्त्रीय नेतृत्व की क्षमता (Capacity of Democratic Leadership)
4. रुचि एवं उत्साह (Interest and Enthusiasm)
5. धैर्य एवं सहनशीलता (Patience and Toleration)
6. प्रेम एवं सहानुभूति (Love and Sympathy)
7. पक्षपात रहित (Lock Favouritism)
8. वेशभूषा (Dress)
9. कण्ठ स्वर (Voice)
10. भाषा (Language)
11. सगठित व्यक्तित्व एवं अच्छा चरित्र (Integrated Personality and Good Character)

1. विषय का उच्च ज्ञान (Knowledge of Subject)
2. बुद्धिमान एवं विचारशील (Intelligent and Thoughtful)
3. मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Psychology)
4. बाल-प्रकृति का ज्ञान (Knowledge of Child-nature)
5. कक्षा-व्यवहार (Class Manners)
6. व्यावसायिक निष्ठा (Professional Loyalty)
7. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं में रुचि (Interest in Co-curricular Activities)
8. प्रयोग एवं अनुसन्धान में रुचि (Interest in Experiment and Invention)
9. संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान (Knowledge of Culture and Civilization)
10. कक्षा नियन्त्रण शक्ति (Class Controlling Power)
11. शिक्षण सिद्धान्तों एवं पद्धतियों का समुचित ज्ञान (Well-acquaintance with Principles and Methods of Teaching)
12. वातावरण सम्बन्धी ज्ञान (Knowledge of Environment)
13. व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of the Necessities of Individual and Society)

विनोबा भावे ने लिखा है कि "अध्यापक में तीन गुणों का होना नितान्त आवश्यक है। उनके अन्दर अपने विद्यार्थियों के लिए प्रेम एवं वात्सल्य होना चाहिए। दूसरे, उन्हें निरन्तर अध्ययनशील होना चाहिए और तीसरा उन्हें राजनीति से दूर रहना चाहिए अर्थात् अध्यापकों को तीन गुणों का समुच्चय होना चाहिए—प्रेम, ज्ञान और तटस्थता।

20.2.1 वैयक्तिक गुण (Personal Qualities)

एक आदर्श अध्यापक मे कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं का होना बहुत जरूरी होता है। अध्यापक के कुछ प्रमुख वैयक्तिक गुण निम्नलिखित हैं–

1. उत्तम स्वास्थ्य एवं जीवन-शक्ति (Good Health and Vitality)–एक अच्छे अध्यापक का सबसे बड़ा गुण है–उसका उत्तम स्वास्थ्य हो और उसमे जीवन-शक्ति का संचार हो। **अरस्तू** ने ठीक ही लिखा है– स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है।'' अन्य शिक्षाशास्त्रियों का भी यही अभिमत है। परीक्षणों के आधार पर यह पाया गया है कि स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मस्तिष्क में उच्च प्रकार का सहसम्बन्ध होता है।'' **आर्थर बी. मौलमेन** का कथन है–''सफल अध्यापक के लिए जीवन-शक्ति का होना आवश्यक है। यह केवल इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि इसका प्रभाव बालकों पर प्रतिबिम्बात्मक रूप मे पड़ेगा, परन्तु थकान से उत्पन्न हुई बाधाओं को कम करने के लिए भी यह आवश्यक है।'' यदि अध्यापक का स्वास्थ्य खराब है तो वह सफलतापूर्वक अध्यापन कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि शक्ति एव स्फूर्ति अध्यापक में होना अति आवश्यक है। **हरबर्ट स्पेन्सर** का मत है– जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छा प्राणी होना आवश्यक है।''

2. संवेगात्मक स्थिरता एवं सन्तुलन (Emotional Stability and Balance)–अध्यापक में संवेगात्मक स्थिरता एवं सन्तुलन का होना परमावश्यक है। संवेगात्मक रूप से असन्तुलित अध्यापक बालक का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। इसलिए अध्यापक में संवेगात्मक स्थिरता एवं सन्तुलन का होना आवश्यक है। तभी वह छात्रों में भावात्मक विकास कर सकता है। छात्रों के संवेगात्मक असन्तुलन से समस्त विद्यालयी व्यवस्था और उसके संचालन में अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी।

3. लोकतन्त्रीय नेतृत्व की क्षमता (Capacity of Democratic Leadership)–अध्यापक में नेतृत्व की क्षमता का होना भी आवश्यक है। अध्यापक का नेतृत्व उसके चरित्र, शक्ति, प्रभावकारिता तथा दूसरों से प्राप्त आदर पर निर्भर करता है। अध्यापक का नेतृत्व उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। नेतृत्व की क्षमता पथ-प्रदर्शन करने, दूसरों की सहायता करना, समूह मे कार्य करना तथा समूह को उसके लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन देना तथा सत-पथ पर अग्रसर करने की क्षमता पर निर्भर है। **डॉ. बेलार्ड** के शब्दो में–''भावी अध्यापक अपने छात्रों पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डालने से बहुत कम सम्बन्ध रखेगा। इसके विपरीत, यह अपने छात्रों के व्यक्तित्व को समझने तथा प्रत्येक मे उस दीपशिखा को खोजने का प्रयत्न करेगा जो कि उनके व्यक्तित्व को देदीप्यमान बनाती है तथा उस शक्ति-स्रोत को खोजेगा, जो उनको प्रेरित करती है।''

4. रुचि एवं उत्साह (Interest and Enthusiasm)–एक अध्यापक के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कि वह अपने व्यवसाय के प्रति रुचि एवं उत्साह रखे। जिन अध्यापकों में अध्यापन के प्रति तथा अपने विषय में, स्वाध्याय मे रुचि नहीं है उसे अध्यापक बनने का अधिकार नहीं होना चाहिए। वह अपने आपको, छात्रों को तथा राष्ट्र को धोखा दे रहा है। **रायबर्न** ने ठीक ही कहा है–''अच्छा अध्यापक अपने कार्य के प्रति उत्साही होता है, वह अपने विषय तथा शिक्षण-प्रणाली के सम्बन्ध में अपने ज्ञान की वृद्धि करने में निरन्तर सचेष्ट रहता है, वह अपने ज्ञान को ताजा एवं समयानुकूल बनाये रखने के लिए सचेष्ट रहता है।''

5. धैर्य एवं सहनशीलता (Potience and Toleration)–धैर्य एवं सहनशीलता एक अध्यापक की सफलता के लिए आवश्यक है। धैर्य एवं सहनशील अध्यापक ही छात्रों को सही दिशा निर्देशन दे सकता है। यदि अध्यापक छात्रों की छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित होने लगता है और क्रोध मे आने पर

वह छात्रों को शारीरिक दण्ड देने लगता है, तो इससे छात्र के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। वरन् अध्यापक को चाहिए कि वह अपने शिष्यों की समस्याओं का बहुत ही धैर्य से [illegible] को समझाकर प्यार से सही रास्ते पर लाने का प्रयास करना चाहिए।

6. प्रेम एवं सहानुभूति (Love and Sympathy)—एक [illegible] के गुण होने चाहिए। जब अध्यापक अपने छात्रों के साथ मैत्री, प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करेगा तभी छात्रों का अपने अध्यापकों के प्रति निकटता बढ़ेगी और अध्यापक-छात्र के मध्य अन्त:क्रिया होगी। इससे छात्रों में प्रेम एवं सहानुभूति के गुणों का विकास होगा। छात्र अध्यापक को अपना मित्र समझकर अपनी समस्त समस्याओं से उसे अवगत करायेगा और अध्यापक का भी सहयोग करेगा। अध्यापक अपने इन्हीं गुणों के कारण विद्यालय परिवार के सभी सदस्यों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। **रायबर्न** के शब्दों में—"यदि अध्यापक चाहता है कि अपने शिष्यों से उसका सम्बन्ध फलदायक तथा सृजनात्मक रहे एवं उनके साथ उसका कार्य सफल हो तो उसे सहानुभूति का यह गुण [illegible] पड़ेगा और अपनी सहानुभूतिपूर्ण कल्पना शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा।"

7. वेशभूषा (Dress)—अध्यापक की वेशभूषा का छात्रों के ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि अध्यापक की वेशभूषा स्वच्छ और साफ-सुथरी है तो छात्रों में भी स्वच्छता एवं साफ-सफाई की आदत पड़ेगी। यदि अध्यापक बेमेल, बेढंगे और गन्दे कपड़े पहनता है, दाढ़ी, बाल बढ़े एवं बिखरे हों, कुर्ते तथा चप्पल बिना पॉलिश के पहनकर जैसे-तैसे अध्यापन कार्य करता है तो शिक्षार्थियों का अध्यापक के प्रति और सीखने के प्रति आकर्षण खत्म हो जाता है।

8. कण्ठ-स्वर (Voice)—अध्यापक का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण उसका मीठा, नम्र एवं कोमल स्वर है। यदि अध्यापक का स्वर ऊँचा कक्षानुकूल है, वाणी में सरसता है तो छात्र कक्षा में बैठकर और व्याख्यान सुनना पसन्द करेंगे। यदि अध्यापक का व्यवहार रूखा है, वाणी में कर्कशता है तो कक्षा में नीरसता बनी रहेगी। छात्र उस अध्यापक का व्याख्यान सुनना पसन्द नहीं करेंगे। अध्यापक को पाठ्य-वस्तु एवं भाव के अनुसार स्वर में उतार-चढ़ाव करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ में सजीवता तथा रोचकता लाने के लिए वाणी कक्षानुकूल होनी चाहिए। वास्तव में, स्वर न तो अधिक [illegible] होना चाहिए और न ही अधिक मन्द, बल्कि स्वर ऐसा होना चाहिए कि कक्षा के समस्त विद्यार्थी उसको सुन सकें।

9. भाषा (Language)—एक आदर्श अध्यापक की भाषा-शैली सरल एवं सुबोध होनी चाहिए। कक्षाध्यापन में पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु कठिन एवं दुरूह शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अध्यापक द्वारा अध्यापन के समय सरल तथा मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिससे छात्र कठिन से कठिन पाठ को समझ सकें और व्याख्यान सुनने में रुचि ले सकें।

10. आत्मविश्वास एवं दृढ़ इच्छा-शक्ति (Self-confidence and Strong Will-power)—एक अच्छे अध्यापक में आत्मविश्वास एवं दृढ़ इच्छा-शक्ति का होना अति आवश्यक है। आत्मविश्वास के अभाव में अध्यापक छात्रों को पढ़ाने में, उनके उलझाने वाले प्रश्नों का जवाब देने में तथा परिस्थिति और पाठ्यवस्तु के बदल जाने पर अपने को असहज महसूस करते हैं। घबराकर अपना मानसिक सन्तुलन खो देते हैं। ऐसे अध्यापक बालकों के उपहास के पात्र होते हैं। छात्र उनकी कक्षा में पढ़ना पसन्द नहीं करते हैं। कक्षा में अनुशासन का अभाव रहता है। अध्यापकों को चाहिए कि वे अपने ज्ञान में वृद्धि करें तथा विचार और तर्क-शक्ति का विकास कर वांछित परिणाम पर पहुँचने की आदत डालें। इससे उनमें आत्मविश्वास तथा दृढ़ इच्छा-शक्ति की वृद्धि होगी।

11. संगठित व्यक्तित्व एवं अच्छा चरित्र (Integrated Personality and Good Character)– आदर्श तथा सफल अध्यापक का संगठित व्यक्तित्व एवं अच्छा चरित्र होना अति आवश्यक है। तभी अपना अध्यापन प्रभावशाली बनाते हुए बालकों का भी संगठित व्यक्तित्व तथा अच्छा चरित्र बनाने समर्थ हो सकेगा। अपना अध्यापन प्रभावशाली बनाते हुए बालकों का भी संगठित व्यक्तित्व तथा अच्छा चरित्र बनाने में समर्थ हो सकेगा। यदि किसी अध्यापक का चरित्र भ्रष्ट होता है तो उसका अध्यापन ठीक नहीं होता, दूसरे उसका अनुकरण कर विद्यार्थी भी बुरी आदतों के शिकार होने लगते हैं। इसी प्रकार अध्यापक के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को परस्पर संगठित होना भी आवश्यक है, क्योंकि 'व्यक्तित्व' व्यक्ति के मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है।'

20.2.2 व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)

एक आदर्श अध्यापक में निम्नलिखित व्यावसायिक गुण होने चाहिए–

1. विषय का उच्च ज्ञान (Higher Knowledge of the Subject)–अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि उसे विषय का पूर्ण ज्ञान हो। यदि अध्यापक मे ज्ञान का अभाव है तो वह अपने छात्रों का न तो विश्वासपात्र बन सकेगा और न ही छात्रों से सम्मान प्राप्त कर पायेगा। इस सम्बन्ध मे एक विद्वान का मत है–''एक अयोग्य चिकित्सक मरीज के शारीरिक हित के लिए खतरनाक है। परन्तु एक अयोग्य अध्यापक राष्ट्र के लिए इससे भी अधिक घातक है, क्योंकि वह न केवल अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकृत बनाता है तथा हानि पहुँचाता है, वरन् उसके विकास को अवरुद्ध करता है तथा उसकी आत्मा को मरोड़ देता है।'' इसलिए एक अच्छे अध्यापक से यह आशा की जाती है कि वह अपने विषय का विद्यार्थी हमेशा बना रहे, क्योंकि ''एक जलता हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को प्रजवलित कर सकता है।''

के. जी. सैयदेन ने ठीक ही कहा है–''आप एक बर्तन में कोई वस्तु तब तक उँड़ेलकर नहीं निकाल सकते, जब तक कि आपने वह वस्तु उसमें रख न दी हो। यदि अध्यापक ज्ञान एव बुद्धि के दृष्टि से हीन एवं खोखला है, यदि उसमें ज्योति प्रदान करने वाली शक्ति नहीं है, तो वह अपने बालकों के मस्तिष्क को प्रखर या उनकी भावनाओं को मानवीय रूप प्रदान नहीं कर सकता। यदि वह स्वयं प्रदीप्त नहीं है तो वह दूसरो में ज्ञान के प्रकाश को प्रसारित करने में सदैव ही असमर्थ रहेगा।''

2. बुद्धिमान एवं विचारक (Intelligent and Thinker)–अध्यापक का सबसे बड़ा गुण उसका बुद्धिमान एव विचारक होना है। जो अध्यापक इन गुणो से विभूषित होते हैं, वे सदैव नवीन ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं, जिससे उनके ज्ञान मे वृद्धि होती है। ऐसे अध्यापकों का विषय-ज्ञान एव अन्य क्षेत्रों का ज्ञान व्यापक हो जाता है, जिससे वे अपने छात्रों को पढ़ाते समय एक विषय को दूसरे विषय से सम्बन्धित करके शिक्षण कार्य करेंगे। इस प्रकार अध्यापक को बुद्धिमान होने के साथ-साथ ज्ञानवान एव विचारक भी होना चाहिए।

3. मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Psychology)–एक आदर्श अध्यापक को मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि ''मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है।'' जब तक अध्यापक को छात्रों के व्यवहार (Child behaviour) का ज्ञान नही होगा तब तक वह सफल अध्यापक नहीं बन सकता। **मैडम मॉण्टेसरी** का कथन है–''एक अध्यापक जितना अधिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का ज्ञान रखता है उतना ही अधिक वह जानता है कि कैसे पढ़ाया जाये।'' **ड्रेवर** (Drever) के शब्दो– मनोविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण कारक है। हम शिक्षा की समस्या को बिना मनोविज्ञान के हल नहीं

कर सकते हैं।" एक अध्यापक को अपने अध्यापन कार्य की सफलता के लिए बाल-मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान आदि का ज्ञान होना चाहिए।

4. बाल-प्रकृति का ज्ञान (Know of Child-nature)—एक आदर्श अध्यापक के लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण गुण बाल-प्रकृति का ज्ञान होता है। बालक की रुचियों, प्रवृत्तियों, इच्छाओं, आदतों, रुचियों, आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों इत्यादि के बारे में ज्ञान होना पाठ्यवस्तु के अध्ययन से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव एक अध्यापक को बाल-प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए। **प्लेटो** (Plato) ने स्पष्ट कहा है—"एक अच्छे अध्यापक को बाल-प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए।" इसी प्रकार **एडम्स** (Admas) का कथन है—"जॉन को लैटिन पढ़ाने के लिए अध्यापक को जॉन की तरह जॉन का भी भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए।" (To teach John Latin the teacher must know John as well as Lation.) प्रसिद्ध प्रकृतिवादी शिक्षाशास्त्री **रूसो** (Rousseau) ने कहा है कि एक ऐसी पुस्तक है जिसे अध्यापक को आद्यन्त पढ़ना पड़ता है।

5. व्यावसायिक निष्ठा (Professional Loyality)—अध्यापक में अपने विषय तथा व्यवसाय के प्रति पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए। यदि अध्यापक में यह गुण नहीं है तो वह अपना एवं अपने छात्र के विकास अवरुद्ध कर देगा। **मार्क पैटिसन** का कथन है—"एक अच्छे अध्यापक का प्रथम गुण यह है कि वह एक अध्यापक हो और कुछ नहीं, और उसको एक अध्यापक के रूप में प्रशिक्षित किया गया हो। अध्यापक, जिनमें व्यावसायिक निष्ठा का गुण नहीं है, वे छात्र अहित तो करते ही हैं, अपने आपको भी धोखा देते हैं।

6. पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं में रुचि (Interest in Co-curricular Activities)—अध्यापक को अध्यापन कार्य के साथ-साथ पाठ्य-सहगामी क्रियाओं, जैसे—खेलकूद, स्काउटिंग, अभिनय, वाद-विवाद, भ्रमण, छात्र-स्वशासन, रेडक्रॉस, समाज-सेवा आदि में भी रुचि रखनी चाहिए जिससे छात्रों का सर्वांगीण विकास हो सके और शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति की प्राप्ति हो सके।

7. प्रयोग एवं अनुसन्धान में रुचि (Interest in Experiment and Invention)—आधुनिक युग में अध्यापकों से आशा की जाती है कि शिक्षा के व्यावहारिक एवं बहुमुखी बनाने के लिए शिक्षा से जुड़ी समस्याओं एवं अध्ययन-अध्यापन को बेहतर बनाने के लिए प्रयोग एवं अनुसन्धान कार्य करते रहना चाहिए।

8. संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान (Knowledge of Culture and Civilization)—एक आदर्श अध्यापक के लिए अपने समाज की संस्कृति तथा सभ्यता को अर्थात् अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण (Social and Cultural Environment) को जानना भी अति आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा के अन्य उद्देश्यों में बालकों को अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान प्रदान कर उन्हें इसमें आवश्यक परिवर्तन कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने की क्षमता प्रदान करना भी एक प्रमुख उद्देश्य है। अत: अध्यापक को चाहिए कि वह सभ्यता तथा संस्कृति के प्रतिमानों से बालकों को परिचित कराये ताकि वे उनमें समायोजन स्थापित कर स्वयं और दूसरों को लाभान्वित करने के लिए अग्रसर हों।

9. कक्षा-व्यवहार (Class-manners)—अध्यापक का कक्षा-व्यवहार अच्छा होना चाहिए, क्योंकि छात्रों में अनुकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। अध्यापक को हमेशा शिष्टता, सहानुभूति, प्रेम, सद्भावना आदि से ओत-प्रोत व्यवहार करना चाहिए। उनके चेहरे पर प्रफुल्लता और नम्रता के भाव होने चाहिए। अध्यापक को कक्षा में खड़े होने, पुस्तक पकड़ने, कुर्सी पर बैठने, श्यामपट्ट पर लिखने इत्यादि के शिष्टाचार प्रदर्शन करने की चेष्टा करनी चाहिए। छात्राध्यापक और अध्यापकों को कक्षा में बैठने तरीके

से खड़ा होना, अनावश्यक दाँतो से नाखून काटना, तम्बाकू या अन्य धूम्रपान करना, चॉक, डस्टर से छेड़छाड़ करना, नाक-कान कुरेदना, रुक-रुककर पढ़ाना, कक्षा में अनावश्यक बात करना, बार-बार कुछ शब्दो की पुनरावृत्ति करना, जैसे—यानि कि, जो है, समझे न, चूँकि इत्यादि का उपयोग नही करना चाहिए। अध्यापको की इन्हीं बुरी आदतो के कारण कभी-कभी बच्चे उनकी हँसी उड़ाते, किसी उपनाम से भी पीठ पीछे सम्बोधित करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में अध्यापक को शिष्टाचार में पारगत होना चाहिए, जिससे छात्रो मे भी अच्छी आदतें पड़ सकें तथा अच्छे आचार-विचार बने।

10. कक्षा नियन्त्रण शक्ति (Class Controlling Power)—एक कुशल अध्यापक में कक्षा नियन्त्रण की शक्ति होनी चाहिए, जिससे कक्षा का वातावरण इस प्रकार का रहे कि अध्यापक जो भी पढ़ाये, बच्चे रुचि के साथ पढ़ें और अध्यापक की आज्ञा का भी सहर्ष पालन करें। कक्षा पूर्ण रूप से अनुशासित रहे। अध्यापक-छात्र के मध्य अन्तःक्रिया होती रहे। यदि अध्यापक में कक्षा नियन्त्रण की शक्ति नहीं है तो कक्षा मे पढ़ने-पढ़ाने का वातावरण नहीं रहता। बालकों में अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति पनपने लगती है। अध्यापक में कक्षा नियन्त्रण की शक्ति होने का तात्पर्य किसी जेल का जेलर, फ़ौज का मास्टर या कसाई से कदापि नहीं है और न ही अध्यापक द्वारा कक्षा नियन्त्रण के लिए दमनात्मक अनुशासन से है। यहाँ कक्षा नियन्त्रण शक्ति से तात्पर्य अध्यापक के वे गुण, ज्ञान, शिक्षण सिद्धान्त, शिक्षण विधि, अध्यापन कला और बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान है, जिसके माध्यम से वह कक्षा को अनुशासित व नियन्त्रित रख सकता है।

11. शिक्षण सिद्धान्तों और पद्धतियों का समुचित ज्ञान (Well-acquaintance with Principles and Methods of Teaching)—एक कुशल अध्यापक का अध्यापन उसके शिक्षण सिद्धान्तों और पद्धतियों के सम्बन्ध मे जानकारी पर निर्भर होता है। अध्यापकों को चाहिए कि वह अपने अध्यापन प्रशिक्षण के समय शिक्षण सिद्धान्तों और पद्धतियों का समुचित ज्ञान प्राप्त करे। प्रशिक्षण के उपरान्त अध्यापक कार्य में उसका प्रयोग करे, अन्यथा उसका प्रशिक्षण प्राप्त करना व्यर्थ है। जब तक अधिगम स्थानान्तरण नहीं होगा तब तक किसी भी विषय या नियम, सिद्धान्त व विधियों का कोई मतलब नहीं होता।

12. वातावरण सम्बन्धी ज्ञान (Knowledge of Environment)—शिक्षण का तात्पर्य बालक का वातावरण से अनुकूलन करने मे सहायता देना है। यह तभी सम्भव है जबकि अध्यापक को मनोवैज्ञानिक एव समाजशास्त्रीय ज्ञान द्वारा उस वातावरण का ज्ञान हो, जिसमें बालक का जीवन व्यतीत होना है। जब अध्यापक को वातावरण का ज्ञान होगा तब वह बालकों को उससे अनुकूलन करने के लिए भली-भाँति पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

13. व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of the Neccessities of Individual and Society)—एक कुशल अध्यापक में अन्तिम, किन्तु महत्त्वपूर्ण गुण यह होना चाहिए कि वह व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओ का ज्ञान रखता हो, जिसकी पूर्ति करने के लिए वह अध्यापन कार्य करता है। यदि अध्यापक को इन आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं है तो वह यह नहीं समझ सकता कि आखिर उसे क्या और कैसे पढ़ाना है ? आज के प्रजातान्त्रिक युग में अध्यापक के लिए यह और भी आवश्यक हो गया है। संक्षेप में कह सकते है व्यक्ति एवं समाज की उन्नति तभी सम्भव है जब अध्यापक व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओ से भली-भाँति परिचित हो और उनकी पूर्ति के लिए शिक्षार्थियों को दिशा-निर्देशन और प्रोत्साहन दे।

20.3 : अध्यापक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व (DUTIES AND RESPONSIBILITIES OF TEACHER)

शिक्षा का आधार-स्तम्भ न तो पाठ्यक्रम है, न स्कूल और न सुन्दर पुस्तकें। शिक्षा का वास्तविक आधार-स्तम्भ अध्यापक है। योग्य अध्यापक भव्य भवन, सुन्दर पुस्तकों, आवश्यक साज-सज्जा के अभाव में भी सफलतापूर्वक शिक्षा प्रदान कर सकता है। अत: शिक्षा व्यवस्था योग्य और कुशल अध्यापक के अभाव में व्यर्थ सिद्ध होती है। अच्छे से अच्छा कुशाग्र बुद्धि बालक योग्य अध्यापक के मार्गदर्शन के अभाव में अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। अत: अध्यापक ही बालक के जीवन का निर्माता है और वही उसके मस्तिष्क का प्रशिक्षण कर उसे योग्य बना सकता है। अत: सर्वप्रथम अध्यापक को आत्म-उदाहरण द्वारा बालक को अच्छे व्यवहार की शिक्षा देनी चाहिए। अध्यापक का दूसरा प्रयास बालक में विनय अथवा अनुशासन लाने का होना चाहिए। अध्यापक को बालकों को किसी न किसी कार्य में लगाये रहना चाहिए, जिससे वे अवांछित दिशा में क्रियाशील न होने पायें। उनके अवकाश के घण्टों में भी खेलकूद जैसे कार्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए। क्रियाशीलता जीवन की सफलता का रहस्य है। अतएव बालकों को हर समय क्रियाशील रखना चाहिए। अध्यापक को अपना पाठ अच्छी तरह तैयार करना चाहिए और इस ढंग से पढ़ाना चाहिए कि बालक में स्वयं जानने की रुचि उत्पन्न हो। बालक को क्रियाशील रखने में उसकी व्यक्तिगत रुचियों का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि हर व्यक्ति की रुचि अलग होती है। कक्षा में शिक्षा देते समय अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखे। सुयोग्य अध्यापक का दायित्व केवल बालकों के मानसिक विकास तक ही नहीं है वरन् उसके आगे उसके शारीरिक विकास से भी है। उसे छात्रों के उठने, बैठने, चलने, फिरने तथा खाने आदि की क्रियाओं का अध्ययन कर उचित मार्गदर्शन करना चाहिए।

एक आदर्श अध्यापक के निम्नलिखित कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व हैं–

1. नेतृत्व के कार्य एवं जवाबदेही।
2. विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में अध्यापक की भूमिका।
3. मार्गदर्शक के रूप में अध्यापक।
4. छात्रों का शैक्षिक एवं चारित्रिक विकास करना।
5. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का संचालन करना।
6. छात्रों के कार्यों का मूल्यांकन करना।
7. प्रयोग एवं अनुसन्धान कार्य करना।
8. सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षण एवं पोषण करना।
9. बालक का सर्वांगीण विकास करना।
10. बालकों को प्राचीन अनुभवों और ज्ञान से परिचित कराना।
11. बालक को सामाजिकता का ज्ञान कराना।
12. छात्रों के समक्ष उच्चकोटि का मर्यादित व्यवहार प्रदर्शित करना।
13. शिक्षण कार्य का सफल सम्पादन करना।
14. अध्यापक का कार्य कक्षा तक ही नहीं, अपितु बालक के सामाजिक, व्यावसायिक, खेलकूद, व्यक्तिगत रुचियों के अलावा उसकी बुद्धि, योग्यता और घरेलू वातावरण का ध्यान रखना।
15. बालक में विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक शक्ति का विकास करना, क्योंकि विभिन्न विषयों को समझने के लिए आलोचनात्मक शक्ति की आवश्यकता होती है।

अध्यापक को प्रगतिशील होना चाहिए और साथ ही साथ उसमें तथ्यों के विश्लेषण करने की क्षमता होनी चाहिए, क्योंकि शिक्षा एक ऐसा विज्ञान है जो हमेशा विकास की ओर बढ़ता जाता है। अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह विकास प्रक्रिया की हर गतिविधि से परिचित रहे। अध्यापक का कर्त्तव्य अपने विषय को अच्छी तरह से पढ़ाना ही नहीं है, वरन् उसके लिए आवश्यक है कि उसे सामान्य ज्ञान भी अच्छा हो। उसे स्कूल से बाहर होने वाली बातों, जैसे—प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, हलचलों, उपलब्धियों, वैज्ञानिक आविष्कारों, खेलकूद, यहाँ तक कि विश्व संसार की महत्त्वपूर्ण घटनाओं इत्यादि का ज्ञान हो। बालक की जिज्ञासा और उसकी कल्पना की उड़ान असीमित है। यदि बालक का सर्वांगीण विकास करना है तो अध्यापक को चतुर्दिक ज्ञान होना चाहिए। अध्यापक का असली रूप जीवन अध्यापक के रूप में है, क्योंकि उसे बालक के जीवन का निर्माण उसके द्वारा करना होता है।

अध्यापक का सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व छात्रों में मानवता का विकास करना है, जिसमें वह मानवीय मूल्यों एवं दृष्टिकोणों को अपनाकर मानव-हित में कार्य कर सके। मानव-हित के लिए स्वार्थ का त्याग कर लोगों को मानवता का पाठ पढ़ा सके। छात्र में सामाजिक गुणों का विकास करना भी अध्यापक का कार्य है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए समाज में रहने की, सामजस्य की क्षमता, सामाजिक चातुर्य, उत्तम निर्णय शक्ति, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, परिस्थिति का सामना करने, अपनी कमी को स्वीकारने की तत्परता और सहकारिता की क्षमता इत्यादि गुणों का विकास छात्र में करना चाहिए।

विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में भी अध्यापक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन की प्रक्रिया सहयोगी एवं लोकतन्त्रीय प्रक्रिया है, किन्तु यह एक व्यापक एवं जटिल प्रक्रिया भी है। इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए एक कुशल शिक्षा प्रशासक की आवश्यकता होती है, जिसमें लोकतन्त्रीय नेतृत्व, निर्णायक शक्ति एवं सक्रिय कार्यक्षमता के गुण प्राप्त हों। एक आदर्श अध्यापक में कुशल प्रशासन के भी गुण होते हैं, जिसके आधार पर वह समस्त विद्यालयी गतिविधियों—प्रबन्धन एवं प्रशासन, जैसे—बजट बनाना, मूल्यांकन, समन्वय, नियन्त्रण, संचालन, योजना निर्माण, नैतिक स्तर का निर्माण, निर्देशन एवं सगठन के लक्ष्यों की व्याख्या में अपना सहयोग प्रदान करता है।

अध्यापक को मानव प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि उसे भिन्न-भिन्न स्वभाव, योग्यता और रुचि वाले बालकों के सम्पर्क में आना पड़ता है। अतः जब तक वह बालक की अन्त:प्रवृत्तियों को ठीक से समझेगा नहीं, तब तक उसकी क्षमता का सही मूल्यांकन नहीं कर सकता और न ही उसका उचित मार्गदर्शन भी कर सकेगा। अध्यापक को ऐसी अन्तर्दृष्टि का विकास करना होगा, जिससे वह दूर तक सोच सके और असफलताओं तथा निराशा का सामना होने पर भी धैर्य न खोये।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्यापक मानवीय गुणों का ऐसा पुंज है जो यन्त्रवत् कार्य करने के बजाय विवेक और कल्पना से काम ले। तभी वह सफल अध्यापक होकर भावी नागरिकों का सर्वांगीण विकास कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक में लगन, परिश्रम और सेवा- भावना कूट-कूटकर भरी होनी चाहिए।

20.4 : अध्यापक एक प्रबन्धक के रूप में (TEACHER AS A MANAGER)

विद्यालयों की गुणवत्ता बहुत हद तक उसके अध्यापकों की योग्यता पर आधारित है। अध्यापक कक्षा के कमरे में गुणवत्ता और शिक्षण के मुख्य स्तम्भ हैं। अगर हम यह चाहते हैं कि विद्यालय उचित रूप से फले-फूले तो यह स्वय-सिद्ध है कि उसके अध्यापक कर्त्तव्यों का निर्वाह अपनी पूर्ण योग्यताओं के

साथ करें। यह विचार कि अध्यापक ही प्रबन्धक है अभी बिल्कुल नया है
है और बहुत-से लोग अभी सदेह करते है कि यह सम्भव
प्रबन्धन की परिभाषाएँ बहुत है और भिन्न-भिन्न है
प्रस्तुत करना नहीं है बल्कि व्यावहारिक मार्गदर्शन करना है
होता है–

(i) अनुदेशों, उद्देश्यों एव लक्ष्यों को निश्चित करना।

(ii) जो प्रगति की जायेगी उसकी योजना तैयार करना

(iii) उपलब्ध साधनों जैसे जनसाधारण, समय सारणी का
किफायती ढंग से उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

(iv) प्रक्रिया को नियन्त्रित करना (यानी योजना के मद्देनजर उपलब्धियों
जहाँ सम्भव हो संशोधनात्मक कार्यवाही करना।)

(v) संगठनात्मक मानकों को सुधारना एव तय करना।

क्योंकि सभी अध्यापन कार्यों में प्रबन्धन के कुछ-न-कुछ तत्त्व होते है
प्रत्येक अध्यापक एक प्रबन्धक है।

1. साधनों का प्रबन्धन (Management Resource)–एक अध्यापक के
कक्षा में उपलब्ध थे वे थे, पाठ्य-पुस्तकें, कागज, ब्लैक बोर्ड और छात्रों से
अतिरिक्त प्रबन्धन के लिये शायद ही और कुछ सुलभ था। जबकि ये साधन
सरलतापूर्वक जुटाए जा सकते हैं, एक नये अध्यापक को आजकल विभिन्न साधनों
होता है। इन साधनों में आते है–आत्म-अनुदेशात्मक सामग्री, भाषागत प्रयोगशालाएँ
प्रौद्योगिकी जैसे कार्यक्रमित मूल पाठ, दूरदर्शन, रेडियो, दृश्य-श्रव्य कैसेट
व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाना भी महत्त्वपूर्ण है और परिणामतः
विभिन्न प्रकार की पठन-पाठन सामग्री की माँग है।

अध्यापक द्वारा निम्नलिखित के सम्बन्ध में निर्णय लिये जाने है–

(i) सूचनाओं के प्रेषण मे अपनाई जाने वाली तकनीक व प्रचार माध्यम के विषय में

(ii) स्वदेशी शिक्षण सहायक सामग्री का विकास।

(iii) समुदाय से वांछित सहायक सामग्री की प्राप्ति।

(iv) ससाधनों के नियत्रण एव परिवीक्षण मे उत्तरदायित्व की कसौटियों का निर्माण

2. पाठ्यचर्या का नियोजन (Planning of Curriculum)–साधारणतः यह अनुभव किया जा
रहा है कि ज्ञान की मात्रा जो छात्र पर लादी जा रही है वह उसकी सामर्थ्य एव समझ से परे है। समस्या
आवश्यक विषय-वस्तु को निकाल देने की नहीं है अपितु उसमें से उस सामग्री के चयन की है जो अगले
पचास वर्षों मे वयस्क होने जा रहे छात्रों के लिये लाभदायक है। यह महत्त्वपूर्ण है कि विषयों की
आवश्यकता की बजाय छात्रों की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए उद्देश्यों का चयन किया जाये।
उस बिन्दु पर निर्णय लिया जाना सर्वोत्तम है जहाँ सम्बन्धित सूचना उपलब्ध है। यदि हम इस बात के
प्रति सचेत है कि क्या पढ़ाया जाये और कैसे पढ़ाया जाये तो केवल अध्यापक ही छात्रों की व्यक्तिगत
आवश्यकताओं, योग्यताओं एवं अभिवृत्तियों को आँकने की स्थिति में है। आजकल विद्यालय में छात्रों के
लिये उपलब्ध अधिगम साधनों और विभिन्न उपायों जिनके द्वारा वे अपना समय व्यतीत करते है इनके
लिये एक अध्यापक की अवधारणा बाधक प्रबन्धक के रूप में जोर पकड़ती जा रही है और यह और
अधिक विस्तृत हो गई है। अध्यापक छात्रों की अधिगम परिस्थिति और ससाधनों का प्रबन्धक है।

अध्यापक को निम्नलिखित पर स्वस्थ निर्णय लेने होते है–

(i) अनुदेशात्मक सामग्री।

(ii) भिन्न आयु एव योग्यता वाले छात्रों के लिये विषय अथवा क्रियाओं की उपयुक्तता।

(iii) विशेष परिस्थितियो मे अधिगम कार्यशैली का अपनाया जाना जैसे कि वह कैसी हो चाहिये – अभिव्यक्ति आधारित, खोज आधारित या जाँच आधारित।

(iv) अधिगम पर नियन्त्रण कब अध्यापक द्वारा और कब छात्रों द्वारा किया जाये और किस मात्रा मे जनमानस द्वारा अधिगम हो।

3. नवाचार और परिवर्तन का प्रबन्धन (Management of Innovetion and Change)– कक्षा के कमरे मे किसी भी प्रकार के नवाचार के क्रियान्वयन से अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। उसे उन परिस्थितियो और वातावरण का प्रबन्धन करना है जिससे कि नवाचारों का क्रियान्वयन सर्वाधिक प्रभावकारी ढग से किया जा सके। सफलता के लिये परिवर्तन की विभिन्न आकृतियाँ अध्यापक तत्व पर ही निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिये अगर विद्यालय में अध्यापन प्रणाली में कुछ परिवर्तन करने का निर्णय लिया जाता है तो निश्चित रूप से इससे प्रशासन सम्बन्धी कुछ मुद्दे उठेंगे। इसमे विकास के लिए विद्यालय के साधनो के प्रसार का समावेश होगा; जैसे सेवा-अवधि में प्रशिक्षण कार्यक्रम, साधन के रूप में पुस्तकालय का प्रयोग, नई सामग्री का प्रकाशन, सहायक सामग्री, समय-सारणी की रचना आदि। अत: हमे एक अध्यापक की भूमिका पर पुनर्विचार करना होगा क्योंकि उसे पर्याप्त प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करना होता है।

4. पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप का प्रबन्धन (Management of Co-curricular Activities)–पिछले कुछ वर्षों में बच्चों के व्यक्तित्व विकास मे पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप के महत्व को मान्यता मिली है। पूर्वकाल में विद्यालयों में आमतौर पर पुस्तकीय ज्ञान पर ही जोर था और पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप पृष्ठभूमि में डाल दिये जाते थे। आज बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास मे पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप की भूमिका को विस्तृत रूप से अनुभव किया गया है। अध्यापक को पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप के उद्देश्यों और महत्त्व को समझने की आवश्यकता है। उसे विभिन्न प्रकार के पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप का ज्ञान होना चाहिये जैसे वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिताएँ, प्रश्न मंच, नाटक, नृत्य, गायन इत्यादि। उसे पहले से ही विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप की योजना बना लेनी चाहिए और विभिन्न सभाएँ जैसे विज्ञान-क्लब, भाषा-क्लब, गणित-क्लब, राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडिट कोर आदि का आयोजन करना चाहिये। अध्यापक शैक्षिक भ्रमण, प्रदर्शनी, क्षेत्र भ्रमण एवं विद्यालय में प्रात:कालीन सभा का आयोजन करता है।

अध्यापक पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप के प्रबन्धन का मुख्यकर्ता होता है। इस क्षेत्र में अध्यापकों की निर्णय लेने की प्रक्रिया मे भागीदारी काफी विस्तृत होती है।

इस क्षेत्र मे ये निर्णय लिये जाते हैं–

(i) विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप जैसे वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिता, प्रश्न मच, नाटक, नृत्य, गायन आदि की उपयोगिता/उपयुक्तता।

(ii) छात्रों की छिपी प्रतिभा का पता लगाना।

(iii) विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप का पहले से ही आयोजन।

(iv) शैक्षिक यात्रा, प्रदर्शनी, क्षेत्र-पर्यटन का आयोजन।

(v) देशभक्ति भावना एव श्रद्धा के विस्तार हेतु प्रात:कालीन सभाओ का आयोजन।

5. परीक्षाओं का प्रबन्धन (Management of Examination)—यह सदा अध्यापक के परम्परागत कार्यों में से एक कार्य समझा जाता है। तो भी, अगर हम इसकी बारीकी से जाँच करें तो यह निकल सकते है कि प्रत्येक कदम पर अध्यापकों को विभिन्न प्रकार के छोटे बड़े निर्णय लेने में सम्मिलित होना पड़ता है। अध्यापक को मूल्याकन के महत्त्व की समझ रखनी पड़ती है और उसे विभिन्न प्रकार की मूल्याकन तकनीकों की जानकारी होनी चाहिये जैसे परीक्षा सूची [illegible] तकनीकों की पहचान, वैज्ञानिक आधार पर प्रश्नपत्रों को तैयार करना परीक्षा प्रशासन के विभिन्न स्तरों मानदण्डों का अनुसरण करते हुए परीक्षा सचालित करना आदि। कुछ [illegible] अध्यापक को करना पड़ता है। वह छात्रों से फीडबैक प्राप्त करने में सम्मिलित होता है और जो छात्र अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाते उनके लिये उसे उपचारात्मक अनुदेश-नीतियों [illegible]

एक अध्यापक—

(i) परीक्षा के लिये तिथि, समय, स्थान और निरीक्षकों का निर्णय करता है

(ii) अन्य अध्यापकों से चर्चा करके परीक्षा-पद्धति का निर्णय करता है

(iii) वैज्ञानिक आधार पर प्रश्न-पत्र तैयार करता है और विषय-वस्तु [illegible] उचित अंक-निर्धारण करता है।

(iv) पिछड़े छात्रों के लिये उपचारात्मक एवं अनुदेशात्मक कार्य शैली अपनाने में [illegible] करता है।

6. द्वन्द्व प्रबन्धन (Conflict Management)—एक प्रबन्धक के रूप में अध्यापक को विभिन्न नेतृत्व तकनीकों का विकास करना होता है जिन्हें मिलाकर नेतृत्व शैली कहा जा सकता है। एक अध्यापक कक्षा के कमरे में साधारण आधारभूत समस्याओं का सामना करता है। विभिन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक विश्वासों की पृष्ठभूमि वाले छात्र समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का सामना करते हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु जो उपाय वे अपनाते हैं, वे पर्याप्त रूप से भिन्न होते हैं। एक अध्यापक को निष्पक्ष रूप से एक-दूसरे के दृष्टिकोण को सुनना और समझना पड़ता है। द्वन्द्व का वैयक्तिकरण करने की बजाय तथ्यों एवं मुद्दों पर केन्द्रित होना होता है। एक खुला वातावरण तैयार करना होता है सम्बन्धित व्यक्तियों के बीच चर्चा के अवसर प्रदान करने होते हैं।

7. समय प्रबन्धन (Time Management)—हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि अध्यापक [illegible] संगठन के मूल्यवान साधन हैं। उनके प्रबन्धकीय कार्यों में से उनके समय की सर्वाधिक उपयोग [illegible] केन्द्रीय कार्य है। यह एक कठोर सत्य है कि जो अध्यापक लगातार समय के विरुद्ध दौड़ लगाते हैं वे शायद ही प्रभावकारी होते हैं। अध्यापक भली-भाँति अवगत हैं कि उनकी सेवा में पिछले दशकों में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं। अध्यापक अब वह नहीं है जो पहले कभी था। अपेक्षाएँ घनीभूत हुई हैं और अध्यापक भयानक रूप में कार्य भार से दब गये हैं। इस परिदृश्य में समय प्रबन्धन की तकनीक विशेष महत्त्व रखती है। अध्यापक समय-विश्लेषण का प्रयोग करते हैं और प्रतिदिन की क्रियाओं की सूची तैयार करते हैं, पिछले दिन की सूची का पुनरवलोकन करते हैं और जो नहीं हो पाया उसे अगले दिन के लिये आगे ले जाते हैं। एक अध्यापक सभी शैक्षिक एवं सहपाठ्यचारी क्रियाकलाप को उनके आनुपातिक महत्त्व की दृष्टि से व्यवस्थित करता है।

20.5 : अध्यापक एक सुगमकर्ता के रूप में (TEACHER AS A FACILITATOR)

अध्यापक विद्यार्थियों को अधिगम के लक्ष्य को समझने तथा उन्हें प्राप्त करने में सहायता करता है। वह कक्षा का अधिनायक नहीं है कि विद्यार्थियों की गतिविधियों को नियन्त्रित करे। अध्यापक को

चाहिए कि वह विद्यार्थियों को सृजनात्मकता और अभिनव कार्यों के लिए अवसर उपलब्ध करा बहसपूर्ण विचार-विमर्श और दलकार्य के माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागि सुनिश्चित कर सकता है जिससे अधिगम प्रक्रिया बोधगम्य हो जाती है।

वह अध्यापक अपने कार्य मे सफल होता है जो कक्षा को साध्य बनाने में सक्षम होता है। इस की कक्षाओ में अध्यापक और विद्यार्थियों के मध्य सकारात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, यहाँ तक विद्यार्थियो के मध्य भी सकारात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। कक्षा को साध्य बनाने में अध्यापक भूमिका निम्नवत् चिह्नित की जाती है–

(i) कक्षा का नेतृत्व,

(ii) अध्यापन की परम्परागत विधियों को ही नहीं अपनाता,

(iii) विद्यार्थियो को स्वयं-अधिगम के लिए प्रोत्साहित करना,

(iv) विभिन्न विचारों पर ध्यान देना,

(v) प्राप्त विचारों के बारे में अपने विचार बनाना, तथा

(vi) स्वयं छान-बीन और बातचीत करके संदर्भित प्रकरण तैयार करना।

एक अध्यापक तभी कक्षा में सुगमकर्ता के रूप में सफलता से कार्य कर सकता है, जब–

1. अध्यापक को बालकों की वृद्धि/विकास तथा अधिगम का ज्ञान हो।

2. अध्यापक विद्यार्थियों की रुचि और आवश्यकताओं पर ध्यान देता हो।

3. अध्यापक विद्यार्थियों के सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रति संवेदनशील हो।

4. अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से अवगत हो तथा पूर्व ज्ञान को नए अनुभवों के साथ जोड़ की दक्षता रखता हो।

5. अध्यापक विद्यार्थियों को सुरक्षित अधिगम, वातावरण प्रदान करने में सक्षम हो, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी को सम्मान मिले और महत्वपूर्ण समझा जाए।

6. अध्यापक वैयक्तिक आवश्यकताओं के साथ-साथ विद्यार्थियों की समूह-आवश्यकताओं को समझ

7. अध्यापक विद्यार्थियों को उत्तरदायित्व वहन करने के लिए प्रेरित करे।

8. अध्यापक विद्यार्थियों को स्व-अधिगम के लिए प्रेरित करे।

एक सुगमकर्ता के रूप में अध्यापक के निम्न दायित्व हैं–

1. विद्यार्थियो के अधिगम की निगरानी करना।

2. विद्यार्थी जब कोई कार्य कर रहे हों, और अधिगम प्रक्रिया में संलग्न हों, तब उनके साथ बने रहना

3. विद्यार्थी के किसी अनुचित व्यवहार को नियंत्रित करना।

4. कक्षा आरम्भ होने से पूर्व संबंधित उपकरणों की जाँच करना।

5. कक्षा मे अनुपस्थित रहने वाले विद्यार्थियों को संज्ञान में लेकर उचित कदम उठाना।

6. विद्यार्थियों की उपलब्धि का परीक्षण करना।

7. आवश्यकतानुसार नैदानिक परीक्षण तथा उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना।

20.6 : अध्यापक : एक परामर्शदाता (TEACHER : A COUNSELOR)

शिक्षा का केन्द्रीय घटक विद्यार्थी होता है और उन्हें सही दिशा में परामर्श देने वाला अध्यापक होता है। अध्यापक द्वारा विद्यालय मे बालक को जो सिखाया जाता है या जैसा वह सीखता है वैसा ही व्यवहार

करता है। अध्यापक की भूमिका है कि वह अपने विद्यार्थियों को केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न रखे। उनका मार्गदर्शक बनकर उन्हें अच्छा नागरिक और समाज दर्शक बनाकर समाज की छात्र-सी चीज से जोड़े। उन्हें हर उस बात, घटना, विचार, भावना को समझाए जिससे उन्हें अपने परिवेश, समाज से जुड़ने और समझने मे सहायता मिले।

एक मार्गदर्शक अध्यापक का व्यवहार आज के संदर्भ मे मित्रवत होना चाहिए। मित्रवत व्यवहार होने पर विद्यार्थी अपनी वैयक्तिक समस्याओं को खुलकर प्रकट कर सकते है और अध्यापक सफलतापूर्वक उनका मार्गदर्शन कर सकता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया मे अनेक ऐसे क्षेत्र और अवसर होते है जहाँ विद्यार्थियों को वांछित और उपयुक्त मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिसके अभाव मे शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव ही नही है। प्रत्येक विद्यार्थी के सामने समायोजन की समस्या होती है, समस्याओं के समाधान की क्षमता के अभाव के कारण वह समायोजन मे असफल रहता है, ऐसी अवस्था मे उसे अध्यापक के मार्गदर्शन की आवश्यकता रहती है।

शिक्षा समाज की वह प्रक्रिया है जो बालक के सर्वांगीण विकास को पूरा करने मे समर्थ है, यदि बालक मे कुछ दोष हैं तो उनका निराकरण अध्यापक के मार्गदर्शन द्वारा संभव है। अध्यापक का मार्गदर्शन विद्यार्थी को वांछित लक्ष्य तक पहुँचने मे सहायता करता है। विद्यार्थी स्वय भी अपने मे निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं के उपयोग में सक्षम हो जाता है। परामर्शदाता के रूप मे अध्यापक के दायित्व निम्नवत् निर्धारित किए जा सकते हैं–

1. विद्यार्थियों को शिक्षा कार्य और उद्देश्यों से परिचित कराना।
2. विद्यार्थियों को आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना।
3. पाठ्यक्रम, विद्यालय तथा सामाजिक जीवन में विद्यार्थियों को समायोजन मे सहायता करना।
4. विद्यार्थी को समस्या समाधान के योग्य बनाना।
5. योग्यता और क्षमता के अनुसार शैक्षिक अवसर प्रदान करना।
6. विद्यार्थी में निहित विशेषताओं के विकास में योग देना।
7. विद्यार्थी को आत्मनिर्देशन के योग्य बनाना।

20.7 : अध्यापक एक समुदाय नेता के रूप में (TEACHER AS A COMMUNITY LEADER)

अध्यापक विद्यालय का ही नहीं वरन् समुदाय का भी नेता होता है। उसे सदैव अभिभावकों का उपलब्ध रहने हेतु प्रेरित करना चाहिये। अध्यापक-अभिभावक संघों के गठन तथा उनके उचित संचालन द्वारा ही अध्यापक व अभिभावक मिल-जुलकर छात्र का उचित विकास कर सकते है।

सामुदायिक विकास के लिये अध्यापक को यथासम्भव प्रयास करने चाहिये। स्थानीय सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेकर उसे समुदाय की कठिनाइयों एवं समस्याओं के निवारण हेतु मार्गदर्शन करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. अध्यापक की भूमिका एव महत्त्व का विवेचन कीजिए।
2. अध्यापक के गुणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. अध्यापक के कर्त्तव्यों को समझाइये।
2. अध्यापक को एक परामर्शदाता के रूप में समझाइये।
3. अध्यापक एक सुगमकर्ता के रूप में कैसा होता है ? बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. "नि सन्देह अध्यापक हमारे भविष्य का निर्माता है।" किसका कथन है ?

   (अ) जाकिर हुसैन (ब) हुमायूँ कबीर

   (स) टिनडाल (द) इनमे से कोई नहीं उत्तर–(ब

2. अध्यापक की भूमिका है–

   (अ) एक सशक्त तत्व के रूप में (ब) राष्ट्र निर्माता के रूप में

   (स) समाज की रीढ़ की हड्डी (द) उपर्युक्त सभी उत्तर–(द

3. एक शिक्षक के गुण हैं–

   (अ) व्यक्तिगत (ब) व्यावसायिक

   (स) शारीरिक (द) उपर्युक्त सभी उत्तर–(द

4. "अध्यापक ही इतिहास का वास्तविक निर्माता है।" किसका कथन है?

   (अ) एच.जी. बल्ज (ब) डिनडाल

   (स) जाकिर हुसैन (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर–(ब

□□

अध्याय

21

कक्षाकक्ष प्रबन्धन : अवधारणा, सिद्धान्त, प्रविधियाँ एवं प्रभावित करने वाले कारक

[CLASSROOM MANAGEMENT : CONCEPT, PRINCIPLES, TECHNIQUES AND FACTORS INFLUENCING IT]

21.1 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन की अवधारणा (CONCEPT OF CLASSROOM MANAGEMENT)

विद्यालय के लिए मुखिया का जो महत्त्व होता है वही महत्त्व कक्षा के लिए अध्यापक का होता है। विद्यालय प्रबन्धन **सस्था के मुखिया के गतिविधि-क्षेत्र के अन्तर्गत** आता है लेकिन कक्षाकक्ष का प्रबन्धन कक्षा अध्यापक **की पूर्ण जिम्मेदारी होती है।** अध्यापक से अपनी कक्षा का नियन्त्रण (प्रबन्धन) करने की उम्मीद **की जाती है।** कक्षा प्रबन्धन में अध्यापक को पर्यवेक्षकीय स्टाफ (Supervisory staff)–विद्यालय का मुखिया और अन्य नियन्त्रण अधिकारियों–निरीक्षण स्टाफ या विद्यालय के प्रबन्धन (प्रबन्धन मण्डल) की उम्मीदो पर खरा उतरना चाहिए।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत एव प्रभावशाली बनाए जाने के लिए शिक्षक द्वारा की गई उन सभी प्रक्रियाओ को कक्षाकक्ष प्रबधन का मूलतत्व माना जाता है। जिससे शिक्षक एव छात्र अत क्रिया मे वृद्धि होती है। साथ ही कक्षा शिक्षण मे उत्पन्न बाधाओ को कम किया जाता है। कक्षाकक्ष प्रबधन कहलाता है। अध्यापक के लिए कक्षा का कुशल प्रबन्धक होना आवश्यक है। केवल सुसचालित कक्षा मे ही शैक्षिक क्रियाएँ सीखने में सफलता प्राप्त हो सकती है। सफल तथा शिक्षण के लिए कक्षा नियन्त्रण आवश्यक है। यदि अध्यापक कक्षा को अच्छी तरह नियन्त्रित करने में समर्थ नही है, तो उसे अध्यापक नही कहा जा सकता। कक्षा प्रबन्धन प्रत्यक्ष रूप से अध्यापक के व्यक्तित्व के अनुपातिक होता है। अध्यापक मे निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. सामान्य अकादमिक गुण (General Academic Qualities),
2. व्यावसायिक कार्यकुशलता (Professional Efficiency), और
3. व्यक्तित्व गुण (Personality Traits)।

1. **सामान्य अकादमिक गुण** (General Academic Qualities)–(1) विषयवस्तु पर स्वामित्व (Mastery of the subject-matter), (2) पर्याप्त सामान्य ज्ञान (Adequate general knowledge), (3) ज्ञान की पिपासा (Thirst for knowledge), (4) अभिव्यक्ति मे प्रवाह (Fluency in expression) इत्यादि।

2. **व्यावसायिक कार्यकुशलता** (Professional Efficiency)–(1) पर्याप्त व्यावसायिक प्रशि... (Adequate professional training) (सेवा-पूर्व प्रशिक्षण), (2) व्यावसायिक प्रवीणता (Professio... proficiency), (3) सेवा मे रहते हुए प्रशिक्षण (In-service training), (4) शिक्षण अनुभव (Teach... experience), (5) व्यवसाय के लिए प्रेम (Love for profession)।

3. **व्यक्तित्व गुण** (Personality Traits)–जैसे कि (1) अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य (Go... physical health), (2) सवेगात्मक और मानसिक स्वास्थ्य (Emotional and mental healt... (3) अच्छी बुद्धि (Good intellect), (4) उच्च चरित्र (High character), (5) बच्चो के लिए ... (Love for children), (6) विनोदप्रियता (Sense of humour), (7) आशावादी दृष्टिकोण (Optimis... outlook), (8) लोकतात्रिक दृष्टिकोण (Democratic outlook), (9) न्याय और निष्पक्षता (Justi... and impartiality), (10) सहानुभूति और बुद्धिमत्ता (Sympathy and wisdom), (11) समय ... पाबन्दी (Punctuality), (12) आत्मविश्वास (Self-confidence), (13) आत्म-विश्लेषण (Self-analysis... (14) उत्साह (Enthusiasm), (15) परिश्रमशीलता (Industriousness), (16) मिलनसारि... (Sociability) और (17) प्रगतिशील चिन्तन (Progressive thinking)।

यदि अध्यापक मे उपरोक्त गुण हो, तो वह अपनी कक्षा के छात्रो के साथ न्याय कर सकता है

21.2 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (MEANING AND DEFINITIONS OF CLASSROOM MANAGEMENT)

21.2.1 कक्षाकक्ष का अर्थ (Meaning of Classroom)

जॉन डीवी का विचार (John Dewey's View)–"कक्षाकक्ष मे ऐसी स्थितियाँ होती है जो छात्रो की गुणोन्मुख गतिविधियो को आगे बढ़ाती है अथवा बाधा डालती है, प्रेरित करती है अथवा रोक लगाती है।

"Classroom consists of those conditions that promote or prevent, stimulates or checks the characteristic activities of the pupils." **–John Dewey**

ज्योति क्रिश्चियन का विचार (Jyoti Christian's View)–"कक्षाकक्ष समाज मे स्थापित सस्था है। कक्षाकक्ष मे दी जाने वाली निर्देशन प्रक्रिया अध्यापक द्वारा स्वीकृत महत्त्वपूर्ण व्यवहारो द्वारा छात्रो के मस्तिष्क को परिष्कृत करने के उद्देश्य को पूरा करती है।"

"Classroom is an established organisation in the society. The instructional process that goes on in the classroom serves the purpose of cultivating pupils' mind through significant practices accepted by the teachers." **–Jyoti Christian**

होमन का विचार (Homan's view)–"कक्षाकक्ष ऐसा स्थान है जहाँ विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चलती है, जहाँ पारस्परिक क्रिया होती है, सामाजिक परिस्थितियो को बेहतर बनाया जाता है और निर्देशात्मक स्थितियो मे नियम बनाये जाते है।"

"Classroom is a place where various activities are going on, where interactions take place, social situations are enhanced and norms are built up in instructional situations." **–Homan**

फिलिप जैक्सन का विचार (Philip Jackson's View)–"कक्षाकक्ष ऐसा स्थान है जहाँ छात्र अपने जीवन निर्माण काल का अधिकतर समय व्यतीत करते है। यह वह स्थान भी है जहाँ परीक्षण असफल और सफल होते है, मन बहलाने की बाते पूरी होती है, जहाँ नई अन्तर्दृष्टि मिलती है और

कौशल प्राप्त किये जाते है। किन्तु यह वह स्थान भी है जहाँ छात्र बैठते और सुनते है, प्रतीक्षा करते है और देखते है, अपने हाथ खड़े करते है, परीक्षा पास करते है, पंक्तिबद्ध खड़े होते है और अपनी पेंसिल तेज करते है।"

"Classroom is a place where pupils spend the most formative period of their lifetime. It is also a place where tests are failed and passed, where amusing things happen, where new insights are stumbled upon and skills acquired. But it is also a place in which pupils sit and listen, wait and watch, raise their hands, pass out papers, stand in a line and sharpen pencils."

Philip Jackson

शोधकर्त्ताओं का विचार (Researchers' View)—शोधकर्त्ता कक्षाकक्ष का तात्पर्य इस प्रकार देते है—

(1) कक्षाकक्ष परस्पर क्रिया का नेटवर्क है (Classroom is a Network of Interactions)।

(2) कक्षाकक्ष सामाजिक-सास्कृतिक वातावरण का स्थान है (Classroom is a Place of Socio-cultural Milieu)।

(3) भारत का भाग्य उसके कक्षाकक्षों मे गढ़ा जा रहा है (Destiny of India is being shaped in her classroom)।

जॉन वैस्ले का विचार (John Wesley's View)—कक्षाकक्ष के आधारभूत ढाँचे की ओर संकेत करते हुए **जॉन वैस्ले** ने कहा है, "जितना अच्छा आप कर सकते है, करो। जिन भी साधनो से करना चाहे, कर सकते है। सभी प्रकार से कर सकते है और अपेक्षाकृत सभी स्थानो पर आप कर सकते है। हर समय आप कर सकते है, सभी लोगो के साथ आप कर सकते है और जब तक चाहे तब तक आप कर सकते है।"

"Do all the good you can, by all the means you can, in all the ways you can, at all the places you can, at all the times you can, to all the people you can, as long as ever you can."

—John Wesley

21.2.2 कक्षाकक्ष प्रबन्धन का अर्थ (Meaning of Classroom Management)

जॉनसन एव ब्रूक्स का विचार (View of Johnson and Brooks)—कक्षाकक्ष प्रबन्धन "एक सगठनात्मक कार्य-प्रणाली है जिसमे विविध प्रकार के वातावरण मे कार्य किये जाते है जिनके परिणामस्वरूप मन मे कुछ विशेष मूल्य विकसित होते है जैसे कि मनुष्यो के लिए आदर, व्यक्तिगत निष्ठा, आत्म-निर्देशन, सामूहिक सयोजन इत्यादि।"

Classroom management is "an organisational function in which tasks are performed in a variety of settings, resulting in the inculcation of certain values such as human respect, personal integrity, self-direction, group cohension etc."

—Johnson and Brooks

अवधारणात्मक अर्थ (Conceptual Meaning)—अवधारणात्मक दृष्टिकोण से कक्षाकक्ष प्रबन्धन को देखने मे, व्यक्ति प्रबन्धन के प्रति हाल के कुछ उपागम पहचानता है जैसे कि उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन व्यवहार सुधार (सकारात्मक और नकारात्मक पुनर्बलन), कार्य व्यवहार सम्बन्धी विश्लेषण और आकस्मिकता प्रबन्धन।

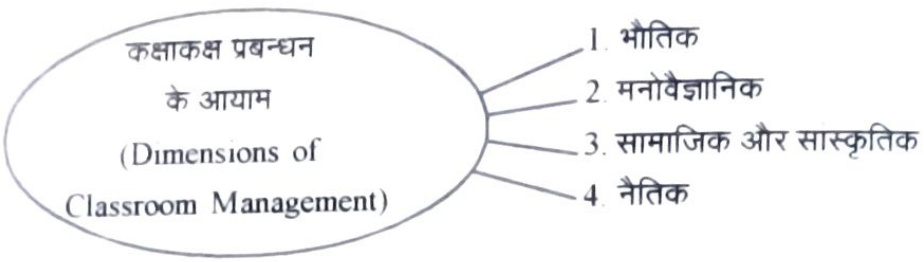
(One recognises recent approaches to classroom management such as management by objectives, behaviour modification (positive and negative reinforcements), transactional analysis and contingency management.)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन के अर्थों मे अध्यापक विभिन्न कार्य करते है जैसे कि योजना बनाना, व्यव करना, समन्वित करना, निर्देशित करना, नियन्त्रित करना और व्यवहार का आदान-प्रदान करना

क्रियात्मक अर्थ (Operational Meaning)—अध्यापक-छात्र सम्बन्ध के माध्यम से अधिगम प्रेरित करने के लिए कक्षाकक्ष मे क्रियाओ और कार्यकलापों की व्यवस्था का प्रबन्धन किया जा कक्षाकक्ष की क्रियाओं का प्रबन्धन करने के लिए अध्यापक और छात्र मूलभूत घटक होते है।

(A system of actions and activities are managed in classroom to induce learn through teacher-taught relationship. Teacher and students are the basic compone for managing classroom activities.)

व्यवहारात्मक अर्थों में कक्षाकक्ष प्रबन्धन की परिभाषा (Definition of Classroo Management in Behavioural Terms)—कक्षाकक्ष प्रबन्धन के आयामो को ध्यान मे रखते हुए इस अर्थ को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—



1. भौतिक आयाम या वातावरण (Physical Dimension or Environment)—कक्षाकक्ष शैक्षि संस्थान की कार्यात्मक इकाई है। सस्था का सस्थापक या प्रबन्धक स्थान-स्थल के सम्बन्ध मे निर्णय लेता है और भवन, मैदान तथा कक्षाकक्षो की रूपरेखा तैयार करता है। बैठने की व्यवस्था, प्रकाश और वायु की व्यवस्था, श्यामपट्ट और अन्य सुविधाएँ कक्षाकक्ष प्रबन्धन के लिए महत्त्वपूर्ण विषय होती है प्रबन्धन के रूप मे अध्यापक को कक्षाकक्ष के भौतिक वातावरण की इन सुविधाओ की जाँच करनी होती है जिन्हे अधिगम के लिए अनुकूल होना चाहिए।

2. मनोवैज्ञानिक आयाम (Psychological Dimension)—अभिप्रेरणा अधिगम का हृदय होती है (Motivation is the heart of learning)। जहाँ अभिप्रेरणा होगी वहाँ अधिगम होगा। अभिप्रेरणा के अभाव मे अधिगम अर्जित नहीं किया जा सकता है। अध्यापक शाब्दिक और गैर-शाब्दिक (क्रियाओ द्वारा ढग से अपने छात्रो को अभिप्रेरित करता है। उसके द्वारा वाछनीय व्यवहार का पुनर्बलन किया जाता है वह छात्रो की आकाक्षा का स्तर ऊपर उठाता है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे अध्यापक के सम्मिलन से छात्रो की सहभागिता को प्रोत्साहन मिलता है। छात्रो की सहभागिता और अधिगम मे मनोवैज्ञानिक आयाम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

3. सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम (Social and cultural Dimension)—कक्षाकक्ष सस्था तथा समाज का लघु रूप होता है (A classroom is a miniature of an institution as well as a society)। कक्षाकक्ष के वाछनीय सामाजिक और सास्कृतिक वातावरण के माध्यम से उसमे नए समाज को आकार प्रदान किया जाता है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे सामाजिक और सास्कृतिक वातावरण का सम्बन्ध शामिल होता है जो निम्नलिखित कारको पर निर्भर करता है—

(1) अध्यापक और छात्र सम्बन्ध (Teacher and taught relation),

(2) छात्रो मे सम्बन्ध (Relationship among students).

(3) अध्यापकों में सम्बन्ध (Relationship among teachers) और

(4) अध्यापक एवं संस्थान के मुखिया के मध्य सम्बन्ध (Relationship between teacher and head of the institution)।

अध्यापक को अपने छात्रों की पृष्ठभूमि, उनके पूर्व-व्यवहार, [illegible] और लक्ष्यों का ज्ञान होना चाहिए।

4. **नैतिक आयाम** (Ethical Dimension)—कक्षाकक्ष प्रबन्धन का नैतिक आयाम छात्रों की भावनाओं, अभिवृत्तियों और नैतिक (मूल्यों) पहलू से सम्बन्धित है। अध्यापक कक्षा का नेता और अपने छात्रों के लिए आदर्श होता है। उसे अध्यापक की तरह दिखना और व्यवहार करना चाहिए। उसे कक्षाकक्ष की संहिता और आचरण का पालन करना चाहिए जो नैतिक मूल्य-आधारित होना चाहिए।

21.3 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन के सिद्धान्त सामान्य और विशिष्ट दोनों हैं—

(1) कक्षाकक्ष प्रबन्धन के सामान्य सिद्धान्त (General Principles of Classroom Management)—सामान्य सिद्धान्तों को योजनाबद्ध ढंग से सीखा और उनका प्रयोग किया जा सकता है। सामान्य सिद्धान्तों का प्रयोग विभिन्न स्थितियों में किया जा सकता है। ये उन समस्याओं के समाधान के लिए अध्यापक को सशक्त आधार प्रदान करते हैं जिनके लिए विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता होती है। सामान्य सिद्धान्त निम्नलिखित पूर्व-धारणाओं के रूप में हैं—

1. **आत्म-नियन्त्रण** (Self-Control)—अध्यापक का लक्ष्य न केवल बाहरी नियन्त्रण का प्रयास करना होता है बल्कि आन्तरिक आत्म-नियन्त्रण को भी विकसित करना होता है।

2. **समझ और स्वीकृति** (Understanding and Acceptance)—जब छात्र कक्षाकक्ष के नियमों को समझते हैं और उन्हें स्वीकार करते हैं तो उनके द्वारा इनका पालन किये जाने की सम्भावना अधिक रहती है।

3. **मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त** (Psychological Principle)—अपनी रुचियों, रुझानों और योग्यताओं के अनुसार अर्थपूर्ण कार्य में लगे हुए छात्रों की अनुशासन सम्बन्धी समस्या कम होती है।

4. **उत्पादक कार्य** (Productive Work)—प्रबन्धन द्वारा केवल नियन्त्रण पर बल दिये जाने की अपेक्षा उत्पादक कार्य में व्यतीत किये गये छात्रों के समय को अधिकतम करने की ओर अपना ध्यान लगाया जाना चाहिए।

(2) कक्षाकक्ष प्रबन्धन के विशिष्ट सिद्धान्त (Specific Principles of Classroom Management)—कक्षाकक्ष प्रबन्धन के विशिष्ट सिद्धान्त निम्नलिखित पूर्व-धारणाओं के रूप में हैं—

1. **नियोजन** (Planning)—स्वतन्त्र क्रियाओं तथा संगठित पाठों का नियोजन किया जाना चाहिए।

2. **प्रोत्साहन** (Encouragement)—प्रयास और संकेतों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और उपयुक्त व्यवहार को पुनर्बलन प्रदान किया जाना चाहिए।

3. **जिम्मेदारी** (Responsibility)—छात्रों को स्वतन्त्र रूप से जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए।

4. **न्यूनतम बाधा** (Minimum Disruption)—बाधा और विलम्ब न्यूनतम होना चाहिए।

5. **स्पष्ट नियम** (Clear Rules)—जब आवश्यकता हो तो स्पष्ट नियम स्थापित किये जाने चाहिए।

6. **पुरस्कार** (Reward)—यह निश्चित करने के लिए कि छात्रों को जानकारी हो कि क्या है और इसे करने के लिए वे अभिप्रेरित हो, वाछनीय व्यवहार का निश्चित रूप से उल्लेख किया चाहिए और ऐसे व्यवहार को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

7. **अच्छा वातावरण** (Good Atmosphere)—कक्षा में अच्छा वातावरण स्थापित किया चाहिए और समय एव प्रयास को अधिकतम किया जाना चाहिए।

21.4 : कक्षीय प्रबन्धन की नीतियाँ (STRATEGIES FOR CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षीय प्रबन्धन मे निम्नलिखित नीतियो के प्रयोग से अध्यापक कक्षा को समस्याओ से मुक्त सकता है—

1. **लय** (Rhythm)—प्रत्येक क्रिया मे लय होनी चाहिए। इससे कार्यों के क्रम की सहजता सुनिश्चित बनाया जा सकता है। लय के लिये नित्यचर्या का होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे विद्यार्थि को आगे आने वाली क्रिया का पता होता है, इसलिये वे सुरक्षित अनुभव करते है। क्रियाओ के जिस की पहले से घोषणा की गई हो, उसका पालन होना चाहिए। जिस कक्षा मे नित्यचर्या की उपेक्षा की है और क्रिया के क्रम का अनुसरण नही किया जाता वहाँ असन्तोष तथा अनुशासनहीनता उत्पन्न हो है और विद्यार्थी असुरक्षित अनुभव करते है।

2. **स्वस्थ परम्परायें** (Healthy Traditions)—अध्यापक को कक्षा मे स्वस्थ परम्पराओ विकास करना चाहिए। उसे विद्यार्थियो को अपनी भूमिका उत्तरदायित्वपूर्ण ढग से निभाने के लि उत्साहित करना चाहिए। इससे विद्यार्थियो मे अच्छी आदते और अच्छे दृष्टिकोण विकसित होते है। इस सस्था मे स्वस्थ सामाजिक जीवन का विकास होता है। इससे विद्यार्थियो मे स्व-अनुशासन की प्रवृ विकसित होती है जो स्कूल-अधिकारियो के प्रति आदर, स्वप्रगति, नियमितता के प्रति निष्ठा, कर्त्तव्य-पाल मे उत्साह तथा अच्छे आचरण के विकास को सुनिश्चित बनाती है।

3. **अध्यापक का व्यवहार** (Teacher's Behaviour)—अध्यापक का शाब्दिक एव अशाब्दि व्यवहार विद्यार्थियो के व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। अध्यापक का ऊँचा चरित्र, उसकी नैति जागरूकता, उसका साहस एव धैर्य, उसकी स्नेहशीलता एव विनम्रता, बच्चो के प्रति उसका प्य उसकी विनोद-प्रियता, उसका आशावादी एवं लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण, उसका विवेक, उसकी न्यायपिय एव निष्पक्षता, उसकी साधन-सम्पन्नता एवं मौलिकता, उसका विश्वास एव श्रम, उसका सामाजिक स सवेगात्मक स्वास्थ्य, उसकी विद्वत्ता तथा अपने विषय मे उसकी प्रवीणता, उसकी उपयोगी शिक्ष विधियाँ तथा शिक्षण सूत्रो एव साधनो का प्रभावशाली प्रयोग—ये सब विद्यार्थियो के व्यवहार प सकारात्मक प्रभाव डालते है।

4. **अभिप्रेरणा** (Motivation)—अभिप्रेरणा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का हृदय है। पर्याप्त अभिप्रेरण शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाती है। विद्यार्थियो को अभिप्रेरित करने मे निम्नलिखि बाते उपयोगी सिद्ध हो सकती है—

(i) **लक्ष्य, आदर्श एवं उद्देश्यपूर्ण प्रयास** (Goal, Ideal and Purposeful Attempts)— विद्यार्थि को किसी कार्य के प्रति अभिप्रेरित करने के लिये उस कार्य के लक्ष्य एव आदर्श का उद्देश्यपूर्ण स सुस्पष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वह कार्य आकर्षक एव सुबोध होना चाहिए। लक्ष्य या आदर्श जितना स्पष्ट होगा उतना अधिक विद्यार्थी अभिप्रेरित होगे। अत अध्यापक को कक्षीय-का

का लक्ष्य एवं आदर्श स्पष्ट रूप से विद्यार्थियों के समक्ष रखना चाहिए ताकि वे उसके प्रति अभिप्रेरित हो उठें।

(ii) परिणामों अथवा प्रगति का ज्ञान (Knowledge of Results and Progress)—विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिये उन्हें समय-समय पर उनके परिणामों तथा उनकी प्रगति का ज्ञान कराना उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अपनी प्रगति के प्रति जागरूकता उनमें जिज्ञासा, रुचि तथा उत्साह को जाग्रत कर सकती है।

(iii) पुरस्कार एवं दण्ड का प्रयोग (Use of Reward and Punishment)—अध्यापक को पुरस्कार एवं दण्ड का प्रभावशाली प्रयोग करना चाहिए। प्रशंसा सबसे अधिक प्रभावशाली पुरस्कार है। उन्नति, बैज (Badge), सम्मान-पत्र, पाठ्य एवं लेखन सामग्री तथा अन्य कौशलों क्षेत्र भी पुरस्कार के विभिन्न रूप हैं। पुरस्कार विद्यार्थियों में रुचि और उत्साह विकसित करते हैं, वे उनके अहं को सन्तुष्ट करते हैं तथा उनमें ऊँची नैतिकता विकसित करते हैं। इनके साथ एक आनन्दपूर्ण संबंध स्थापित हो जाता है, जो उन्हें वांछित क्रिया की पुनरावृत्ति तथा अपने अधिगम एवं व्यवहार को सुधारने के लिये प्रेरित करता रहता है।

दण्ड वर्जनात्मक अभिप्रेरणा है। इससे भी विद्यार्थी को अच्छे व्यवहार के लिए प्रेरित किया जा सकता है। दण्ड विद्यार्थी को गलत काम करने से रोकता है और उसमें अनुशासन पैदा करता है। अध्यापक को दण्ड का न्यायसंगत प्रयोग करना चाहिए।

(iv) सक्रिय सहभागिता (Active Participation)—विद्यार्थी जब किसी क्रिया में सक्रिय भाग लेते हैं तो वे कुछ बेहतर करके दिखाते हैं। अध्यापक को अपना पाठ विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता की सहायता से विकसित करना चाहिए। विद्यार्थियों को विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के अवसर प्रदान करने चाहिए।

(v) प्रतिस्पर्द्धा का प्रयोग (Use of Competition)—प्रतिस्पर्द्धा में दूसरों से आगे बढ़ने की इच्छा निहित होती है, सीखने में यह सशक्त अभिप्रेरणा का काम करती है। अध्यापक को विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग्रत करनी चाहिए। इनसे विद्यार्थियों में उत्साह और जोश पैदा होता है। इससे उच्च नैतिकता का विकास होता है। यह आत्म-सुधार की ओर अग्रसर करती है। यथासम्भव प्रतिस्पर्द्धा भावना का प्रयोग दलीय स्तर (Group level) पर किया जाना चाहिए।

(vi) सहयोग (Co-operation)—अध्यापक को विद्यार्थियों में सहयोग की भावना विकसित करनी चाहिए। इससे कक्षा में बेहतर अनुशासन और बेहतर समझदारी का वातावरण स्थापित करने में सहायता मिलती है।

(vii) मूल्यांकन (Evaluation)—विद्यार्थियों का उचित मूल्यांकन भी उनकी अभिप्रेरणा के लिये प्रभावशाली साधन बन सकता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि दोषों के बावजूद मूल्यांकन विद्यार्थियों को काम करने का निर्देश देता है। अतः समय-समय पर विद्यार्थियों का परीक्षण होना चाहिए। शिक्षा एवं शिक्षण के उद्देश्यों पर आधारित मूल्यांकन विधि विद्यार्थियों को वांछित दिशा में काम करने के लिये प्रेरित करती है।

(viii) श्रव्य-दृश्य सहायक साधन (Audio-Visual Aids)—श्रव्य-दृश्य सहायक साधन, जैसे मानचित्र, मॉडल, चार्ट, ब्लैक-बोर्ड, फलैनल बोर्ड, बुलेटिन बोर्ड, पोस्टर, कार्टून रेखाचित्र, स्लाइडें फिल्म-पट्टियाँ, फिल्में, रेडियो, दूरदर्शन, रिकार्डिंग, नाटकीकरण आदि, अभिप्रेरणा के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अतः शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में इनका प्रभावशाली ढंग से प्रयोग होना चाहिए।

(ix) **अध्यापक-विद्यार्थी सम्बन्ध** (Teacher-Pupil Relationship)—अध्यापक और विद्यार्थि में अच्छा सम्बन्ध विद्यार्थियो को काम करने की अभिप्रेरणा प्रदान करता है। अत विद्यार्थियो के अध्यापक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण एव स्नेहपूर्ण होना चाहिए। उसे विद्यार्थियो की पूरी जानकारी चाहिए। उसे उनके हितो मे रुचि लेनी चाहिए और उनके प्रति व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए। उसे स्वय विद्यार्थियो का अनुकरणीय आदर्श बनना चाहिए और उन्हे अधिक-से-अधिक सीखने तथा अपने व्यवह को सुधारने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

5. **विद्यार्थियों की सहभागिता** (Pupils' Participation)—अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थि को दैनिक क्रियाओ एव पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करे। विद्यार्थियो को क्रियाओ मे भाग लेने के लिये प्रेरित करना चाहिए जिनमे उनकी रुचि हो और जो उनकी योग्यताओं क्षमताओ के अनुरूप हो। ये क्रियाये है— विचार-विमर्श, वाद-विवाद, भाषण, कविता पाठ, समाचार-प पढ़ना, स्कूल की सजावट, फैंसी ड्रैस, पुष्प-उत्सव, नाटक, प्रदर्शनी, भ्रमण, प्रात कालीन सभा, सामूहि प्रार्थना, महापुरुषो की जयन्तियाँ तथा अन्य महत्त्वपूर्ण दिवस मनाना, समाज सेवा एव समाज-भलाई क क्रियाये, वैज्ञानिक एव उत्पादक क्रियाये आदि। निम्नलिखित कार्यक्रमो मे भी विद्यार्थियो को भाग लेने क लिये प्रोत्साहित करना चाहिए—

(i) **पाठ का विकास** (Development of Lesson)—अध्यापक को शिक्षण कार्य करते समय विद्यार्थियो की सहायता से पाठ विकसित करना चाहिए। उसे विद्यार्थियो को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचा प्रकट करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए।

(ii) **क्रिया-विधियाँ** (Activity Methods)—शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया मे विद्यार्थियो की सक्रि सहभागिता को सुनिश्चित बनाने के लिये अध्यापक को क्रिया-विधियो का प्रयोग करना चाहि जैसे—विचार-विमर्श विधि, प्रयोग-विधि, प्रोजेक्ट-विधि, समस्या-समाधान विधि, ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic method)।

(iii) **स्कूल प्रबन्ध में विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व** (Students' Representation in School Management)—स्कूल प्रबन्ध मे विद्यार्थियो का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। विद्यार्थियो द्वारा अध्यापक क निर्देशन मे विभिन्न क्रियाओ का गठन किया जाना चाहिए।

(iv) **स्कूलों में विद्यार्थी-शासन** (Student Government in Schools)—स्कूलो मे विद्यार्थि के शासन का अर्थ है—गठन, प्रशासन, नियन्त्रण आदि मे विद्यार्थी-निकायों (Students' bodies) क दायित्व सौपा जाये। **रायबर्न** (Ryburn) के कथनानुसार, 'सकारात्मक एव रचनात्मक अनुशासन क सर्वोत्तम विधि है स्वायत्त-प्रशासन की स्थापना करना।' ("The best way to build up a positive and constructive discipline is through a system of self-government.") स्वायत्त-प्रशासन विद्यार्थि एव अध्यापको मे सद्भावनापूर्ण सम्बन्धो को सुनिश्चित बनाता है। इसके द्वारा विद्यार्थियो मे सहनशीलता आत्म-नियन्त्रण, सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, लोकतान्त्रिक नागरिकता तथा स्व-अनुशासन के गुणो का विकास होता है।

स्कूल मे विद्यार्थी-प्रशासन के क्षेत्र है—(1) अनुशासन समिति (Discipline committee), (2) स्वास्थ्य समिति (Health committee), (3) साहित्य समिति, (Literary committee), (4) खेल एव क्रीड़ा समिति (Games and athletic committee), (5) पुस्तकालय समिति (Library committee), (6) समाज-भलाई समिति (Social welfare committee) एव (7) स्कूल-समारोह समिति (School functions committee)।

(v) पाठ्य-सहायक क्रियायें (Co-curricular Activities)– यह [illegible] अध्यापक को विद्यार्थियो को पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए जैसे– (1) शारीरिक विकास की क्रियाये, (2) साहित्यिक एव शैक्षिक क्रियाये, (3) [illegible] विकास की क्रियाये, (4) नैतिक विकास की क्रियाये, (5) नागरिक क्रियाये, (6) [illegible] एकता से सम्बन्धित क्रियाये, (7) अवकाशकालीन क्रियाये, (8) [illegible] क्रियाये, (10) समाज भलाई की क्रियाये, (11) भ्रमण क्रियाये, (12) [illegible] मे विद्यार्थियो की प्रवृत्यात्मक (Instinctive), सवेगात्मक, बौद्धिक एव [illegible] किया जा सकता है।

21.5 : प्रबन्धन से सम्बन्धित कक्षाकक्ष की समस्याओं के समाधान सम्बन्धी उपागम
(APPROACHES TO SOLUTION OF CLASSROOM PROBLEMS RELATED TO MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन के प्रति उपागम निम्नलिखित है–

1. हरबार्ट उपागम (Herbartian Approach)–हरबार्ट उपागम बहुत पुराना उपागम है। इस उपागम मे पॉच सोपान है–(1) तैयारी (Preparation), (2) प्रस्तुति (Presentation), (3) सहसम्बन्ध या तुलना (Association or comparison), (4) सामान्यीकरण (Generalisation), (5) प्रयोग (Application)। यह कक्षाकक्ष प्रबन्धन के प्रति पाठ्यक्रम-केन्द्रित उपागम है। इसमे अध्यापक निर्देशन अनुदेशन होता है। कक्षाकक्ष की सभी क्रियाओ का प्रबन्धन और नियन्त्रण अध्यापक द्वारा किया जाता है और छात्र निष्क्रिय श्रोता होते है। इसमे विषयवस्तु (सामग्री) के प्रत्यास्मरण पर बल दिया जाता है। इसे विचारहीन शिक्षण माना जाता है।

2. मूल्यांकन उपागम (Evaluation Approach)–शिक्षण अधिगम के प्रति मूल्यांकन उपागम **बी. एस. ब्लूम** (B. S. Bloom) द्वारा विकसित किया गया था। इस उपागम के अनुसार शिक्षण एक त्रिमुखी प्रक्रिया है–(1) शैक्षिक उद्देश्य (Educational objectives), (2) अधिगम अनुभव (Learning experiences), (3) व्यवहार मे परिवर्तन (Change in behaviour)। कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे इन उद्देश्यो को प्राप्त किया जाना चाहिए। इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन किया जाता है। इस प्रकार कक्षाकक्ष प्रबन्धन उद्देश्य-केन्द्रित है।

3. शिक्षण की व्यवस्था करना (Organising Teaching)–यह उपागम इस पूर्व-धारणा पर आधारित है कि शिक्षण अधिक विचारहीन से अधिकतम विचारपूर्ण तक एक सतत प्रक्रिया है अर्थात स्मृति से लेकर विचारशील स्तर तक (1) स्मृति स्तर (Memory level), (2) बोध स्तर (Understanding level), (3) विचारशील स्तर (Reflective level)।

(i) स्मृति स्तर (Memory Level)–स्मृति स्तर पर कक्षाकक्ष प्रबन्धन का नियन्त्रण और प्रभुत्व अध्यापक द्वारा किया जाता है।

(ii) बोध स्तर (Understanding Level)–बोध स्तर पर कक्षाकक्ष प्रबन्धन का नियन्त्रण अध्यापक और शिक्षार्थियो द्वारा किया जाता है।

(iii) विचारशील स्तर (Reflective Level)–विचारशील स्तर पर कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने मे शिक्षार्थियो का प्रभुत्व होता है। यह शिक्षण का समस्या समाधानात्मक चरण है।

4. **शिक्षण अधिगम प्रबन्धन उपागम** (Managing Teaching-Learning Approach)—इस उपागम **आई. के. डेवीज** (I. K. Devies) द्वारा दिया गया है। अध्यापक को कक्षाकक्ष की क्रियाओं प्रबन्धन करना होता है। उसे प्रबन्धन की भूमिका निभानी होती है। यह उपागम मानव व्यवस्था सम्बन्धो के आधुनिक सिद्धान्त पर आधारित है। **डेवीज** (Devies) ने शिक्षण का प्रबन्धन करने के चार सोपान दिये है—(1) नियोजन करना (Planning), (2) सगठन करना (Organising), (3) करना (Leading) और (4) नियन्त्रण करना (Controlling)। व्यवस्था और नेतृत्व करने के कक्षाकक्ष प्रबन्धन से सम्बन्धित है। नियन्त्रण करने वाले सोपान से कक्षाकक्ष प्रबन्धन को प्राप्त होता है। **डेवीज** का विश्वास है कि अधिगम सरचनाएँ प्राथमिक से उच्चतर चरण तक प्रबन्धन के द्वारा उत्पन्न होती है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन में निरन्तरता और अत्यधिक अन्तर रहता है

5. **प्रतिमान उपागम** (Modular Approach)—कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन कर शिक्षण प्रतिमानो का उपयोग किया जाता है। शिक्षण प्रतिमानों के विभिन्न समूह होते है। शिक्षण प्रति के प्रत्येक समूह मे कक्षाकक्ष प्रबन्धन अलग होता है। एक प्रतिमान में विभिन्न तत्त्व होते है जैस (1) उद्देश्य (Focus), (2) सरचना (Syntax), (3) सामाजिक प्रणाली (Social system) (4) सहायक प्रणाली (Support system)। कक्षाकक्ष प्रबन्धन के प्रारूप का अध्ययन और विश्ल इन तत्त्वो की सहायता से किया जा सकता है। प्रतिमान सम्बन्धी उपागम से कक्षाकक्ष प्रबन्धन अन्तर पहचानने मे सहायता मिलती है।

6. **कक्षाकक्ष शिक्षण की क्रियाएँ** (Operations of Classroom Teaching)—इस उपागम कक्षाकक्ष मे शिक्षण की अवस्थाएँ (Phases or stages) भी कहते है। कक्षाकक्ष की क्रियाओ की क्रियाएँ या अवस्थाएँ निम्नलिखित है—

(1) पूर्व-सक्रिय अवस्था (Pre-active stage),
(2) अन्तर्सक्रिय अवस्था (Interactive stage), और
(3) उत्तर-सक्रिय अवस्था (Post-active stage)।

अन्तर्क्रिया अवस्था कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने से सम्बन्धित है।

21.6 : कक्षाकक्ष के चर या घटक (CLASSROOM VARIABLES OR COMPONENTS)

कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने मे कक्षाकक्ष के चरो की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है ये कक्षाकक्ष प्रबन्धन के अत्यावश्यक पक्ष होते है। कक्षाकक्ष के जाने-माने घटक (चर) निम्नलिखित है-



1. **अध्यापक** (Teacher)—प्रबन्धक के रूप मे अध्यापक कक्षाकक्ष प्रबन्धन का मुख्य स्वतन्त्र चर (Independent variable) होता है। वह कक्षाकक्ष की अधिकाश क्रियाओ का प्रबन्धन और नियन्त्रण करता है। वह कक्षाकक्ष में अधिगम सरचनाएँ उत्पन्न करके छात्र अधिगम को सुविधापूर्ण बनाने के लिए अपनी शिक्षण क्रियाएँ व्यवस्थित करता है। वह अपने कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे छात्रो को अभिप्रेरित करता है। इसके अतिरिक्त वह अपने कक्षाकक्ष की अनुदेशनात्मक प्रक्रिया की प्रभावपूर्णता का मूल्याकन करता है।

2. **छात्र** (Student)—छात्र कक्षाकक्ष मे आश्रित चर (Dependent variable) होता है, जिसका प्रयोजन होता है—अधिगम को सुविधापूर्ण बनाना। अधिगम शिक्षण पर निर्भर करता है। (1) यदि शिक्षण को स्मृति स्तर पर व्यवस्थित किया जाता है तो रटन अधिगम होता है। (If teaching is organised at memory level, then rote learning takes place.) (2) बोध स्तर के शिक्षण मे सम्प्रत्यय और स्वामित्व प्रत्यय सुविधापूर्ण बन जाता है लेकिन शिक्षण के इस स्तर पर छात्र अधिक सक्रिय होते है। (Understanding level teaching facilitates assimilation and master concept but students are more active at this level of teaching.)

3. **मध्यस्थ चर** (Intervening Variables)—मध्यस्थ चरो से अध्यापक और छात्र के मध्य अन्त क्रिया प्रभावित होती है। कक्षाकक्ष के महत्त्वपूर्ण मध्यस्थ चर निम्नलिखित है।

(1) विषयवस्तु जिसमे शब्द, प्रत्यय, तथ्य, सिद्धान्त, नियम, शाब्दिक भाषा, सृजनात्मकता इत्यादि शामिल है (Subject-matter including Terms, Concept, Facts, Theories, Rules, Verbal Language, Creativity etc.)

(2) शिक्षण उद्देश्य—ज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोक्रियात्मक उद्देश्य (Teaching Objectives—Cognitive, Affective and Psychomotor Objectives)।

(3) शिक्षण विधियाँ—अध्यापक-केन्द्रित शिक्षण, छात्र-केन्द्रित शिक्षण (Methods of Teaching—Teacher-centered Teaching, Student-Centered Teaching)।

(4) शिक्षण की सूक्तियाँ (Maxims of Teaching)।

(5) शिक्षण की प्रविधियाँ (Techniques of Teaching)।

(6) श्रव्य-दृश्य सहायक सामग्री (शिक्षण सहायक सामग्री) या अभिप्रेरणात्मक प्रविधियाँ (Audio-visual Aids/Teaching Aids or Motivational Techniques)।

(7) शिक्षण कौशल और सामाजिक कौशल (Teaching Skills and Social Skills)।

(8) सम्प्रेषण योग्यता और कौशल (Communication Competency and Skills)।

(9) शिक्षण की सहायक युक्तियाँ (Supporting Devices of Teaching)।

21.7 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन को प्रभावित करने वाले कारक (FACTORS INFLUENCING CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन की प्रक्रिया विविध कारको से प्रभावित होती है। यह गतिशील और जटिल प्रक्रिया है। शिक्षण और कक्षाकक्ष प्रबन्धन अनेक तरीको से सतत प्रक्रिया है। सतत प्रक्रिया के रूप मे कक्षाकक्ष प्रबन्धन निम्नलिखित कारको पर आधारित है—

1. **कक्षाकक्ष प्रबन्धन की अवस्थाएँ** (Stages of Classroom Management)—शैक्षिक सस्थानो मे शिक्षा की प्रक्रिया पूर्व-प्राथमिक स्तर या अवस्था से विश्वविद्यालय स्तर तक निरन्तर चलती रहती है। इसमे पाथमिक, माध्यमिक उच्च सेकण्डरी/सीनियर सेकण्डरी, स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर आते है। बन्द वातावरण से कक्षाकक्ष प्रबन्धन के खुले वातावरण तक सतत प्रक्रिया इसमे प्रतिबिम्बित होती है।

2. **शिक्षण-अधिगम के उद्देश्य** (Objectives of Teaching-Learning)—**ब्लूम** (Bloom) के शैक्षिक उद्देश्यो के वर्गीकरण मे ज्ञानात्मक से लेकर मनोक्रियात्मक उद्देश्यो तक सतत प्रक्रिया है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी सतत प्रक्रिया होती है। इसमे कक्षाकक्ष प्रबन्धन के ज्ञानात्मक उद्देश्य से लेकर मूल्याकन या सृजनात्मक उद्देश्य तक सतत प्रक्रिया भी प्रतिबिम्बित होती है।

3. **शिक्षण की रीतियाँ** (Modes of Teaching)—कक्षाकक्ष की क्रियाओ का अनुबन्धन से प्रतिपादन तक सतत् प्रक्रिया के रूप मे प्रबन्धन करने के लिए **थॉमस ग्रीन** (Thomas Green) शिक्षण की चार रीतियाँ प्रस्तुत की। शिक्षण की चार रीतियाँ निम्नलिखित है—(1) अनुबन्धन (Conditioning), (2) प्रशिक्षण (Training), (3) अनुदेशन (Instruction), (4) प्रतिपादन (Indoctrination)। शिक्षण की अनुबन्धन और प्रशिक्षण रीतियो का उपयोग छात्रो की आदत और आचरण विकसित करने के लिए किया जाता है। इस क्षेत्र को प्रशिक्षण-योग्य कहते है। शिक्षण अनुदेशन और प्रतिपादन रीतियो का उपयोग छात्रो मे ज्ञान, भावना, विश्वास, अभिवृत्तियाँ और विकसित करने के लिए किया जाता है। इस सतत् प्रक्रिया मे कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने अधिकतम विभिन्नता रहती है। शिक्षण की प्रत्येक रीति मे कक्षाकक्ष का अलग प्रबन्धन होता है।

4. **शिक्षण की परिस्थितियाँ** (Conditions of Teaching)—**रॉबर्ट गेग्ने** (Robert Gagne) उद्दीपन-अनुक्रिया अधिगम से लेकर समस्या-समाधान स्थिति तक सतत् प्रक्रिया के रूप मे अधिगम अधिगम-सरचनाओ की आठ परिस्थितियाँ दी है जो कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने के मूलभूत है। इनमे से कोई भी अधिगम परिस्थितियाँ या सरचनाएँ उत्पन्न करने के लिए कक्षाकक्ष क्रियाओ का प्रबन्धन किया जाता है। शिक्षण को अधिगम से सम्बन्धित करना कक्षाकक्ष प्रबन्धन मुख्य उद्देश्य होता है। अधिगम की परिस्थितियो से कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सरचना निर्धारित होती है

5. **शिक्षण की व्यवस्था** (Organisation of Teaching)—सतत् प्रक्रिया के रूप मे शिक्षण व्यवस्था स्मृति स्तर से लेकर विचारशील स्तर तक तीन स्तरो पर की जाती है—(1) स्मृति स्तर (Memory level), (2) बोध स्तर (Understanding level), (3) चिन्तन स्तर (Reflective level) बोध स्तर के लिए स्मृति स्तर का शिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। यह विचारहीन शिक्षण से लेकर सर्वाधिक विचारपूर्ण शिक्षण तक सतत् प्रक्रिया है। शिक्षण की व्यवस्था कक्षाकक्ष प्रबन्धन के तीन स्तरो मे की जाती है—(1) स्मृति, (2) बोध और (3) चिन्तन।

हरबर्ट (Herbert) ने प्रस्तुति (Presentation) पर बल दिया है। **मॉरिसन** (Morrison) का विश्वास है कि कक्षाकक्ष के वातावरण से प्रत्यय के परिपाक या स्वामित्व (Assimilation or mastery of the concept) के लिए स्थिति प्राप्त होती है। हट (Hunt) का शिक्षण प्रतिमान समस्या-समाधान (Problem solving) के लिए अधिक उदार है।

कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण कारक या निर्धारक निम्नलिखित है-

6. **विद्यालय के विषय** (School Subjects)—कक्षाकक्ष मे विद्यालय के विभिन्न विषय पढ़ाए जाते है। कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने के लिए प्रत्येक विषय का अपना अलग ढग होता है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन शिक्षण विषय पर निर्भर करता है। विज्ञान के विषयो के लिए प्रदर्शन और प्रयोग क्रियाओ की आवश्यकता होती है। जानना, करना और दिखाना (Knowing, doing and showing) कक्षाकक्ष क्रियाओ के लिए तीन रीतियाँ है।

7. **विद्यालय विषयों के घटक** (Components of School Subjects)—(1) शब्द, (2) प्रत्यय, (3) तथ्य, (4) सिद्धान्त, (5) नियम, (6) सामान्यीकरण, (7) शाब्दिक भाषा, (8) समस्या-समाधान और (9) सृजनात्मकता आदि विद्यालय के विषयो के विभिन्न घटक है। इन घटको के लिए ही कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन किया जाता है। विद्यालय सम्बन्धी विषयो के इन घटको को ध्यान मे रखते हुए कक्षाकक्ष मे अधिक अर्थपूर्ण और प्रयोजनात्मक क्रियाओ का प्रबन्धन किया जाता है।

8. शिक्षण की युक्तियाँ (Strategies of Teaching)—कक्षाकक्ष में प्रयोग की जाने वाली महत्त्वपूर्ण युक्तियाँ निम्नलिखित है—(1) अध्यापक-नियन्त्रित अनुदेशन (Teacher Controlled Instruction), (2) शिक्षार्थी-नियन्त्रित अनुदेशन (Learner-Controlled Instruction), (3) समूह नियन्त्रित अनुदेशन (Group-Controlled Instruction), (4) क्रिया केन्द्रित अनुदेशन (Action Oriented Instruction)। यह वर्गीकरण शिक्षण के प्रबन्धन उद्देश्य पर आधारित है। प्रत्येक युक्ति में अध्यापक और छात्रो के बीच अन्त क्रिया है। परियोजना पूर्ण समूह नियन्त्रित एवं क्रिया केन्द्रित अनुदेशन है।

9. अभिप्रेरणा का प्रकार (Type of Motivation)—अभिप्रेरणा के प्रकार से कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सरचना निर्धारित होती है। कक्षाकक्ष अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ दो प्रकार की है—(1) आन्तरिक अभिप्रेरणा (Internal Motivation), (2) बाहरी अभिप्रेरणा (External Motivation)। कक्षाकक्ष में उच्चतर प्रबन्धन के लिए आकाक्षा स्तर महत्त्वपूर्ण होता है। इसमे कक्षाकक्ष प्रबन्धन में उच्च प्रबन्धन करने के लिए निरन्तरता भी होती है।

10. अनुशासन का प्रकार (Type of Discipline)—अनुशासन का प्रकार कक्षाकक्ष प्रबन्धन का महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। अनुशासन के प्रचलित प्रतिमान निम्नलिखित है—

(i) व्यवहार परिवर्तन प्रतिमान (Behaviour Modification Model)—व्यवहार परिवर्तन प्रतिमान व्यवहार की सम्भावनाएँ बढ़ाने के लिए प्रक्रिया को पुनर्बलन प्रदान करने हेतु प्रतिबद्ध होता है।

(ii) आकस्मिक प्रतिमान (Emergent Model)—अनुशासन के आकस्मिक प्रकार तीन प्रतिमान है—(1) समूह गतिशील प्रतिमान (Group Dynamic Model), (2) व्यक्तिगत समाज वृद्धि प्रतिमान (Personal Social Growth Model) और (3) मनोगतिशील प्रतिमान (Psychodynamic Model)। स्व-अनुशासन प्रतिमान (Self-discipline Model) कक्षाकक्ष का उच्चतम प्रतिमान है।

21.8 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सहायक युक्तियाँ
(SUPPORTING DEVICES OF CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सामान्य सहायक युक्तियाँ निम्नलिखित है—

1. प्रयोग क्रिया (Experimentation)—भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान (वनस्पति विज्ञान और प्राणिविज्ञान) इत्यादि जैसे विज्ञान के विषयो मे प्रयोगशाला सम्बन्धी प्रयोग क्रिया की आवश्यकता होती है।

2. पर्यटन (Excursions)—भौगोलिक, ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानो के लिए शैक्षिक पर्यटन की व्यवस्था की जाती है।

3. फील्ड कार्य (Field Work)—भूगोल, विज्ञान और कृषि सम्बन्धी विषयो मे फील्ड कार्य की व्यवस्था की जाती है।

4. गृहकार्य और स्व-अध्ययन (Home Assignment and Self-Study)—परिपाक प्रक्रिया (Assimilation process) के लिए गृहकार्य और स्व-अध्ययन करवाया जाता है।

5. पुस्तकालय अध्ययन (Library Study)—परिपाक प्रक्रिया के लिए पुस्तकालय अध्ययन किया जाता है।

6. ट्यूटोरियल (Tutorials)—उपचारात्मक शिक्षण के लिए ट्यूटोरियल कक्षाओ की व्यवस्था की जाती है। यह छात्रो की व्यक्तिकृत शिक्षण क्रिया है।

7. **क्रियात्मक अनुसन्धान** (Action Research)—शिक्षण और अधिगम की समस्याओं का समाधान करने के लिए क्रियात्मक अनुसन्धान का प्रयोग किया जाता है।

8. **निर्देशन सेवाएँ** (Guidance Services)—शिक्षण और अधिगम की समस्याओ का समाधान करने मे कक्षाकक्ष प्रबन्धन की एक सहायक युक्ति के रूप मे निर्देशन सेवाएँ बहुत उपयोगी होती है। अत ये शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे सुधार लाने मे सहायक होती है।

21.9 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन में शिक्षक की भूमिका (ROLE OF TEACHER IN CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन के मुख्य घटक के रूप मे अध्यापक को अध्यापक, प्रबन्धक, दार्शनिक, निर्देशक, अनुसन्धानकर्त्ता, नेता इत्यादि के रूप मे अनेक भूमिकाएँ निभानी होती है। कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने के लिए उसके पास अधिकार, जिम्मेदारी, नेतृत्व और जवाबदेही होती है। उसे छात्रो के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना होता है। उसे अनुशासन, युक्तियो, नीतियो, सूत्र और शिक्षण की सहायक सामग्री के उपयुक्त प्रतिमान का उपयोग करना होता है। उसे अपने सहकर्मियो और सस्थान के मुखिया के साथ सामाजिक सम्बन्ध कायम करना होता है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निम्नलिखित है—

1. **अध्यापक के रूप में** (As a Teacher)—अध्यापक को एक अध्यापक की तरह दिखना और व्यवहार करना चाहिए। उसे अपने छात्रो के बारे में जानकारी होनी चाहिए अर्थात् छात्रो की रुचियो, रुझानो, योग्यताओ, उपलब्धियो और उनकी सामाजिक-सास्कृतिक पृष्ठभूमि के बारे मे।

2. **प्रबन्धक के रूप में** (As a Manager)—अध्यापक को प्रबन्धक के कर्त्तव्यो, जिम्मेदारियो, कार्यों और अधिकारो की जानकारी होनी चाहिए। शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन, सगठन, पर्यवेक्षण, निर्देशन, समन्वयन और नियन्त्रण अध्यापक के महत्त्वपूर्ण कार्य है।

3. **नेता के रूप में** (As a Leader)—अध्यापक को अपनी कक्षा के नेता के रूप मे कार्य करना चाहिए। शैक्षिक नेतृत्व अध्यापक का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। अध्यापक मे नेतृत्व के गुण होने चाहिए।

4. **दार्शनिक के रूप में** (As a Philosopher)—अध्यापक को विषयवस्तु की जानकारी प्रदान करनी होती है। उसे अपने विषय में स्वामित्व प्राप्त होना चाहिए। उसे अपने विषय की नवीनतम खोजो की जानकारी होनी चाहिए। उसे अपने विषय मे गहरी रुचि लेनी चाहिए। विषय पर स्वामित्व होने से शिक्षण प्रभावपूर्णता मे सहायता मिलती है।

5. **निर्देशक के रूप में** (As a Guide)—अध्यापक को निर्देशक के रूप मे कार्य करना चाहिए। उसे छात्रो की अधिगम, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक समस्याओ का समाधान करने मे उनकी सहायता करनी चाहिए। उसे कमजोर छात्रो के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

6. **अनुसन्धानकर्त्ता के रूप में** (As a Researcher)—क्रियात्मक अनुसन्धान की सहायता से कक्षाकक्ष प्रबन्धन की समस्याओ का समाधान किया जा सकता है। अत अध्यापक मे क्रियात्मक अनुसन्धान का प्रयोग करके कक्षाकक्ष प्रबन्धन की समस्याओ का समाधान करने की योग्यता होनी चाहिए।

इस प्रकार अध्यापक को कक्षाकक्ष प्रबन्धन मे विविध भूमिकाएँ निभानी होती है। अध्यापक का समर्पण, विषयवस्तु पर स्वामित्व और शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियो का उपयोग कक्षा मे श्रेष्ठता लाता है। कक्षाकक्ष की क्रियाओ का प्रबन्धन करने मे अध्यापक शिक्षण, प्रशिक्षण और अनुदेशन का प्रभावपूर्ण उपयोग कर सकता है।

(Thus teacher has to play multiple role in classroom management. Teacher's dedication, mastery over the subject-matter, use of psychological methods of teaching bring excellence in classroom. Teacher can effectively use the knowledge of teaching training and instruction in managing classroom activities.)

21.10 : कक्षाकक्ष प्रबन्धन हेतु प्रविधियाँ (TECHNIQUES FOR CLASSROOM MANAGEMENT)

कक्षाकक्ष प्रबन्धन प्रक्रिया और परिणाम है। अत कक्षाकक्ष प्रबन्धन के लिए प्रक्रिया और परिणाम मापदण्डो का प्रयोग किया जाता है। कक्षाकक्ष प्रबन्धन के लिए उपयोग की गई मूल्यांकन प्रविधियाँ निम्नलिखित है–

(1) प्रक्रिया मापदण्ड के लिए उपयोग की गई प्रविधियाँ (Techniques used for Process Criteria)–कक्षाकक्ष प्रबन्धन एक जटिल प्रक्रिया है जिसमे विभिन्न प्रकार के चरक और क्रियाएँ शामिल है, जैसे–

(i) कक्षाकक्ष निरीक्षण (Classroom Observation)–कक्षाकक्ष निरीक्षण प्रक्रिया मापदण्ड के लिए उपयोग की गयी महत्त्वपूर्ण प्रविधियो मे से एक है।

(ii) अन्तर्क्रिया विश्लेषण तकनीक (Interaction Analysis Techniques)–शाब्दिक क्रियाओ की सहायता से सवेगात्मक वातावरण को मापने के लिए **फ्लैण्डर** (Flander) की अन्तर्क्रिया विश्लेषण प्रविधि का उपयोग किया जाता है। कक्षाकक्ष की क्रियाओ को गैर-शाब्दिक अन्तर्क्रिया प्रविधियो द्वारा मापा जाता है। इस प्रविधि मे कोड का अर्थ निकालने की प्रक्रिया से व्यवहारो की प्रत्यक्षता और अप्रत्यक्षता का सकेत मिलता है।

(iii) पाठ्यवस्तु विश्लेषण का निरीक्षण (Observation of Content Analysis)–अन्तर्क्रिया विश्लेषण प्रविधि पाठ्यवस्तु मुक्त प्रविधि है। अत निरीक्षण की पाठ्यवस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग पाठ्यवस्तु प्रस्तुति की गुणवत्ता का मूल्याकन करने के लिए भी किया जाता है।

(iv) शिक्षण कौशल और योग्यता (Teaching Skills and Competency)–शिक्षण कौशल और योग्यता मापने के लिए निरीक्षण सूचियो का उपयोग किया जाता है।

(2) परिणाम मापदण्ड के लिए उपयोग की गई प्रविधियाँ (Techniques used for Product Criteria)–ये निम्न प्रकार है–

(i) अधिगम के परिणाम (Learning Outcomes)–अधिगम के परिणामो या उपलब्धियो और छात्रो की अभिवृत्तियो का उपयोग कक्षाकक्ष प्रबन्धन के परिणाम सम्बन्धी मापदण्ड के रूप मे किया जाता है। शिक्षार्थी की उपलब्धि मापने के लिए मापदण्ड निर्दिष्ट परीक्षणो का उपयोग किया जाता है।

(ii) छात्रों की अभिवृत्ति (Attitude of Students)–**फ्लैण्डर** (Flander) और **एमीडॉन** (Amidon) ने कक्षाकक्ष अन्तर्क्रिया की प्रभावपूर्णता का मूल्याकन करने के लिए परिणाम सम्बन्धी मापदण्ड के रूप मे उपलब्धि और अभिवृत्ति का उपयोग किया।

(iii) शिक्षार्थियों की राय (Opinions of the Learners)–परिणाम मापदण्ड के लिए शिक्षार्थियो की राय का भी प्रविधि के रूप मे उपयोग किया जाता है।

(iv) छात्रों के साथ अध्यापक का घनिष्ठ सम्बन्ध (Teacher's Rapport with Students)–परिणाम मापदण्ड के लिए कक्षाकक्ष प्रबन्धन के मूल्याकन हेतु उपयोग की गयी एक और प्रविधि है–अध्यापक का अपने छात्रो के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध। कक्षाकक्ष प्रबन्धन के विभिन्न अनुसन्धान अध्ययनो मे प्रक्रिया और परिणाम के एकत्रित मापदण्ड का उपयोग किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. कक्षाकक्ष प्रबन्धन का अर्थ लिखिए। कक्षाकक्ष प्रबन्धन के विभिन्न सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. कक्षाकक्ष प्रबन्धन की विभिन्न समस्याओ का वर्णन कीजिए।
3. कक्षाकक्ष प्रबन्धन की नीतियो का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. कक्षाकक्ष प्रबन्धन की अवधारणा बताइये।
2. कक्षाकक्ष के घटको को बताइये।
3. कक्षाकक्ष प्रबन्धन को प्रभावित करने वाले कारको को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. कक्षाकक्ष का घटक होता है—
   (अ) अध्यापक (ब) छात्र
   (स) मध्यस्थ (द) उपर्युक्त सभी

   उत्तर—द
2. कक्षाकक्ष शिक्षण की क्रियाओ की अवस्थाएँ होती है—
   (अ) तीन (ब) चार
   (स) पाँच (द) इनमें से कोई नही

   उत्तर—ब
3. कक्षाकक्ष प्रबन्धन के आयाम है—
   (अ) भौतिक (ब) मनोवैज्ञानिक
   (स) नैतिक (द) उपर्युक्त सभी

   उत्तर—द
4. कक्षाकक्ष प्रबन्धन की सहायक युक्तियाँ है—
   (अ) पर्यटन (ब) फील्डकार्य
   (स) गृहकार्य (द) उपर्युक्त सभी

   उत्तर—द

□□

अध्याय

22

समय-सारणी : अवधारणा, प्रकार, आवश्यकता, गुण एवं व्यवहारिक समस्याएँ

[TIME TABLE : CONCEPT, TYPES, NEED, QUALITIES AND PRACTICAL PROBLEMS]

22.1 : समय-सारणी की अवधारणा (CONCEPT OF TIME TABLE)

समय–सारणी विद्यालय के समग्र शैक्षिक एव शिक्षणोत्तर कार्यकलापो के सचालन की विधानपूर्वक पूर्व नियोजित प्रक्रिया है। यह वह माध्यम है जिससे सगठन अपने लक्ष्यो को प्राप्त करता है। यह वह योजना है जिसके अनुसार शिक्षक और विद्यार्थी विविध विषयो का अध्ययन और अध्यापन करते है तथा विविध प्रवृत्तियो मे भाग लेते है। इसी के आधार पर पाठशाला का समय विभाजन शिक्षकों पर कार्यभार पाठ्य और पाठ्येत्तर प्रवृत्तियो पर दिए जाने वाले समय और कार्य पद्धति का अनुमान लगाया जा सकता है। अत किसी भी विद्यालय के व्यवस्थित रूप से सचालन के लिए समय–सारणी की नितात आवश्यकता है। यह वह दर्पण है, जिसमे अथवा जिसके माध्यम से समग्र विद्यालय की प्रवृत्तियो के दर्शन किए जा सकते है। यह वह दूसरी घड़ी है जिसके अनुसार विद्यालय के सभी कार्य चलते है।

एच. जी. स्टैड का विचार (H. G. Stead's view)– "यह समय-सारणी ही है जो कार्य का ढाँचा प्रदान करता है जिसमे स्कूल चलता है। यह ऐसा साधन है जिसमे स्कूल का लक्ष्य काम करना होता है।"

"It is the time table that supplies the framework within which the work of the school proceeds. It is the instrument through which the purpose of the school is to function."

–H. G. Stead

डॉ. जसवन्त सिंह का विचार (Dr. Jaswant Singh's view)– "समय-सूची स्कूल का स्पार्क प्लग है जो स्कूल के विभिन्न कार्यों तथा कार्यक्रमो को सचालित करता है।"

"The schedule is the spark plug of the school which sets into motion its various activities and programmes."

–Dr. Jaswant Singh

मोहियुद्दीन का विचार (Mohiyuddin's view)– "समय–सारणी को स्कूल की दूसरी घड़ी कहा जाता है। वह उन घण्टो को दर्शाता है जिनमे स्कूल का काम होता है। स्कूल दिवस के प्रत्येक पीरियड

में प्रत्येक कक्षा में, किस कमरे में क्या होना है और उस काम का इचार्ज कौन-सा अध्यापक होगा
सब समय-सारणी दर्शाता है।"

"A time table is said to be the second school clock. It shows the hours dur
which school work is done, what work is to be done during each period of the sch
day and in each class, the room in which the work is to be done and the teacher to
incharge of that work."
—Mohiyudd

इडमानसन का विचार (Edmonson's view)—"समय-सारणी पूरे दिन के काम की रूपरेख
जो (1) स्कूल दिवस का आरम्भ और अन्त, (2) प्रत्येक कक्षा पीरियड, क्रिया पीरियड और गृह-का
पीरियड का आरम्भ और अन्त, (3) लिये गये विषय एव क्रियाएँ, (4) प्रत्येक कक्ष तथा प्रत्येक क्रिया
दिन, (5) प्रत्येक कक्षा या क्रिया के इचार्ज अध्यापक का नाम, (6) कक्षा या क्रिया के लिए कमरा
(7) मध्यान्तरो की सख्या एव उनका समय दर्शाता है।"

"The time table is an outline of the day's work which indicates (1) time
beginn-ing and ending of school day; (2) time of beginning and ending of each cla
period, activities period, and home-work period; (3) subjects and activities offered, (4)
days on which each class and each activity meet; (5) name of the teacher incharge o
each class or activity; (6) room in which class or activity meets; and (7) time, length
and number of intermissions."

उपर्युक्त परिभाषाओ के प्रकाश मे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि समय-सारणी स्कू
का दर्पण है जिसमे स्कूल की समूची शिक्षा योजना प्रतिबिम्बित होती है। यह विभिन्न कक्षाओं क
विद्यार्थियो तथा अध्यापको द्वारा किये जाने वाले काम की विधिवत् योजना प्रस्तुत करता है। इसम
सभी अध्ययन विषय तथा शैक्षणिक क्रियाएँ सम्मिलित की जाती है और प्रत्येक विषय एव क्रिया क
लिए समय और दिन भी निर्धारित किया जाता है। इसमे स्कूल की प्रात कालीन सभा, अध्ययन क
घण्टे तथा खाने का समय, हाजिरी लगाने का समय, पुस्तकालय, शिल्प, समाज सेवा, खेलो
शारीरिक एव अन्य क्रियाओ आदि सभी के लिए समय निर्धारित किया जाता है। विद्यार्थी कुछ गृह-
कार्य के साथ स्कूल छोड़ते है। अच्छे समय-सारणी मे गृह-कार्य भी पूर्व आयोजित होता है ताकि
विद्यार्थियो पर काम का बोझ न पड़े।

"In the light of above definitions it can be concluded that a school time table is
a mirror which reflects the entire educational plan of the school. It is a kind of frame
work for various school activities. It shows a systematic and pre-planned scheme of
work to be done by the students and the teachers of various classes and sections. It
includes all the subjects of studies and other educational activities showing the days
and time allotted to them. It shows the allotment of time to morning assembly, hours
of study, lunch break, roll call, library, craft, community, social service, games,
physical exercise and other activities and is extended even after the school hours.
The students leave the school with several assignments of home task. In a good
school time table, even the home task is planned before hand so that the students are
not burdened."

22.2 : समय-सारणी का महत्व अथवा आवश्यकता
NEED OR SIGNIFICANCE OF THE TIME TABLE

स्कूल समय-सारणी स्कूल के प्रशासन के हृदय की प्रक्रिया है। (The school time table is said to be the heart process of school administration) यह स्कूल के नियोजित एवं सफल संचालन की पहली आवश्यकता है। शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली एवं उपयोगी बनाने के लिए स्कूल के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार उचित समय सारणी का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसे स्कूल का दर्पण (Mirror of the School) कहा जाता है। जिस प्रकार दर्पण चेहरे की सुन्दरता तथा असुन्दरता को दिखाता है, उसी प्रकार समय-सारणी के माध्यम से स्कूल की विशेषताओं तथा कमजोरियों को देखा जा सकता है। समय-सारणी के कुछ लाभ हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है—

1. **स्कूल की दूसरी घड़ी** (Second School Clock)—समय-सारणी को स्कूल की दूसरी घड़ी कहा जाता है। इससे पता चल जाता है कि कौन-सी कक्षा किस कमरे में किस अध्यापक से कौन-सा विषय पढ़ रही है।

2. **व्यवस्थित कार्य को निश्चित बनाता है** (Ensures Orderly Work)—स्कूल समय सारणी स्कूल के व्यवस्थित एवं कुशल कार्य को सुनिश्चित बनाता है। इससे अध्यापकों और विद्यार्थियों को अपने काम का पहले से ही पता रहता है। इससे अध्यापकों को अपना काम पूर्व-नियोजित करने में सहायता मिलती है। वे अपनी कक्षा में तैयारी करके आते हैं। विद्यार्थियों का पहले से ही पता होता है कि किस पीरियड में कौन-सा विषय किस अध्यापक से पढ़ना है। इससे अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में विधिपूर्ण काम करने की आदत का विकास होता है। इससे ठीक समय पर ठीक काम के लिए ठीक व्यक्ति को लगाने में सहायता मिलती है। यह विभिन्न अध्यापकों के कार्यों में तालमेल स्थापित करता और दैनिक कार्यों में समय पालन को सुनिश्चित बनाता है। यह मुख्याध्यापक को अनावश्यक चिंताओं और तनावों से बचाता है।

3. **आन्तरिक मितव्ययता तथा नियमितता को सुनिश्चित बनाता है** (Ensures Internal Economy and Regularity)—स्कूल समय-सारणी स्कूल की आन्तरिक मितव्ययता को सुनिश्चित बनाता है। यह स्कूल के कार्य को नियमित बनाता है और विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के ध्यान को एक समय में एक ओर केन्द्रित करके समय के अपव्यय को बचाता है। यह उन्हें विकर्षण अव्यवस्था अराजकता तथा काम की आवश्यक पुनरावृत्ति से बचाता है। अत यह अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को नियमित प्रगति की ओर अग्रसर करता है। वर्ष का अन्त होने तक अध्यापक और विद्यार्थी अपना समूचा काम समय पर समाप्त कर लेते हैं और वे स्वाध्ययन तथा दोहराई के लिए पर्याप्त समय लगा सकते हैं।

4. **प्रबल तथा अनुपात को सुनिश्चित बनाता है** (Ensures Arrangement and Proportion)—समय-सारणी में सभी विषयों तथा क्रियाओं के लिए उचित समय रखा जाता है। स्कूल के महत्वपूर्ण तत्वों पर अधिक बल दिया जाता है। कठिन और महत्वपूर्ण विषयों की ओर ध्यान दिया जाता है जैसे—अंग्रेजी और गणित के लिए हिन्दी, सामाजिक, शिल्प आदि की अपेक्षा अधिक पीरियड रखे जाते हैं। विद्यार्थियों के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए पाठ्य-सहायक क्रियाओं के लिए भी उचित समय निर्धारित किया जाता है। वस्तुत समय-सारणी में किसी भी विषय या क्रिया की उपेक्षा नहीं की जाती और न ही किसी पर अत्यधिक बल दिया जाता है। प्रत्येक विषय एवं क्रिया का उचित अनुपात से प्रबन्ध किया जाता है।

5. **कार्यभार के उचित विभाजन को सुनिश्चित बनाता है** (Ensures proper Distribution of Work load)—अच्छा समय-सारणी अध्यापकों में कार्यभार के उचित विभाजन को सुनिश्चित बनाता है।

समय-सारणी पर एक दृष्टि डालकर ही मुख्याध्यापक जान सकता है कि कौन-सा अध्यापक कौन-
विषय पढ़ाता है और उसे सप्ताह मे कितने पीरियड पढ़ाने होते है। इससे उसे अध्यापको के कार्यभ
सन्तुलित रखने मे सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त अध्यापको को पढ़ाने के लिए वे विषय
जाते है जिनमे वे योग्य होते है। इससे अध्यापको मे किसी प्रकार की जलन या शिकायत नही रहती
इससे कार्यकुशलता सुनिश्चित हो जाती है और अध्यापक अपना दायित्व अनुभव करने लगते है।

6. आवश्यकताओं को पूरा करता है (Caters to Needs)—अच्छा समय-सारणी विद्यार्थि
आवश्यकताओ के अनुसार, स्कूल को सगठित करने मे सहायता प्रदान करता है। समय-सारणी
समय मनोवैज्ञानिक तत्वो, जैसे—(1) रुचि, (2) विविधता, (3) थकावट, (4) शरीर और मन की
की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति के कारण विद्यार्थियो के लि
स्कूल एक सुखद स्थान बन जाता है।

7. अच्छी आदतों का विकास करता है (Develops Good Habits)—अच्छा समय-सार
विद्यार्थियो और अध्यापको मे कई अच्छी आदतो के विकास मे सहायता प्रदान करता है, जैसे—व्यवस्
नियमितता, समयपालन, लक्ष्य के प्रति स्थिरता आदि। इससे उत्तरदायित्व की भावना का भी विक
होता है। कर्तव्यपरायणता तथा कर्मण्यता का भी विकास होता है।

8. अनुशासन को विकसित करता है (Promotes Discipline)—अच्छा समय-सारणी स्कू
अनुशासन के उचित विकास मे सहायता प्रदान करता है। यह अध्यापको और विद्यार्थियो को व्य
रखता है और व्यस्तता अनुशासनहीनता पर नियन्त्रण रखती है। खाली दिमाग ही शैतान का कारख
होता है। अच्छी समय-सारणी विद्यार्थियो की अतिरिक्त शक्ति को उपयोगी कार्यो मे लगाये रख
जिसके परिणामस्वरूप विरोधात्मक बातो की ओर उनका ध्यान ही नही जाता। समय-सारणी को देख
मुख्याध्यापक छुटटी पर गये हुए अध्यापको के पीरियड अन्य अध्यापको को सौप सकता है। इस प्र
विद्यार्थियो का कोई भी पीरियड खाली नही रहता और उन्हे इधर-उधर घूमने का कोई अवसर न
मिलता। अच्छी समय-सारणी विभिन्न क्रियाओ मे सन्तुलन को सुनिश्चित बनाता है और परिणामस्वर
स्कूल का समूचा कार्य सुनिश्चित रूप से चलता रहता है। अच्छी समय-सारणी के बिना स्कूल
व्यवस्थित एव नियमित रूप से नही चल सकता।

9. नियमित एवं एकात्मक प्रगति को सुनिश्चित बनाता है (Ensures Regular and Unifo
Progress)—अच्छा समय-सारणी विभिन्न विषयो के शिक्षण एव विविध पाठ्य-सहायक क्रियाओ के
की नियमित एव एकात्मक प्रगति को सुनिश्चित बनाती है। इससे किसी विषय या क्रिया को अत्यधि
महत्व नही मिलता और न ही किसी विषय या क्रिया की उपेक्षा होती है। अच्छी समय-सारणी के अभ
मे विभिन्न विषयो तथा क्रियाओ की प्रगति समान रूप से नही हो सकती।

10. स्कूल के लक्ष्यों की पूर्ति को सुनिश्चित बनाता है (Ensures Realisation of Scho
Objectives)—स्कूल का समय-सारणी स्कूल के लक्ष्यो की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन है। यदि स्कूल
लक्ष्य किसी विशेष धर्म या आदर्श का प्रचार करना है तो यह समय-सारणी के माध्यम से ही सम्भव
सकता है।

11. स्कूल के दर्शन को प्रतिबिम्बित करता है (Reflects the Philosophy of th
School)—स्कूल का समय-सारणी स्कूल के उद्देश्यो और आदर्शों को प्रतिबिम्बित करता है। इससे
होता है कि स्कूल पाठ्य-सहायक क्रियाओ को प्रोत्साहित करता है या नही, कोई धार्मिक या नैतिक शि
प्रदान करता है या नही। अत इसे स्कूल कार्यक्रम का दर्पण कहा जाता है। यह स्कूल के जीवन
दर्शन को प्रतिबिम्बित करता है।

12. समायोजन को सुनिश्चित बनाता है (Ensures Adjustment)—अच्छी समय-सारणी विद्यार्थियो की शक्ति एव योग्यताओ के अनुकूल काम की व्यवस्था करती है इसमे स्कूल कार्य के साथ विद्यार्थियो का उचित समायोजन सम्भव हो सकता है।

सक्षेप मे, स्कूल के समय-सारणी को स्कूल की शैक्षिक एव पाठ्य-सहायक क्रियाओ की कुन्जी कही जा सकता है। यह स्कूल के नियमित कार्य सचालन, समय और शक्ति के अपव्यय को रोकने, सभी क्रियाओ को उचित समय प्रदान करने, अध्यापको मे बराबर कार्य वितरण करने, विद्यार्थियो की आवश्यकताओ को पूरा करने, अच्छी आदतो के विकास, स्कूल अनुशासन के विकास, विभिन्न विषयो तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ की एकात्मक प्रगति, स्कूल लक्ष्यो की प्राप्ति, विद्यार्थियो के समायोजन को सुनिश्चित बनाने, स्कूल के आदर्शों को प्रतिबिम्बित करने और विभागीय आदर्शों के पालन करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समय-सारणी का महत्व स्वीकारने से जीवन मे सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। (Once we realise the importance of the time table, it opens a royal road to success in life.)

22.3 : समय-सारणी के प्रकार (TYPES OF SCHEDULE/TIME TABLE)

समय-सारणी के प्रकार स्कूल मे आयोजित क्रियाओ की प्रकृति पर आधारित होता है। क्रियाएँ जितनी विविध हो, समय-सारणी भी उतनी विविध प्रकार की होगी। एक ही समय-सारणी मे स्कूल की सभी क्रियाओ को नही दिखाया जा सकता। अत विभिन्न प्रकार की क्रियाओ को दर्शाने के लिए विभिन्न प्रकार के समय-सारणी की आवश्यकता होती है। स्कूल के कुशल सचालन के लिए विभिन्न प्रकार की समय-सारणी बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

1. संयुक्त समय-सारणी (Consolidated Time Table)—इसे सामान्य समय-सारणी भी कहा जाता है। इसमे स्कूल के समूचे कार्यक्रम का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है। (It is a complete picture of the entire school programme.) इसमे पाठ्य-क्रियाओ तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ दोनो को दिखाया जाता है। इसमे स्पष्ट रूप से दर्शाया जाता है कि प्रत्येक कक्षा मे प्रत्येक विषय के कितने पीरियड है। विभिन्न कक्षाओ को विभिन्न विषय पढ़ाने वाले अध्यापको के नाम क्या है, कौन-सी कक्षा किस पीरियड मे कौन-से कमरे मे होगी, पीरियडो की अवधि क्या होगी, अध्यापको के खाली पीरियड कौन-से होगे आदि। इसमे पाठ्य-सहायक क्रियाओ, प्रात कालीन सभा, आधी छुट्टी, खेलो आदि का समय भी दर्शाया जाता है जिससे उनको स्कूल कार्यक्रम के प्रभावशाली निरीक्षण मे सहायता मिलती है।

2. कक्षा समय-सारणी (Class Time Table)—प्रत्येक कक्षा और सैक्शन की अपनी समय-सारणी होना चाहिए। इसमे विभिन्न विषयो और क्रियाओ के लिए निर्धारित समय को दर्शाया जाता है। इसमे प्रत्येक विषय या क्रिया से सम्बन्धित अध्यापको के नामो का भी उल्लेख होता है। प्रत्येक पीरियड मे दैनिक कार्य का स्पष्ट उल्लेख होता है। इसमे दिनो के नाम सयुक्त समय-सारणी के समान चिन्हो मे नही दिखाये जाते बल्कि उनका स्पष्ट रूप से नाम लिखा जाता है, क्योकि यह समय-सारणी विद्यार्थियो के मार्गदर्शन के लिए होती है। अत यह विस्तृत एव सुबोध होना चाहिए। इसकी एक प्रति कक्षा मे लटकी रहनी चाहिए।

3. विशिष्ट विषय समय-सारणी (Special Subject Time Table)—प्रत्येक कक्षा और सैक्शन की अपनी समय-सारणी होनी चाहिए। इसमे विभिन्न विषयो और क्रियाओ के लिए निर्धारित समय दर्शाया जाता है। इसमे प्रत्येक विषय या क्रिया से सम्बन्धित अध्यापको के नामो का भी उल्लेख होता है।

प्रत्येक पीरियड में दैनिक कृषि, शिल्प आदि विषयों के लिए—जिनमें प्रयोगात्मक कार्य होता है
समय-सारणी की आवश्यकता होती है। विशेष समय-सारणी के अभाव में प्रयोगात्मक कार्य की
जाती है। इस विषय के अध्यापकों का प्रयोगात्मक कार्य से पहले एक पीरियड खाली होना चाहिए
वे आवश्यक तैयारी कर सकें। प्रयोगात्मक कार्य का पीरियड या तो आधी छुट्टी से पहले का
होना चाहिए या पूरी छुट्टी से पहले का ताकि प्रयोगात्मक कार्य लम्बा होने पर कुछ अधिक समय
लिया जा सके। इसी प्रकार ड्राइंग के लिए भी विशेष समय-सारणी की आवश्यकता होती है।

4. **अध्यापकों का समय-सारणी** (Teachers' Time Table)—यह समय-सारणी अध्यापकों
सम्मुख रखकर बनाया जाता है। अध्यापकों के नाम वरिष्ठता के क्रम से लिखे जाते हैं और
अध्यापक के नाम के आगे उसके समूचे कार्य के पीरियड लिखे जाते हैं अर्थात् उसे प्रत्येक पीरियड
किस कक्षा को कौन-सा विषय पढ़ाना है और किस क्रिया में व्यस्त रहना है। इसके अतिरिक्त
अध्यापक के खाली पीरियड भी दिखाये जाते हैं। इस समय-सारणी की उपस्थिति में छुट्टी पर
अध्यापकों के कार्य को दूसरों में बाँटना आसान हो जाता है। स्कूल की विभिन्न क्रियाओं के
सचालन के लिए यह समय-सारणी अत्यन्त आवश्यक है। इस समय-सारणी की तीन प्रतियाँ तैयार
जानी चाहिए—(1) एक मुख्याध्यापक के कार्यालय के लिए, (2) एक स्कूल कार्यालय के लिए और
एक स्टाफ कक्ष के लिए।

5. **अध्यापकों के खाली पीरियडों का समय-सारणी** (Teachers' Vacant Periods
Table)—अध्यापकों के खाली पीरियड को दर्शाने वाली एक विशिष्ट समय-सारणी भी बनायी
चाहिए। इससे मुख्याध्यापक को एक दृष्टि में ज्ञात हो सकेगा कि कौन-से पीरियड में कौन-कौन
अध्यापक खाली है। इससे मुख्याध्यापक को छुट्टी पर गये हुए अध्यापकों का काम बाँटने तथा
अध्यापक को मिलने के लिए बुलाने का समय होता है। इस समय-सारणी की एक प्रति
मुख्याध्यापक के कार्यालय में रहनी चाहिए।

6. **खेलों की समय-सारणी** (Games Time Table)—खेलों की समय-सारणी में प्रत्येक समूह
हाउस (House) के लिए खेल का समय और स्थान दिखाया जाता है। समय-सारणी कक्षाओं
सैक्शनों के आधार पर नहीं बनाया जाता बल्कि विद्यार्थियों की आयु तथा उनकी खेल निपुणता
आधार पर बनाया गया है। यह स्कूल के शारीरिक शिक्षा के निर्देशक के परामर्श से बनाया जाता
इसमें ग्राउण्ड का I, II, III आदि और खेल समूहों का A, B, C आदि चिन्हों के माध्यम से उल्लेख
किया जाता है। इस प्रकार खेलों की समय-सारणी स्कूल में विभिन्न खेलों के संगठन में सहायता प्रदान
करती है।

7. **पाठ्य-सहायक क्रियाओं की समय-सारणी** (Co-curricular Activities Time Table)—विद्यालय
के क्षेत्र में पाठ्य-सहायक क्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके प्रभावशाली संगठन के लिए विशेष
समय-सारणी की आवश्यकता होती है। स्कूल को विभिन्न संघों में बाँटा जा सकता है, जैसे—नाटक संघ,
साहित्य संघ, विज्ञान संघ, इतिहास संघ आदि। प्रत्येक संघ का कार्यक्रम वर्ष के आरम्भ में ही निर्धारित
हो जाना चाहिए और उसके लिए आवश्यक समय-सारणी बनाया जाना चाहिए। इस समय-सारणी
क्रिया का नाम, स्थान, समय तथा अध्यापक इचार्ज के नाम का उल्लेख होता है। सप्ताह के अन्त में
स्कूल सभाओं के कार्यक्रमों, स्काउटों तथा गर्ल गाइडों की क्रियाओं को भी इसमें सम्मिलित किया
सकता है। वस्तुत: ऐसे समय-सारणी का स्कूलों में अभाव होता है और ये क्रियाएँ अव्यवस्थित रूप
करायी जाती है। प्राय: देखा गया है कि जनवरी और फरवरी के महीनों में इन क्रियाओं की भरमार
है। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की पढ़ाई उपेक्षित रह जाती है। इस प्रकार के असन्तुलन को

चाहिए। पाठ्य-सहायक क्रियाओं की सुनियोजित समय-सारणी सभी क्रियाओं के सन्तुलित संचालन को सम्भव बना सकती है और इससे विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुसार क्रियाएँ चुनने और उनमें प्रभावशाली ढंग से भाग लेने में सहायता मिलती है।

8. गृह-कार्य की समय-सारणी (Home-work Time Table)—जिस प्रकार स्कूल की समय-सारणी स्कूल की दूसरी घड़ी है, उसी प्रकार गृह-कार्य की समय-सारणी दूसरी कलाई की घड़ी है। गृह-कार्य स्कूल कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। इससे स्कूल की नियमितता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इससे ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों को किस विषय में कितना गृह-कार्य दिया जाना चाहिए, किस कक्षा को गृह-कार्य में कितना समय लगाना चाहिए, किस विषय में कितना समय लगाना चाहिए और समूचे समय का विभाजन किस प्रकार करना चाहिए। विभिन्न विषय में गृह-कार्य देने के दिन निश्चित किए जाते हैं। इससे विद्यार्थियों को अपना गृह-कार्य कुशलतापूर्वक समाप्त करने में सहायता मिलती है और वे गृह-कार्य का बोझ भी अनुभव नहीं करते। विद्यार्थियों के लिए घर में अंग्रेजी, हिन्दी और एकाधी में एक-एक निबन्ध लिखना निःसन्देह कठिन होगा। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पढ़ाई के साथ-साथ खेल और विश्राम भी आवश्यक है। केवल काम करते रहने से विद्यार्थियों में नीरसता प्रवेश कर जाती है। गृह-कार्य विद्यार्थियों और अध्यापकों की सुविधाओं को सम्मुख रखकर दिया जाना चाहिए। इसकी एक-एक प्रति प्रत्येक कक्षा में होनी चाहिए। मॉनीटर को ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक सम्बन्धित अध्यापक द्वारा गृह-कार्य दिया गया हो। अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए गृह-कार्य की समय-सारणी की एक प्रति उन्हें भी भेजनी चाहिए।

गृह-कार्य के लाभ या महत्व (Advantages or Importance of Home-work)—इसके लाभ या महत्व इस प्रकार है—

1. **श्रम की आदत** (Habit of Hard work)—गृह-कार्य श्रम और नियमित रूप से काम करने की आदत का निर्माण करता है और यह आदत ज्ञानार्जन में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है।

2. **नैतिक एवं बौद्धिक गुणों का विकास** (Development of Moral and Intellectual Qualities)—गृह-कार्य आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्म-निर्देशन जैसे नैतिक एवं बौद्धिक गुणों का विकास करता है।

3. **स्वतन्त्र कार्य के लिए अवसर** (Opportunity for Independent Work)—गृह-कार्य विद्यार्थियों को स्वतन्त्रतापूर्वक अपना अध्ययन आयोजित करने का अवसर प्रदान करता है। इससे उनमें स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने और अपने आप अध्ययन करने की आदतों का निर्माण होता है।

4. **कक्षा शिक्षण का पूरक** (Supplementing Classroom Teaching)—गृह-कार्य कक्षा शिक्षण का पूरक है और लम्बे तथा बोझिल पाठ्यक्रम को समाप्त करने का सशक्त साधन है।

5. **अवकाश काल का सदुपयोग** (Utilising Leisure Time)—गृह-कार्य विद्यार्थियों को अवकाश काल के सदुपयोग की योग्यता प्रदान करता है। इससे वे अपना समय गप्पों, इधर-उधर घूमने या सिनेमा देखने में नहीं गुजारते।

6. **स्कूल कार्य की पुनरावृत्ति** (Revision of School-work)—गृह-कार्य स्कूल कार्य को दोहराने में सहायता प्रदान करता है।

7. **अभिभावक-अध्यापक सहयोग** (Parent-Teacher Co-operation)—गृह-कार्य अभिभावक-अध्यापक सहयोग की कड़ी है। अपने बच्चों का गृह-कार्य देखकर माता-पिता को उनकी प्रगति का परिचय मिलता रहता है। वे उनकी अधिक प्रगति के लिए आवश्यक सुझाव भी दे सकते हैं। इससे अभिभावकों तथा अध्यापकों में प्रभावशाली सहयोग सुनिश्चित बनता है।

गृह-कार्य की सीमाएँ (Limitations of Home-work)—इसकी सीमाएँ निम्न प्रकार है—

1. मनोरंजन के लिए समय नहीं (Not time for Recreation)—गृह-कार्य के कारण बच्चे मनोरंजन, रोचक कार्यों तथा सामान्य अध्ययन के लिए समय नहीं मिलता।

2. सामाजिक क्रियाओं का समय नहीं (No Time for Social Activities)—गृह-कार्य कारण बच्चो को अपने घरेलू जीवन का आनन्द लेने तथा सामाजिक क्रियाओं मे भाग लेने के लिए नही मिलता।

3. माता-पिता की सहायता के लिए समय नहीं (No Time for Helping Parents)—गृह-के बोझ के कारण विद्यार्थियो को अपने माता-पिता के काम मे हाथ बँटाने का समय नही मिलता इसके परिणामस्वरूप माता-पिता मे स्कूल के प्रति कुरुचि उत्पन्न हो जाती है।

4. स्वास्थ्य पर कुप्रभाव (Adverse effect on Health)—अत्यधिक गृह-कार्य से विद्यार्थियो स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अधिकाश भारतीय घरो मे अस्वस्थ स्थितियाँ गृह-कार्य को लाभदायक बनाने की बजाय हानिकारक बना देती है। **ब्रे** (Bray) के शब्दो मे, "दोपहर तक बच्चे द्वारा उचित कर लेने के पश्चात् उसे दिया गया गृह-कार्य—जो सामान्य रूप से दिया जाता है—इस देश मे लाभ अपेक्षा हानि अधिक पहुँचाता है। सिवाय इसके कि वह परीक्षा में सफलता के लिए कुछ लाभदायक सकता है।"

गृह-कार्य देने के व्यावहारिक सुझाव (Practical Suggestions for Home-work)—इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है—

1. अनुक्रमित (Be graded)—गृह-कार्य विद्यार्थियो की रुचियो, आवश्यकताओ तथा योग्यताओ के अनुसार, अनुक्रमित किया जाना चाहिए। यह अध्यापको की इच्छाओ और आकाक्षाओ पर आधारित नही होना चाहिए।

2. स्कूल कार्य का अभिन्न अंग (Be an Integral Part of School-work)—गृह-कार्य स्कूल के अध्ययन कोर्स का अभिन्न अग होना चाहिए।

3. निश्चित एवं सीमित (Be Definite and Limited)—गृह-कार्य निश्चित एव सीमित होना चाहिए। सभी विषयो मे इतना काम नही दिया जाना चाहिए कि विद्यार्थी उसे सुविधापूर्वक समाप्त ही कर सके। इसकी सीमा अग्र प्रकार होनी चाहिए—

(i) 11-13 वय-वर्ग के विद्यार्थियो के लिए एक घण्टे का काम।

(ii) 14-16 वय-वर्ग के विद्यार्थियो के लिए दो या तीन घण्टो का काम।

4. समय-सारणी की पहले से तैयारी (Prepare Time Table in Advance)—गृह-कार्य की समय-सारणी पहले से ही तैयार कर लेना चाहिए। सभी विषयो को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। इस समय-सारणी की प्रतियाँ अभिभावको को भेजनी चाहिए ताकि उनका सहयोग प्राप्त किया जा सके। इसके औचित्य के सम्बन्ध मे उनके विचार भी आमन्त्रित करते रहना चाहिए।

5. अन्य अध्यापकों का सहयोग (Secure Co-operation of Other Teachers)—गृह-कार्य देने वाले विभिन्न विषय अध्यापको मे परस्पर सहयोग होना चाहिए। मुख्याध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अध्यापक परस्पर सहयोग से गृह-कार्य आयोजित करे।

6. अभिभावकों का सहयोग (Secure Co-operation of Parents)—गृह-कार्य के सम्बन्ध मे समय-समय पर अभिभावको से भी परामर्श करते रहना चाहिए। उन्हे इस बात की सूचना देने की प्रार्थना करनी चाहिए कि गृह-कार्य मे निर्धारित समय से कम समय लगता है या अधिक।

7. **गृह-कार्य अनिवार्यत: शैक्षणिक महत्व का नही होना चाहिए** (Not Necessarily of Academic Value)—यह अनिवार्य नही कि गृह-कार्य शैक्षणिक महत्व का ही हो। इसमे व्यावसायिक महत्व भी हो सकता है। इसमे विभिन्न विषयो से सम्बन्धित रचनात्मक कार्यो को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जैसे—एलबम बनाना, चार्ट या मॉडल बनाना, समुदाय के सम्पर्क मे आना, भाग लेना, किसी नाटक की योजना बनाना, किसी तर्क-वितर्क या सम्मेलन के लिए तैयारी करना आदि।

8. **सुनियोजित** (Well Planned)—गृह-कार्य देने से पहले उस पर अच्छी प्रकार से विचार कर लेना चाहिए और उसे सुनियोजित करना चाहिए। यह स्कूल कार्य से सम्बन्धित होना चाहिए। अध्यापक को यह कहना, "जो कुछ आपने आज पढ़ा है, उसे लिखकर लाओ" गृह-कार्य देने के उपयुक्त तरीका है। इसी प्रकार "अगली प्रॉपोजीशन करो" या "अगले पाँच प्रश्न करके लाओ" भी गृह-कार्य देने की उपयुक्त विधियाँ है।

9. **पूर्ण रूप से जाँचना** (Thoroughly Checked)—गृह-कार्य अच्छी तरह जाचना चाहिए और उसे शुद्ध करना चाहिए। कोई भी ऐसा काम नही देना चाहिए जिसकी जाँच करना असम्भव हो। यदि गृह-कार्य की जाँच न की जाये तो विद्यार्थी गृह-कार्य नही करेगे और उनमे नकल करने की आदत का निर्माण हो जायेगा।

10. **दण्ड का साधन नहीं** (Not Tool of Punishment)—गृह-कार्य को दण्ड का साधन नही बनाना चाहिए, नही तो विद्यार्थियो को इसके प्रति घृणा हो जायेगी। गृह-कार्य देते समय अध्यापक को बच्चे की घरेलू स्थितियो को भी सम्मुख रखना चाहिए अर्थात् घर मे काम करने की परिस्थितियाँ कैसी है, बच्चे को कही काम तो नही करना पड़ता, घर मे कोई बीमार तो नही आदि।

निष्कर्ष (Conclusion)—यदि गृह-कार्य उचित न हो तो यह बच्चो के लिए बोझ बन जाता है, उनमे शारीरिक एव मानसिक तनाव का कारण बनेगा। अत्यधिक गृह-कार्य से विद्यार्थियो मे दूसरो की नकल करने और स्कूल से भागने की आदतो का निर्माण हो सकता है। इससे उनके मन मे स्कूल के प्रति घृणा उत्पन्न हो सकती है। अत गृह-कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आयोजित होना चाहिए। सोच-समझकर दिया जाना चाहिए। उसकी पूरी जाँच होनी चाहिए। यह उपयोगी, आकर्षक तथा रोचक होना चाहिए।

22.4 : समय-सारणी निर्माण के सिद्धान्त
(PRINCIPLES OF TIME TABLE CONSTRUCTION)

समय-सारणी का निर्माण स्कूल प्रशासन का अत्यन्त जटिल कार्य है, क्योकि इसमे कई तत्व एव सिद्धान्त निहित होते है। इसका निर्माण करते समय स्कूल के प्रकार, स्कूल के लक्ष्यो एव उद्देश्यो, विभिन्न क्रियाओ की प्रकृति, शिक्षण विधियो तथा सीखने की प्रक्रिया के अन्य कई तत्वो को सम्मुख रखना पड़ता है। समय-सारणी के निर्माण मे निम्नलिखित सिद्धान्तो की ओर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए—

1. **स्कूल का प्रकार** (Type of School)—समय-सारणी स्कूल के प्रकार के अनुसार, अलग-अलग प्रकार का होता है। बेसिक स्कूल में कई शैक्षिक क्रियाओ की व्यवस्था करनी होती है। इसलिए उसका समय-सारणी अलग प्रकार का होगा। इसी प्रकार एक अध्यापकीय स्कूल तथा द्विअध्यापकीय स्कूल के समय-सारणी बहुअध्यापकीय स्कूल के समय-सारणी से भिन्न प्रकार के होगे। द्वि-पारी स्कूल (Double Shift School) के पीरियड सामान्य स्कूल की अपेक्षा छोटे होते है। लड़को और लड़कियो के स्कूलो के

समय-सारणी अलग-अलग प्रकार के होगे। सह-शिक्षात्मक स्कूलो के समय-सारणी मे भी लड़को
लड़कियो की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कुछ परिवर्तन करने पड़ेगे। ग्रामीण स्कूलो
स्कूलो, प्राइमरी स्कूलो, सेकेण्डरी स्कूलो, हायर सेकेण्डरी, सीनियर सेकेण्डरी, मॉडल, बहुउद्देश
(Multipurpose) स्कूलो के समय-सारणी अलग-अलग प्रकार के होगे। सेकेण्डरी और हायर सेकण्ड
स्कूलो के पीरियड स्कूल की अपेक्षा लम्बे होते है। मॉडल स्कूलो मे खेलो तथा पाठ्य-सहायक क्रि
के लिए अधिक समय निर्धारित करना होता है। अत समय-सारणी का निर्माण करते समय स्कूल
आवश्यकताओ को अवश्य सम्मुख रखना चाहिए।

2. **विभागीय नियम** (Departmental Regulations)—समय-सारणी का निर्माण शिक्षा वि
द्वारा निर्धारित नियमो पर आधारित होता है। शिक्षा विभाग ही समूचे वर्ष मे स्कूल लगने के दिन, प्रतिदि
काम के घण्टे, विभिन्न कक्षाओ के विभिन्न विषयो का पाठ्यक्रम, प्रतिदिन पीरियडो की कुल सख्
प्रत्येक विषय के लिए पीरियडो की सख्या तथा प्रत्येक वर्ग के अध्यापको के लिए सप्ताह मे पीरियडो
सख्या निर्धारित करता है। इसी प्रकार प्रात कालीन सभा, आधी छुट्टी, खेलो आदि का समय भी शि
विभाग द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक स्कूल को इन नियमो का पालन करना होता है। विभ
द्वारा निर्धारित ये नियम विभिन्न स्कूलो मे एकात्मकता को सुनिश्चित बनाते है।

3. **समय की प्राप्ति** (Availability of Time)—समय-सारणी बनाते समय स्कूल मे प्राप्त सम
को भी ध्यान मे रखना चाहिए। काम के घण्टे, विभिन्न विषयो के लिए पीरियडो की सख्या, विभिन्न
क्रियाओ का सगठन आदि नियन्त्रण विभागीय नियमो के अनुसार किया जाता है। छोटी कक्षाओ के लि
अधिक समय निश्चित किया जाता है। मौसम को सम्मुख रखकर भी समय मे कुछ परिवर्तन किये जा
है। द्वि-पारी स्कूलो (Double Shift Schools) में दैनिक काम के घण्टे स्वाभाविक रूप से अपेक्षाकृ
कम होते है। अत समय-सारणी प्राप्त समय की सीमा के अनुसार बनाया जाना चाहिए।

4. **विषयों का सापेक्षिक महत्व एवं कठिनाइयाँ** (Relative Importance and Difficulty o
Subjects)—कुछ सामाजिक एव आर्थिक विशेषताओ के कारण ही विभिन्न विषयो का महत्व निहित हो
है। समय-सारणी मे महत्वपूर्ण तथा कठिन विषयो को अपेक्षाकृत अधिक समय देना चाहिए। इन विषय
के लिए ताजगी को भी ध्यान मे रखना चाहिए। अग्रेजी, गणित, विज्ञान जैसे विषयो के लिए प्रात काल
का समय निर्धारित किया जाना चाहिए। ड्राइंग, पेटिंग, सगीत, शारीरिक प्रशिक्षण आदि विषयो को द
कठिन विषयो के बीच मे रखना चाहिए और शिल्प जैसे विषयो को अन्त मे रखना चाहिए। इस प्रका
समय-सारणी मे कठिन एवं महत्वपूर्ण विषयो को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कई राज्यो मे शिक्षा विभाग
द्वारा प्रत्येक विषय के पीरियड निर्धारित किये जाते है।

5. **स्टाफ, भवन और उपकरण** (Staff, Building and Equipments)—समय-सारणी क
निर्माण मे प्राप्त स्टाफ, भवन और उपकरणो को भी सम्मुख रखना चाहिए। कमरो की सख्या
अध्यापको की सख्या, प्रत्येक कक्षा मे विद्यार्थियो की सख्या तथा प्राप्त उपकरणो एव फर्नीचर को ध्यान
मे रखते हुए समय-सारणी का निर्माण किया जाना चाहिए। कई बार किसी विशिष्ट कमरे मे फर्नीचर क
अभाव के कारण ऐच्छिक विषय (Optional Subjects) नही पढ़ाये जा सकते। इसी प्रकार यदि स्कूल म
केवल एक विज्ञान अध्यापक है तो एक समय मे केवल एक से अधिक कक्षा को विज्ञान नही पढ़ाया जा
सकता। एक ही समय मे सभी कक्षाओ का भूगोल का पीरियड नही रखा जा सकता, क्योकि भूगोल कक्ष
एक समय मे एक कक्षा को ही मिल सकता है। ऐसा भी नही होना चाहिए कि कोई कमरा खाली पड़ा रहे
और उसी समय स्थानाभाव के कारण कोई कक्षा बाहर बैठी हुई हो। कई बार कमरो के अभाव मे दो-दो

कक्षाओ को एक कमरे मे बिठाना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे समय-सारणी इस प्रकार बनाना चाहिए कि एक कक्षा लेखन कार्य मे व्यस्त रहे और दूसरी का पाठन कार्य हो। समय-सारणी के निर्माण में इस सामग्री का उत्तम प्रयास करना चाहिए और यथासम्भव विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

6. थकावट का तत्व (Element of Fatigue)—शक्ति के व्यय से उत्पन्न हुई अनुभूति को थकावट है। 'थकावट' शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी। थकावट से ध्यान केन्द्रित करने और समझने की योग्यता शिथिल हो जाती है। अत समय-सारणी बनाते समय हमें उन विषयों का ध्यान रखना चाहिए जिनसे थकावट पैदा होती है और उन विषयो के अध्ययन के लिए उपयुक्त समय का निर्धारण करना चाहिए।

थकावट की दृष्टि से विषयो का क्रम इस प्रकार है—(i) गणित, (ii) इगलिश, (iii) भाषा, (iv) विज्ञान, (v) इतिहास और भूगोल, (vi) ड्राइग और पेटिंग, (vii) संगीत, (viii) हैंडी क्राफ्ट तथा पाकशास्त्र। दिमागी ताजगी के लिए सुबह का समय सर्वोत्तम समझा जाता है, परन्तु खोज तथा अनुभव के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि आरम्भिक पीरियड मे इतना अच्छा काम नहीं होता जितना एक या दो पीरियड गुजर जाने के पश्चात् होता है। अत सुबह मे दूसरा और तीसरा पीरियड तथा आधी छुट्टी के बाद दूसरा पीरियड थकान पैदा करने वाले विषयो के लिए अत्यन्त उपयोगी समझा जाता है। इसी प्रकार दिमागी ताजगी के दृष्टिकोण से मगलवार तथा बुधवार अत्यन्त उत्तम है, सप्ताह के अन्त की तैयारी मे गुजर जाता है और शनिवार को निकृष्ट दिवस समझा जाता है।

अत समय-सारणी बनाते समय थकान पैदा करने वाले विषयो जैसे—गणित, इगलिश, विज्ञान आदि—को दिन के अत्यन्त उपयोगी पीरियड तथा सप्ताह के अत्यन्त उपयोगी दिन देने का प्रयास करना चाहिए। विद्यार्थियो की आयु तथा भौतिक स्थितियो को भी ध्यान मे रखना चाहिए। छोटी कक्षा के छात्र जल्दी परिवर्तन चाहते है। उनके लिए छोटे पीरियड रखने चाहिए ताकि वे थकान न महसूस करने लगे। हायर कक्षाओ के लिए 40-45 मिनट के पीरियड रखे जा सकते है। गर्मी के मौसम मे जल्दी थकान महसूस होने लगती है, इसलिए गर्मियो मे पीरियड छोटे और काम के घण्टे कम होने चाहिए।

7. विविधता का सिद्धान्त (Principle of Variety)—विविधता विश्राम का सर्वोत्तम साधन है। यह ध्यान केन्द्रित करने का भी साधन है। यह थकान को कम करती है। अत समय-सारणी मे विविधता होनी चाहिए। इस दिशा मे निम्नलिखित बाते सहायक सिद्ध हो सकती है—

(i) कक्षा और मुद्रा में परिवर्तन (Change of Room and Posture)— थकान से बचने के लिए कमरे, स्थान और मुद्रा मे परिवर्तन करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके, किसी भी कक्षा को सारा दिन एक ही कमरे मे नही बैठने देना चाहिए।

(ii) लगातार पीरियड नहीं (No Consecutive Periods)—किसी भी कक्षा मे एक विषय के दो लगातार पीरियड नही होने चाहिए, सिवाय प्रयोगात्मक कार्य के लिए।

(iii) विषयों में विविधता (Variation in Subjects)—ऊब को समाप्त करने के लिए समय-सारणी के क्रम मे विषयो की विविधता होनी चाहिए। कठिन और आसान विषय एक-दूसरे के पश्चात रखे जाने चाहिए। जैसे गणित और साहित्य के बीच मे शारीरिक व्यायाम या सगीत को रखा जा सकता है। इस प्रकार की विविधता अध्यापको के सम्बन्ध मे भी होनी चाहिए। इगलिश और इतिहास के अध्यापक को बारी-बारी यह विषय पढ़ाने चाहिए। गणित के अध्यापक को बारी-बारी छोटी और बड़ी कक्षा को पढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार भाषा के अध्यापक को लगातार दो पीरियड मौखिक कार्य नही कराना चाहिए बल्कि मौखिक कार्य तथा लेखन कार्य बारी-बारी से कराना चाहिए।

(iv) अध्यापकों में विशिष्टता (Variation in Teachers)—समय-सारणी के क्रम में अध्यापकों की भी विविधता होनी चाहिए। एक ही अध्यापक को लगातार दो-तीन पीरियड एक ही कक्षा में नहीं चाहिए।

(v) विषयों के बीच में अन्तराल (Interval Between Subjects)—यदि किसी विषय सप्ताह में दो या तीन बार पढ़ाना है तो उसके पीरियड लगातार दो या तीन दिन नहीं लगने चाहिए उनके बीच में अन्तराल होना चाहिए।

अत समय-सारणी बनाते समय याद रखना चाहिए कि कमरे, विषय तथा अध्यापक में परि प्रत्येक विद्यार्थी को आनन्द प्रदान करता है। इसी प्रकार कक्षा और विद्यार्थियों में परिवर्तन अध्यापक के लिए सुखद होता है।

8. खेल और मनोरंजन का सिद्धान्त (Principle of Play and Recreation)—समय-सार खेल और मनोरंजन के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। खेल की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए खेल विद्यार्थियों को स्वस्थ रखता है। खेल आनन्द का सशक्त स्रोत है। आधी छुट्टी विश्राम मनोरंजन प्रदान करती है। अत यह आधे घण्टे से कम नहीं होनी चाहिए। कई अध्यापक आधी छुट्टी समय में पढ़ाते रहते हैं। यह आत्मघाती है। अत इसे बन्द किया जाना चाहिए। शारीरिक अभ्यास आकाशवाणी प्रसारण, दूरदर्शन कार्यक्रम, नाटक, सांस्कृतिक क्रियाएँ आदि मनोरंजन के साधन हैं क्रियाओं को समय-सारणी में पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए।

9. लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Elasticity)—समय-सारणी लचीला होना चा कठोर नहीं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि समय-सारणी में हर रोज ही परिवर्तन कर दिया जाये। इ तो विद्यार्थियों की प्रगति में बाधा पड़ेगी। इसका तात्पर्य यह है कि समय-सारणी इतना लचीला चाहिए कि उसमें आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन किया जा सके। वस्तुत समय-सारणी न तो अत्यधि कठोर होना चाहिए और न ही अत्यधिक लचीला।

10. सम-विभाजन का सिद्धान्त (Principle of Equitable Distribution)—न्याय और स विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार, अध्यापकों में समान रूप से कार्य विभाजन होना चाहिए। काय विषम विभाजन अध्यापकों में जलन पैदा करता है और स्कूल की प्रगति में बाधक सिद्ध होता है।

11. अध्यापकों के लिए खाली पीरियड (Free Periods of Teachers)—अध्यापकों कार्य- कुशलता बढ़ाने तथा उन्हें विद्यार्थियों का लेखन कार्य शुद्ध करने के लिए खाली पीरियड जाने चाहिए, परन्तु ये खाली पीरियड सप्ताह में एक दिन नहीं देने चाहिए बल्कि इन्हें पूरे सप्ताह में देना चाहिए। प्रत्येक अध्यापक को हर रोज कम-से-कम दो खाली पीरियड मिलने चाहिए। अध्यापकों को काफी शोधकार्य करना होता है। इसलिए, उन्हें ज्यादा खाली पीरियड मिलने चाहि प्रयोगात्मक कार्य के पीरियड का पहला पीरियड सम्बन्धित अध्यापक का खाली होना चाहिए ताकि प्रयोगात्मक कार्य के लिए तैयारी कर सके।

12. अन्य विचार (Miscellaneous Considerations)—(i) विज्ञान, गृह विज्ञान तथा शिल्प प्रयोगात्मक कार्यों के लिए लगातार दो पीरियडों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ii) एक विषय के लिए निर्धारित समय को विषय की विभिन्न शाखाओं में नहीं बाँटना चाहिए काम अध्यापक पर छोड़ देना चाहिए।

(iii) स्कूल समय-सारणी का निर्माण गृह-कार्य के समय-सारणी को सम्मुख रखकर किया चाहिए।

(iv) समय-सारणी यथासम्भव अध्यापकों के परामर्श से बनाया जाना चाहिए।

यह याद रखना चाहिए कि समय-सारणी एक साधन है साध्य नहीं। इस सम्बन्ध में डब्ल्यू० एम० **रायबर्न** (W. M. Ryburn) का कथन स्मरणीय है, "समय-सारणी के निर्माण का निर्देशन करने वाले सिद्धान्तों का यथासम्भव पालन किया जाना चाहिए परन्तु समय-सारणी के वास्तविक निर्माण में कुछ बाते सामने आ जाती है जिनके कारण इन सिद्धान्तों का पालन करना असम्भव हो जाता है। अध्यापकों की योग्यताएँ, स्कूल मे अध्यापकों की कमी तथा अन्य स्थानीय स्थितियाँ के कारण कुछ ऐसा हो सन्तोषजनक समय-सारणी बनाना बहुत कठिन होता है परन्तु फिर भी यथासम्भव इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए और विपरीत स्थितियों मे भी इनकी ओर ध्यान देना चाहिए समय सारणी बनाना कोई आसान काम नही है। इसे दोषों से बचाने के लिए इसके निर्माण मे जल्दबाजी से कभी नहीं लेना चाहिए। चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ क्यो न हो, परन्तु उनके कारण हम इन सिद्धान्तों के पालन का प्रयास नही छोड़ना चाहिए। स्थानीय स्थितियाँ कठिन होने पर भी इन सिद्धान्तों के पालन का कुछ प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए।

22.5 : समय-सारणी के गुण
(QUALITIES OF TIME-TABLE)

प्रत्येक सस्था के लिये समय-सारणी अत्यन्त आवश्यक है। उसके कुछ गुण निम्नांकित हैं :

1. समय-सारणी से सभी अध्यापकों के कार्य का उचित विभाजन हो सकता है।

2. यह स्कूल के समूचे कार्य को नियमित बनाता है। इससे स्कूल के सभी कार्यों में एक तरह की प्रगति होती है।

3. समय-सारणी के द्वारा प्रत्येक विषय की ओर उचित रूप से ध्यान दिया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक विषय को उसके महत्व के अनुसार, समय दिया जाता है।

4. यह समय और शक्ति के अपव्यय को रोकता है। समय-सारणी के बिना स्कूल में गड़बड़ी फैल जाती है।

5. समय-सारणी समय के पाबन्द रहने तथा नियमों के अनुसार कार्य करने की आदत का निर्माण करता है।

6. यह शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा मे प्रगति को निश्चित बनाता है।

7. यह स्कूली जीवन को विधिवत् बनाता है। इसे लागू करने से अध्यापक और विद्यार्थी अपने-अपने कार्य मे व्यस्त हो जाते है और स्कूल मे अनुशासनहीनता की सम्भावना कम हो जाती है।

8. समय-सारणी स्कूल का पूर्व नियोजित कार्यक्रम है। अध्यापकों को पहले ही पता होता है कि उन्हे क्या पढ़ाना है। इसलिये, वे कक्षा मे तैयार होकर आते है।

22.6 : फ्रेम करने में व्यावहारिक समस्याएँ
(PRACTICAL PROBLEMS IN FRAMING IT)

सामान्यत समय-तालिका के निर्माण मे निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित होती है–

1. शिक्षकों के अभाव के कारण उपर्युक्त सिद्धान्तों को अपनाना कठिन हो जाता है। इसी कारण समय-तालिका मे बालकों को अपनी रुचि के अनुसार विषयों को चुनने की भी व्यवस्था नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों को अपनी रुचि के विषय भी पढ़ाने को नहीं मिलते है। प्राय यह देखा जाता है कि उन्हे वे विषय पढ़ाने पड़ते है जिनको पढ़ाने के लिए वे योग्य नही है। इस कारण उन पर अधिक

कार्य-भार रहता है और उनके मस्तिष्क मे सदैव तनाव रहता है जिनसे उनकी कार्य-क्षमता निरन्तर
होती रहती है।

2. सामान्य कक्षा-कक्ष, फर्नीचर एव अन्य शैक्षिक सामग्री का अभाव भी समय-तालिका के नि
मे बहुत-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है।

3. अशकालीन शिक्षको (Part-time Teachers) की नियुक्ति के कारण भी समय-तालिक
बनाने मे कठिनाई उत्पन्न होती है, क्योकि वे विद्यालय को अपनी सुविधानुसार ही समय दे पाते है

उपर्युक्त कठिनाइयो के होते हुए भी हमे निराश नहीं होना चाहिए, वरन् एक अच्छी समय-ताल
निर्माण करने के लिए प्रयास करते रहना चाहिए। प्रशासक की कुशलता इस तथ्य मे निहित है कि उ
पास जो साधन उपलब्ध है, उनका सर्वोत्तम रूप से उपयोग किया जाय। प्रधानाध्यापक समय-ताल
के निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है, परन्तु वह इस कार्य को अकेला नहीं कर सकता है। स
समय-तालिका का निर्माण-कार्य एक सहयोगी प्रयास है। उसे सदैव इस कार्य मे अपने साथियो
सहयोग लेना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. समय-सारणी की अवधारणा एवं महत्त्व का विवेचन कीजिए।
2. समय-सारणी के प्रकारो का विवेचन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. समय-सारणी के सिद्धान्त बताइए।
2. समय-सारणी के गुण बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. "समय सूची स्कूल का स्पार्क प्लग है जो स्कूल के विभिन्न कार्यों तथा कार्यक्रमो को सचालि
करता है।" किसका कथन है ?
(अ) जसवन्त सिह (ब) एच. जी. स्टैड
(स) इडमानसन (द) इनमे से कोई नहीं
2. समय सारणी के प्रकार है– उत्तर–(अ
(अ) सयुक्त समय-सारणी (ब) कक्षा समय-सारणी
(स) अध्यापक समय-सारणी (द) उपर्युक्त सभी
3. समय–सारणी मे थकावट की दृष्टि से कौन–सा विषय है? उत्तर–(द
(अ) गणित (ब) हिन्दी
(स) खेल (द) इनमे से कोई नही।
4 कक्षाकक्ष मे एक ही विषय के पीरियड लगातार नही होने चाहिए– उत्तर–(अ
(अ) दो (ब) तीन
(स) एक (द) इनमे से कोई नही। उत्तर–(अ

□□

अध्याय

23

विद्यालय अनुशासन : अवधारणा, आवश्यकता, प्रकार एवं युक्तियाँ

[SCHOOL DISCIPLINE : CONCEPT, NEED, TYPES AND STRATEGIES]

अनुशासन किसी भी राष्ट्र, समाज अथवा सगठन के लिए आवश्यक है। इसी के माध्यम से व्यक्ति की भावनाओं और शक्तियों को नियमबद्ध कर दक्षता और मितव्ययिता लाई जा सकती है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। इसके विपरीत अनुशासनहीनता से समाज व सगठन अकुशलता तथा पतन के गर्त में चला जाता है। फिर चाहे कोई भी सगठन क्यों न हो, यह सगठन विद्यालय ही क्यों न हो उसके उत्थान हेतु अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है।

23.1 : अनुशासन का अर्थ
(MEANING OF DISCIPLINE)

'डिसिप्लिन' (Discipline) शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'Disciplina' से मानी जाती है जिसका अर्थ है—व्यवस्था, नियम, शिक्षा, अभ्यास, अध्यापन, प्रतीक्षितावस्था। अंग्रेजी शब्द 'Disciple' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'discipulum' से मानी जाती है जिसका अर्थ है—शिष्य। शिष्य से यह आशा की जाती है कि वह अपने गुरुजनों के आदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करे और उसके अनुसार सफल जीवन हेतु स्वय मे आवश्यक एव वाछित गुणो का विकास करे। इस प्रकार 'डिसिप्लिन' का अर्थ—आचरण मे नियमितता उत्पन्न करना है। 'डिसिप्लिन' शब्द के लिए हिन्दी मे बहुत-से शब्दो का प्रयोग किया जाता है उदाहरणार्थ—नियन्त्रण, नियमन, सयम, विनय, अनुशासन आदि। 'नियन्त्रण' शब्द का प्रयोग उसी स्थान पर उपयुक्त होगा जहाँ पर किसी को बलपूर्वक वश मे रखा जाता है। जहाँ कुछ निर्धारित नियमो के अनुसार व्यक्ति को कार्य करने के लिए कहा जाता है, वहाँ पर 'नियमन' शब्द का प्रयोग करना उचित होगा। जहाँ स्वय को अपने वश मे रखा जाता है, वहाँ 'सयम' शब्द का उपयोग होगा। जहाँ बालक विनम्रता एव श्रद्धा के साथ अपने से बड़ो के आदेशों का पालन करता है वहाँ 'विनय' शब्द का प्रयोग करना उचित होगा। परन्तु 'डिसिप्लिन' के लिए 'अनुशासन' शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित है। प्रस्तुत पुस्तक मे 'अनुशासन' शब्द का प्रयोग किया गया है।

23.2 : विद्यालय अनुशासन की आधुनिक अवधारणा (MODERN CONCEPT OF SCHOOL DISCIPLINE)

आधुनिक शैक्षिक विचारधारा के अनुसार अनुशासन का अर्थ व्यापक रूप मे लिया जाता है जहाँ **शिक्षा का उद्देश्य**—बालक मे सफल नागरिकता एव सामाजिकता के गुणो का विकास करना गया है, वहाँ **विद्यालय**-अनुशासन से तात्पर्य ऐसे आन्तरिक तथा बाह्य अनुशासन से लिया जाता शारीरिक, **बौद्धिक**, सामाजिक व नैतिक मूल्यो का विकास करे।

विद्यालय-अनुशासन की आधुनिक धारणा को, जिसमे आत्मानुशासन व सामाजिक अनुशासन विशेष बल दिया गया है, महान् शिक्षा-शास्त्री **जॉन ड्यूवी** ने पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया है। का विचार है—"विद्यालय में **बौद्धिक** एव नैतिक प्रशिक्षण के बीच, सूचना ग्रहण करने तथा चरित्र अभिवृद्धि के बीच सामान्यत जो मार्मिक पृथकत्व पाया जाता है—वह विद्यालयो को एक सामाजि सस्था के रूप मे विचारित एव निर्मित करने मे असफलता की अभिव्यक्ति है। यह सामाजिक सस्था सामाजिक जीवन एवं स्वय मे अपना महत्त्व रखती है।" बालक के जीवन का प्रत्येक अनुभव, चाहे **बौद्धिक** हो या नैतिक, उसके व्यक्तिगत विकास पर अपना प्रभाव डालता है। अत विद्यालय एक स्थान के रूप मे कल्पित किया जाना चाहिए, जहाँ बौद्धिक विकास के साथ-साथ अन्य प्रकार के विक भी सहयोगी क्रिया द्वारा समान उद्देश्य हेतु प्राप्त किये जाते है। **ड्यूवी** का कथन है—"जिन कार्यो करने मे परिणाम या निष्कर्ष निकलते है, उन कार्यो को सामाजिक एवं सहयोगी ढग से करने पर ही ढग एव रूप का अनुशासन उत्पन्न होता है।" यही आत्मानुशासन है जो समाज की स्वीकृति आधारित है। इस प्रकार का अनुशासन नैतिक या चारित्रिक प्रशिक्षण के लिए अग्रसर करेगा। अत के मतानुसार अनुशासन विद्यालय की सामाजिक स्थितियो मे निहित है।

अन्त मे, हम कह सकते है कि सर्वाधिक आधुनिक विचारधाराओ के अनुसार अनुशासन का है—लोकतन्त्रीय समाज मे बालको एव बालिकाओ को जीवन के लिए तैयार करना। इसका अभि व्यक्ति को ज्ञान, शक्ति, आदतो, रुचियो तथा आदर्शों को प्राप्त करने मे सहायता देना है जो कि स्वय व उसके साथियो के कल्याण के लिए एवं सम्पूर्ण समाज के लिए कल्पित किये जाते है।

23.3 : विद्यालय अनुशासन के प्रकार (TYPES OF SCHOOL DISCIPLINE)

अनुशासन मे मनुष्य के तीन तत्त्व आते है, **पहला**—अन्त प्रेरणा, **दूसरा**—आत्म-नियन्त्रण शक्ति और **तीसरा**—समाज-सम्मत आचरण। विद्यालय मे अनुशासन रखने से हमारा तात्पर्य विद्यार्थी समाज सम्मत आचरण के प्रति सचेत करने, उन्हे वैसा करने की प्रेरणा देने, उन्हे अपने ऊपर नियन्त्र रखने और विद्यालयी नियमो का पालन करने योग्य बनाने से होता है। जब सभी विद्यार्थी स्वय से प्रे होकर विद्यालयी नियमो का पालन करते है और समाज-सम्मत आचरण करते है तो हम कह सक कि विद्यालय का अनुशासन अच्छा है। अत आचरण के विभिन्न दृष्टिकोणो की दृष्टि से अनुशासन विविध रूप है। इस आधार पर अग्रेजी विद्वान **जॉन एडम** (John Adam) ने अनुशासन को तीन भा मे विभाजित किया है—(1) दमनात्मक (Repressionistic), (2) प्रभावात्मक (Impressionistic) और (3) मुक्त्यात्मक (Emancipationistic) अनुशासन।

1. दमनात्मक अनुशासन (Repressionistic Discipline)—प्राचीन काल मे अधिकाश अध्यापक अपनी आज्ञा का पालन कराने के लिये शक्ति का प्रयोग करते थे। उस समय विद्यालयो के नि

अत्यन्त कठोर होते थे जिनका पालन सब बच्चो को कठोरता से करना होता था और जो बालक इनका पालन नही करता था, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। आज भी इस प्रकार के विद्यालयो की कमी नही है। इस प्रकार बच्चो की मूल प्रवृत्तियो, रुचियो का दमन करके उनसे अच्छे आचरण कराने को एडम महोदय ने दमनात्मक अनुशासन की सज्ञा दी है। अनुशासन का यह रूप अनेक दोषो से युक्त है –

(i) अधिक दण्ड देने से अग-भग का भय रहता है इससे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की क्षति होती है।

(ii) इच्छाओ का दमन करने से बालक मे मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाती है और छात्र अपने स्वास्थ्य को खो बैठता है।

(iii) डण्डे के भय से मान्य व्यवहार करने की आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नही होती।

(iv) इस अनुशासन मे छात्र बाहरी रूप से बैठे रहते है लेकिन उनका मन और मस्तिष्क उपस्थित नही रहता है।

(v) इस प्रकार के अनुशासन मे छात्र यन्त्रचालित ढग से कार्य करता है उनमे स्वय सोचने और स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता विकसित नही होती है।

(vi) छात्रो की व्यक्तिगत रुचियो और शक्तियो का विकास नही होता है उनमे नेतृत्व शक्ति नही आ पाती है। वे दास भावना से ग्रसित होकर कठपुतली की तरह दूसरो के इशारो पर कार्य करते है।

(vi) लोकतन्त्र मे दण्ड मान्य नही है। **हक्सले** (Hexley) महोदय का मत है – यदि आपका लक्ष्य स्वतन्त्र और प्रजातान्त्रिक समाज स्थापित करना है तो नागरिको को स्वानुशासन तथा स्वतन्त्र रूप से रहने की शिक्षा देनी चाहिये।"

2. **प्रभावात्मक अनुशासन** (Impressionistic Discipline)–आदर्शवाद की मान्यता है कि शिक्षक को अपने आदर्शात्मक व्यक्तित्व और अच्छे आचरण से बालको को प्रभावित करना चाहिये और उसके साथ इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि वे उसके गुणो को ग्रहण करे और उसके अनुरूप आचरण करना सीखे। प्राचीन भारत मे सभी अध्यापक (गुरु) इसी विचार को मानते थे। वे स्वयं उच्च सयम के साथ जीवन व्यतीत करते थे और अपने ज्ञान, आचरण और आदतो से अपने शिष्यो को प्रभावित करते थे। शिष्य भी उनके ज्ञान और आचरण से प्रभावित होते थे और सयमित जीवन की ओर बढ़ते थे। एडम महोदय ने इस प्रकार के अनुशासन को प्रभावात्मक अनुशासन कहा है। आज के कुछ विद्वान इस अनुशासन को अच्छा नही मानते है और इसके विपक्ष मे तर्क देते है–

(i) गुरुओ के आदर्श जीवन होने पर ही यह अनुशासन प्राप्त किया जा सकता है। आज उच्च आदर्श वाले अध्यापक नही है और न ही उनका समाज मे सम्मान है। ऐसे मे बच्चे अध्यापको से कम प्रभावित होते है।

(ii) इस विधि मे बच्चे शिक्षक से प्रभावित होकर अच्छा बुरा सब कुछ सीख लेते है। इस प्रकार सच्चा अनुशासन प्राप्त नही किया जा सकता है।

(iii) विपक्ष मे यह तर्क है कि गुरुओ का अन्धानुकरण करने से बच्चो मे हीनभावना आती है।

(iv) गुरुओ से प्रभावित होकर बच्चे उनकी प्रतिलिपि मात्र बनकर रह जाते है, उनके व्यक्तित्व का विकास नही होता है।

(v) हमारे प्रभाव को केवल परिस्थितियाँ ही प्रभावित नही करती अपितु हमारे आदर्श भी प्रभावित करते है।

(vi) केवल अनुकरण द्वारा सीखा हुआ व्यवहार जीवन भर साथ नही दे सकता।

(vii) आदर्श बनने के लिये हमारे सामने आदर्श का होना आवश्यक है।

गुण (Merits)—इस अनुशासन मे इन दोषो के साथ-साथ कुछ अच्छाइयाँ भी है, हमे इनमे
लेनी चाहिये—

(i) बच्चे अधिकतर अनुकरण द्वारा ही सीखते है।

(ii) आज भी बच्चे अपने शिक्षको से प्रभावित होते है।

(iii) **योग्य, शिष्ट** और सदाचारी शिक्षक का आज भी उतना ही प्रभाव है।

(iv) **व्यवहार** को निश्चित करने वाले नैतिक स्थायी भाव, जीवन के प्रति दृष्टिकोण और उत्साह
हम आदर्श व्यक्तियो से ही प्राप्त करते है।

(v) बच्चे का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध नही होता है, बच्चे तो अपनी रुचि, योग्यता और
के अनुरूप ही आदर्श चुनते है।

3. मुक्त्यात्मक अनुशासन (Emancipationistic Discipline)—मनोवैज्ञानिको की धारणा है
अनुशासन स्थापित करने के लिये बालक को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये और उन्हे अपनी मूल प्रवृत्ति
शक्तियो, रुचियो और योग्यतानुसार विकास के पूर्ण अवसर देने चाहिये, उस स्थिति मे बच्चे
आचरण करते है। **प्रकृतिवादी रूसो** और **हरबर्ट स्पेन्सर** इस विचारधारा के प्रतिपादक है। एच
महोदय ने इसे मुक्त्यात्मक अनुशासन की संज्ञा दी है। रूसो की यह विचारधारा आदर्शवादी विचारधा
की प्रतिक्रिया मात्र थी। यदि प्राचीन विचारधारा एक सीमा पर है तो दूसरी रूसो की विचारधारा दू
सीमा पर है। दोनो ही अव्यावहारिक है। रूसो के विचारो को मान्य नहीं कहा जा सकता क्योकि—

(i) बच्चो को पूर्ण स्वतन्त्रता देने का अर्थ है मूल प्रवृत्ति के अधीन छोड़ना और इस प्रकार छोड़
पशुवत व्यवहार करने का अवसर देता है।

(ii) पूर्ण स्वतन्त्रता पर आधारित अनुशासन बच्चो को असामाजिक और अशिष्ट बना देता है

(iii) रूसो बच्चो को पूर्ण रूप से प्रकृति पर छोड़कर प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त करने की बा
करते थे।

(iv) रूसो समाज को दोषी बताकर बच्चो को समाज से दूर रखने की बात करते थे। यह कल्पना
सार्थक नही है।

(v) रूसो ने समाज की अवहेलना की है वे भूल गये कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

(vi) समाज से दूर रहकर मनुष्य मे सामाजिक गुणो का विकास नही किया जा सकता।

(vii) अनुशासन सम्बन्धी यह विचारधारा मनुष्य को प्रकृति के ऊपर छोड़कर उसके विकास म
बाधा उत्पन्न करती है। प्रकृति के दण्ड विधान मे भावना को कोई स्थान नही है।

जो भी हो, बच्चो के विकास के लिये डण्डे के स्थान पर स्वतन्त्रता की आवश्यकता को अन
विद्वानो ने भी स्वीकार किया है। स्वतन्त्र वातावरण मे बच्चे भय के कारण उत्पन्न होने वाली भावन
ग्रन्थियो से बच जाते है और उनका शारीरिक एव मानसिक विकास अपनी गति से होता है। विद्वानो का
विचार है बच्चो को अमानुषिक कृत्यो से रोकने के लिये दण्ड के स्थान पर प्रेम और सहानुभूति का प्रयोग
करना चाहिये। **जर्मन शिक्षाशास्त्री पेस्टालॉजी** (Pestalozy) ने प्रेम और सहानुभूति को ही अनुशासन
का आधार बनाने की बात कही है (Discipline should be based on and controlled by love)
मनोवैज्ञानिक दमनात्मक अनुशासन का विरोध करते है। उनकी मान्यता है कि अनुशासनहीनता के पीछे
कोई-न-कोई कारण होता है। ये कारण वैयक्तिक असन्तोष, कुण्ठाएँ, तनाव और उन परिस्थितियो के
प्रति विद्रोह पैदा कर देती है। अत बच्चो को उच्च सामाजिक पर्यावरण मे रखकर उन्हे स्वय से प्रेरित
होकर सामाजिक हित मे सोचने और वाछनीय आचरण करने की ओर उन्मुख किया जाना चाहिये। इस
प्रकार के अनुशासन को स्वानुशासन कहा जाता है। यही सच्चा अनुशासन है।

23.4 : विद्यालय अनुशासन का महत्त्व एवं आवश्यकता (IMPORTANCE AND NEED OF SCHOOL DISCIPLINE)

जीवन मे अनुशासन का बहुत महत्त्व है। इसके अभाव मे मानव प्रकृतिदत्त शक्तियो का उचित प्रयोग नही कर सकता है। अनुशासन द्वारा ही व्यक्ति अच्छी शक्ति प्राप्त करता है और इस शक्ति से वह अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तियो का विकास करने मे समर्थ होता है। व्यक्तिगत दृष्टि से अनुशासन का बहुत महत्त्व है। इसके साथ ही अनुशासन का सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। महान दार्शनिक अफलातून का कहना था—"एक राष्ट्र का निर्माण चट्टानो तथा वृक्षो से नही किया जाता है वरन उसके नागरिको के चरित्र से निर्मित किया जाता है।"—यह कथन पूर्णतया सत्य है। जब किसी देश के नागरिक अनुशासित होंगे तो वे अपने देश को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने मे समर्थ होगे। एक अनुशासित व्यक्ति सच्चरित्र एव अपने मन, वचन एव कर्म से शुद्ध होता है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र या सम्पूर्ण समाज के लिए अनुशासन का बहुत महत्त्व है। इस तथ्य को इतिहास की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कोई देश अनुशासनहीनता का शिकार हुआ तभी उसको बाह्य शक्तियो की दासता को स्वीकार करना पड़ा। अनुशासन द्वारा व्यक्ति एव सम्पूर्ण समाज या राष्ट्रो मे स्फूर्ति उत्पन्न की जाती है। इसके अभाव मे इस शक्ति का नाश हो जाता है जिसके बहुत भयकर परिणाम निकलते है। इस प्रकार क्या व्यक्ति, क्या राष्ट्र, क्या समाज—सभी का व्यक्तित्व अनुशासन द्वारा महान् बनाया जाता है।

रेन का यह कथन सत्य है, "जिस प्रकार स्थल सेना, जल सेना या राज्य के अस्तित्व के लिए अनुशासन का होना परमावश्यक है, उसी भाँति अनुशासन विद्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण है। विद्यालय का सम्पूर्ण कार्य इसके अभाव मे सुचारु रूप से सचालित नही किया जा सकता है। इसके अभाव मे उसमे अराजकता का साम्राज्य हो जायेगा। अत: अनुशासन वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज, राष्ट्र एव विद्यालय को उन्नति के पथ पर अग्रसर किया जाता है और उनके व्यक्तित्व को श्रेष्ट बनाया जाता है। महान् शिक्षाशास्त्री **टी. पी. नन** का मत है—"अनुशासन का अर्थ—अपने आवेगो और शक्तियो को उस व्यवस्था के अधीन करना है, जो अराजकता का अन्त करती है एव जो अकुशलता और अव्यवस्था के स्थान पर कुशलता और मितव्ययता की स्थापना करती है।"

23.5 : विद्यालय अनुशासन स्थापना के सिद्धान्त (PRINCIPLES FOR MAINTAINING SCHOOL DISCIPLINE)

हम ऊपर देख चुके है कि अनुशासन का व्यक्तिगत एव सामाजिक—दोनो ही दृष्टियो से बहुत महत्त्व है। इससे यह प्रश्न उठता है कि वे कौन-से सिद्धान्त है जिनके आधार पर विद्यालय मे उत्तम अनुशासन स्थापित किया जा सकता है, जिससे उसके महत्त्व को प्राप्त किया जा सके ? इस सम्बन्ध मे किसी निश्चित सिद्धान्त का निर्धारण नही किया जा सकता है, क्योंकि एक विद्यालय की परिस्थितियाँ दूसरे विद्यालय से भिन्न होती है। अत हम सुझाव के रूप मे कुछ बातो का विवेचन आगे प्रस्तुत कर रहे है जिनको ध्यान मे रखकर विद्यालय मे उत्तम अनुशासन स्थापित करने मे सहायता मिल सकती है—

1. अनुशासन का आधार प्रेम, विश्वास तथा सद्भावना हो, क्योंकि भय अथवा सशय पर आधारित अनुशासन क्षणिक होता है। सच्चे अनुशासन की स्थापना के लिए विद्यालय अधिकारियो—प्रधानाध्यापक, शिक्षक वर्ग आदि तथा बालको के बीच पारस्परिक प्रेम होना चाहिए। प्रेम विश्वास को उत्पन्न करता है तथा उत्तम अनुशासन की नीव को दृढ़ बनाता है।

यदि हम अपने छात्रो को इस प्रकार का अनुशासन सिखाये कि वे अपने गुरुजनो एव उनके द्वारा बनाये गये नियमो को आदर की दृष्टि से इसलिए न देखे कि वे उनसे डरते है या उन नियमो के

उल्लघन करने पर उनको दण्ड मिलेगा, बल्कि इसलिए देखे कि उनको उनसे प्रेम है तो निश्चय ही वे
पारस्परिक प्रेम को इस अनुशासन का आधार बनाना होगा।

2. उत्तम अनुशासन सहयोग पर आधारित होना चाहिए। प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक
अध्यापको एव अध्यापिकाओ, अध्यापको एव छात्रो, अध्यापको एव अभिभावको तथा छात्रो एव छात्रा
के बीच सहयोग होना परमावश्यक है। यदि इनके बीच सहयोग नही होगा तो उत्तम अनुशासन
स्थापना करना अत्यन्त कठिन होगा। इसके लिए हमे सबके बीच मधुर सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक
है।

3. अनुशासन को स्थापित करने के लिए दण्ड का प्रयोग न किया जाय। यदि अपनी दुष्प्रवृत्ति
को कोई किसी प्रकार से नही छोड़ता है, तभी इसके प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव किया जाना
चाहिए। यदि दण्ड का बार-बार प्रयोग किया गया तो इससे बालको के मस्तिष्क मे विभिन्न प्रकार की
ग्रन्थियाँ (Complexes) बनने की सम्भावना रहेगी, जिसके परिणामस्वरूप उनका व्यक्तित्व असन्तुलित
हो जायेगा। अत जहाँ तक सम्भव हो, दण्ड का प्रयोग न किया जाए।

4. विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को सुन्दर एव सामजस्यपूर्ण बनाया जाए। इसका दायित्व
केवल शिक्षको एव अन्य अधिकारियो को ही अपने ऊपर नही लेना चाहिए, वरन् इस प्रकार के वातावरण
के निर्माण के लिए छात्रो, अभिभावको तथा सम्पूर्ण समाज को उत्तरदायित्व ग्रहण करना पड़ेगा।

5. विद्यालय मे छात्रो एव अध्यापको को अपने-अपने कर्त्तव्यो को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त
स्वतन्त्रता एव सुविधाएँ प्रदान की जाएँ।

6. विद्यालय मे विभिन्न रचनात्मक कार्यों को स्थान दिया जाए, जिससे बालको को उनकी रुचि
के अनुसार विभिन्न कार्यों के करने से मानसिक व सवेगात्मक सन्तोष मिले। इससे अनुशासनहीनता की
समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना न रहेगी।

7. अभिभावको को पारिवारिक जीवन को सुन्दर व सुखमय बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना
चाहिए, क्योकि बालक का अधिकाश समय अपने घर पर ही व्यतीत होता है। यदि वहाँ का जीवन
अनुपयुक्त एव दूषित है तो विद्यालय के सद्प्रयासो के असफल होने की सम्भावना रहेगी। अत विभिन्न
साधनो द्वारा अभिभावको को अपने पारिवारिक जीवन को उपयुक्त एव सामजस्यपूर्ण बनाने के लिए प्रेरणा
दी जाय।

8. बालको को अनुशासन के महत्त्व के विषय मे अवगत कराया जाय। इसके लिए उपदेश देना
ही उचित नही है वरन् विभिन्न महान् पुरुषो के उदाहरणो से इसके विषय में ज्ञान दिया जाय तथा स्वयं
प्रधानाध्यापक एव शिक्षक वर्ग उनके समक्ष अपना उदाहरण प्रस्तुत करे।

23.6 : अनुशासन-स्थापन के साधन की युक्तियाँ (STRATEGIES OF MAINTAINING DISCIPLINE)

उत्तम अनुशासन की नीव विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रम मे निहित है। यदि विद्यालय मे उत्तम
अनुशासन स्थापित करना है तो प्रधानाध्यापक का परम कर्त्तव्य है कि विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को
उपयुक्त एव सामजस्यपूर्ण बनाए। इसके लिए वह विभिन्न साधनो का प्रयोग कर सकता है, जिनका
विवेचन नीचे किया जा रहा है—

1. **व्यक्तिगत आचरण सुधार कार्यक्रम** (Personal Behaviour Improvement Programmes)—अनुशासन बनाये रखने के लिये व्यक्तिगत आचरण को सुधारने के लिये विविध कार्यक्रमो का
सचालन करना चाहिये। इन कार्यक्रमो मे नैतिक शिक्षा, योग शिक्षा, चारित्रिक विकास आदि कार्यक्रम
आयोजित करने से अनुशासन सम्बन्धी समस्या उत्पन्न नहीं होगी। इससे स्वशासन का विकास होगा
और जनतन्त्रीय मूल्यो के प्रति आदर, प्रेम, विश्वास तथा सहयोग की भावना का विकास होगा।

2. विद्यालय के नियम एवं परम्पराएँ (Rules and Traditions of School)—अनुशासन स्थापन में विद्यालय के नियमों एवं परम्पराओं का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यालयों के नियमों का निर्माण विभिन्न शक्तियों द्वारा किया जाता है—**प्रथम** शिक्षा-विभाग के नियम **द्वितीय** प्रबन्ध-समिति द्वारा निर्मित नियम, **तृतीय**, प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक वर्ग द्वारा बनाए गए नियम तथा **चतुर्थ** छात्र-परिषद् द्वारा निर्मित नियम। अधिकांशत विभागीय एवं प्रबन्ध समिति द्वारा निर्मित नियमों का बिना किसी हिचकिचाहट के पालन करना पड़ता है। प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों द्वारा निर्मित नियम उपस्थिति, अनुपस्थिति, व्यवस्था-स्थापन आदि से सम्बन्धित होते हैं। छात्रों को इन नियमों के महत्त्व से अवगत करा देना चाहिए। दूसरे, यह भी बता देना चाहिए कि सामाजिक हित के लिए व्यक्तिगत हित का बलिदान करना आवश्यक होता है। इसके साथ ही छात्रों को यह भी जानकारी देना आवश्यक है कि इन नियमों के अनुसार यहाँ कार्य करने पर भावी जीवन में नियमित रूप से कार्य करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि ये नियम जितने कम हो सकें उतना ही उपयुक्त होगा क्योंकि प्रत्येक युवक अत्यधिक नियमों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर हो जाता है।

प्रत्येक विद्यालय की अपनी कुछ परम्पराएँ होती हैं। वस्तुत विद्यालय-अनुशासन परम्पराओं का ही विषय है। यह विद्यालय की परम्पराओं पर बहुत-कुछ सीमा तक आधारित होता है। यदि किसी विद्यालय की परम्पराएँ अच्छी हैं तो उस विद्यालय में अनुसन्धान का स्तर अच्छा होगा। यदि स्थिति इसके विपरीत है तो वहाँ का अनुशासन अच्छा नहीं होगा। प्रत्येक विद्यालय का स्वयं का वातावरण होता है जिसमें छात्रों को व्यवस्थित करना पड़ता है। वे यह मालूम करते हैं कि यहाँ के क्या नियम हैं और कौन-कौन-सी परम्पराएँ विद्यमान हैं जिनके अनुसार उन्हें विद्यालय के वातावरण में कार्य करना है। अनुशासन-स्थापना के लिए विद्यालय अधिकारियों को अपनी प्रचलित परम्पराओं को बराबर उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

3. पारस्परिक सहयोग (Mutual Cooperation)—विद्यालय के सम्पूर्ण कार्य सहयोग पर ही निर्भर हैं। प्रधानाध्यापक शिक्षकों के सहयोग के अभाव में, छात्रों के सहयोग के अभाव में अभिभावकों एवं समाज के सहयोग के अभाव में किसी कार्य को सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है। अत उसे विद्यालय में प्रत्येक व्यक्ति या समूह को अपने दायित्वों को समझने तथा अपनी शक्तियों को सामाजिक हित की प्राप्ति या समूह की समस्या के समाधान के लिए प्रयोग में लाने हेतु कार्य करना चाहिए। विद्यालय में इन सभी लोगों को एक टीम के रूप में कार्य करने के लिए तत्पर बनाना चाहिए। इसके लिए प्रधानाध्यापक को विद्यालय के हित में विभिन्न व्यक्तियों एवं समूहों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। जब सब लोग अपने-अपने दायित्व को समझने एवं उसको पूर्ण करने के लिए तत्पर होंगे तब वहाँ अनुशासन स्वत ही उत्पन्न हो जाएगा क्योंकि प्रत्येक दायित्व में अनुशासनात्मक परिस्थितियाँ निहित होती हैं। इस प्रकार विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने के लिए पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है।

4. उपयुक्त पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था (Provision of Appropriate Co-curricular Activities)—इन क्रियाओं का बड़ा ही अनुशासनात्मक महत्त्व है। इनके द्वारा बालकों में नेतृत्व, कर्त्तव्यपरायणता, अधिकारियों के प्रति आदर की भावना, व्यवस्था एवं नियमितता के प्रति श्रद्धा, आत्म-निर्देशन की शक्ति, सामाजिकता की भावना, सहयोग आदि का विकास किया जाता है। अत अनुशासन-स्थापना के लिए विद्यालय में पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं का उपयुक्त कार्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिये जिससे प्रत्येक बालक अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार उनमें भाग ले सके और स्वयं में उपर्युक्त गुणों को विकसित करने में समर्थ हो सके।

5. बाह्य प्रभावों पर नियन्त्रण (Control on External Influences)—अनुशासन-स्थापना के लिये बाह्य प्रभावों, अर्थात् समाज की गन्दी राजनीति, सामाजिक तनाव, पारस्परिक संघर्ष आदि पर

नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इनको विद्यालय के विशुद्ध वातावरण मे प्रवेश करने से रोका जाय।
कि महान् शिक्षाशास्त्री **जॉन ड्यूवी** का कथन है कि विद्यालय एक विशेष वातावरण है जिसका
जीवन की कुरूपता से पृथक् रखा जाय। इसके लिये उन्ही **तत्त्वों** को चुना जाय, जो मूल्यवान्
शिक्षाप्रद है। अत इस विशेष वातावरण को शुद्ध बनाये रखने के लिये समाज की दूषित राजनैतिक
उसको पृथक् रखना आवश्यक है। हमारे देश मे अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण समाज की
राजनीति एव पारस्परिक सघर्ष को पाया गया है। अत अनुशासन-स्थापना के लिये इन बाह्य प्रभाव
विद्यालय को बचाया जाय।

6. **नैतिक शिक्षा की व्यवस्था** (Provision for Moral Education)—अनुशासन-स्थापन
नैतिक शिक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय में इसके लिए व्यवस्था की जानी चाहिये। इस
द्वारा बालको मे उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठा एव उनके अनुसार कार्य करने की भावना का विकास किया
जाय। परन्तु इसको एक पाठ्य-विषय के रूप मे नही पढ़ाया जाय वरन् समस्त विषयो के शिक्षण
इसको स्थान दिया जाय। साथ ही विभिन्न क्रियाओं के संचालन मे नैतिक गुणों के विकास पर बल दिया
जाय। विद्यालय के वातावरण को नैतिक बनाया जाय। इसके लिये विद्यालय-अधिकारियो को छात्रो के
समक्ष अपने उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिये।

7. **विद्यालय-वातावरण एवं शैक्षिक सुविधाएँ** (School Environment and Educational
Facilities)—यदि विद्यालय का वातावरण अनुपयुक्त है तो उत्तम अनुशासन की स्थापना मे
कठिनाई होगी। उचित शिक्षण हेतु विद्यालय का आस-पड़ौस, स्वच्छता, वायु, रोशनी, फर्नीचर, आवश्यक
उपकरण आदि की उचित व्यवस्था का होना आवश्यक है। यदि कक्षा-कक्ष मे बैठने के लिये उचित
फर्नीचर या स्थान का अभाव है तो अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना रहेगी। इसके
अतिरिक्त विद्यालय मे पुस्तकालय, प्रयोगशाला एवं उनकी सज्जा, खेल के मैदान आदि का उचित
प्रबन्ध होना चाहिये। इनकी उचित व्यवस्था से बालक अपने अवकाश का सदुपयोग कर सकेंगे और
अनुशासन मे रहना सीख जायेंगे।

8. **शिक्षक-अभिभावक सहयोग** (Parent-Teacher Co-operation)—इन दोनो के सहयोग
का अनुशासन की स्थापना मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक इनके सहयोग से बालको की कठिनाइयों
एव गतिविधियो को जानने मे समर्थ होगे। इस जानकारी से बालको की विभिन्न समस्याओ को हल करने
मे समर्थ हो सकेंगे। विद्यालय मे बालको की गतिविधियो की जानकारी मे अभिभावक शिक्षको को उनके
विकास के लिए पर्याप्त रूप से सहायता दे सकते है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, बालक का
अधिकाश समय घर पर व्यतीत होता है। विद्यालय अभिभावको के सहयोग के अभाव मे उनका उचित
रूप से विकास करने मे सफल नही हो सकता है। अत बालको को अनुशासित जीवन व्यतीत करना
सिखाने के लिए अध्यापको एव अभिभावकों के बीच मधुर सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है।
शिक्षक-अभिभावक सहयोग का विस्तृत विवेचन 'विद्यालय तथा घर' नामक अध्याय मे किया जायेगा।

23.7 : पुरस्कार (REWARDS)

प्राय सभी विद्यालयो मे छात्रो को उनके अच्छे कार्यों एव विशेषताओ हेतु पुरस्कार प्रदान करने की
प्रथा प्रचलित है। अनुशासन-स्थापना में पुरस्कारों का बड़ा महत्त्व है, क्योकि इनके द्वारा बालको मे अच्छे
कार्य करने की आदत एव मनोवृत्ति का विकास किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि
वह समाज द्वारा स्वीकृत किया जाय। कुछ व्यक्ति अपने अच्छे कार्यों से समाज की स्वीकृति प्राप्त करते
है। परन्तु जो व्यक्ति अपने अच्छे कार्यों से समाज की स्वीकृति प्राप्त नही कर पाते, अशुभ कार्यों द्वारा
स्वय को दूसरो की जानकारी मे लाने का प्रयत्न करते है। विद्यालय में पुरस्कारो के द्वारा बालको की इस

भावना की सन्तुष्टि के लिए मार्ग प्रशस्त किया जाता है। यदि कोई बालक अपने अच्छे कार्य या अपनी विशेषता के कारण पुरस्कार प्राप्त करता है तो इससे दूसरे बालकों को प्रोत्साहन मिलता है। वे पुरस्कार प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हो जाते हैं। इस प्रकार पुरस्कार-प्राप्ति के लिए वे सदैव स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार पुरस्कार अनुशासन-स्थापना में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वस्तुत इनका उद्देश्य—बालकों को अच्छे कार्य एवं सदाचार के लिए प्रोत्साहन देना है।

पुरस्कार देने के लाभ (Advantages of Rewards)—1 सत्कार्यों के लिए पुरस्कार पाने की आशा से बालकों में प्रतियोगिता की भावना की वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप वे एक दूसरे से अधिक अच्छा कार्य करने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

2 इनके द्वारा बालकों में अपनी शक्तियों में विश्वास उत्पन्न होता है।

3 इनकी प्राप्ति से उनको आनन्द एवं प्रेरणा प्राप्त होती है।

4 बालक इनकी प्राप्ति के लिए नियमित एवं कर्त्तव्यपरायण होकर कार्य करना सीख जाते हैं।

कुछ विद्वानों ने पुरस्कारों की आलोचना की है। उनका मत है कि ये मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि से अनुपयुक्त हैं, क्योंकि इनके द्वारा बालकों में ईर्ष्या एवं द्वेष की भावनाएँ उत्पन्न की जाती हैं। दूसरे, इनके द्वारा कुछ ही बालकों को प्रभावित किया जाता है, अर्थात् जो बालक इनको प्राप्त करते हैं वे ही प्रभावित होते हैं। इनके विपक्ष में यह भी कहा जाता है कि जिन बालकों को पुरस्कार नहीं मिल पाते उनमें हीनता की भावना उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। बहुत से विद्यार्थी पुरस्कार-प्राप्ति के लिए अनुचित साधनों का उपयोग करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं जो समाज एवं स्वयं उनके लिए अहितकर है।

पुरस्कारों को सार्थक बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि उनको बड़ी सतर्कता एवं विचारशीलता के साथ प्रदान किया जाय। अत जब उनको पुरस्कार प्रदान किया जाय, तब निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1 बालकों की किसी एक अवसर पर प्रदर्शित की जाने वाली विशेषता के आधार पर पुरस्कार न दिये जाये वरन् उनके वर्ष के कार्य को पुरस्कार देने का आधार बनाया जाय।

2 बालकों को जिन गुणों तथा कार्यों के लिए पुरस्कार प्रदान किये जायें, उनसे समस्त छात्रों को अवगत कराया जाय तथा जीवन में उनके महत्त्व पर प्रकाश डाला जाय जिससे अन्य छात्र भी उन गुणों की प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील हो सकें।

3 पुरस्कार वैयक्तिक रूप से प्रदान न करके सामूहिक रूप से प्रदान किये जाने चाहिए, क्योंकि इससे व्यक्तिगत ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना को समाप्त किया जा सकता है।

4 बहुमूल्य वस्तु के रूप में पुरस्कार न प्रदान किये जायें, क्योंकि बहुमूल्य पुरस्कार बालकों में लोभ एवं लालच उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पुरस्कार वस्तु या धन के रूप में प्रदान करने की अपेक्षा प्रशंसा या सम्मान के रूप में प्रदान किये जाने चाहिए। प्रशंसापत्र या सम्मान का किसी वस्तु या धन से अधिक महत्त्व है।

23.8 : दण्ड (PUNISHMENT)

इसके अन्तर्गत दण्ड-व्यवस्था को रखा जाता है। वस्तुत दण्ड-व्यवस्था को अनुशासन-स्थापन का साधन नहीं माना जा सकता, क्योंकि उत्तम अनुशासन तो व्यक्ति के अन्त से उत्पन्न होने वाला गुण है।

परन्तु वास्तविक परिस्थितियो मे इस दण्ड-व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत होती है। विद्यालय
समाज मे फैली हुई कुरीतियो तथा अनुशासनहीनता को रोकने के लिए किसी अश तक दण्ड-व्यव
की आवश्यकता पड़ जाती है। अत विशेष परिस्थितियो मे हमे बालको को दण्ड देने के लिए विव
जाना पड़ता है। हम इन सम्भावनाओ को समाप्त नही कर सकते है, क्योकि मानव, मानव होने के
अनेक दुर्बलताओ से ग्रस्त है और उसकी बहुत-सी दुर्बलताएँ तो ऐसी है जिनको तब तक रोका नही
सकता, जब तक उसे दण्ड नही दिया जाय या उसे दण्ड का भय न हो। **पी. रेन** का मत है कि
एक बुरी वस्तु है और उसकी अवहेलना भी की जानी चाहिए। परन्तु जिस प्रकार सर्जन का चाकू
के सड़ाव को दूर करने के लिए आवश्यक है, उसी भाँति मानव की दुर्बलताओ को दूर करने के लि
दण्ड भी आवश्यक है। अत जिस प्रकार राज्य एक आवश्यक बुराई है, उसी भाँति दण्ड भी
आवश्यक बुराई है जिसको हमे अपनाना पड़ता है।"

दण्ड के सिद्धान्त (Theories of Punishment)—जब दण्ड एक आवश्यक बुराई है और
ग्रहण करना पड़ता ही है तो स्वत ही प्रश्न उठता है कि दण्ड किन प्रयोजनो से दिया जाय। इस सम्ब
मे निम्नलिखित धारणाओ का प्रचलन है—

1. **प्रतिकारात्मक सिद्धान्त** (Retributive Theory)—इस सिद्धान्त द्वारा यह प्रतिपादित कि
जाता है कि जो व्यक्ति गलती या अपराध करता है, उससे गलती या अपराध का बदला लिया जा
चाहिए। यह सिद्धान्त 'ईट का जवाब पत्थर से दिया जाय' वाली कहावत को चरितार्थ करता है। इ
प्रकार इसमे अपराधी को दण्ड बदला लेने की भावना से दिया जाता है। परन्तु इस सिद्धान्त
न्यायसगत सिद्ध नही किया जा सकता है, क्योकि यदि किसी बालक ने शिक्षक के आदेशो का पाल
नही किया तो स्वत ही उसे क्रोध आयेगा, हो सकता है कि वह क्रोध मे बदला लेने की भावना से
अधिक दण्ड प्रदान कर दे।

2. **सुधारात्मक सिद्धान्त** (Reformative Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार दण्ड का प्रयोज
अपराधी को सुधारना है। यह सिद्धान्त इस बात मे विश्वास करता है कि अपराधी को यह अनुभव कराय
जाय कि वस्तुत उसने अपराध किया है और उसके लिए उसे दु ख प्रकट करना चाहिए तथा उसक
उपाय यही है कि वह स्वय को सुधारे।

3. **उदाहरणात्मक सिद्धान्त** (Exemplary Theory)—इस सिद्धान्त के द्वारा यह प्रतिपाद
किया जाता है कि अपराधी को इसलिए दण्डित किया जाता है कि यह दूसरो के लिए एक उदाहरण
कार्य कर सके और दूसरों को वैसा ही अपराध या गलती करने से रोक सके। उदाहरणार्थ—यदि कोई
बालक चोरी करता है तो उसे इस उद्देश्य से दण्डित किया जा सकता है कि वह फिर चोरी न करे तथ
दूसरे यह अनुभव करने लगे कि यदि हमने चोरी की तो हमे दण्ड मिलेगा। इस प्रकार उस बालक क
उदाहरण दूसरो को चोरी करने से बचा लेगा। सम्भवत यह अपने अभिप्राय की पूर्ति न कर सके, क्योकि
जिस बालक को उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु दण्ड मिला है, हो सकता है कि उसके मित्र उससे सहानुभूति
रखने लगे और यह स्थिति और भी कठिन बन जाय।

4. **अवरोधात्मक सिद्धान्त** (Preventive Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी को
उसी अपराध की पुनरावृत्ति करने से रोकना तथा दूसरों की रक्षा करना है। परन्तु यह सिद्धान्त अपराधी
या गलती करने वाले को स्वय को सुधारने के लिए कोई अवसर प्रदान नही करता। प्राय यह देखा जाता
है कि दण्ड का भय दिखाने से अपराध रुकने के बजाय और बढ़ते है।

दण्ड के विषय में एक सिद्धान्त और प्रचलित है। वह यह है कि नियमों का पालन अवश्य किया जाय। इसके अनुसार नियम सर्वोच्च है। यदि कोई व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे दण्डित किया जाय। इस सिद्धान्त का उद्देश्य नियमों की रक्षा करना है। यह सिद्धान्त सामान्य जीवन के लिए भले ही उचित हो, परन्तु विद्यालय में उसकी सर्वोच्चता पर बल नहीं दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सिद्धान्तों को देखने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि यदि दण्ड का प्रयोग करना पड़े तो वह किस उद्देश्य से दिया जाय या किस सिद्धान्त के अनुसार दिया जाय ? इस सम्बन्ध में किसी निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रथमतः दण्ड देने वाले का दर्शन या विचारधारा भिन्न हो सकती है। दूसरे, अपराध जिन परिस्थितियों में हुआ है, वे परिस्थितियाँ भिन्न हो सकती है। इस सम्बन्ध में केवल सुझाव ही दिया जा सकता है। वह यह है कि यदि दण्ड देना पड़े तो वह सुधार करने के उद्देश्य से दिया जाना चाहिए। उसके अतिरिक्त दण्ड देते समय निम्न बातों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए—

1. दण्ड प्रदान करने से पूर्व अपराध के कारणों एवं परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उन दूषित परिस्थितियों को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

2. इनसे अवगत होने के पश्चात् बालक को अपनी गलती का अनुभव कराया जाय तथा भविष्य में ऐसा न करने के लिए चेतावनी दी जाय। यदि वह फिर भी ऐसा करता है तो उसके लिए दण्ड की व्यवस्था की जाय परन्तु दण्ड देते समय बालक की आयु, स्वभाव, विचारधारा आदि को ध्यान में रखा जाय।

3. दण्ड प्रदान करने में निष्पक्षता रखी जाय।

4. दण्ड अपराध के अनुकूल दिया जाय तथा उससे अधिक या कम मात्रा में नहीं दिया जाना चाहिए।

5. दण्ड प्रदान करने में, यदि सम्भव हो सके तो बालकों के अभिभावकों से भी सलाह ली जाय। इसके साथ ही बालकों की छात्र-परिषद् की सम्मति को ध्यान में रखा जाय। इससे सम्भावित अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न नहीं हो पाएगी।

23.8.1 दण्ड के विभिन्न रूप (Different Forms of Punishment)

अब विद्यालय में उन दण्डों को स्थान नहीं दिया जाता है जो कि प्राचीन काल के विद्यालयों में प्रचलित थे, उदाहरणार्थ—कोड़े, बैत लगाना आदि। आजकल डाँट-डपट, अपमानित करना, निन्दा, विद्यालय समय के बाद रोकना, विद्यालय कार्य के अतिरिक्त कार्य कराना, अंक कम कर देना, सुविधाएँ छीन लेना, क्षति-पूर्ति करना, आर्थिक दण्ड, आदि विभिन्न रूप प्रचलित हैं। सबसे हल्का दण्ड, डाँट-डपट ही है और यह प्रभावशाली सिद्ध होता है परन्तु गालियाँ देना अनुपयुक्त है। बालकों को विद्यालय समय के बाद रोकना भी उचित दिखाई नहीं देता, क्योंकि इससे बालक के हृदय में विद्यालय के प्रति अरुचि उत्पन्न होने की सम्भावना है। हमारे विद्यालयों में आर्थिक दण्ड का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया जाता है परन्तु यह इस कारण उचित नहीं क्योंकि इसका भार माता-पिता पर पड़ता है। बालक उन्हें यह भी नहीं बताते कि उनको इस रूप में दण्ड दिया गया है। इससे सुविधाओं का छीनना, अतिरिक्त कार्य देना, अंक कम कर देना, पद में अवनति कर देना आदि अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इनका प्रभाव अपराधी या गलती करने वाले पर पड़ता है।

शारीरिक दण्ड देना भी उचित नहीं है। अब शिक्षकों द्वारा थप्पड़ मारने की प्रथा को भी हतोत्साहित किया जाता है। केवल प्रधानाध्यापक ही विशेष परिस्थिति में इसका उपयोग कर सकता है। भारतीय संघ

के पाय सभी राज्यो मे शारीरिक दण्ड के प्रयोग के लिए शिक्षा-विभाग द्वारा ढग एव परिस्थितियो
निर्धारण कर दिया गया है।

दण्ड का एक महत्त्वपूर्ण रूप निलम्बन तथा निष्कासन (Suspension and Expulsion) है
इसका प्रयोग गम्भीर परिस्थितियो मे ही किया जाना चाहिए। इनका तभी उपयोग किया जाय जब
प्रकार से बालक को सही मार्ग पर लाना असम्भव हो जाय। यह विद्यालय-अधिकारियो के हाथ मे
अस्त्र है। इसका उपयोग बहुत ही कम किया जाना चाहिए।

23.9 : प्रधानाध्यापक और शिक्षक की भूमिका (ROLE OF HEADMASTER AND TEACHER)

प्रधानाध्यापक की भूमिका—प्रधानाध्यापक विद्यालय का केन्द्र बिन्दु है। विद्यालय के
पर्यावरण के निर्माण मे उसकी भूमिका अहम् होती है। वह नेतृत्व प्रदान करता है और विद्यालयी नीति
का निर्धारण करता है। विद्यालय मे अनुशासन के लिये यह शिक्षक और शिक्षार्थी के सहयोग से नीति
निर्माण करता है, शिक्षको के साथ सहयोग की भावना से कार्य करके श्रेष्ठ परम्पराओ का निर्वाह
है, पाठ्य-प्रवृत्तियो और पाठ्य-सहगामी प्रवृत्तियो का नियमित आयोजन करता है। वह विद्यालय
उपलब्ध साधनो को प्रभावी ढग से नियोजित करके विद्यालय मे अनुशासन की स्थापना कर सकता
और किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता की स्थिति को दूर कर सकता है।

शिक्षक की भूमिका—विद्यालय के लक्ष्यों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का मूल आधार
शिक्षक है। अनुशासन बनाये रखने में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। शैक्षिक कारणों से होने वाले
अनुशासनहीनता की घटनाओं के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षक उत्तरदायी होता है। इसलिए
शिक्षक अच्छी तैयारी करके पढ़ायें और वह विद्यार्थियों की व्यक्तिगत एवं कक्षागत समस्याओं पर उचित
ध्यान देकर समस्याओं को विवेक और कौशल से हल कर सकता है। इसके अतिरिक्त बालक की
व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास के लिये व्यक्तिगत ध्यान देकर अनुशासन की समस्याओं को बहुत कुछ
कम कर सकता है। अनुशासनहीनता दूर करने में अभिभावकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अधिकाश समय
विद्यार्थी घर पर रहता है। बालक अपने अभिभावकों से जो सीखता है, उसी के अनुरूप आचरण करता
है, अत: अभिभावकों का बालक के प्रति कैसा व्यवहार है—यह तानाशाह अभिभावक है, आलोचक
अभिभावक है और या प्यार करने वाला अभिभावक है। बालक पर प्यार, स्नेह का प्रभाव अधिक पड़ता है
अत: अभिभावक अनुशासनहीनता को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. अनुशासन से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।
2. विद्यालय-अनुशासन सम्बन्धी आधुनिक तथा परम्परागत धारणाओं के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. वैयक्तिक एव सामाजिक जीवन मे अनुशासन का क्या महत्त्व है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
4. उत्तम अनुशासन स्थापित करने के लिए किन सिद्धान्तो को ध्यान में रखना आवश्यक है ?
5. अनुशासन-स्थापन में विद्यालय परम्पराओ एव पारस्परिक सहयोग के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 अनुशासन-स्थापन में शिक्षक-अभिभावक सहयोग किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

2 अनुशासन के प्रकारों को संक्षेप में बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 'डिसिप्लिन' शब्द की उत्पत्ति किस शब्द से मानी जाती है ?

(अ) लैटिन (ब) फ्रांस

(स) अंग्रेजी (द) इनमें से कोई नहीं उत्तर ...

2 दण्ड के सिद्धान्त हैं—

(अ) प्रतिकारात्मक (ब) सुधारात्मक

(स) उदाहरणात्मक (द) उपर्युक्त सभी उत्तर ...

□□

अध्याय
24

पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ
[CO-CURRICULAR ACTIVITIES]

24.1 : पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का अर्थ
(MEANING OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

कुछ समय पूर्व खेलकूद, वाद-विवाद, नाटक, सगीत आदि क्रियाओं को पाठ्यक्रम के क्षेत्र से बाह्य की वस्तु माना जाता था और उनको अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओ (Extra-curricular Activities) के नाम से पुकारा जाता था। उस समय विद्यालय अधिकारी इन क्रियाओ मे कोई रुचि नही लेते थे और कभी-कभी इनको शक्ति एव समय के दृष्टिकोण से व्यर्थ मानते थे। उस समय इनका स्वागत नही किया जाता था, वरन् इनको सहन किया जाता था। उस समय विद्यालयो मे इन क्रियाओ के स्थान के विषय में विवाद प्रचलित था, परन्तु शैक्षिक, सामाजिक तथा छात्रो की सीखने की प्रक्रिया मे दिये गये इनके वैयक्तिक योगदानो ने इस विवाद को समाप्त करने मे बहुत सहायता दी।

एच. सी. मैकोन (H. C. McKown) ने अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओ के विकास के तीन स्तर बताये है। **प्रथम** वह स्तर है, जिस समय शिक्षको तथा प्रशासको द्वारा इसकी अवहेलना की जाती थी। **द्वितीय** स्तर वह है, जिसमे इनका खुलेआम विरोध किया जाता था तथा **तृतीय** स्तर आधुनिक युग का है जिसमे शैक्षिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए इनका उपयोग आवश्यक समझा जाता है।

आधुनिक काल मे शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत हो गये है कि यदि इन क्रियाओ को समुचित रूप से पथ-प्रदर्शित किया जाये तो बड़े ही शैक्षिक महत्व की सिद्ध होगी। आज इनको पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओ (Co-curricular Activities) के रूप मे देखा जाता है तथा इनको पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अग माना जाने लगा है जो भी अनुभव या क्रिया शैक्षिक महत्व रखती है, वह पाठ्यक्रम का एक अग है। अत ये क्रियाएँ वस्तुत पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ है।

24.2 : पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं के लक्ष्य
(AIMS OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

लोकतन्त्रीय समाज की यह प्रबल माँग है कि उसके युवको को सामाजिक अनुभवो की प्रयोगशाला प्राप्त हो जिसमे वे कक्षा-कक्ष मे पढ़ाये गये लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो को प्रयोग मे ला सके। अत सामूहिक

क्रियाओं, शिक्षक-बालक सम्पर्क के अवसरों तथा उन क्रियाओं पर बल दिया जाय जिससे वे [illegible] लेकर लोकतन्त्रात्मक अनुभव प्राप्त कर सकें। इन क्रियाओं के निम्नलिखित उद्देश्य है

1 विद्यालय के सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम एवं विद्यालय की चारित्रिक भावना को उन्नत बनाना।

2 छात्रों को स्वशासन (Self-Government) तथा लोकतन्त्रीय प्रक्रियाओं के प्रयोग में सुरक्षित अनुभव प्रदान करना जिससे वे कुशल लोकतन्त्रीय नागरिकता प्राप्त कर सकें।

3 विभिन्न वातावरणों से आये बालकों में सहयोग एवं सह-अस्तित्व की भावना का विकास करना तथा उनको भावात्मक रूप से एक बनाना जिससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग को प्रशस्त किया जा सके।

4 विद्यालय एवं समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को उन्नत बनाना तथा समाज को विद्यालय के कार्यक्रमों में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहन देना।

5 बालकों के सर्वांगीण विकास में योगदान देना।

6 बालकों को अपने अवकाश का सदुपयोग करने के लिए तैयार करना

24.3 : पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं की आवश्यकता (NEED OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं की आवश्यकता निम्न प्रकार है–

1 बालकों का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, व्यावहारिक विकास होता है। सर्वांगीण विकास।

2 ये क्रियाएँ बालकों को अपने वैयक्तिक गुणों, क्षमताओं तथा आत्मविश्वास को विकसित करने में सहायक है।

3 पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ सहज ही बालक में सहनशीलता, सहयोग, धैर्य, नम्रता, आत्मानुशासन अनुशासन आदि बनाये रखने में सहायक है।

4 व्यक्ति को समाज के एक स्वीकार्य तथा उपयोगी सदस्य बनाने एवं सिद्ध करने में [illegible] बालक स्वयं के गुणों एवं कार्यों से, योग्यताओं से समाज को अवगत करा सकता है तथा समाज [illegible] भी उसकी आवश्यकताओं, रुचियों, परम्पराओं, संस्कृति आदि से परिचित होते है।

5 समाज को स्थायित्व प्रदान करने वाले, समरसता का विकास करने वाले गुणों जैसे सहानुभूति, समझदारी, एक-दूसरे को जानने-समझने, सुख-दुःख, भावनाओं में सहभागिता करने आदि से स्वयं और समाज के जुड़ाव (Bonding) को मजबूती मिलती है। समाज का स्वस्थ विकास होता है।

6 भारत में लोकतन्त्रात्मक गुणों से युक्त नागरिकों का विकास करने में सहायक है तथा व्यावहारिक रूप से लोकतन्त्रीय नागरिक के गुणों को उत्पन्न करती है। एक प्रकार से स्वस्थ नागरिकता का प्रशिक्षण पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ देती है।

7 अतिरिक्त शक्तियों (Surplus Energy of the Student) को नियोजित कर बालक को सही मार्ग प्रदान करती है। मूलप्रवृत्तियों के शोधन एवं प्रशिक्षण में लाभकारी है।

8 बालकों के शारीरिक विकास, मानसिक विकास, चारित्रिक या नैतिक विकास, सामाजिक विकास, सांवेगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, सन्तुलन स्थापित करती है।

9 बालकों के अन्दर छिपी शक्तियों, गुणों, क्षमताओं आदि को विकसित, प्रस्फुटित होने देने का अवसर प्रदान करती है।

10 बालकों में स्वानुशासन एवं आत्म-नियन्त्रण को स्थापित करती है।

24.4 : पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं का महत्व (IMPORTANCE OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

विद्यालयो की ये क्रियाएँ उसकी जीवन-शक्ति है। इनका बालको के जीवन मे बहुत महत्व है क्योकि उनके व्यक्तित्व के विकास मे इनका बड़ा योगदान है। इन क्रियाओ द्वारा बालको का शारीरिक मानसिक, नैतिक एव सामाजिक विकास होता है। इनके महत्व के विषय मे माध्यमिक शिक्षा आयोग ने विचार है कि ये क्रियाएँ बालको को अपने वैयक्तिक गुणो, क्षमताओ तथा आत्मविश्वास को विकसित करने के लिए अवसर प्रदान करती है। इनके साथ ही ये अनुशासन एव नेतृत्व के सहयोगी गुणो बालको को प्रशिक्षण देती है। इन क्रियाओ के महत्व का विवेचन निम्नलिखित है–

1. **वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक** (Helpful in Meeting Individual Needs)–प्रत्येक व्यक्ति दूसरो के द्वारा अभिस्वीकार किये जाने की एक मूलभूत आवश्यकता रखता है इसके साथ ही वह सुरक्षा भी चाहता है। सुरक्षा की भावना यह अपेक्षा करती है कि समाज द्वारा उसे आश्वासन प्राप्त हो। छात्र-क्रियाओ का कार्यक्रम इन मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति मे बहुत सहायता प्रदान करता है। वह कार्यक्रम इन आवश्यकताओं के अतिरिक्त आत्माभिव्यक्ति, स्वय को तथा दूसरो को जानने की समझदारी, स्वय की रुचियो को व्यापक बनाने, स्वय के कार्यों को नियन्त्रित करने की शक्ति तथा नवीन परिस्थितियो मे व्यवस्थित होने की आवश्यकताओ की पूर्ति भी करता है।

2. **सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक** (Helpful in Meeting Social Need)–सामाजिक आवश्यकताएँ इन वैयक्तिक आवश्यकताओ से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है 'सामाजिक' (Social) शब्द का प्रयोग दूसरो के साथ सन्तोषजनक सम्बन्ध विकसित करने की मात्रा से किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरो के साथ कार्य करने तथा सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता को विकसित करने की तीव्र भावना को अनुभव करता है। यह आवश्यकता उसको कुछ आचार-विचार समझदारी, दूसरो के साथ अच्छा व्यवहार करने के स्वीकृत ढगो को सीखने के लिए बाध्य करती है छात्र-क्रियाएँ इन सामाजिक नियमो एव सदाचरण के स्वीकृत अगो को सिखाने मे बहुत सहायता प्रदान करती है। इन क्रियाओ के द्वारा बालक व्यवहार रूप मे इन सबका ज्ञान प्राप्त करते है। इसके अतिरिक्त ये क्रियाएँ व्यक्ति को नेतृत्व करने एव अनुशासन मे रहने की शक्ति तथा विभिन्न सामाजिक सघर्षों को दूर करने की योग्यता भी प्रदान करती है।

3. **नागरिक प्रशिक्षण** (Citizen Test)–छात्र-क्रियाओ का कार्यक्रम बालको को वास्तविक स्थितियो का सामना करने तथा समुदाय की सेवा एव स्वतन्त्र निर्णय करने के लिए बहुत अवसर प्रदान करता है इसके अतिरिक्त यह उनमे लोकतन्त्रीय नागरिकता का भी विकास करता है। इन क्रियाओ के द्वारा बालको मे विभिन्न नागरिक कुशलताओ एव आदतो का निर्माण होता है तथा उनको व्यावहारिक रूप से नागरिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है। अत छात्र-क्रियाओ से बालको मे उन गुणो–नेतृत्व, उत्तरदायित्व पूर्ण करने की क्षमता, दूसरे के अधिकारो को आदर की दृष्टि से देखने की भावना, सामाजिक प्रगति के लिये उत्साह तथा कार्य की क्षमता, दूसरो के कल्याण की भावना आदि–को विकसित किया जाता है जो कुशल लोकतन्त्रीय नागरिकता के आवश्यक तत्व है।

4. **किशोरावस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति** (Helpful Meeting Need of Adolesence)–यह अवस्था बहुत ही नाजुक होती है। इस अवस्था मे बालक मे अतिरिक्त शक्ति का आधिक्य पाया जाता है। इन क्रियाओ के द्वारा उसकी अतिरिक्त शक्ति एव मूल प्रवृत्तियो को विभिन्न उपयोगी धाराओ मे प्रवाहित किया जाता है। इनके द्वारा किशोर बालको की नैसर्गिक प्रवृत्तियो को उनके सामाजिक व्यक्तित्व

के विकास एव समृद्धि के लिए विभिन्न कार्यों मे सलग्न किया जाता है और विद्यालय मे उनके द्वारा सगठनो के माध्यम से किशोरावस्था की बौद्धिक व सवेगात्मक आवश्यकताओ की पूर्ति करके उनका सामाजिक एव नैतिक विकास किया जाता है।

5. **शारीरिक विकास** (Physical Development)—विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओ द्वारा बालक सक्रिय एव शक्तिशाली बनता है। खेलकूद, ड्रिल, व्यायाम आदि से उसका शारीरिक विकास होता है।

6. **नैतिक गुणों का विकास** (Development of Ethic Qualities)—इन क्रियाओ मे भाग लेने से बालको मे सत्यता, ईमानदारी, आत्मविश्वास, न्यायप्रियता, धैर्य, दृढता, विनय, आज्ञापालन आदि गुणो का विकास होता है जो अच्छे चरित्र का निर्माण करते है। बालक इन क्रियाओ मे भाग लेकर अपने स्वार्थ को दूसरो के हित के लिए त्यागना सीख जाता है।

7. **विशेष रुचियों का विकास** (Development of Specific Interest)—विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ बालको मे विशेष रुचियो के उत्पन्न करने मे बहुत सहायक है। विद्यालयो मे सगठित विविध उद्देश्यीय समितियाँ एव क्रियाएँ बालको मे सम्भाव्य गुणो (Potential), व्यावसायिक कुशलताओ एव साहित्यिक रुचियो आदि का विकास करती है। ये विभिन्न रुचियाँ एव कुशलताएँ बालक के भावी जीवन को समृद्ध एव सफल बनाने मे बहुत सहायक सिद्ध होती है। इन क्रियाओ द्वारा बालको के प्रिय व्यापार (Hobbies) के विकास के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किये जाते है। ये प्रिय-व्यापार बालको को अपने अवकाश का सदुपयोग करने मे सहायक सिद्ध होते है।

8. **अनुशासन स्थापित करने में सहायक** (Helping to Establish Discipline)—छात्र क्रियाओ से विद्यालय मे अनुशासन स्थापित करने मे बहुत सहायता मिलती है। इनके माध्यम से बालको की वैयक्तिक विभिन्नताओं व गुणो की अभिस्वीकृति विद्यालय अनुशासन की समस्या का बहुत महत्वपूर्ण समाधान है। कार्य की सलग्नता उनको विभिन्न बुरी आदतो एव कुचक्रो मे फँसने से बचाती ही नही वरन् उनको अपने वैयक्तिक गुणो एव क्षमताओ तथा आत्मविश्वास के लिए अवसर प्रदान करती है।

24.5 : पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं के आयोजन के सिद्धान्त
(PRINCIPLES OF ORGANIZING CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

यहाँ हम सगठन, प्रशासन एव निरीक्षण सम्बन्धी उन मुख्य बातो का विवेचन कर रहे है जिनका अनुसरण करने से उपर्युक्त सिद्धान्तो को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है यथा—

1. विद्यालय मे जिस क्रिया का सगठन किया जाये, वह विद्यालय के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होनी चाहिए। वह केवल आनन्द प्रदान करने वाली क्रिया ही न हो।

2. विद्यालय मे किसी क्रिया को सचालित करने से पूर्व उसकी योजना बना लेनी चाहिए। इस योजना का निर्माण छात्रो तथा शिक्षको दोनो के ही सहयोग से हो। योजना का निर्माण करते समय विद्यालय मे साधको की उपलब्धि पर ध्यान देना आवश्यक है।

3. योजना को क्रियान्वित करने से पूर्व प्रधानाध्यापक से स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे वह जो सुझाव प्रदान करे, उन पर विचार-विमर्श करके योजना मे स्थान प्रदान किया जाये। प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। प्रशासक होने के नाते उसे क्रिया या सगठन के प्रस्ताव पर विशेषाधिकार प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

4. इन क्रियाओ के प्रशासन मे छात्रो को अधिकाधिक दायित्व प्रदान किये जाये। उन्हे इन दायित्वो के पूर्ण करने मे जब कभी कठिनाई का अनुभव हो तभी उनके उचित पथ-प्रदर्शन हेतु शिक्षक तत्पर रहे।

शिक्षक वर्ग उनके कार्यों मे अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप न करे। यदि उनके द्वारा व्यर्थ के हस्तक्षेप [illegible] जाते है तो बालक उस क्रिया की ओर से उदासीन होकर अपनी पहलकदमी व उत्साह खो बैठते [illegible] शिक्षको को इन क्रियाओ की सरक्षता का दायित्व अपनी योग्यता एव रुचि के अनुसार लेना चाहिए [illegible] आवश्यकता होने पर उचित परामर्श व सहायता द्वारा बालको का पथ-प्रदर्शन करना चाहिए।

5 प्रशासन को सरल बनाने तथा विभिन्न सघर्षों को दूर करने के लिए इन क्रियाओ को विद्यालय की समय-तालिका मे स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। इससे इन क्रियाओ का महत्व भी छात्रो व शिक्षक की समझ मे आ जायेगा।

6 इन क्रियाओ के सम्बन्ध मे बालको को उचित निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिये। इस निर्देशन कार्य को भी विद्यालय के अन्य निर्देशन कार्यक्रमो मे स्थान प्रदान किया जाये अर्थात् जिस प्रकार बालको को पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओ के सम्बन्ध मे निर्देशन कार्यकर्ताओ द्वारा दिया जाता है, उसी भाँति इन क्रियाओ के सम्बन्ध मे पथ-प्रदर्शित किया जाना आवश्यक है।

7 किसी क्रिया के सगठन को सफलतापूर्वक परिचालित करने के लिए उसका समय-समय पर निरीक्षण होना आवश्यक है। अत विद्यालय अधिकारियो द्वारा समस्त क्रियाओ का निरीक्षण होना चाहिए परन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि निरीक्षण द्वारा इनको अधिकृत न कर लिया जाये, क्योंकि अधिकृत हो जाने से इनकी स्वाभाविकता नष्ट हो जायेगी तथा इनसे बालक भी नेतृत्व, पहलकदमी उत्साह एव अनुगमन शक्ति का विकास करने मे असमर्थ रहेगे।

8 इन क्रियाओ के हिसाब-किताब की देखरेख शिक्षको के सहयोग से होनी चाहिए।

24.6 : पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं के प्रकार (TYPES OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

यदि छात्र क्रियाओ से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि माध्यमिक विद्यालयो मे विविध प्रकार की छात्र-क्रियाएँ प्रचलित है। विभिन्न विद्वानो ने इनको वर्गीकृत करने का प्रयत्न किया है। **एडगर जी. जान्सटन** (Edgar G. Johnston) तथा **रालैण्ड सी. फॉन्स** (Roland C. Faunce) ने इन क्रियाओ को 11 वर्गों मे विभाजित किया है जो निम्न है–

1. विद्यालय के संगठन, प्रबन्ध तथा नियन्त्रण में भाग लेने से सम्बन्धित क्रियाएँ–इस वर्ग के अन्तर्गत छात्र परिषद्, छात्र समुदाय, सीनेट, कार्यकारिणी समितियाँ आदि आती है।

2. सामुदायिक क्रियाएँ–इसके अन्तर्गत शिक्षा सप्ताह, स्वास्थ्य सप्ताह, साक्षरता सप्ताह, जूनियर नागरिक क्लब आदि आते है।

3. धार्मिक एवं सामाजिक कल्याण क्लब–धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी सगठन, स्काउटिग, सामाजिक सेवा क्लब, जूनियर रेडक्रॉस, प्राथमिक चिकित्सा समूह आदि।

4. सामाजिक क्रियाएँ–पिकनिक, नृत्य, स्वागत समिति, विभिन्न पार्टियो का आयोजन आदि।

5. शारीरिक प्रशिक्षण सम्बन्धी क्रियाएँ–सामूहिक खेल, बाह्य एव आन्तरिक खेल, वैयक्तिक खेल, व्यायाम, पी टी आदि।

6. विद्यालय प्रकाशन–विद्यालय समाचार पत्र, विद्यालय पत्रिका, विद्यालय वार्षिक प्रतिवेदन आदि।

7. नाटक तथा भाषण सम्बन्धी क्रियाएँ–नाटक, एकाकी, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि।

8. संगीत सम्बन्धी क्रियाएँ–सगीत क्लब, बैण्ड क्लब, आर्केस्ट्रा आदि।

9. **विषय सम्बन्धी**—गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, वाणिज्य आदि विषयों के समूह।

10. **विविध क्लब**—इनके अन्तर्गत विषयगत क्लबों के अतिरिक्त अन्य क्लब आते हैं, उदाहरणार्थ—रेडियो, फोटो सग्रह क्लब आदि।

11. **एसेम्बली**—प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र या समाज के नेताओं द्वारा भाषण, फिल्म शो आदि।

ई. के. फ्रेटवैल (E. K. Fretwell) ने माध्यमिक विद्यालय मे प्रचलित क्रियाओं को निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत रखा है—

1. छात्र परिषद् तथा समाज-सेवा सगठन,
2. विभागीय तथा विशेष रुचि से सम्बन्धित क्लब,
3. प्रकाश सम्बन्धी सगठन,
4. भाषण तथा नाटक सम्बन्धी सगठन,
5. सगीत सम्बन्धी सगठन,
6. खेलकूद सम्बन्धी सगठन।

उपर्युक्त विद्वानो ने जो वर्गीकरण प्रस्तुत किये है, वे अमेरिका के माध्यमिक विद्यालयो मे प्रचलित क्रियाओं के लिए है। हमारे माध्यमिक विद्यालयो मे भी बहुत-सी छात्र क्रियाओं ने स्थान प्राप्त कर लिया है, उदाहरणार्थ—छात्र परिषद, नाटक, वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ, सामाजिक क्रियाएँ जैसे—श्रमदान, स्काउटिंग, जूनियर रेडक्रॉस, सामाजिक सेवा सगठन, सगीत सम्बन्धी क्रियाएँ जैसे—लोकगीत एवं नृत्यो का आयोजन, सगीत मण्डली, विद्यालय प्रकाशन, सग्रह क्लब, विषयगत समुदाय, खेलकूद आदि। हम इन क्रियाओं का अध्ययन **निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत** करेगे—

1. छात्र-स्वशासन से सम्बन्धित सगठन, 2. समाज कल्याण सम्बन्धी क्रियाएँ, 3. सास्कृतिक क्रियाएँ, 4. साहित्यिक क्रियाएँ, 5. विद्यालय प्रकाशन, 6. शारीरिक क्रियाएँ, 7. विषयगत समुदाय, 8. विविध क्रियाएँ।

1. **छात्र-स्वशासन से सम्बन्धित सगठन** (Student-Selfgovernment Organizations) गुड के शिक्षा शब्दकोश (Good's Dictionary of Education) के अनुसार, "छात्र-स्वशासन सम्पूर्ण विद्यार्थी समाज मे स्वय छात्रो द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा विद्यालयो मे व्यवस्था एव आचरण सम्बन्धी मामलो का विनियमन करता है।" यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या स्वशासन सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए **हेरी सी. मैकाउन** (Harry C. McKown) ने कहा है कि 'नही', क्योंकि छात्रो मे निर्णय का अभाव तथा अपरिपक्वता होती है। साथ ही प्रधानाध्यापक वैधानिक रूप से विद्यालय, उसकी सामग्री एव उसके छात्रो के कल्याण हेतु उत्तरदायी होता है। अत छात्रो के ऊपर ऐसा उत्तरदायित्व नही डाला जा सकता है। हमारा विचार है कि यह सत्य है कि छात्रो के ऊपर पूर्णत ऐसा उत्तरदायित्व नही डाला जा सकता, परन्तु सीमित रूप से छात्र-स्वशासन शिक्षको की देखरेख मे सम्भव नही, वाछनीय है। शिक्षको का कर्तव्य है कि वे देखे कि छात्र कही कोई बड़ी भूल न कर बैठे। इसके साथ ही छात्रो का भी कर्तव्य है कि शिक्षको से परामर्श लेकर कार्य करे। शिक्षको के पथ-प्रदर्शन मे स्वशासन से निम्नलिखित उद्देश्यो की प्राप्ति हो सकती है—

1. विद्यालय की सामान्य चारित्रिक भावना का विकास करना।
2. लोकतन्त्र मे बालको को सक्रिय जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना तथा उनको उचित रूप से अपने नेताओं को चुनने के लिए प्रशिक्षित करना।
3. बालको को अधिकाधिक आत्म-निर्देशित बनाना।

4 शक्ति के प्रति आदर की भावना रखने के लिए तैयार करना।

5 बालको मे कानून एव व्यवस्था के भावो को जाग्रत करना।

6 बालको मे उनके विशेष गुणो एव योग्यताओ को विकसित करना।

7 सामाजिक सहयोग का पाठ पढ़ाना तथा एक-दूसरे के विचारो के प्रति सहिष्णुता रखने के लिए तत्पर बनाना।

8 बालको मे उत्तरदायित्व को समझने की भावना को जाग्रत करना।

9 बालको को अपने विचारो को अभिव्यक्त करने के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान करना।

10 विद्यालय के प्रशासन को सुविधापूर्वक चलाने मे सहायता देना।

विद्यालय सभा का संगठन–छात्र स्वशासन से सम्बन्धित सगठन को विभिन्न विद्यालयो मे विभिन्न नामो से पुकारा जाता है, जैसे–छात्र परिषद् पार्लियामेण्ट, छात्र सघ आदि। दिसम्बर, 1955 सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन' मे 'छात्र स्वशासन' पर एक सेमीनार हुआ। इसके द्वारा यह निर्णय लिया गया कि विद्यालय मे एक 'विद्यालय सभा' होनी चाहिए जिसका निर्माण छात्रो द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो तथा विनियुक्त सदस्यो (Co-opted Members) द्वारा हो। वे विनियुक्त सदस्य शिक्षको द्वारा नियुक्त किये जाते है। इस सभा के अधीन 3 मण्डल हो जिनके सदस्यो का निर्वाचन सभा के निर्वाचित सदस्यो द्वारा किया जाये। ये मण्डल निम्नलिखित से सम्बन्धित हो–

1 अनुशासन।

2 स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा भोजन।

3 खेलकूद।

4 पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ–प्रिय व्यवहार, भ्रमण आदि।

5 सामाजिक कल्याण सम्बन्धी क्रियाएँ–साक्षरता अभियान, बाढ़ पीड़ितो की मदद, अकालग्रस्त क्षेत्रो के लोगो की सहायता आदि।

प्रत्येक मण्डल को परामर्श देने के लिए शिक्षक हो। शिक्षक को उस मण्डल की मीटिग मे उपस्थित होने का अधिकार हो जिसका कि वह परामर्शदाता है, परन्तु उसको वोट देने का अधिकार नही होना चाहिए। प्रत्येक मण्डल की अध्यक्षता एक मन्त्री करे जो कि उस मण्डल का सदस्य हो। इस प्रकार पाँच मण्डलो के पाँच मन्त्री होगे जो विद्यालय सभा की कार्यकारिणी का निर्माण करेगे और वह कार्यकारिणी पचायत के नाम से पुकारी जाये। प्रत्येक मण्डल के अधीन विभिन्न उपसमितियाँ हो जिनके सदस्यो की नियुक्ति मन्त्री परामर्शदाता की सलाह से करे। सेमीनार मे सर्वसम्मति से यह भी निर्णय किया गया कि सामान्यत मन्त्रियो की सख्या पाँच होनी चाहिए, परन्तु इनकी सख्या मे कमी या वृद्धि विद्यालय की स्थितियो के अनुसार हो सकती है। विद्यालय मे कोई सगठित राजनैतिक दल नही हो, जिनके आधार पर विद्यालय के सदस्यो का निर्वाचन किया जाये। इस सभा की अवधि 1 वर्ष अर्थात् एक विद्यालय सत्र हो।

विद्यालय नियन्त्रण में छात्र सहयोग के लाभ–छात्र सहयोग से छात्र एव विद्यालय दोनो ही लाभान्वित होते है। ये लाभ निम्नलिखित है–

1 छात्र सहयोग द्वारा पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओ का उत्तम रूप से सगठन एव सचालन होता है।

2 शिक्षको को अपने छात्रो की विशेष योग्यताओ को जानने के लिए अधिक उपयुक्त अवसर प्राप्त होते है। इसके साथ ही इनके बीच मधुर सम्पर्क स्थापित हो जाते है।

3. छात्र स्वशासन द्वारा बालको मे अच्छी नागरिकता के गुणो का विकास होता है। इससे बालको मे आत्म-निर्देशन की शक्ति का विकास हो जाता है और वे प्रत्येक मामले मे अपनी पहलकदमी व प्रयोग एव स्वतन्त्र रूप से निर्णय करना सीख जाते है। साथ ही उनमे नेतृत्व, अपने नेताओ के प्रति आदर-भाव, अनुगमन एव अपने दायित्वो को समझने की शक्तियो का विकास होता है। इनके अतिरिक्त उनमे सहयोग एव सामाजिकता की भावना विकसित होती है। ये समस्त गुण नागरिक बनने के लिए आवश्यक होते है। अत छात्र-स्वशासन से कुशल लोकतन्त्रीय नागरिकता का विकास होता है।

4. इससे बालको मे विभिन्न नैतिक गुणो—धैर्य, ईमानदारी, सहनशीलता, न्यायप्रियता, सदभावना, सहानुभूति, निष्पक्षता, कर्तव्यपरायणता, सामान्य हित के लिए कार्य करने की भावना आदि का विकास होता है। ये नैतिक चरित्र के निर्माण मे बहुत सहायक है। इस प्रकार के गुणो से युक्त बालक विद्यालय की सामान्य चारित्रिक भावना को उच्च बनाने मे बहुत सहायता प्रदान करते है।

5. स्वशासन से बालक स्वय को नियन्त्रित करना, अधिकारियो के प्रति विवेकयुक्त आदर भाव रखना आदि सीख जाते है। आत्म-नियन्त्रण, स्वानुशासन के लिए परमावश्यक है। इस प्रकार छात्र सहयोग बालको को आत्मानुशासित करके विद्यालय के अनुशासन को उच्च बनाता है।

6. स्वशासन द्वारा बालको मे सगठन करने की कला का विकास होता है। इससे उनमे उन गुणो का विकास होता है जो कि एक सगठनकर्ता मे होना आवश्यक है।

यदि उपर्युक्त लाभो को प्राप्त करना है तो छात्र-स्वशासन को इस प्रकार सगठित किया जाये जिसमे बालक सक्रिय भाग लेकर विद्यालय के नियन्त्रण मे समुचित रूप से कार्य कर सके। इसके लिए हमे निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—

1. विद्यालय द्वारा छात्रो के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव किया जाये तथा उसको प्रोत्साहित किया जाये। यदि छात्र सहयोग विद्यालय पर लादा गया तो उससे इच्छित लाभो की प्राप्ति नही हो सकेगी।

2. छात्र स्वशासन के लिए जो भी कदम उठाये जाये, वे धीरे-धीरे उठाये जाने चाहिए। इस क्षेत्र मे चाहे प्रगति धीमी हो, परन्तु वह दृढ़ एव आगे की ओर होनी चाहिए।

3. छात्र स्वशासन का स्वरूप विद्यालय विशेष की आवश्यकताओ एव स्थितियो के अनुरूप निर्धारित किया जाना चाहिए।

4. विद्यालय सभा या छात्र परिषद् का आकार न तो अधिक बड़ा हो और न बहुत छोटा। इसमे सम्पूर्ण विद्यालय को प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। इसके विपरीत किसी वर्ग विशेष या कक्षा विशेष को प्रतिनिधित्व प्राप्त नही हो। इसके दायित्वो एव कर्तव्यो को विशेषत परिभाषित कर दिया जाना चाहिए जिससे विद्यालय अधिकारियो एव छात्रो के दायित्वो मे कोई सघर्ष उत्पन्न न हो। इसके साथ ही इसका लिखित सविधान हो तो अच्छा होगा जिसमे उसके कार्यक्षेत्र एव अधिकारो का उल्लेख कर देना चाहिए परन्तु इस सविधान के निर्माण मे छात्रो का सहयोग लेना आवश्यक है।

5. विद्यालय सभा की सदस्यता पर जाति, धर्म, लिग आदि का कोई प्रतिबन्ध नही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसके प्रत्येक सदस्य को कोई न कोई दायित्व अवश्य प्रदान किया जाये।

6. विद्यालय सभा को आवश्यक सुविधाएँ तथा सामग्री प्रदान की जानी चाहिए जिससे वह अपने दायित्वो का सफलतापूर्वक निर्वाह करने मे समर्थ हो सके।

7. इस सभा की वित्तीय नीति सुव्यवस्थित होनी चाहिए तथा उसका उपयुक्त ढग से निरीक्षण होना चाहिए।

8. विद्यालय अधिकारियो को छात्रो का उचित पथ-प्रदर्शन करते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध मे न तो पूर्णत स्वतन्त्र छोड़ने की नीति को ग्रहण करना चाहिए और न पूर्ण अधिकार मे रखने की

नीति का अनुसरण करना चाहिए। यहाँ यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि इतनी सफलता के लि बालको की योग्यता एव क्षमता पर विश्वास रखना आवश्यक है। उसके साथ-साथ उसके कार्यो की देखभाल व समय-समय पर उचित निर्देशन होने से छात्रो के विपथ होने की सम्भावना बहुत कम हो जा

2. **समाज कल्याण सम्बन्धी क्रियाएँ** (Social Welfare Activities)—नीचे उन क्रियाओ का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है जो कि बालको मे सामाजिकता एव सहयोग की भावना के विकास मे सहायक है तथा जिनके द्वारा सामाजिक कल्याण हेतु कार्य किये जाते है। ये क्रियाएँ निम्नलिखित है—

(i) समाज-सेवा क्लब, (ii) सहकारी क्रियाएँ,

(iii) श्रमदान, (iv) स्काउटिग एव गर्ल गाइडिग,

(v) जूनियर रेडक्रॉस एव प्राथमिक चिकित्सा दल।

(i) समाज-सेवा क्लब—बहुत-से विद्यालयो मे समाज-सेवा क्लबो का सगठन किया जाता है। इनका मुख्य उद्देश्य—जनता की सेवा करना होता है। वे क्लब आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेवाएँ अर्पित करते है, उदाहरणार्थ—प्रौढ़ो को साक्षर बनाना, विभिन्न सामुदायिक कार्य करके सहायता देना, दुखी पीड़ितो की सहायता हेतु चन्दा एकत्रित करना तथा उनको भोजन व वस्त्र पहुँचाना, सक्रामक रोग के फैलने पर, किसी उत्सव या मेले के अवसर पर या किसी अन्य अवसर पर जहाँ अनुशासित ढग से काम करने की आवश्यकता हो। इन क्लबो की उपयोगिता इस बात मे निहित है कि एक तो बालक समाज की वास्तविक परिस्थितियो से परिचित हो जाते है। दूसरे, उनमे सामाजिक गुणो—सहयोग, सहानुभूति प्रेम दया, सहनशीलता आदि का विकास होता है जो उनके सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करते है। ये पुस्तके एव छात्रवृत्तियाँ देकर या अन्य रूप मे विद्यालय के गरीब एव अभावग्रस्त छात्रो की सहायता करते है। प्रत्येक विद्यालय मे ऐसे क्लबो का सगठन अवश्य किया जाना चाहिए।

(ii) सहकारी क्रियाएँ—विद्यालय का प्रमुख कर्तव्य बालको को सहयोग का पाठ पढ़ाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यालय मे विभिन्न क्रियाओ का सगठन किया जाता है। सहयोग के पाठ को पढ़ाने के लिए विद्यालय मे सहकारी समितियो का भी सगठन किया जाता है। इन समितियो का प्रमुख उद्देश्य बालको मे सहयोग की भावना उत्पन्न करना है। बालक अपने सहयोग एव हिस्सो की सहायता से विद्यालय मे सहकारी दुकान, सहकारी बैक या जलपान-गृह आदि स्थापित करते है। इन कार्यो को करने से जो लाभ होता है, वह उन विद्यार्थियो मे उनके हिस्से के अनुसार बाँट दिया जाता है जिन्होने उनके सचालन मे अपना सहयोग एव हिस्सा दिया था। ऐसी योजनाओ का सगठन छात्रो की सहकारी समितियाँ करती है। इनके सचालन का पूर्ण दायित्व छात्रो पर रहना चाहिए? परन्तु उनके पथ-प्रदर्शन के लिए एक शिक्षक नियुक्त हो तो अच्छा है। बालको की सहकारी दुकान पर उन वस्तुओ का होना आवश्यक है जो उनके प्रतिदिन की जरूरत की है, जैसे—कागज, कॉपी, पेसिल आदि। सहकारी दुकान के सचालन के लिए छात्रो की एक छोटी समिति बना दी जाये जो कि उनके हिसाब-किताब को रखे तथा वस्तुओ के मूल्यो का निर्धारण करे। विद्यालय के बालको को इस दुकान से वस्तुएँ खरीदने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। प्रधानाध्यापक का इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण दायित्व यह है कि वह सहकारी समिति के द्वारा सचालित सहकारी दुकान, बैक, जलपान-गृह आदि के हिसाब-किताब की जाँच करे या कराये और यह देखे कि बालको को उचित दर पर वस्तुएँ मिल रही है या नही। इन सहयोगी क्रियाओ की उपयोगिता इस बात मे निहित है कि वे सहयोग के पाठ को सीखने के साथ-साथ व्यापार सम्बन्धी विभिन्न बातो से परिचित हो जाते है जो कि उनके भावी जीवन मे लाभप्रद सिद्ध होती है।

(iii) श्रमदान—सामाजिक दृष्टि से इस क्रिया का भी बहुत महत्व है। इसके द्वारा बालको मे शारीरिक श्रम के महत्व को समझने की शक्ति का विकास किया जाता है। प्रत्येक विद्यालय मे इस क्रिया

का आयोजन अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। ब्रिटिशकालीन शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के हृदयों में शारीरिक श्रम करने वालो के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न कर दी थी। आज परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयी है। अब हमे इस भावना को समाप्त करना है। इस घृणा की भावना को दूर करने के लिए श्रमदान पर बल देना आवश्यक है। बालक मे श्रम को आदर की दृष्टि से देखने की भावना को जागृत करने के लिए विद्यालय द्वारा विभिन्न कार्य कराये जा सकते है। उदाहरणार्थ—ग्रामो मे सड़को का निर्माण, रास्ता की सफाई, खाद्य के लिए गड्ढे खुदवाने, विद्यालय की सफाई आदि। इन कार्यों के करने से एक तो समुदाय विद्यालय के निकट सम्पर्क मे आ जायेगा। दूसरे, बुद्धिजीवी तथा श्रमजीवी वर्गों के बीच जो खाई उत्पन्न कर दी गयी थी, उसको समाप्त किया जा सकता है। तीसरे, इससे बालको का शारीरिक विकास भी होगा।

(iv) स्काउटिंग एवं गर्ल गाइडिंग—इस सगठन का शैक्षिक महत्व बहुत है। इसके द्वारा बालको को प्रकृति के सम्पर्क मे लाया जाता है तथा शारीरिक एव नैतिक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है, परन्तु इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता इस बात मे है कि इसके द्वारा अनुत्तरदायी एव स्वकेन्द्रित बालक को विश्वसनीय एव सहायक नागरिक मे परिवर्तित किया जाता है। इस सस्था के द्वारा बालको एव बालिकाओ को खेल मे समस्त प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। **माध्यमिक शिक्षा आयोग** ने इसके महत्व को इन शब्दो मे व्यक्त किया—

"स्काउटिग, चारित्रिक प्रशिक्षण तथा अच्छी नागरिकता के गुणो के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधनो मे से एक है। इसमे बहुत-से गुण निहित है, क्योकि इसके द्वारा विभिन्न आयु के बालको को अपनी ओर आकर्षित किया जाता है तथा उनकी बहुमुखी शक्तियो को विकसित किया जाता है। इसके विभिन्न खेलो, क्रियाओ तथा प्राविधिक कुशलताओ द्वारा समाज-सेवा के आदर्शों, सदाचरण, नेताओ के लिए सम्मान, राज्य के प्रति भक्ति तथा प्रत्येक प्रकार की स्थिति का सामना करने की तत्परता की आधारशिला रखना सम्भव है।"

"Scouting is one of the most effective means for the training of character and the qualities for good citizenship. It has the great merit that it appeals to pupils of all ages and taps their manifold energies. Through the various games, activities and technical skills, it is possible to lay the foundation of the ideals of social service, good behaviour, respect for leaders, loyalty to the state and preparedness to meet any situation."

—*Report of the Secondary Education Commission*, p. 127

इस सस्था को **सर रॉबर्ट वेडेन पॉवेल** (Sir Robert Waden Powell) ने जन्म दिया था। उन्होने इस सस्था का निर्माण शत्रु-पक्ष की सूचना प्राप्त करने के लिए किया था, परन्तु बाद मे इस आन्दोलन ने प्रत्येक देश मे अपने महत्व की धाक जमा ली। भारतवर्ष मे इसको सन् 1911 ई. मे अपनाया गया। इसका सगठन आयु के आधार पर किया गया है। इसके सगठन की रूपरेखा निम्नलिखित है—

बॉय स्काउट का संगठन—

1. 7 वर्ष से 11 वर्ष तक के बच्चे **शोर बच्चे** (Cub) कहलाते है।
2. 11 वर्ष से 17 वर्ष तक के बालक **स्काउट** (Scout) कहलाते है।
3. 17 वर्ष से अधिक आयु वाले **रोवर** (Rover) कहलाते है।

गर्ल गाइड का संगठन—

1. 11 वर्ष से कम आयु की बालिकाएँ **बुलबुल** (Blue Bird) कहलाती है।

2. 11 वर्ष से 16 वर्ष तक की आयु की बालिकाएँ **गर्ल गाइड कम्पनी** (Girl Guide Company) के अन्तर्गत आती है।

3. 16 वर्ष से अधिक आयु वाली लड़कियाँ **रेंजर कम्पनी** (Ranger Company) में आती है।

आज से कुछ समय पूर्व तक हमारे अधिकाश विद्यालयो मे इस सगठन को स्थान प्राप्त था, अब (A.C.C., N.C.C.) आदि की स्थापना से तथा समय के अभाव से इसकी ओर कम ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु इसके शैक्षिक, नैतिक, चारित्रिक आदि क्षेत्र के महत्व को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इस सगठन को प्रत्येक विद्यालय मे स्थान दिया जाना चाहिए। वस्तुत यह सगठन राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है। इसके द्वारा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण मे भी सहायता मिल सकती है।

(v) जूनियर रेडक्रॉस एवं प्राथमिक चिकित्सा दल—ये सगठन अपना विशेष महत्व रखते हैं क्योकि इनके द्वारा बालको को समाज-सेवा करने योग्य बनाया जाता है और उनमे वैयक्तिक व सामाजिक गुणो को विकसित किया जाता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का विचार है कि प्रत्येक बालक को जूनियर रेडक्रॉस तथा प्राथमिक चिकित्सा के कार्य मे प्रशिक्षित होना चाहिए, क्योकि यह प्रशिक्षण बालक तथा समाज दोनो के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा। प्रत्येक विद्यालय मे इन सगठनो का आयोजन किया जाना चाहिए। इस समय बहुत कम विद्यालयो मे इनके लिए व्यवस्था की गयी है। जूनियर रेडक्रॉस नामक सगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है। इसके प्रमुख उद्देश्य—दूसरो की सेवा, स्वास्थ्य की वृद्धि तथा भातृत्व भावना का विकास करना है। यह सस्था अपने व्यय को सदस्यो से चन्दा लेकर एव बालको द्वारा निर्मित विभिन्न वस्तुओ को बेचकर चलाती है। प्राथमिक चिकित्सा दल का उद्देश्य बालको को आहत व्यक्तियो का इलाज करने की शिक्षा प्रदान करना है। विद्यालय मे इसका सगठन स्काउट मास्टर या स्वास्थ्य शिक्षक की अध्यक्षता मे किया जा सकता है।

3. सांस्कृतिक क्रियाएँ (Cultural Activities)—इन क्रियाओ के अन्तर्गत पाठ्य-क्रिया लोकगीत, लोकनृत्य, कीर्तन, भजन, सगीत सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम आते है। इन क्रियाओ का अवकाश का सदुपयोग करने मे बड़ा महत्व है। सगीत सम्बन्धी क्रियाएँ बालको मे व्यावहारिक कुशलताओ तथा सगीत का सास्कृतिक मूल्याकन करने की क्षमता उत्पन्न करती है। इन क्रियाओ द्वारा बालक अपने सास्कृतिक मूल्यो का ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ होते है। इनके अतिरिक्त उनको इनके द्वारा आत्माभिव्यक्ति के लिए अवसर प्रदान किये जाते है। इनके द्वारा बालको को मनोरजन के साथ-साथ सौन्दर्यानुभूति के लिए अवसर प्राप्त होते है। नाटको के चयन मे उनके सास्कृतिक व शैक्षिक महत्व पर बल दिया जाना चाहिए।

इन क्रियाओ के सचालन के लिए विद्यालय मे एक पृथक् सास्कृतिक समिति होनी चाहिए। इस समिति का पथ-प्रदर्शन एक शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिए, परन्तु वह शिक्षक इन कार्यों मे रुचि रखता हो तथा उसके सगठन एव सचालन की प्रक्रियाओ से परिचित हो।

4. साहित्यिक क्रियाएँ (Literary Activities)—इन क्रियाओ के अन्तर्गत वाद-विवाद, प्रतियोगिता, कवि-गोष्ठियाँ एव कविता प्रतियोगिताएँ, भाषण, निबन्ध एव कहानी प्रतियोगिता, अन्त्याक्षरी, विचार गोष्ठियाँ आदि क्रियाएँ आती है। ये क्रियाएँ शैक्षिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इनके द्वारा बालको की विभिन्न मानसिक शक्तियो—स्पष्ट चिन्तन, स्मरण, तर्क, विश्लेषण, निर्णय आदि को प्रशिक्षित किया जाता है। इनके द्वारा इनको प्रखर बनाने के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किये जाते है। इसकी उपयोगिता इस कारण भी है कि इनके द्वारा बालको को आत्म-प्रदर्शन के लिए अवसर मिलते है तथा बालक अपने विचारो एव तर्कों को उपयुक्त ढग से व्यक्त करना सीख जाता है। ये क्रियाएँ बालको की लज्जाशीलता प्रवृत्ति को दूर करने मे बहुत सहायक है तथा बालको मे नेतृत्व के गुणो का विकास करती है। ये क्रियाएँ

बालको में साहित्य के लिए रुचि एव प्रेम जागृत करती है तथा बालको में उनकी सौन्दर्यानुभूति करने की शक्ति का विकास होता है।

इन क्रियाओं के सगठन एव सचालन के लिए पृथक समिति का उत्तरदायी बनाया जाय तथा एक शिक्षक को उसके परामर्शदाता के रूप मे नियुक्त किया जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिता एव गोष्ठियों के लिए छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार विभिन्न विषयो का चयन हो तो अच्छा है। इसके अतिरिक्त बालको का उन विषयों की तैयारी हेतु उचित प्रकार से पथ-प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

5. **विद्यालय प्रकाशन** (School Publication)—विद्यालय प्रकाशन अधिकाश विद्यालयो के जीवन का एक महत्वपूर्ण अग बन गया है। विद्यालय पत्रिका, समाचार-पत्र आदि बालको को सृजनात्मक लेखन के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करते है। इनके द्वारा बालको को समृद्ध एव अमूल्य शैक्षिक अनुभव प्रदान किये जाते है। पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त अन्य पुस्तके पढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इन प्रकाशनो के द्वारा समाज को विद्यालय की प्रगति, कार्य, सामान्य चारित्रिक भावना आदि से अवगत कराया जाता है। **स्पीयर्स** तथा **लॉशे** (Spears and Lawshe) ने विद्यालय प्रकाशन के निम्नलिखित कार्य बताये है—

(i) विद्यालय के कार्य से समाज को अवगत कराना।

(ii) विद्यालय की घटनाओ एव सूचनाओ को प्रकाशित करना।

(iii) विद्यालय की सम्मति को अभिव्यक्त करना।

(iv) विद्यालयो के आदर्शों एव उसकी चारित्रिक भावनाओ को व्यक्त करना।

(v) अन्तर-विद्यालयो में उत्तम सम्बन्धो को विकसित करना।

(vi) अभिभावको तथा विद्यालय के बीच सहयोग स्थापित करना।

(vii) सदाचार के स्तर को उच्च बनाने मे सहायता देना।

(viii) उपयुक्त क्रियाओ को प्रोत्साहन देना।

विद्यालय प्रकाशन के सचालन के लिए एक सम्पादक मण्डल की स्थापना की जाये। इसमे छात्र के प्रतिनिधि होने चाहिए, परन्तु उनका उचित पथ-प्रदर्शन शिक्षक वर्ग के द्वारा किया जाना चाहिए। इसके लिए बालको को लेख, निबन्ध, कहानी, कविता आदि लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इन विभिन्न सग्रहो की उपयुक्तता का निर्णय छात्र एव शिक्षक मिलकर करे। विद्यालय के प्रधानाध्यापक का इस क्षेत्र मे बड़ा ही महत्वपूर्ण दायित्व है। वह छात्रो के प्रकाशनो की देखभाल करे। इसमे जो लेख प्रकाशित हो, वे उस प्रकाशन के उद्देश्य की पूर्ति करते हुए समाज व विद्यालय के बीच मधुर सम्पर्क स्थापित करने में सहायता प्रदान करने वाले होने चाहिये, परन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कही विद्यालय प्रकाशन एकमात्र प्रचार के साधन ही न बन जाये। ऐसा होने पर उनका शैक्षिक महत्व समाप्त हो जायेगा।

6. **शारीरिक क्रियाएँ** (Physical Actvities)—इनके अन्तर्गत सगठित खेलकूद, पी टी, व्यायाम आदि क्रियाएँ आती है।

बालक के शारीरिक विकास के लिए खेलकूद, व्यायाम, शारीरिक शिक्षा परमावश्यक है। खेलो द्वारा बालक के शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाया जाता है, परन्तु विद्यालय मे इनका महत्व शारीरिक दृष्टि से ही नही है, वरन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, बौद्धिक एव नैतिक दृष्टि से भी है।

(i) **मनोवैज्ञानिक महत्व**—मनोवैज्ञानिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालक मे अतिशय शक्ति होती है। यह शक्ति मुख्यतया किशोरावस्था में अधिक पायी जाती है। यदि अतिशय शक्ति

उचित धाराओ मे प्रवाहित नही किया गया तो वह शक्ति गलत मार्गों मे बहने लगेगी जिसका परिणाम अनुपयुक्त व्यक्तित्व होगा। खेलो द्वारा इस अतिशय शक्ति के लिए वाछनीय मार्ग प्रदान किये जाते बालक खेलकूद द्वारा अपने स्वास्थ्य की वृद्धि के साथ-साथ इस अतिशय शक्ति का सदुपयोग भी लेता है। इसके अतिरिक्त खेलो द्वारा बालको की काम-वासना, विधायिकता, सामूहिकता, युयुत्सा मूल प्रवृत्तियो का शोधन होता है।

(ii) सामाजिक महत्व–सामाजिक दृष्टि से खेलकूद का बड़ा महत्व है, क्योकि बालक समूह रहकर तथा साथ खेलकर न्याय, सहयोग, सहिष्णुता, नेतृत्व, सयम जैसे गुणो को व्यावहारिक रूप सीखता है तथा अपने सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

(iii) बौद्धिक महत्व–बौद्धिक दृष्टि से भी इसका बहुत महत्व है। इनमे भाग लेकर बालक अपनी निर्णय-शक्ति, कल्पना-शक्ति, तर्क-शक्ति, मस्तिष्क की तत्परता आदि का विकास करता है। इसके अतिरिक्त खेलकूद से उसके मस्तिष्क का सन्तुलन ठीक रहता है। खेलकूद मानसिक स्फूर्ति भी प्रदान करते है।

(iv) नैतिक महत्व–नैतिक दृष्टि से इनका महत्व इस बात मे निहित है कि इनके द्वारा उन गुणो– साहस, धैर्य, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, सच्चाई, न्यायप्रियता, निष्पक्षता आदि–को विकसित किया जाता है जो नैतिक चरित्र का निर्माण करते है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का विचार है कि सामूहिक खेलो का इस कारण विशेष महत्व है कि इनके द्वारा शारीरिक विकास तथा मनोरजन प्रदान करने के साथ-साथ छात्रो के चरित्र का निर्माण भी होता है।

(v) अनुशासनात्मक महत्व–खेलकूद का विद्यालय मे अनुशासन की स्थापना के लिए भी बहुत महत्व है। इसके द्वारा बालक स्वय को नियन्त्रित करना सीख जाते है। इसके अतिरिक्त खेलकूद विद्यालय के सामूहिक जीवन के निर्माण मे भी बहुत सहायक है, क्योकि इनके द्वारा बालको के आपसी सम्बन्धो तथा शिक्षको एव छात्रो के उचित सम्पर्कों को दृढ़ बनाया जाता है।

(vi) नागरिक महत्व–खेलकूद बालको को नागरिक प्रशिक्षण भी प्रदान करते है। खेल के मैदान मे बालक दूसरो के अधिकारो को आदर की दृष्टि से देखना सीख जाते है। यही वे नेतृत्व करने तथा नियमों के अनुसार, कार्य करने की भावना को ग्रहण करते है। इसके अतिरिक्त खेलो द्वारा उनमे नियमितता, कर्तव्यपरायणता, सहयोगियो मे विश्वास, धैर्य, टीम भावना आदि गुणो का विकास किया जाता है। इस प्रकार खेलो द्वारा बालक व्यावहारिक रूप से नागरिक प्रशिक्षण प्राप्त करते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि बालक के सर्वांगीण विकास मे खेलो का बड़ा योगदान है। यदि हमे खेलो के महत्व को प्राप्त करना है तो उनका सगठन उपयुक्त ढग से करना परमावश्यक है। उपयुक्त सगठन के लिए अधोलिखित बातो को ध्यान मे रखा जा सकता है–

1. विद्यालय समाज के स्वास्थ्य विकास के लिए आवश्यक है कि अधिकाधिक बालक खेल के मैदान का प्रयोग करे। इसके लिए आवश्यक है कि खेलकूद कार्यक्रम विविध एव व्यापक हों जिससे विद्यालय के समस्त छात्र अपनी आयु एव रुचि के अनुसार, खेलो मे भाग ले सके और उनके महत्व को प्राप्त करने मे समर्थ हो सके।

2. प्रत्येक सामूहिक खेल के लिए एक शिक्षक को अध्यक्ष बनाया जाये, परन्तु अध्यक्ष बनाते समय शिक्षक की योग्यताओ एव रुचियो को ध्यान मे रखना आवश्यक है। यदि शिक्षक को ऐसे खेल का अध्यक्ष बना दिया गया जिसमे न तो उसकी रुचि है और न उसके विषय मे कोई ज्ञान रखता है तो ऐसी स्थिति मे वह अपने बालको का मार्ग-प्रदर्शन करने मे असमर्थ रहेगा।

3. बालको को विभिन्न खेलो से सम्बन्धित नियमो को समझा देना चाहिए।

4 प्रतिदिन निश्चित समय पर प्रत्येक बालक का खेल के मैदान पर पहुँचना अनिवार्य कर दिय जाना चाहिए। क्रीड़ास्थल पर उपस्थिति लेने की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

5 छात्रो का विभिन्न खेलों के लिए चयन करते समय इस बात को ध्यान मे रखा जाये कि ऐसे सामान्य योग्यता रखने वाले बालको का चयन किया जाये।

6 खेलकूद की पृथक् समय तालिका का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे सम्पूर्ण कार्यक्र व्यवस्थित रूप से सचालित हो सके।

7 अन्तर-विद्यालयी प्रतियोगिताओ का भी आयोजन किया जाना चाहिए परन्तु उन प्रतियोगिताओ का ध्येय व्यावसायिक खिलाड़ी बनाना न हो, वरन् इसके विपरीत विभिन्न विद्यालयो के बीच सद्भावन प्रेम एव सहानुभूतिपूर्ण सम्पर्क स्थापित करना होना चाहिए।

8 खेलों के स्तर को उच्च बनाने के लिए विद्यालय मे विभिन्न कक्षाओ तथा विभिन्न टीमो के बी प्रतियोगिताएँ करायी जानी चाहिए।

9 खेलो का सचालन एव निरीक्षण उचित रूप से किया जाना चाहिए। इसके लिए एक क्रीड़ा स्थ की नियुक्ति करनी चाहिए। उसकी सहायता के लिए विभिन्न खेलो के अध्यक्ष होने चाहिए। छात्रो का सहयोग प्राप्त करने के लिए एक खेलकूद समिति का भी निर्माण किया जाना चाहिए। खेलकूद सम्ब सामग्री की व्यवस्था, उसके खरीदने, क्रीड़ास्थल की स्वच्छता आदि कार्यों मे इस समिति से सहाय मिलेगी।

7. **विषयगत समुदाय** (Thematic Community)—ये समुदाय विद्यालयो मे पढ़ाये जाने व विषय से सम्बन्धित होते है, उदाहरणार्थ—इतिहास समुदाय, भूगोल समुदाय, विज्ञान समुदाय, गणि समुदाय, कृषि समुदाय, गणित समुदाय आदि। इन समुदायो के निर्माण से सबसे बड़ा लाभ यह है इनकी क्रियाओ द्वारा बालको मे विषय के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। दूसरे, इसका सगठन एव सचा करने से उनमे विभिन्न गुणो का भी विकास होता है। इन समुदायों के निर्माण की प्रथा अधिकाश कॉलेज स्तर पर ही है, परन्तु ये विद्यालय स्तर के बालको के लिए भी लाभदायक सिद्ध हो सकते है। समुदायो के द्वारा विषय से सम्बन्धित कठिनाइयो को दूर करने, उसका जीवन मे क्या महत्व है अ बातो को स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन समुदायो द्वारा विभिन्न शैक्षिक यात्राओ का आयोजन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—इतिहास का समुदाय स्थानीय ऐतिहासिक इमारतो दिखाने के लिए यात्राओ का आयोजन कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह बालको को दूसरे ऐतिहासि स्थानो के भमण के लिए ले जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न समुदायो के द्वारा अपने विषय सम्बन्धित महत्व की वस्तुओ के निरीक्षण हेतु यात्राओ का आयोजन किया जा सकता है। इन समुद का निर्माण छात्रो द्वारा निर्वाचित सदस्यो एव अधिकारियो द्वारा किया जायेगा। इसके पथ-प्रदर्शन क विषय का प्रमुख शिक्षक उस समुदाय का वरिष्ठ अध्यक्ष होना चाहिए।

8. **विविध क्रियाएँ** (Different Activities)—इनके अन्तर्गत वे विभिन्न क्रियाएँ आती है जो शैक्षिक महत्व की होने के साथ-साथ मनोरजन प्रदान करने वाली भी होती है। उदाहरणार्थ—प्रिय व्या पिकनिक, भमण (Excursion), विद्यालय दिवस, असेम्बली आदि। विद्यालय मे विभिन्न प्रकार क शौक (Hobbies) की व्यवस्था हो सकती है, जैसे—बागवानी, फोटोग्राफी, टिकट सग्रह करना, सि सग्रह करना आदि। इनका सबसे बड़ा महत्व यह है कि इनके द्वारा बालको मे विभिन्न प्रकार की रु उत्पन्न होती है और साथ-साथ ये मनोरजन भी प्रदान करती है। अवकाश के समय का सदुपयोग की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है। पिकनिक तथा भ्रमणो का भी बड़ा महत्व है। आधुनिक शि

विधियो मे भ्रमण का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उसके द्वारा बालको का दृष्टिकोण विस्तृत होता है, निरीक्षण पद्धति से उन वस्तुओ एव स्थानो के विषय मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ है। लिए यात्रा पर गये है। विद्यालय दिवसो का भी बड़ा शैक्षिक महत्व है, परन्तु इनके शैक्षिक महत्व को प्राप्त किया जा सकता है, जब इनके आयोजन एव सगठन मे छात्रो का अधिकाधिक सहयोग हो। इनके द्वारा बालको मे सहयोग, नेतृत्व, सास्कृतिक रुचियो आदि का विकास होता है। विद्यालयो मे विभिन्न दिवसो को मनाया जाता है, जैसे—वार्षिकोत्सव, छात्र सघ दिवस, पुरातन छात्र सम्मेलन, राष्ट्रीय पर्वो का आयोजन, अभिभावक दिवस आदि।

शैक्षिक दृष्टि से दैनिक असेम्बली का बड़ा महत्व है। असेम्बली मे बालको के ज्ञान को विस्तृत करने उसकी रुचियो मे वृद्धि करने तथा अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिए अवकाश प्रदान किये जाते है। इसके अतिरिक्त इससे सामूहिक शिक्षा के सुअवसर मिलते है। इनके कार्यक्रम मे सामूहिक प्रार्थना, विभिन्न दैनिक घोषणाओ, प्रधानाध्यापक, शिक्षक एव अतिथियो के भाषण आदि को भी स्थान दिया जाता है, परन्तु इसके कार्यक्रम का सचालन शिक्षको तथा छात्रो के पारस्परिक सहयोग द्वारा होना अच्छा है और इसके कार्यक्रम पूर्व-नियोजित होने चाहिए। इसका नियोजन करते समय उन क्रियाओं को स्थान दिया जाये जो अधिकाधिक शैक्षिक महत्व रखती हो तथा छात्र नेतृत्व एव पहलकदमी के लिए अवसर प्रदान करती हो।

यद्यपि आधुनिक विचारधारा के अनुसार, छात्र-क्रियाओ को पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अग मान गया है, परन्तु शिक्षको एव अभिभावको के दृष्टिकोण मे कोई विशेष परिवर्तन नही आया है। अब भी बहुत-से अभिभावक एव शिक्षकगण इन्हे समय, धन एव शक्ति का अपव्यय मात्र ही समझते है। हमारे देश मे इनकी सफलता मे यह दृष्टिकोण बड़ा बाधक है। इनके अतिरिक्त धन के अभाव के कारण भी बहुत-सी उपयोगी क्रियाओ को विद्यालय मे स्थान नही मिल पाता। विद्यालय के पास अन्य साधनो का अभाव तथा परीक्षा का प्राधान्य भी इन क्रियाओ की प्रगति मे बाधा उत्पन्न करता है, परन्तु इन बाधाओं को दूर करने मे विद्यालय अधिकारी महत्वपूर्ण भाग ले सकते है। इन लोगो की दूरदर्शिता सृजनात्मक चिन्तन एव अनुमोदनात्मक दृष्टिकोण से इन बाधाओ को दूर किया जा सकता है और साथ ही इनकी सफलता को अवश्यम्भावी बनाया जा सकता है।

24.7 : पाठ्य–सहायक क्रियाओं के संगठन के लिए निर्देशन सिद्धान्त (GUIDING PRINCIPLES FOR THE ORGANISATION OF CO-CURRICULAR ACTIVITIES)

पाठ्य-सहायक क्रियाओ के सार्थक, रोचक एव उपयोगी सगठन मे अग्रलिखित निर्देशक सिद्धान्त अत्यन्त सहायक सिद्ध होते है—

1. चुनाव का सिद्धान्त (Principle of Selection)—पाठ्य-सहायक क्रियाओ का सावधानी से चुनाव किया जाना चाहिए। इनका चुनाव करते समय अग्रलिखित बाते ध्यान मे रखनी चाहिए—

(i) विभिन्न क्रियाएँ (Variety of Activities)—अधिकतर विद्यार्थियो की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए विभिन्न क्रियाओ की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि सभी विद्यार्थियो को किसी-न-किसी क्रिया मे भाग लेने का अवसर मिले।

(ii) मितव्ययी क्रियाएँ (Economical Activities)—ऐसी क्रियाओ का आयोजन नही किया जाना चाहिए जिनसे भाग लेने वाले विद्यार्थियो की सख्या तो कम हो, परन्तु उन पर खर्च अधिक होता हो। केवल मितव्ययी क्रियाओ का ही चुनाव करना चाहिए।

(iii) **अत्यधिक क्रियाएँ नहीं** (No Multiplication of Activities)—पाठ्य-सहायक क्रियाएँ इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए कि उनसे विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा मुख्याध्यापक पर अत्यधिक बोझ पड़े।

(iv) **शिक्षात्मक क्रियाएँ** (Educative Activities)—शिक्षात्मक दृष्टिकोण से सबद्ध क्रियाओं को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रत्येक क्रिया से विद्यार्थियों की विभिन्न रुचियों, अभिरुचियों तथा योग्यताएँ सन्तुष्ट एव विकसित होनी चाहिए।

(v) **क्रियाओं का स्वतन्त्र चुनाव** (Free Choice of Activities)—विद्यार्थियों को क्रियाओं के चुनाव मे स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन पर कोई क्रिया लादी नहीं जानी चाहिए। अमेरिका मे विद्यार्थी जब स्कूल मे दाखिल होता है तो उसे क्रियाओ की एक सूची दी जाती है और वह प्राथमिकता के आधार पर तीन क्रियाएँ चुन लेता है। इसी प्रकार की कोई विधि भारत मे भी प्रचलित की जानी चाहिए।

(vi) **साधन, साध्य नहीं** (Means not Ends)—पाठ्य-सहायक क्रियाओ का चुनाव शिक्षा प्रक्रिया के साधन के रूप में किया जाना चाहिए। इन्हे साध्य नही समझना चाहिए।

(vii) **स्कूल और विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ** (Needs of the School and the Pupils)—पाठ्य-सहायक क्रियाएँ स्कूल एव विद्यार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुसार चुनी जानी चाहिए। कोई भी दो स्कूल एक जैसे नही होते। प्रत्येक स्कूल की आवश्यकताओ के अनुसार उसकी क्रियाओं का चुनाव होना चाहिए। ग्रामीण स्कूलो की आवश्यकताएँ शहरी स्कूलो से अलग होगी। प्राइमरी स्कूलो की कई आवश्यकताएँ बड़े विद्यार्थियो के अनुकूल नही होती। इसी प्रकार सभाओ तथा क्लबो का सगठन भी प्रत्येक स्कूल का अलग-अलग प्रकार का होगा। अत स्कूल के कार्यक्रम मे यह विविधता प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। स्कूल की क्रियाओं का न्यायसगत चुनाव किया जाना चाहिए। किसी क्रिया का एक बार न्यायसगत चुनाव करने के पश्चात् उसे समाप्त नही होने देना चाहिए, बल्कि उसे जारी रखना चाहिए।

(viii) **सन्तुलित चुनाव** (Balanced Selection)—पाठ्य-सहायक क्रियाओ का चुनाव सन्तुलित ढग से होना चाहिए। विभिन्न प्रकार की क्रियाओ मे सन्तुलन होना चाहिए। प्रभावहीन ढग से आयोजित अधिक क्रियाओ की अपेक्षा प्रभावशाली ढग से आयोजित थोड़ी क्रियाएँ अच्छी होती है।

2. **समय एवं स्थान की व्यवस्था का सिद्धान्त** (Principle of Providing Time and Place)—पाठ्य-सहायक क्रियाओ के प्रति विद्यार्थियो का ध्यान आकर्षित करने के लिए इन्हे स्कूल के नियमित कार्यक्रम मे प्रतिष्ठित स्थान दिया जाना चाहिए। स्कूल की समय-सारणी मे क्रिया-पीरियडो (Activity Periods) की व्यवस्था होनी चाहिए। **मुहियुद्दीन** (Mohiyuddin) के कथनानुसार, "हमारे स्कूलो की नियमित समय-सारणी मे इन क्रियाओ को सम्मिलित करने से सभी विद्यार्थियो को सामाजिक अनुभव लाभ लेने तथा नागरिकता की व्यावहारिक कलाओं मे महत्वपूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त करने का ही अवसर प्राप्त नही होगा, बल्कि पाठ्य-क्रियाओ के स्तर तक इन क्रियाओ का दर्जा भी बढ़ जायेगा।"

"By inclusion of these activities in the regular time-tables of our schools, not only would opportunities be provided for all pupils to participate in social experience and gain valuable training in the practical arts of citizenship, but the status of these activities would also be raised to the level of curriculur pursuits."

बहुत-सी प्रान्तीय सरकारो ने स्कूल की समय-सारणी मे 'क्रिया-पीरियडो' (Activity Periods) की व्यवस्था की हुई है।

3. **प्रेरणा प्रदान करने का सिद्धान्त** (Principle of Providing Motivation)—विद्यार्थियों को पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी

किसी-न-किसी क्रिया मे भाग लेना चाहिए। विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते है–

(i) **क्रियाओं की सूची प्रदान करना** (Providing List of Activities)–प्रत्येक विद्यार्थी को स्कूल मे आयोजित क्रियाओ की सूची दी जानी चाहिए और अपनी रुचियो के अनुसार क्रियाएँ चुनने के लिए कहना चाहिए। फिर उससे सम्बन्धित क्रिया को क्लब या सभा का सदस्य बनाना चाहिए।

(ii) **उपक्रम को प्रोत्साहन** (Encouraging Initiative)–विद्यार्थियो को क्रियाओ के गठन के लिए अपने आप कोई कदम उठाने की प्रेरणा देनी चाहिए। उन्हे यह बात स्पष्ट रूप से बतानी चाहिए कि ये क्रियाएँ उनकी अपनी क्रियाएँ है और उनका सगठन एव सचालन उनके अपने हाथो मे है।

(iii) **लोकतांत्रिक अवसर प्रदान करना** (Providing Democratic Opportunity)– लोकतांत्रिक अवसर को सुनिश्चित बनाना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को निर्भीकता से सोचने एव करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। किसी भी विद्यार्थी को किसी क्रिया मे भाग लेने के लिए विवश नही किया जाना चाहिए।

(iv) **लोकतन्त्रात्मक संगठन** (Democratic Organisation)–पाठ्य-सहायक क्रियाओ का लोकतन्त्रात्मक सगठन किया जाना चाहिए। सचिवो, प्रधानो, उपप्रधानो,खजाचियों आदि का लोकतन्त्रात्मक विधि से चुनाव किया जाना चाहिए। इन पदवियो के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को समान अवसर दिया जाना चाहिए। किसी भी विद्यार्थी के पास अधिक पदवियाँ नही होनी चाहिए।

(v) **उद्देश्य को परिभाषित करना** (Defining the Aim)–प्रत्येक पाठ्य-क्रिया का उद्देश्य सुस्पष्ट एव सुपरिभाषित होना चाहिए।

(vi) **उचित श्रेय देना** (Giving due credit)–प्रत्येक विद्यार्थी को उसके सहयोग का उचित श्रेय दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी के सचित अभिलेख पत्र (Cumulative Record Card) मे इसका उल्लेख होना चाहिए। स्कूल के अन्तिम प्रमाण-पत्र मे भी उन क्रियाओ का उल्लेख किया जाना चाहिए जिनमे विद्यार्थी ने भाग लिया हो। इसके अतिरिक्त बेहतर कार्य दिखाने वाले विद्यार्थियो को पदक, पुरस्कार, प्रतिभासूचक कलर (Colour) आदि भी प्रदान किये जाने चाहिए।

4. **नियम संहिता** (Code of Rules)–प्रत्येक सगठन की नियम सहिता होनी चाहिए जिसमे उसके उद्देश्य, सदस्यता, चुनाव विधि, विभिन्न कार्यकर्ताओ के कर्तव्यो आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि उसका सचालक कोई अध्यापक हो और उसे मुख्याध्यापक का सरक्षण प्राप्त हो।

5. **निर्देशन तथा परामर्श का सिद्धान्त** (Principle of Guidance and Advice)–पाठ्य-सहायक क्रियाओ के चुनाव तथा गठन के लिए विद्यार्थियो का निर्देशन किया जाना चाहिए। **सेकेण्डरी शिक्षा आयोग** (Secondary Education Commission) के कथनानुसार, "जबकि प्रत्येक क्रिया मे विद्यार्थियो को अपने पाँव पर खड़े होने और इन क्रियाओ को अपने उपक्रम से विकसित करने के लिए उत्साहित किया जाये, अध्यापको को उनकी सहायता एव निर्देशन के लिए उनके पास ही रहना चाहिए ताकि उनकी शिक्षात्मक सम्भावनाओ का पूरा लाभ उठाया जा सके और विद्यार्थियो के एक या अधिक क्रियाओ मे भाग लेने को निश्चित बनाया जा सके।" अत: इन क्रियाओ के उचित सगठन एव सचालन मे अअध्यापको के निर्देशन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। परामर्शदाता मे निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

(i) **सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार** (Sympathetic Attitude)–परामर्शदाता का विद्यार्थियो के प्रति मैत्रीपूर्ण एव सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होना चाहिए।

(ii) **चातुर्यपूर्ण व्यक्ति** (Tactful Person)—परामर्शदाता को भावुक बच्चो के साथ व्यवह करने मे चातुर्य से काम लेना चाहिए। उसे निर्देशन की अप्रत्यक्ष विधियो का प्रयोग करना चाहिए, स सत्तापूर्ण अधिकार का प्रयोग नही करना चाहिए क्योकि ऐसा करने से विद्यार्थियो की स्वाभाविकता तथा स्वतन्त्रता को हानि पहुँचती है।

(iii) **उत्साही व्यक्ति** (Enthusiastic Person)—परामर्शदाता मे क्रियाओ के प्रति उत्साह होना चाहिए। उसे विद्यार्थियो मे विश्वास एव प्रतिष्ठा विकसित करनी चाहिए। उसे क्रियाओ की उपयोगिता पूर्ण विश्वास होना चाहिए। जिन अध्यापको मे इन क्रियाओ के लिए उत्साह नही होता और जो इ अतिरिक्त बोझ सकते है, वे इनके महत्व को नष्ट कर देते है। ऐसे अध्यापको से इन क्रियाओ सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(iv) **समर्पित व्यक्ति** (Dedicated Person)—परामर्शदाता समर्पित व्यक्ति होना चाहिए। समप की भावना से इन क्रियाओ का सगठन किया जाना चाहिए क्योकि शिक्षा की सफलता इनके सगठन पर निर्भर करती है।

(v) **विशिष्ट ज्ञान एवं कौशल** (Special Knowledge and Skill)—परामर्शदाता को जो क्रि सौपी जाये उसे उसका विशिष्ट ज्ञान एव कौशल प्राप्त होना चाहिए। उसे उस क्रिया के विशिष्ट उद्देश्य पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसमे विद्यार्थियो को उस क्रिया के आयोजन एव सचालन से सम्बन्धित निर्दे प्रदान करने की पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।

पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे यद्यपि अध्यापक की भूमिका एक परामर्शदाता की होती है किन्तु उस ज्ञान तथा उसकी स्वीकृति के बिना कोई भी क्रिया सगठित नही की जानी चाहिए। इसी प्रक मुख्याध्यापक की स्वीकृति भी प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। मुख्याध्यापक को सभी विद्यार्थी सभ का सदस्य बनना चाहिए। उसकी उपस्थिति अत्यन्त प्रेरक एव उत्साहवर्द्धक सिद्ध होती है।

6. **उचित प्रचार का सिद्धान्त** (Principle of Due Publicity)—इन क्रियाओ का उचित प्र किया जाना चाहिए। समुदाय को इन क्रियाओ के बारे मे सूचित किया जाना चाहिए।

7. **रिकॉर्ड रखने का सिद्धान्त** (Principle of Maintaining Records)—प्रत्येक सगठन ह विभिन्न क्रियाओ के रिकॉर्ड मे प्रत्येक क्रिया की प्रकृति, विद्यार्थियो के भाग लेने, व्यय, कार्यक्रम मूल्याकन आदि का उल्लेख होना चाहिए।

8. **कुछ सामान्य सुझाव** (Some General Suggestions)—उपर्युक्त सिद्धान्तो के अतिरि निम्नलिखित सामान्य सुझाव भी उपयोगी है—

(i) **कार्यक्रम का क्रमिक विकास** (Gradual Growth of the Programme)—पहले कि छोटे पैमाने पर आरम्भ की जानी चाहिए, फिर उन्हे धीरे-धीरे विकसित करना चाहिए।

(ii) **सावधानीपूर्ण विचार** (Gradual Consideration)—किसी भी नये सघ (Society) आरम्भ करने से पहले उस पर सावधानी से विचार किया जाना चाहिए। एक बार किसी क्रिया के आ करने के पश्चात उसे समाप्त नही होने देना चाहिए।

(iii) **अधिक अध्यापकों का भाग लेना** (Participation of Large Number of Teacher जहाँ तक सम्भव हो सके, प्रत्येक अध्यापक को अपनी रुचि की किसी क्रिया का अवश्य (Incharge) होना चाहिए।

(iv) **न्यायसगत कर्तव्य वितरण** (Judicious Distribution of Duties)—अध्यापको मे का न्यायसगत वितरण होना चाहिए। किसी भी अध्यापक पर काम का अत्यधिक बोझ नही होना

(v) अध्यापको के लिए प्रोत्साहन (Incentives for Teachers)—इन क्रियाओ के संगठन के लिए अध्यापको को अतिरिक्त पारिश्रमिक या कम पीरियड देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(vi) स्कूल के आदर्श एवं अभ्यास (School Ideals and Practices)—पाठ्य-सहायक क्रियाएं स्कूल के आदर्शों, अभ्यासो तथा समाज की आवश्यकताओ के अनुसार, सगठित की जानी चाहिए।

(vii) समुदाय को निमन्त्रण (Inviting Community)—इन क्रियाओ के उचित कार्यक्रम में बच्चो के अभिभावको तथा समुदाय के अन्य सदस्यो को निमन्त्रित किया जाना चाहिए।

(viii) स्वतन्त्रता एवं दायित्व (Freedom and Responsibility)—विद्यार्थियो को नियमित कार्यों की अपेक्षा इन क्रियाओ मे अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए और उन्हे अधिक दायित्व सौंपा जाना चाहिए।

(ix) अधिक वित्तीय बोझ नहीं (No Much Financial Burden)—इन क्रियाओ से विद्यार्थियो पर अत्यधिक वित्तीय बोझ नही पड़ना चाहिए।

(x) सन्तुलित महत्व (Balanced Stress)—फण्ड कुछ चुने हुए विद्यार्थियो (भाषणकर्ता, खिलाड़ी आदि) पर खर्च नही किये जाने चाहिए।

(xi) अनावश्यक व्यय नहीं (No Unnecessary Expenditure)—एक-एक पैसा न्यायसगत रूप से विद्यार्थियो के लिए खर्च किया जाना चाहिए। व्यर्थ तथा अनावश्यक व्यय से बचना चाहिए। कुछ मुख्याध्यापक सार्वजनिक समारोहो के आयोजन पर अतिथियो की आवभगत मे ही बहुत खर्च कर देते है।

(xii) दिखावा नहीं (No show work)—पाठ्य-सहायक क्रियाएँ केवल दिखावे के लिए आरम्भ नही की जानी चाहिए। कुछ मुख्याध्यापक केवल लोगो को दिखाने के लिए कुछ क्रियाओ को आरम्भ कर लेते है, यह उचित नही।

(xiii) परामर्शदाताओं के लिए प्रशिक्षण (Training to Advisers)—परामर्शदाताओ तथा सचालको को इन क्रियाओ के आयोजन तथा सचालन का कुछ प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए।

(xiv) मूल्यांकन (Evaluation)—इन क्रियाओ की उपयोगिता का समय-समय पर मूल्याकन भी होता रहना चाहिए।

पाठ्य-सहायक क्रियाओ के आयोजन एव सगठन का सार **सेकेण्डरी शिक्षा आयोग** (Secondary Education Commission) के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"इन क्रियाओ के आयोजन मे इस बात को याद रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ये इतनी विविध होनी चाहिए जितनी स्कूल के साधन आज्ञा दे। शैक्षिक क्रियाएँ, जैसे—तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श, नाटक, स्कूल पत्रिका सामाजिक क्रियाएँ, जैसे—स्कूल एव स्थानीय समुदाय के लिए विभिन्न समारोहो का सगठन, खेल, हस्त एव व्यावहारिक क्रियाएँ, समाज-सेवा, प्रोजेक्ट, कला प्रोजेक्ट आदि एक सवृद्ध एव एकात्मक ढाँचे मे बुने होने चाहिए ताकि प्रत्येक बालक अपनी रुचियो के अनुसार, उसमे कुछ प्राप्त कर सके। इन क्रियाओ—अकादमिक, सामाजिक, क्रियात्मक, खेल सम्बन्धी—के वास्तविक सचालन मे अध्यापक पायेगे कि उनमे किसी प्रकार की विभाजक सीमाएँ नही है। अत विभिन्न क्रियाओ के सयुक्त कार्यक्रम के आयोजन से न केवल विद्यार्थियो के समय तथा उनकी शक्ति के व्यर्थ अपव्यय को बचाया जा सकेगा बल्कि उनकी बौद्धिक शक्तियो को भी विकसित किया जा सकेगा और साथ-साथ उन्हे उच्च गुणो का प्रशिक्षण भी दिया जा सकेगा।"

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का अर्थ बताइये। पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का महत्व लिखिये।
2 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के प्रकार लिखिये।
3 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के संगठन के लिए निर्देशन सिद्धान्त बताइये।
4 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के विषय में आधुनिक धारणा क्या है ? संक्षेप में बताइये।
5 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के प्रशासन एवं निरीक्षण में किन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है
6 मैकॉन ने अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं के विकास के कौन-कौन से स्तर बताये है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के लक्ष्यों को संक्षेप में बताइये।
2 विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं को संगठित करने के क्या लाभ है ?
3 विद्यालय नियन्त्रण में छात्र सहयोग के क्या लाभ है ? स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ होती है—
(अ) सामूहिक ड्रिल (ब) बागवानी
(स) स्काउटिंग (द) उपर्युक्त सभी उत्तर –(

2 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का अन्य नाम है—
(अ) पाठ्य अतिरिक्त क्रियाएँ (ब) पाठ्य-सहायक क्रियाएँ
(स) समवायिक क्रियाएँ (द) उपर्युक्त सभी उत्तर –(

3 खेलकूद प्रदान करते है—
(अ) शारीरिक स्फूर्ति (ब) मानसिक स्फूर्ति
(स) उपर्युक्त दोनो (द) आलस्य उत्तर –(

अध्याय

25

विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम

[GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL]

शिक्षा का मानव जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि यह मानव को सामाजिक प्राणी, जीविकोपार्जन के योग्य, नैतिक मूल्यो के अनुरूप, व्यवहार करने तथा देश का एक योग्य और उत्पादक नागरिक बनाने का प्रयास करती है। देश मे शिक्षा प्रदान करने का कार्य मुख्यत औपचारिक साधनो, जैसे–विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालयो द्वारा किया जाता है। आज विद्यालयो मे छात्रो की बढ़ती सख्या, पाठ्यक्रम की विविधता, माता-पिता मे सामजस्य का अभाव, कम आयु मे नशीले पदार्थों का सेवन आदि समस्याएँ शिक्षण सस्थाओ मे निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता को बल प्रदान करती है। माता-पिता का बालको पर दबाव, परीक्षा का भय, गलत पाठ्यक्रम का चयन आदि के कारण हतोत्साहित होकर छात्रो द्वारा आत्महत्या करना उचित निर्देशन कार्यक्रम के अभाव का परिणाम ही है। ये तथ्य इस बात के प्रमाण है कि शिक्षण सस्थाओ मे अध्ययनरत बालको को उनके विकास मे सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से विद्यालयो मे निर्देशन कार्यक्रम की व्यवस्था करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

25.1 : विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम की अवधारणा (CONCEPT OF GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL)

किसी को अस्तित्व मे लाना ही सगठन या व्यवस्था कहलाता है। सगठन सीधे रूप मे व्यक्तियो द्वारा नियोजन और उनके द्वारा किये गये प्रयत्नो से जुड़ा होता है। सगठन प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्य और उद्देश्य को उपलब्ध करने का एक माध्यम है। वास्तव मे प्रशासन तो क्रियान्वयन स्तर से पूर्व की दशा है और योजना का क्रियान्वयन तो सगठन स्तर पर होता है। यह सगठन की रचना करने वाले व्यक्तियो के समूह की समन्वित क्रियाएँ है। सगठन दो प्रकार का होता है–औपचारिक और अनौपचारिक। औपचारिक सगठन वह है जो बाह्य प्रशासक द्वारा स्थापित होता है। ऐसे सगठन मे व्यक्तियो का पदासीन होना बाह्य प्रशासक के आदेश से सम्भव होता है। अनौपचारिक सगठन का उद्भव या तो औपचारिक सगठन से होता है या फिर समूह के पारस्परिक सम्बन्धो के कारण होता है। ऐसे सगठन मे सदस्यो के मध्य निकटता का सम्बन्ध होता है और प्रत्येक सदस्य परस्पर अन्त क्रिया के लिये स्वतत्र होता है। समूह की रचना स्वेच्छा से होती है। समूह मे किसी प्रकार का पदानुक्रम नही होता है। विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम उपर्युक्त दोनो प्रकार के सगठन प्रारूप के आधार पर प्रारम्भ किया जा सकता है। लेकिन विद्यालय मे

कर्मचारी और छात्रो की आवश्यकताओ के आधार पर द्वितीय प्रकार के कार्यक्रम संगठन को प्रथमतः
देना अधिक उचित होगा।

विद्यालयो मे निर्देशन कार्यक्रम को उपयोगी बनाने के लिये इसका सुसंगठित और व्यवस्थित
आवश्यक है। निर्देशन का महत्व जानते हुये भी हम लोग भारत मे निर्देशन कार्यक्रम को प्रारम्भ करने
असफल रहे है। यदि हम अपने देश मे विद्यालयो मे अध्ययनरत प्रत्येक छात्र को निर्देशन सहायता
उपलब्ध कराने का लक्ष्य बना ले तो निर्देशन कार्यक्रम को व्यवस्थित रूप देना होगा। निर्देशन कार्यक्रम
को प्रारम्भ करने का दायित्व किसी एक व्यक्ति का उत्तरदायित्व नही है। यह एक सामूहिक उत्तरदायित्व
है जिसमे विद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी का सम्मिलित होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे जोन्स
कथन उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है कि "निर्देशन को विद्यालय के सामान्य जीवन से पृथक न
किया जा सकता है, न इसको विद्यालय के किसी एक भाग मे केन्द्रित किया जा सकता है, न इसे
परामर्शदाता या प्रधानाचार्य के कार्यालय तक सीमित किया जा सकता है, क्योकि निर्देशन सहायता
कम या अधिक मात्रा मे देना विद्यालय के स्टॉफ के प्रत्येक सदस्य का उत्तरदायित्व और कर्तव्य है।
इस कार्यक्रम मे सभी का सहयोग होना तथा उसी प्रकार प्रशासित होना आवश्यक है।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का संगठन ऐसा हो जिसमे
कर्मचारियो का सहयोग प्राप्त हो सके। कार्यक्रम की सफलता उसमे सलग्न कर्मचारियो की स्वतः प्र
(Initiative), दूरदर्शिता (Foresight), दक्षता (Skill) पर निर्भर रहती है। निर्देशन कार्यक्रम के बा
क्रो और क्रो का सुझाव है कि यह अधिक दृढ़ संगठित रूप का न होकर इसमे लचीलापन होना चा
ताकि आवश्यकतानुसार इसमे परिवर्तन करना सम्भव हो सके। साथ ही उनका सुझाव है कि कार्यक्र
सभी सम्बन्धित व्यक्तियो का सहयोग होना चाहिये।

व्यवस्थित कार्यक्रम के लाभ

एक सुसंगठित तथा व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम अव्यवस्थित कार्यक्रम की अपेक्षा अधिक मित
और प्रभावशाली होता है। ऐसे कार्यक्रम मे सभी सम्बन्धित व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को नियमानुसार
करते है। **डाउनिंग** ने संगठित कार्यक्रम के लाभो का निम्न रूप मे उल्लेख किया है -

1. छात्रो की आवश्यकताओ का निर्धारण शुद्धतापूर्वक हो सकता है।
2. सभी क्रियाओ मे प्रभावशाली सामजस्य स्थापित हो सकता है।
3. ऐसे कार्यक्रम मे कम कर्मचारियो द्वारा लघु अवधि मे अधिक छात्रो को सहायता प्रदान की
सकती है।
4. प्रयासो या कार्यों की पुनरावृत्ति से बचा जा सकता है।
5. सभी कर्मचारियो के उत्तरदायित्वो को स्पष्ट किया जा सकता है।
6. संगठित अवस्था होने पर कुशल निर्देशन कर्मियो तथा अध्यापको की सेवाओ का अधिक
उठाया जा सकता है।
7. सुव्यवस्था मे स्रोतो तथा ससाधनो का अपव्यय बचता है तथा उपलब्ध सुविधाओ का
लाभ उठाया जा सकता है।
8. छात्र ऐसे कार्यक्रम के उद्देश्य और क्षेत्र से अवगत होते है।
9. जो कार्य सफलता के प्रति प्रतिबद्ध है, वह कर्मचारियो तथा छात्रो को अभिप्रेरणा एवं
नम रुचि पैदा करता है।
10. लक्ष्य प्राप्ति सुगम हो जाती है और कार्य सम्पन्न करना सरल हो जाता है।

25.2 : विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का स्वरूप (NATURE OF GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL)

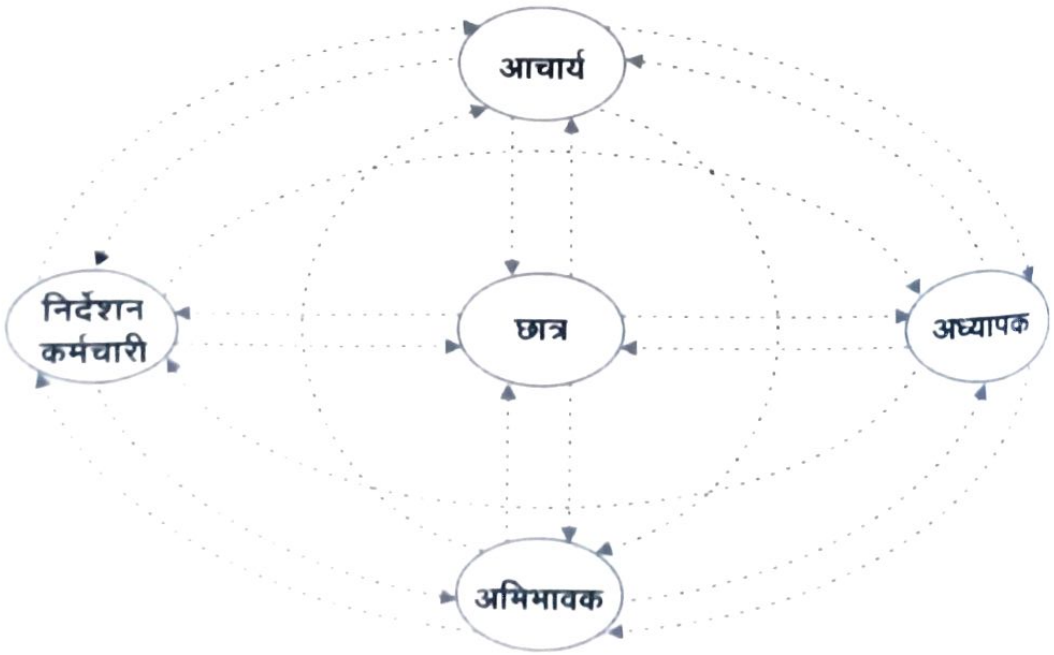
1. **शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग देना निर्देशन** का कार्य है। छात्र के विकास तथा समायोजन मे सहायता करना शिक्षा का उद्देश्य होता है। अध्यापक तथा निर्देशन-क्रियाएँ शिक्षा-प्रक्रिया का अन्तरग भाग होती है, परन्तु दोनो की विधियो मे अन्तर होता है। निर्देशन की परामर्श-प्रक्रिया मे व्यक्ति का एक ही व्यक्ति से सम्बन्ध होता है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर आधारित है। दोनो मे समानता यह है कि सामूहिक विधि का प्रयोग दोनो के द्वारा होता है।

2. **निर्देशन कार्यक्रम के लिये प्रशिक्षित व्यक्ति** होने चाहिये। व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम प्रशिक्षित व्यक्तियो को नेतृत्व करना चाहिये। यह विद्यालयो के रूप पर निर्भर रहता है कि कार्यक्रम कैसा हो। छोटे विद्यालयो मे एक ही प्रशिक्षित व्यक्ति हो सकता है जो अध्यापन कार्य भी पूर्ण करता हो। परन्तु बड़े विद्यालय मे परामर्शदाता होता है। इसका कार्य केवल निर्देशन-क्रियाओ तक सीमित होता है विद्यालय मे अध्यापन कार्य इसके द्वारा नही किया जाता है।

3. **कार्यक्रम के उद्देश्य निश्चित करना** प्रथम कार्य है, क्योकि उद्देश्यहीन कार्यक्रम कभी सफल नही होता है। निर्देशन सेवाएँ छात्रो की आवश्यकताओ को समझने तथा उनकी सन्तुष्टि मे सहायता करने के उद्देश्य से सगठित की जाती है। अत: निर्देशन सेवाओ का कार्यक्षेत्र निश्चित होना चाहिये।

4. **निर्देशन क्रिया निरन्तर चलती** रहनी चाहिए। छात्र के प्राथमिक विद्यालय मे प्रवेश लेने के समय से विश्वविद्यालयी शिक्षा तक निर्देशन सेवा छात्र को प्राप्त होनी चाहिये। निर्देशन सेवा केवल विद्यालयो तक सीमित नही रहती, बल्कि उन व्यक्तियो को भी प्राप्त होती है जो अध्ययन की समाप्ति पर आजीविकाओ मे नियुक्ति पाते है या सामाजिक सेवाओ मे लगते हैं।

5. **छात्रों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं और अध्यापकों की रुचियों** के ज्ञान पर निर्देशन कार्यक्रम आधारित होना चाहिये। बड़े विद्यालयो मे जहाँ छात्रो की सख्या अधिक होती है, निर्देशन कार्यक्रम का रूप छोटे विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम से भिन्न होता है। बड़े विद्यालय मे परामर्शदाता विद्यालय मनोवैज्ञानिक या निर्देशन-सचालक की अधिक आवश्यकता होगी।



6. **सफल निर्देशन कार्यक्रम में सामाजिक संस्थाओं**, माता-पिता आदि सभी का सहयोग प्राप्त
ना चाहिये। छात्रों की आवश्यकताओ को समझने के लिये स्वास्थ्य सेवा, परिवार कल्याण (Family
elfare), नैदानिक सेवाएँ (Clinical Services) आदि की सहायता आवश्यक होती है। माता पिता य
धाता (Employers) को भी कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने मे सहयोग देना चाहिये। छात्रो क
मझने मे इनसे उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त हो सकती है।

7. निर्देशन कार्यक्रम के सभी कार्य समन्वित होने चाहिये। इसमे प्रत्येक अध्यापक को स्वय क
मतानुसार सहयोग देना चाहिये। निर्देशन कार्यकर्ता का कर्तव्य है कि वह अन्य अध्यापको की सहायत
क करने का प्रयत्न करे। अध्यापको की रुचि के अनुसार, निर्देशन कार्य उनको दिया जाये।

25.3 : विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम को संगठित करने के सिद्धान्त (PRINCIPLES TO ORGANIZE GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL)

निर्देशन कार्यक्रम का सगठन करते समय कुछ सिद्धान्तो पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।
सिद्धान्त सभी प्रकार के निर्देशन सगठन के लिये उपयोगी रहते है। चाहे यह सगठन प्राथमिक विद्याल
ा उच्च कॉलेज-स्तर पर हो अथवा छोटे या बड़े विद्यालय का हो। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है—

1. **कार्यक्रम के उद्देश्य** (Purposes of the Programme)—कार्यक्रम बनाने से पहले
निश्चित करना चाहिये कि कार्यक्रम का लक्ष्य क्या होगा ? कार्यक्रम किन उद्देश्यो के पूर्ति के लि
गठित किया जा रहा है ? क्योकि उद्देश्यहीन कार्यक्रम कभी सफल नही होता है। निर्देशन कार्यक्र
त्रो की आवश्यकताओ को समझने तथा उनकी सन्तुष्टि मे सहायता करने के उद्देश्य से सगठित कि
ाता है। छात्रो की आवश्यकताओ पर उनके घर तथा पास-पड़ोस के वातावरण का प्रभाव पड़ता
र्देशन कार्यक्रम यह ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है कि कौन-कौन तत्व मिलकर छात्रो को प्रभावित करते

2. **कार्यक्रम के प्रयोजन** (Functions of the Programme)—उद्देश्य निश्चित कर लेने
न्त निर्देशन कार्यक्रम को सगठित करने का दूसरा सिद्धान्त कार्यक्रम के प्रयोजन निश्चित करना
क्रम के कार्यों का लक्ष्य उन निश्चित उद्देश्यो को प्राप्त करना होगा। निर्देशन कार्यक्रम स्थिर
ता है। यह भी समय तथा परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। हमारे देश मे स्वतन्
त्र के बाद से अनेक परिवर्तन हो रहे है। नये उद्योग धन्धे देश मे स्थापित हो रहे है। ग्रामीण ज
ाय की ओर आकर्षित हो रही है। यातायात के मार्ग एव साधनो का विस्तार हो रहा है। इसके अनु
विद्यालयो मे निर्देशन के लक्ष्य तथा कार्य परिवर्तित होते रहते है। निर्देशन कार्यक्रम मे लचील
वश्य होना चाहिये।

3. **उत्तरदायित्व निश्चित करना** (Allocation of Responsibilities)—निर्देशन कार्यक्रम
क्रम बनाने के लिये सभी अध्यापको का सहयोग प्राप्त होना चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम मे अध्या
का सहयोग प्राप्त करने के लिये विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक की निर्देशन मे रुचि और योग्यता अ
ान लगाना आवश्यक होता है। क्योकि अध्यापको की रुचि एव योग्यताओ के आधार पर ही
त्तरदायित्व या कर्तव्य (Duties) दिया जाता है, प्रत्येक अध्यापक को अपने निर्देशन सम्बन्धी क
निर्देश होना चाहिये। ये कार्य अध्यापको की क्षमताओ के आधार पर होने चाहिये।

4. **निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन** (Evaluation of Programme)—निर्देशन कार्यक्रम
करने के बाद उसकी प्रगति तथा उपयुक्तता का मूल्याकन करना होता है। इस मूल्याकन का उद्देश्
ान करना होगा कि जिन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये कार्यक्रम सगठित किया गया, उसमे कहा
फलता प्राप्त हुई। मूल्याकन का दूसरा उद्देश्य यह देखना है कि कार्यक्रम समय के अनुकूल है
ार्यक्रम व्यवस्था, छात्रो की आवश्यकताओ एव निर्देशन विधियो मे निरन्तर परिवर्तन

भी सदैव परिवर्तित होता रहता है। निर्देशन कार्यकर्ता को इन परिवर्तनो के प्रति सजग रहना चाहिये जिससे कार्यक्रम मे आवश्यकतानुसार नवीन परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तन कर सके।

25.4 : विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार (TYPES OF ORGANIZATION IN SCHOOL)

विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का सगठन किस प्रकार का होना चाहिये ? यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। निर्देशन कार्यक्रम का रूप निम्नलिखित बातो पर निर्भर होगा—

1. **विद्यालय स्तर** (School Level)—प्राथमिक विद्यालय पर निर्देशन कार्यक्रम का सगठन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के कार्यक्रम सगठन से भिन्न होगा। प्राथमिक विद्यालय मे छात्रो की सख्या कम होती है। इन छात्रो की आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ भी कम होती है। अत इस स्तर पर किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नही होती है, कक्षाध्यापक ही इस कार्य को सम्पन्न करता है। इसके विपरीत उच्चतर माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाओ का निश्चित सगठित रूप होता है। कार्य की अधिकता एव किशोर छात्रो की आवश्यकताओ तथा समस्याओ के आधिक्य से निर्देशन कार्यक्रम के व्यवस्थित एव सगठित रूप की आवश्यकता बढ़ जाती है।

2. **विद्यालय का आकार** (Size of the School)—निर्देशन सेवाओ का रूप विद्यालय के आकार पर भी निर्भर रहता है। छोटे विद्यालय मे अधिक विशेषज्ञो की आवश्यकता नही होती है। प्रधानाचार्य तथा अध्यापक ही निर्देशन कार्यक्रम मे भाग लेते है। बड़े विद्यालयो मे निर्देशन सेवाओ का व्यवस्थित रूप होता है। पृथक् निर्देशन विभाग होता है। विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते है। अध्यापको के सहयोग से ये अपने कार्यों को पूर्ण करते है।

3. **प्राप्त सुविधाएँ** (Available Facilities)—विद्यालय मे अगर अधिक सुविधाएँ प्राप्त है जैसे—निर्देशन कार्यालय के लिये पृथक् भवन एव साज-सामान, तो निर्देशन कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से चल सकता है। गाँवो तथा नगरो के विद्यालयो में निर्देशन सेवाओ के रूप मे अन्तर होगा।

25.5 : अच्छे निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF A GOOD GUIDANCE PROGRAMME)

1. **निर्देशन कार्यक्रम को व्यक्ति की सहायता उसका अधिक-से-अधिक विकास करने में करनी चाहिये** उसकी क्षमताओ का विकास इस प्रकार का हो जो कि समाज के लिये हितकर हो। छात्र समाज का ही एक अग होता है। उसको सामाजिक प्राणी बनाना शिक्षा का उद्देश्य होता है। एक सुयोग्य नागरिक बनाकर उसको समाज का उपयोगी सदस्य बनाने मे निर्देशन कार्यक्रम को सहायता करनी चाहिये।

2. **निर्देशन कार्यक्रम सभी व्यक्तियों को उपलब्ध होना चाहिये।** लोकतन्त्रीय देश मे प्रत्येक बालक निर्देशन सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है। अत केवल उन छात्रो को ही निर्देशन सहायता प्रदान की जाये जो अधिक उद्दण्ड या झगड़ालू होते है। सामान्यत आजकल विद्यालयो के अध्यापक शान्त या विचारो मे मग्न रहने वाले छात्रो पर विशेष ध्यान नही देते। उनका ध्यान उन छात्रो पर अधिक रहता है जो अनुशासनहीन है या विद्यालय छोड़कर भाग जाते है। अध्यापको तथा निर्देशन कार्यकर्ताओं को सभी छात्रो पर ध्यान देना चाहिये।

3. **निर्देशन कार्यक्रम छात्र केन्द्रित** (Client-centered) **होना चाहिये।** जैसे वर्तमान समाज में बालक-केन्द्रित शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता है, उसी प्रकार निर्देशन कार्यक्रम मे परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर अधिक ध्यान देना चाहिये। परामर्श-प्रक्रिया मे एक दोष यह पाया जाता है कि परामर्शदाता अधिक बाते करता है। इसी प्रकार साक्षात्कार करते समय साक्षात्कारकर्ता छात्र को अधिक

बोलने का अवसर नही देता है। छात्र को बोलने का अधिक समय दिया जाना चाहिये, तभी वह अप
विचारो तथा समस्याओ को स्पष्ट कर सकेगा। निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य छात्र को स्वय
योजनाओ की उन्नति तथा सफलता प्राप्त करने मे उसकी सहायता करना है।

4. **छात्र** (Client) **को ही अन्तिम निर्णय करने का अवसर निर्देशन कार्यक्रम मे दिया** जाय
यह प्रजातन्त्र की एक विशेषता भी है कि व्यक्ति को स्वय निर्णय करने दिया जाये। उस पर किसी प्रक
का दबाव न डाला जाये। इसी प्रकार निर्देशन कार्यक्रम मे निर्देशन प्रक्रिया को जनतन्त्रात्मक बनाने
लिये आवश्यक है कि निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अन्तिम निर्णय करने के लिये स्वतन्त्र छो
जाये।

5. **निर्देशन कार्यक्रम में विद्यालय के सभी कर्मचारियों को अपनी योग्यतानुसार निर्देशन**
उत्तरदायित्व लेना चाहिये। विद्यालय मे प्रत्येक अध्यापक परामर्शदाता, स्वास्थ्य अधिकारी, पुस्तकालयाध्य
आदि सभी व्यक्ति किसी-न-किसी रूप मे निर्देशन कार्य को करते है, चाहे यह कार्य विचारपूर्वक कि
जाये या नही। बहुत-से अध्यापक छात्रो को सुझाव देकर ही निर्देशन कार्य को पूरा करते है। सभी
कुशल निर्देशक बनने का प्रयत्न करना चाहिये। व्यवस्थित निर्देशन का भार प्रशिक्षित एव अनुभ
व्यक्तियों को ही देना चाहिये। प्रधानाध्यापक को निर्देशन कार्यक्रम की उचित व्यवस्था करने मे सहय
देना चाहिये।

6. **निर्देशन कार्यक्रम में संलग्न व्यक्तियों को अपनी योग्यता एवं ज्ञान बढ़ाने का अवसर ढूँ**
चाहिये। निर्देशन के क्षेत्र मे प्रति वर्ष नई विधियाँ निकलती रहती है। कुछ विधियो मे परिवर्तन होते
है। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे अनुसन्धान कार्य से नवीन सिद्धान्त प्रतिवर्ष प्रतिपादित होते है। प्रतिवर्ष न
शोधाये बनती है। इन सभी का ज्ञान निर्देशन कार्यकर्ताओं को होना चाहिये।

7. **निर्देशन कार्यकर्ताओं का चयन, उनकी योग्यता, अनुभव तथा प्रशिक्षण के आधार**
करना चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम मे सम्पूर्ण कार्य अध्यापको द्वारा सम्पन्न नही किया जा सकता
विशिष्ट कार्यों के लिये निर्देशन क्षेत्र मे विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियो की नियुक्ति करनी चाहिये।

8. **निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशन कार्यकर्ता को निर्देशन देते समय विभिन्न विधियों का प्र**
करना चाहिये। एक विधि की सहायता से वह छात्रो के सम्बन्ध मे विश्वसनीय सूचनाएँ ज्ञात नही
सकता है। एक कुशल निर्देशन भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के लिये भिन्न-भिन्न निर्देशन विधियाँ उपयोग मे
है। कभी-कभी वह एक ही व्यक्ति पर विभिन्न विधियो को विभिन्न समय तथा विभिन्न परिस्थितियो मे प्र
करता है।

9. **गोपनीय** (Confidential)—सूचनाएँ गुप्त रखनी चाहिये। परामर्शदाता का यह प्रथम क
है कि वह छात्र को विश्वास दिलाये कि उसके द्वारा वर्णित सभी तथ्य गुप्त रखे जायेगे। ऐसा विश्वास
पर ही वह सत्य सूचनाएँ देगा। परामर्शदाता को दो प्रकार की फाइल रखनी चाहिये। एक मे उसे सा
सूचनाएँ अकित करनी चाहिये और दूसरी फाइल मे छात्र से सम्बन्धित गुप्त सूचनाओ का आलेख र
चाहिये। गुप्त सूचनाओ की फाइल केवल परामर्शदाता को ही प्राप्त होगी।

10. **निर्देशन कार्यक्रम का आवश्यक अंग संकलित आलेख-पत्र की पर्याप्त व्यवस्था** रख
जिस प्रकार चिकित्सक रोगी का पूर्ण आलेख रखता है, ठीक उसी प्रकार निर्देशन को प्रत्येक छा
सकलित आलेख पत्र रखना चाहिये। यह आलेख छात्र के विद्यालय मे प्रवेश लेने के समय से ही लि
आरम्भ कर देना उत्तम रहता है। परामर्शदाता या अध्यापक को अपनी स्मृति पर निर्भर नही
चाहिये।

11. **विद्यालय के बजट में ही निर्देशन कार्यक्रम को स्थान मिलना चाहिये।** यह निर्विवाद
कि निर्देशन कार्यक्रम विद्यालय की क्रियाओं का एक अभिन्न (Integral) अग है। इस कार्यक्रम को
चलाने के लिये पर्याप्त मात्रा मे धनराशि मिलनी चाहिये।

12. **एक ही प्रकार का निर्देशन कार्यक्रम सभी विद्यालयों में सफल हो सके यह आवश्यक** है। सभी विद्यालयो की परिस्थितियो मे भिन्नता होती है। निर्देशन-कार्यक्रम का आधार छात्र आवश्यकताएँ विद्यालय की परिस्थितियाँ, समाज की स्वीकृति आदि होती है। कार्यक्रम को उपयोगी बनाने के लिये आवश्यक है कि यह स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल हो।

13. **निर्देशन कार्यक्रम मे परामर्श प्रक्रिया एवं परीक्षण के लिये तथा आलेख-पत्र रखने के लिये पर्याप्त स्थान भी होना चाहिये।** निर्देशन कार्यालय विद्यालयो मे ऐसे स्थान पर स्थापित किय जहाँ शान्ति रहती हो। परामर्श-प्रक्रिया के लिये गुप्त स्थान होना चाहिये।

14. **निर्देशन कार्यकर्ताओं को निर्देशन सहायता देने के लिये पर्याप्त समय मिलना** चाहि निर्देशको को परीक्षा लेने, परामर्श देने के लिये अधिक समय की आवश्यकता होती है। प्रधानाचार्य समय चक्र आदि बनाते समय निर्देशन के लिये समय पर भी ध्यान देना चाहिये।

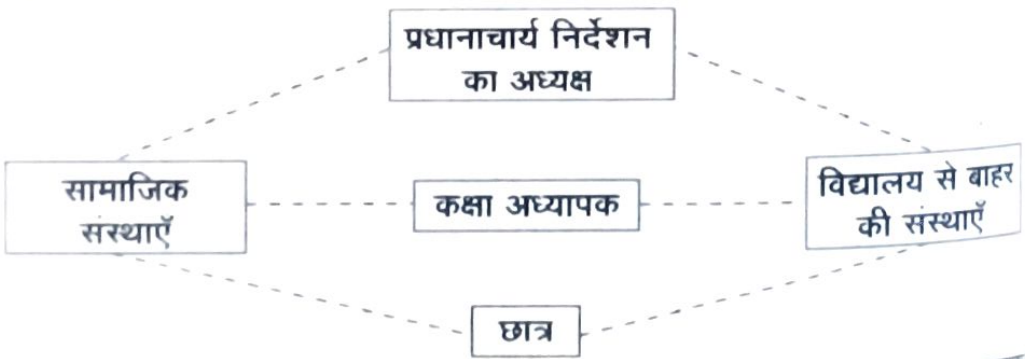
15. **उचित निर्देशक-सामग्री भी निर्देशन कार्यकर्ताओं को प्राप्त होनी चाहिये।** जब उनको विभिन्न प्रकार की परीक्षाये (Tests) प्राप्त नही होती है तो छात्रो की रुचियाँ, बुद्धि, अभियोग्यता आदि के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त नही किया जा सकता है।

16. **निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये समाज की अन्य निर्देशन एजेन्सियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये।** विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का सम्बन्ध रोजगार कार्यालय, व्यापारि संस्थाओ तथा राजकीय निर्देशन कार्यालय से होना चाहिये।

25.6 : विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन
(ORGANIZING OF GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL)

यहाँ पर शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर निर्देशन-व्यवस्था का रूप दिया जायेगा। एक बात ध्यान दे योग्य है कि कोई निर्देशन व्यवस्था सभी विद्यालय मे उपयोगी नही हो सकती है। अत इसमे लचीलापन होना आवश्यक है जिसमे विद्यालय की आवश्यकताओ तथा आर्थिक साधनो के अनुरूप परिवर्तन किया जा सके।

1. **प्रारम्भिक विद्यालयों का निर्देशन कार्यक्रम** (Organisation of Guidance Programme at Primary School Level)—प्राथमिक विद्यालयो मे अध्ययन करने वाले बालको की समस्याएँ कम होती है एव अधिक गम्भीर भी नही होती है। अत इस स्तर पर निर्देशन कार्य अध्यापक ही सम्पन्न करता है, किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नही होती है। निम्न रेखाचित्र प्राथमिक विद्यालय पर निर्देशन-व्यवस्था को स्पष्ट करता है।



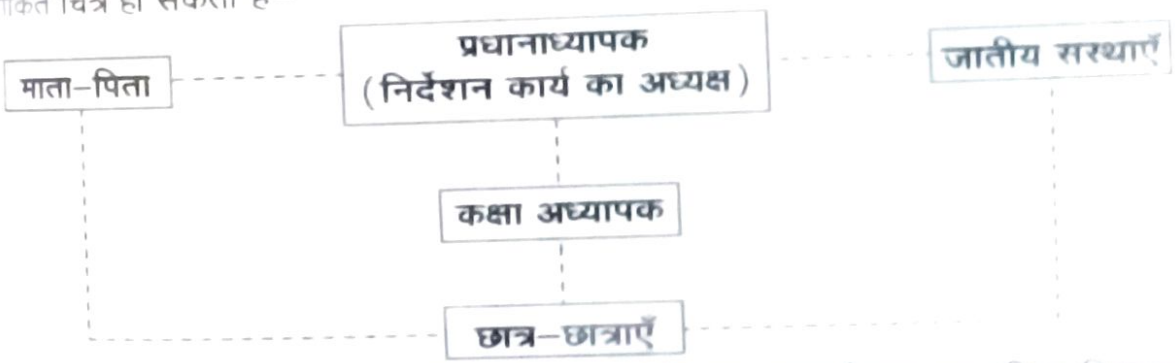
प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का प्रशासन विद्यालय के हाथो मे होता है। कक्षाध्यापक छात्रो के अधिक सम्पर्क मे रहता है। अत वह उनकी समस्याओ को भी भली-भाँति समझता है। निर्देशन कार्य को पूर्ण करने के लिये अध्यापक एव प्रधानाचार्य सामजिक सस्थाओ एव विद्यालय के बाहर की संस्थाओं

की सहायता भी लेते है। माता-पिता, चिकित्सक, उपस्थिति अधिकारी (Atendance Officer) आदि
यो का सहयोग प्राप्त करना होता है।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के प्रयोजन—प्राथमिक विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम
प्रयोजनलिखित प्रयोजन हो सकते है—

1. व्यक्तिगत छात्रो की आवश्यकताओ, समस्याओ एव गुणो का अवलोकन।
2. अवलोकित तथ्यो का सकलित आलेख-पत्र में लेखन करना।
3. उन छात्रो को पहचानना जो विद्यालय से बाहर की समस्याओ से ग्रसित होते है। उदाहरण
   लिये—
   (i) वे छात्र जो सामाजिक या सावेगिक समायोजन नही कर पाते।
   (ii) वे छात्र जो शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ से ग्रसित होते है। इनका ज्ञान साफल्य परी
   द्वारा होता है।
   (iii) कुछ छात्र अधिक या कम मानसिक योग्यता के कारण विद्यालय के नियमित कार्यक्र
   मे समायोजित नही हो पाते है। ऐसे छात्र बुद्धि-परीक्षा द्वारा ज्ञात किये जा सकते है
   (iv) कुछ छात्रो का स्वास्थ्य खराब होता है।
4. माता-पिता एव विद्यालय के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना।
5. उपस्थित अधिकारी के साथ सहयोग जिससे अधिक अनुपस्थित रहने वाले छात्रो का अध्य
   हो सके।
6. छात्र के विकास का निरन्तर मूल्याकन।
7. सभी अध्यापको का सहयोग।

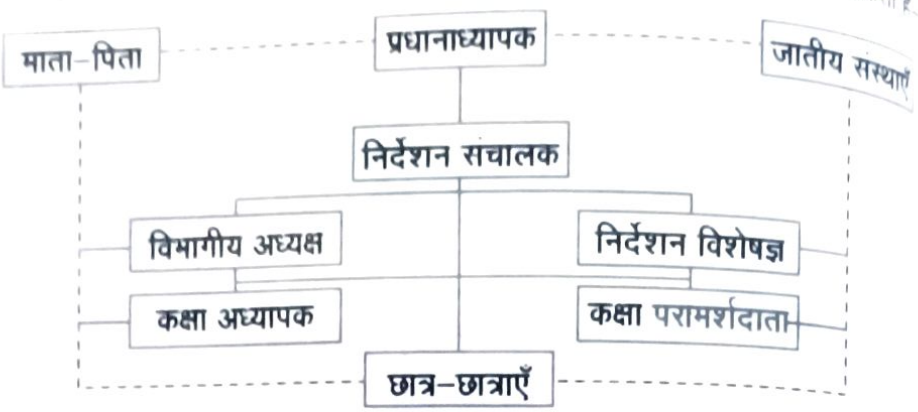
2. **माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन-व्यवस्था** (Organisation of Guidance in a H
School)—प्राथमिक विद्यालयो की अपेक्षा माध्यमिक विद्यालय मे निर्देशन-व्यवस्था निश्चित रूप धा
कर लेती है। इस स्तर पर सगठन कुछ जटिल हो जाता है। माध्यमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था
निम्नांकित चित्र हो सकता है—



उपर्युक्त रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है कि निर्देशन समिति एव परामर्शदाता माध्यमिक विद्यालय
निर्देशन कार्य मे प्रधानाचार्य की सहायता करते है। अध्यापक के माता पिता एव निर्देशन समिति
सम्पर्क स्थापित करना होता है। परामर्शदाता मुख्य व्यक्ति होता है जो निर्देशन कार्य मे केन्द्रीय
प्राप्त करता है।

3. **उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन-व्यवस्था** (Organisation of Guidance
Higher Secondary School)—माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के आधार पर भारत के
प्रान्तो मे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्थापित किये गये है। इन उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे
को मुख्यत निर्देशन सहायता की आवश्यकता है। इसी समय छात्र विभिन्न व्यवसायो के बारे मे ज्ञान
करना चाहते है या विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त करने के लिये कॉलेजो या विश्वविद्यालय के सम्ब

सूचना प्राप्त करना चाहते है। अत इन विद्यालयो मे निर्देशन क्रियाओ एव निर्देशन कर्मचारि अधिकता होती है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे निर्देशन-व्यवस्था का निम्न रूप हो सकता है



उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे प्रधानाचार्य पर कार्य-भार अधिक होने से वह निर्देशन विभाग पर विशेष ध्यान नही दे पाता है। अत निर्देशन कार्य के सगठन का काम निर्देशन-सचालक को सौप दे है। निर्देशन कार्य मे कक्षाध्यापक, कक्षा-परामर्शदाता आदि सभी सहयोग देते है। इस स्तर पर विशेषज्ञ की विशेष रूप से आवश्यकता होती है।

25.7 : विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का महत्व (IMPORTANCE OF GUIDANCE PROGRAMME IN SCHOOL)

25.7.1 निर्देशन कर्मचारियों के उत्तरदायित्व का महत्व (Importance of Responsibilities of Guidance Personnel)

निर्देशन कार्य की सफलता निर्देशन कर्मचारियो पर निर्भर रहती है। निर्देशन कर्मचारियो क परस्पर सहयोग से सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिये। किसी भी कार्यक्रम की सफलता, उसमे सलग्न कर्मचारियो के सयुक्त प्रयत्नो पर निर्भर रहती है। निर्देशन कर्मचारियो की सख्या, निर्देशन सेवाओ क सगठन की योजना द्वारा निर्धारित होती है। इसमे दो प्रकार के कर्मचारी होते है–

1 सामान्य कर्मचारी (The Generalists),

2 विशेषज्ञ (The Specialists).

1. सामान्य कर्मचारी–इसमे वे कर्मचारी आते है जो विद्यालय की निर्देशन-सेवा का निरीक्षण करते है। विद्यालय मे इस प्रकार के प्रबन्धक या निरीक्षक मुख्यत निम्नलिखित होते है–

(i) अधीक्षक (Superintendent),

(ii) सहायक अधीक्षक (Assistant Superintendent),

(iii) प्रधानाचार्य (Principal).

जिस विद्यालय मे निर्देशन-सचालक होता है, वहाँ का प्रधानाचार्य निर्देशन-सेवाओ का कार्य सचालक को सौप देता है। सामान्य कर्मचारी एक योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति होना चाहिये। सामान्य कर्मचारी को निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर कार्य करना चाहिये–

1 सामान्य कर्मचारी को विद्यालय के सभी अध्यापको से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। छात्रो से भी सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

2 सामान्य कर्मचारी को निर्देशन-सेवाओ के सिद्धान्तो का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इसी ज्ञान के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम मे अधिक सहयोग देने की आशा सामान्य कर्मचारी से की जा सकती है

3 निर्देशन-व्यवस्था में **विशेषज्ञ** भी अपना उत्तरदायित्व पूरा करते है। सामान्य कर्मचारियो का यह कर्तव्य है कि वे विशेषज्ञो को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करे।

2. **विशेषज्ञ**—विशेषज्ञ वे व्यक्ति होते है जो निर्देशन कार्य का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किये होते है। इनमे निर्देशन-सचालक, परामर्शदाता, विद्यालय मनोवैज्ञानिक आदि विशेष कर्मचारी होते है। इन सभी को अपने क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

निर्देशन-व्यवस्था मे निम्नलिखित कर्मचारी सलग्न रहते है–

(1) प्रधानाचार्य (Principal), (2) निर्देशन सचालक (Director)
(3) परामर्शदाता (Counsellor), (4) अध्यापक (Teacher)
(5) कक्षाध्यापक (Class-room Teacher), (6) मनोवैज्ञानिक (Psychologist)
(7) स्वास्थ्य विशेषज्ञ (Health Specialist)

इनमे से प्रत्येक के कार्य एव उत्तरदायित्व का वर्णन निम्न प्रकार है–

25.7.2 प्रधानाचार्य के निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का महत्व (Importance of Responsibilities Related to Headmaster Guidance)

विद्यालय मे प्रधानाचार्य को प्रमुख स्थान प्राप्त है। **पी. सी. रेन** ने विद्यालय मे प्रधानाध्यापक के स्थान के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विचार प्रकट किये है–**"घडी में प्रधान कमानी, मशीन में प्रचक्र या जलयान में यन्त्रीकरण को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान किसी भी विद्यालय मे प्रधानाचार्य का है।"**[1]

प्रधानाचार्य की योग्यता, सूक्ष्म एव प्रशासकीय क्षमता पर ही विद्यालय की प्रगति निर्भर करती है। निर्देशन प्रक्रिया शिक्षा का आवश्यक अग स्वीकार की गयी है। अत प्रधानाचार्य का नेतृत्व इस क्षेत्र मे प्राप्त होना चाहिये। विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रशासकीय प्रधान प्रधानाचार्य ही होता है। कार्यभार अधिक होने से वह निर्देशन कार्यक्रम का भार किसी योग्य अध्यापक को सौप सकता है परन्तु वह अपने **नेतृत्व** एव **समर्थन** को किसी अन्य को नही सौप सकता है प्रधानाचार्य को चाहिये कि अपने सभी अध्यापको को निर्देशन कार्य के लिये प्रोत्साहित करे एव सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करे।

प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी उत्तरदायित्व—प्रधानाचार्य विद्यालय का प्रमुख अधिकारी होता है। अत सामान्यत वह विद्यालय की समस्त क्रियाओ को सफलतापूर्वक करने के लिये उत्तरदायी होता है। निर्देशन कार्यक्रम विद्यालय का ही अभिन्न अग है। इसलिये, निर्देशन कार्यक्रम के प्रति प्रधानाचार्य के उत्तरदायित्व का वर्णन यहाँ किया जायेगा, यथा–

1 निर्देशन-सेवाओ के सगठन मे नेतृत्व प्रदान करना।

2 अपने विद्यालय के अध्यापको को निर्देशन का महत्व, प्रयोजन एव समस्याओ को समझने मे सहायता देना।

3 योग्य निर्देशन कर्मचारियो की नियुक्ति एव कार्य वितरण करना।

4 निर्देशन क्रियाओ का निरीक्षण करना।

5 अध्यापको एव निर्देशन कर्मचारियो को नौकरी के समय प्रशिक्षण (Inservice Training) की सुविधा प्रदान करना।

6 निर्देशन कमेटी का निर्माण करना।

7 निर्देशन कार्य के लिये पर्याप्त समय प्रदान करना।

---

1 "What the main spring is to the watch, the flywheel to the machine or the engine to the steamship, the headmaster is to the school" **Wren P. C**

8. निर्देशन कार्यक्रम के लिये धन देना।

9. परामर्श सेवा के लिये अच्छे भवन का प्रबन्ध।

10. निर्देशन कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्याकन अध्यापको के सहयोग से करना।

11. बालको के माता-पिता को निर्देशन सेवाओ से परिचित रखना।

प्रधानाचार्य का महत्व '**शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन पत्रिका**' मे भी स्पष्ट किया गया है-

"**प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य व्यक्ति** (Key man) **होता है। उसको उसके उद्देश्यों के साथ सहानुभूति रखनी चाहिये तथा अपनी हार्दिक सहायता प्रदान करनी चाहिये।**"[1]

प्रत्येक विद्यालय मे प्रधानाचार्य को आज की परिवर्तित परिस्थितियो मे निर्देशन की आवश्यकता अनुभव करनी चाहिये। इसके उपलब्ध साधनो के आधार पर उसको निर्देशन कार्यक्रम की योजना बनानी चाहिये।

प्रधानाचार्य को विद्यालय मे एक निर्देशन समिति बनानी चाहिये। प्रधानाचार्य स्वय इस समिति का प्रधान रहेगा। सभी सदस्य मिलकर निर्देशन क्रियाएँ निश्चित करेगे। समय-समय पर यह समिति मूल्याकन द्वारा निर्देशन क्रिया की उपयुक्तता (Worthwhileness) निश्चित करेगी। निर्देशन समिति के सदस्यो का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिये। उन अध्यापको को ही समिति का सदस्य बनाया जाये जो निर्देशन मे कुछ रुचि तथा योग्यता रखते हो।

अध्यापको को निर्देशन कार्य का प्रशिक्षण देने के लिये प्रधानाचार्य को सेवा कालीन शिक्षा (Inservice Education) का आयोजन करना चाहिये। इस कार्य के लिये विभागीय मीटिंग करनी चाहिये। इसमे किसी योग्य व्यक्ति को आमन्त्रित किया जा सकता है जो निर्देशन के क्षेत्र मे ज्ञान रखता हो। विद्यालयो मे ही अध्यापको के लिये अशकालीन पाठ्यक्रम सगठित किये जाये।

प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व है कि निर्देशन कार्यक्रम के लिये सभी सुविधाएँ उपलब्ध करे। निर्देशन कार्यालय की व्यवस्था करे। उसके लिये पर्याप्त फर्नीचर प्रदान करे। सभी प्रकार की सामग्री खरीदने के लिये पर्याप्त धन जुटाये। भारत मे धनाभाव के कारण सभी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त नही हो पाती है।

अध्यापको को निर्देशन कार्य का उत्तरदायित्व देते समय उनके कार्यभार पर ध्यान दिया जाये। जिन अध्यापको को निर्देशन कार्य सौपा जाये, उनको शिक्षण कार्य कम दिया जाये। छात्रो तथा अध्यापको के समय-चक्र मे कुछ घण्टे खाली रखे जाये जिससे वे निर्देशन सुविधाओ का लाभ उठा सके।

प्रधानाचार्य को विद्यालय कार्य की भाँति निर्देशन-क्रियाओ का भी निरीक्षण करना चाहिये। परामर्शदाता के सुझावो के अनुसार, पाठ्यक्रम आदि मे परिवर्तन के लिये तैयार रहना चाहिये।

25.7.3 निर्देशन-संचालक के उत्तरदायित्वों का महत्व (Importance of Responsibilities of the Director)

विद्यालय मे निर्देशन की विभिन्न सेवाएँ कार्य करती है। निर्देशन-कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिये आवश्यक है कि विभिन्न सेवाएँ निर्देशन सचालक द्वारा समन्वित कर दी जाये। सचालक के निम्नलिखित उत्तरदायित्व होते है–

1. प्रधानाचार्य की स्वीकृति एव अपने अध्यापक-मण्डल के सहयोग से सचालक निर्देशन नीतियाँ स्थापित करता है।

---

1. The principal or the headmaster is the keyman of the guidance programme with in his school. He must be in sympathy with its purposes and give it his whole hearted support."
Manual of Educational and Vocational Guidance

2 निर्देशन कार्यक्रम की क्रियाओं से अध्यापकों को परिचित रखना है।

3 समायोजन की कठिन समस्याओं को सुलझाने में वह अध्यापकों की सहायता करता है।

4 निर्देशन क्रियाओं का निरीक्षण करना भी सचालक का कार्य है।

5 वह सामाजिक सस्थाओं एव विद्यालय के मध्य एक मध्यस्थ का कार्य करता है।

6 वह छात्रों के माता-पिता से सम्पर्क स्थापित करता है, बालकों की समस्याओं के सम्बन्ध में माता-पिता से बातचीत करता है।

7 सचालक को निर्देशन कार्यक्रम की प्रगति में अपना नेतृत्व प्रदान करना होता है।

25.7.4 परामर्शदाता के कार्य (Functions of Counsellor)

प्रत्येक विद्यालय में परामर्शदाता होता है। परामर्श देने के लिये या तो अध्यापकों को प्रशिक्षण दिलवा दिया जाता है या परामर्श-विशेषज्ञ की नियुक्ति की जाती है। परामर्शदाता के कार्य निम्नलिखित होते हैं–

1 नवीन कक्षाध्यापक एव अन्य विद्यालय कर्मचारियों को निर्देशन कार्यक्रम का ज्ञान देना।

2 विद्यालय, गृह एव समाज के मध्य सम्बन्ध विकसित करने में सहायता देना।

3 छात्रों की मनोवैज्ञानिक जाँच करना।

4 विद्यालयों से विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करना तथा उपलब्ध कराना।

5 विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएँ देना।

6 छात्रों को स्वय समझने तथा भविष्य की योजना बनाने में सहायता देना।

7 विद्यालय के आलेखों की व्याख्या करना, जिससे छात्र परिचित नहीं होते हैं।

8 विद्यालय के साथ घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखना।

9 उन अध्यापकों की सहायता करना जिनकी कक्षा में समस्यात्मक छात्र होते हैं।

10 युवकों को विभिन्न जीविकाओं में प्रस्थापना करने में युवक-नियोक्ता सेवाओं (Youth Employment Services) की सहायता करना।

11 निर्देशन सेवाओं का फल ज्ञात करने के लिये निर्देशित छात्र का उत्तरोत्तर अध्ययन करना।

12 माता-पिता की मीटिंग करना, उनसे सम्पर्क बनाये रखना।

13 छात्रों को यथार्थ स्थिति का अध्ययन कराने के लिये भ्रमणादि का आयोजन रखना।

14 सामूहिक निर्देशन का प्रबन्ध करना जिससे सामाजिक समायोजन को प्रोत्साहन दिया जा सके।

15 विद्यालय की विभिन्न समितियों में रुचि दिखाना।

16 छात्रों की योग्यताओं, रुचियों, अभियोग्यताओं एव शारीरिक गुणों का वस्तुनिष्ठ मापन करना।

17 छात्र के घर के परिवेश, आर्थिक स्तर एव व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न अगों का ज्ञान प्राप्त करना।

18 सावेगिक कठिनाइयों के प्रति सचेत रहना। ऐसे छात्रों को विशेषज्ञों के पास भेजना।

19 छात्रों को परीक्षाफलों से परिचित कराना।

20 छात्रों में स्वत प्रेरणा और स्वतन्त्रता विकसित करने का प्रयत्न करना जिससे वे आत्मनिर्देशन में प्रगति कर सकें।

परामर्शदाता के आवश्यक गुण—परामर्शदाता के कार्यों का अध्ययन स्पष्ट करता है कि निर्देशन कार्यक्रम का प्रमुख व्यक्ति यही है। **रूथ स्ट्रेंग** ने परामर्शदाता के महत्व को स्पष्ट करते हुये कहा है—

"परामर्शदाता एक माली की भाँति है, जो मिट्टी तैयार करता है तथा प्रत्येक पौधे को स्वा उगने में सहायता करने के लिये प्रत्येक कार्य करने को उत्साहित रहता है।"[1]

परामर्शदाता को कार्यकुशल व्यक्ति बनने के लिये निम्नलिखित गुणों से युक्त होना चाहिये—

1 बौद्धिक क्षमता अधिक मात्रा में होनी चाहिये।
2 व्यक्तियों का सहानुभूतिपूर्ण एवं वैषयिक ज्ञान।
3 विस्तृत सामान्य ज्ञान और विस्तृत रुचियाँ।
4 स्थिर एवं भली-भाँति समायोजित व्यक्तित्व।
5 सामाजिक और आर्थिक दशाओं एवं उनके प्रभाव का ज्ञान।
6 छात्रों एवं साथी कर्मचारियों को प्रेरणा देने की योग्यता।
7 व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता।
8 कक्षा की परिस्थितियों और शिक्षण के उत्तरदायित्वों का ज्ञान।
9 व्यवसाय का कार्य करने की शर्तों का ज्ञान।
10 अन्य व्यक्तियों के साथ सहकारिता के आधार पर कार्य करने की योग्यता।

एक अच्छे परामर्शदाता में अधोलिखित गुण होने चाहिए—

1. माता-पिता के साथ कार्य करने के लिये आवश्यक गुण—

(i) माता-पिता का विश्वास प्राप्त करने की योग्यता।
(ii) उनसे सम्मान प्राप्त करने की क्षमता।
(iii) छात्रों की समायोजन की समस्याओं के समाधान में माता-पिता का सहयोग प्राप्त करना।
(iv) माता-पिता का सम्मेलन संगठित करने की योग्यता।

2. छात्रों के साथ कार्य करने के लिये आवश्यक गुण—

(i) छात्रों की समूह परीक्षाएँ लेने की योग्यता।
(ii) छात्रों को सूचनाएँ प्रदान करने के लिये विभिन्न स्रोतों से सूचनाएँ संगृहीत करना।
(iii) छात्रों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की योग्यता।
(iv) समाजमिति बनाने एवं व्याख्या करने की योग्यता।
(v) छात्रों को परामर्श देने की क्रिया का ज्ञान।
(vi) छात्रों का साक्षात्कार लेने की योग्यता।

3. समाज के साथ कार्य करने के लिये आवश्यक गुण—

(i) सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने की योग्यता।
(ii) नियोक्ताओं के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता।
(iii) निर्देशन कार्यक्रम के लिये समाज की सहायता प्राप्त करने की योग्यता।
(iv) सामाजिक सेवाओं की सहायता प्राप्त करने की योग्यता।

4. अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करने के लिये आवश्यक गुण—

(i) निर्देशन समिति में नेतृत्व करने की योग्यता।

---

1 "The counseller is like a gardner who prepares the soil and does everything he can to help each plant grow in its own best way" **Ruth strang**

(ii) प्रधानाचार्य एवं अध्यापकों का विश्वास प्राप्त करना।

(iii) सेवाकालीन कार्यक्रम संगठित करना।

(iv) पुस्तकालयाध्यक्ष का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।

5. **कार्यक्रम का नेता बनने के गुण**—यह गुण भी परामर्शदाता में होने चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम की क्रियाओं एवं **निर्देशन कार्यक्रम** के संगठित रूप का ज्ञान होना चाहिये। उसको [illegible] का ज्ञान भी होना चाहिए।

25.7.5 अध्यापकों के निर्देशन कार्य (Guidance Functions of Teachers)

अध्यापक छात्रों के अधिक निकट सम्पर्क में आता है। वह छात्रों का अध्ययन [illegible] में करता है। अध्यापक को छात्रों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं का अच्छा ज्ञान होता है। [illegible] कार्य में अध्यापक अधिक सहयोग दे सकता है। अध्यापकों के अधोलिखित उत्तरदायित्व [illegible]

1 छात्रों के साथ अध्यापकों को **व्यक्तिगत सम्पर्क** स्थापित करना चाहिये।

2 छात्रों के अधिक विकास के लिये परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिये।

3 अध्यापकों को **कुसमायोजित छात्रों का पता** लगाना चाहिये।

4 अध्यापकों को छात्रों के **माता-पिता एवं सामाजिक संस्थाओं से** सम्बन्ध [illegible] चाहिये।

5 जिन छात्रों को सीखने में कठिनाई अनुभव होती है, वे परामर्शदाता के पास [illegible]

6 अध्यापकों को चाहिये कि छात्रों को **पुस्तकालय का उचित उपयोग** [illegible]

7 अध्यापक जिन छात्रों का **साक्षात्कार लेते हैं**, उनका प्रतिवेदन निर्देशन [illegible]

8 अध्यापक को **पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था** करने का [illegible] करना चाहिये।

9 अध्यापकों को अपने विषय से सम्बन्धित **जीविकाओं** एवं **शैक्षिक** अवसरों [illegible] को दे देनी चाहिये।

10 अध्यापकों को निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये प्रधानाचार्य एवं [illegible] अपना **पूर्ण सहयोग** देना चाहिये।

11 अध्यापक को छात्रों की परीक्षाएँ लेने में सहयोग देना चाहिये।

12 छात्रों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करके उनका अभिलेख तैयार करना।

13 छात्रों का कक्षा, पुस्तकालय, खेल के मैदान में अवलोकन करना।

14 समस्यात्मक बालकों की केस हिस्ट्री तैयार करना।

15 बालकों की अपनी उन्नति के स्वयं मूल्यांकन में सहायता करना।

16 छात्रों की रुचियों, अभियोग्यताओं और व्यक्तित्व के विकास में सहायता करना।

25.7.6 निर्देशन कार्यक्रम के संगठन में शिक्षक की भूमिका (Role of the Teacher in Organising Guidance Programme)

विद्यालय में निर्देशन कार्य को आयोजित करने में शिक्षक की भूमिका निम्नांकित बिन्दुओं में स्पष्ट है—

1 विद्यालय के अन्य शिक्षकों को निर्देशन का महत्त्व समझाकर उन्हें निर्देशन कार्य करने को प्रेरित करना।

2 प्रधानाचार्य को अध्यक्ष बनाकर निर्देशन समिति का अन्य सहयोगियो के साथ गठन करना

3 निर्देशन कार्यक्रम के लिये एक पृथक् कमरे की व्यवस्था करवाना तथा उसे साज सज्जित करवाना।

4 किसी विशेषज्ञ को आमत्रित करके छात्रो के समक्ष उसकी वार्ता का आयोजन करवाना।

5 छात्रो से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करने मे अन्य शिक्षको का सहयोग प्राप्त करना

6 व्यावसायिक सूचनाओ को विभिन्न स्रोतो से एकत्रित कर छात्रो मे प्रसारित करना।

7 कुसमायोजित और समस्यात्मक बालको को मनोवैज्ञानिक के पास भेजकर निदान करवाना

8 छात्रो के सचित अभिलेख-पत्र तैयार करवाने की व्यवस्था करना।

9 विशिष्ट बालको का पता लगाकर उनके उचित विकास का प्रबन्ध करना।

10 विद्यालय मे निर्देशन सेवाओ का गठन करके छात्रों को लाभान्वित करना।

11 विभिन्न स्तर पर गठित निर्देशन ब्यूरो से सम्पर्क स्थापित करके उनका सहयोग प्राप्त करना।

25.7.7 कक्षा अध्यापक के निर्देशन कार्य (Guidance Functions of Class Teacher)

चिजहोम ने कक्षाध्यापक के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है, **"जिन विद्यालय में कक्षाध्यापक निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को स्वीकार करता है, वहाँ पर उससे शिक्षण और निर्देशन के उत्तरदायित्वों में विभाजन सम्भव नहीं है। अध्यापक छात्रों की स्वयं की योग्यताओं को समझने के कार्य का चुनाव करके, अपनी प्रगति का मूल्यांकन करने में सहायता करता है।"** निर्देशन कार्यक्रम एव कक्षाध्यापक मे निकट सम्बन्ध होना चाहिये। अध्यापक छात्रो का विभिन्न परिस्थितियो मे अवलोकन करता है। उस पर छात्रों से सम्बन्धित निम्नलिखित कार्यों का दायित्व होता है। अत वह ये तथ्य निर्देशन कर्मचारियो को दे सकता है—

1 कक्षाध्यापको को अपनी कक्षा के छात्रो के बारे मे अच्छा ज्ञान होना चाहिये। इसके लिये अध्यापक को छात्रो के सकलित आलेख-पत्र का सहारा लेना होगा।

2 कक्षाध्यापक को अपनी कक्षा मे अच्छा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये जिससे छात्र अपने को ही व्यक्त करने की स्वतन्त्रता का अनुभव करें।

3 अध्यापक को चाहिये कि कुसमायोजित छात्र को विशेषज्ञ के पास भेज दे।

4 कक्षाध्यापक को परामर्श प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिये जिससे वह छात्रो को व्यक्तिगत परामर्श दे सके।

5 कक्षाध्यापक को अन्य निर्देशन कर्मचारियों को अपना सहयोग देना चाहिये।

25.7.8 मनोवैज्ञानिक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य (The Guidance Functions of the Psychologist)

असाधारण बालको को सुधारने, उनकी समस्याओं को समझने के लिये मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े विद्यालयो मे पूरे समय के लिये मनोवैज्ञानिक नियुक्त किये जाते है। मनोवैज्ञानिक निम्नलिखित कार्य करता है—

1 सामूहिक या व्यक्तिगत परीक्षाओ का प्रशासन।

2 परीक्षाफल की व्याख्या करना।

3 हीन (Inferior) या उत्कृष्ट (Superiror) बालको का निदान और उपचार करना।

25.7.9 स्वास्थ्य विशेषज्ञ के कार्य (Role of the Health-Specialist)

जैसा कि कहा जाता है, स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है, उचित ही है। अतः विद्यालय मे सभी छात्रो के स्वास्थ्य की जाँच समय-समय पर चिकित्सक द्वारा की जानी चाहिये। विद्यालय मे अधिक-से-अधिक स्वास्थ्य सेवाओ की व्यवस्था होनी चाहिये। एक बड़े तथा सम्पन्न विद्यालय मे स्वास्थ्य विभाग हो सकता है जिसमे चिकित्सक तथा नर्स हो सकते है।

विद्यालय मे दाँतो की जाँच करने की व्यवस्था होनी चाहिये। इसके लिये किसी दन्त चिकित्सक को आमन्त्रित किया जा सकता है।

स्वास्थ्य सेवा मे सलग्न कर्मचारी शारीरिक दोषो का उत्तरोत्तर अध्ययन करते है। उत्तरोत्तर अध्ययन द्वारा उनके सुधार का पता लगाया जाता है। ये ही कर्मचारी छात्र एवं उसके माता-पिता से साक्षात्कार करते हैं और उनको बीमारियो के सम्बन्ध मे सूचित करते है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक सस्थाओ का भी निर्देशन-व्यवस्था मे महत्वपूर्ण कार्य होता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर विद्यालय के निर्देशन व्यवस्था के विभिन्न रूपो पर प्रकाश डालिये।
2. "प्रधानाचार्य अपने विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य व्यक्ति होता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये। प्रधानाचार्य के कर्तव्यों पर अपने विचार प्रकट कीजिये।
3. "अध्यापक का कार्य केवल अध्यापन ही नही है, अपितु निर्देशन कार्य मे सहायता प्रदान करना भी है।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट करते हुये निर्देशन के क्षेत्र मे कक्षाध्यापक के कार्यो को स्पष्ट कीजिये।
4. किसी माध्यमिक स्कूल के निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी परामर्शदाता अध्यापक तथा प्रधानाचार्य के कर्तव्यो का वर्णन कीजिये।
5. विद्यालय मे निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन करने मे किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिये?
6. स्कूल परामर्शदाता मे क्या-क्या व्यक्तिगत गुण तथा योग्यताएँ होनी चाहिये और क्यो?
7. यदि आपको अपनी सस्था मे निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना करने तथा उन्हे कार्यान्वित करने को कहा जाये तो आप इस दिशा मे किस प्रकार कार्य करेगे?
8. मान लिया जाये कि आपसे अपने देश मे निर्देशन कार्यक्रम आरम्भ करने को कहा गया तो आप किस प्रकार की योजना प्रस्तुत करेगे तथा क्यो?
9. "एक सफल अध्यापक स्वत ही एक सफल निर्देशक होता है।" निर्देशन की विशिष्ट पद्धति के सन्दर्भ मे इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।
10. विद्यालय परामर्शदाता के कर्तव्यो और कार्यो का वर्णन कीजिये। विद्यार्थी के समन्वित विकास मे वह किस प्रकार सहायक होता है?
11. उन समस्याओ तथा कठिनाइयो का वर्णन करे जिनका सामना हमे निर्देशन के कार्यक्रम सगठन करने मे करना पड़ रहा है।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 निर्देशन कार्यक्रम का रूप किन बातो पर निर्भर रहता है ?
2 अच्छे निर्देशन कार्यक्रम की कोई चार विशेषताएँ लिखिये।
3 निर्देशन कार्यक्रम का गठन करने से पूर्व किन प्रश्नो पर विचार करना चाहिये ?
4 शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का रूप समझाइये।
5 प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी कार्य लिखिये।
6 परामर्शदाता की कार्यकुशलता किन गुणो पर निर्भर रहती है ?
7 अध्यापक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य कौन-कौन से है ?
8 निर्देशन के क्षेत्र मे कक्षा-अध्यापक की भूमिका स्पष्ट कीजिये।
9 विद्यालय मे परामर्शदाता के क्या कार्य होते है ?
10 सगठन का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1 स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन दिया जाता है–
(अ) शिक्षक द्वारा (ब) प्रधानाचार्य द्वारा
(स) चिकित्सको द्वारा (द) सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा **उत्तर**–(स)

2 निम्नलिखित मे जो निर्देशन कार्यक्रम सगठन का सिद्धान्त नही है–
(अ) कार्यक्रम के उद्देश्य (ब) उत्तरदायित्व निश्चित करना
(स) मूल्याकन करना (द) सामाजिक सस्थाओ का सहयोग **उत्तर**–(द)

3 निम्नलिखित मे जो अच्छे निर्देशन कार्यक्रम की विशेषता है–
(अ) निर्णय का अन्तिम अधिकार परामर्शदाता का होता है
(ब) सहयोगी शिक्षको का सहयोग बलपूर्वक लिया जाता है
(स) निर्देशन कार्यक्रम शिक्षक केन्द्रित होना चाहिये
(द) सूचनाएँ गोपनीय रखनी चाहिये **उत्तर**–(द)

4 प्राथमिक विद्यालय मे किसी निर्देशन विशेषज्ञ की आवश्यकता नही होती है क्योकि
(अ) छात्रो की सख्या कम होती है
(ब) पाठ्य सामग्री सीमित होती है
(स) बालको की आवश्यकताएँ सीमित होती है
(द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

❑❑

अध्याय

26

विद्यालय अभिलेख तथा रजिस्टर

[SCHOOL RECORDS AND REGISTER]

अभिलेख व्यवस्था प्रत्येक सस्था के लिये आवश्यक है। समाज द्वारा विद्यालय की स्थापना निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये की जाती है। इन उद्देश्यो की पूर्ति, प्रगति का मापन इन सबका ज्ञान तभी हो सकता है जब प्रत्येक चीज का रिकार्ड रखा जाये। वस्तुत उद्देश्यो की पूर्ति एक दीर्घावधि कार्य (Long term work) है जिसे सस्था द्वारा पूरा किया जाता है। समाज द्वारा निर्धारित उद्देश्य समय समय पर बदलते भी रहते है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब आरम्भ मे निर्धारित किये गये उद्देश्य लिखित रूप से विद्यमान हो और इसके लिये विद्यालय मे रिकार्ड रखना अत्यन्त आवश्यक है

विद्यालय प्रागण एक प्रकृति विषयक व्यवस्था है। वह भौतिक और अभौतिक वस्तुओ का सगठन है। जनसख्या के विस्फोट के कारण भौतिक तथा अभौतिक दोनो वस्तुओ की तीव्र गति से वृद्धि हुई है। भौतिक वस्तुओ मे अध्यापकगण, क्लर्क व अन्य कर्मचारी विद्यार्थी, छात्रो के माता-पिता और नियन्त्रण वर्ग आदि शामिल है। इनकी सख्या लगातार बढ़ रही है। इसके लिये विभिन्न प्रकार के अभिलेखो को जुटाना व उनकी देखभाल करना आवश्यक हो जाता है ताकि कर्मचारी वर्ग के जीवन की जटिलता को कम व सुलभ किया जा सके। इसी प्रकार सस्थान की अभौतिक वस्तुएँ, जैसे – फर्नीचर, अन्य साधन व वस्तुएँ जो कि विद्यालय के विभिन्न पहलुओ से जुड़ी है, लगातार बढ़ रही है। उनका अभिलेख रखना भी बहुत उपयोगी है। अभिलेखो और रजिस्टरो के बिना विद्यालय निश्चित रूप से एक बिगड़े हुए ससार की भाँति होगा। इसके अतिरिक्त विद्यालय मे कोई भी इन्हे सदैव स्मरण नही रख सकता। कुछ लोग यह महसूस करते हुए कहते है कि यह सब कार्य सस्था के मुख्याध्यापक के हाथो मे होता है। अब प्रश्न यह है कि यह सब कौन कर सकता है और कैसे ?

26.1 : अभिलेख का अर्थ
(MEANING OF RECORD)

शिक्षा, शारीरिक शिक्षा एव अन्य क्षेत्रो मे किसी भी कार्य को शुरू से लेकर उसके खत्म होने तक जो लिखित रूप से रखा जाता है, उसे अभिलेख (Record) कहते है

किसी भी कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये पहले उसकी योजना बनायी जाती है फिर उसके व्यक्तियो को उस योजना को शुरू करने के लिये नियुक्त करके कार्य की प्रक्रिया को निश्चित किया जाता है। योजना के कार्य को शुरू करने के पश्चात् कुछ कठिनाइयाँ एव समस्याएँ भी आती है, उनके साथ-साथ सुलझाने की आवश्यकता भी होती है। कार्य समाप्ति के बाद परिणामो का विश्लेषण भी किया जाता है। सभी प्रक्रिया के बाद इसे लिखित रूप मे रखना आवश्यक है तथा इसकी पूरी प्रक्रिया का भी लिखित रूप मे रखना चाहिए।

विद्यालय समाज द्वारा स्थापित एक स्थायी सस्था है। विद्यालय की उत्पत्ति, विकास, उसकी परिस्थितियो, उद्देश्यो, महत्वाकाक्षाओ एव उपलब्धियो आदि के विषयो मे जानने के लिये नियमित लेखो का होना आवश्यक है।

26.2 : रजिस्टर का अर्थ
(MEANING OF REGISTER)

रजिस्टर (Register) वह पुस्तक है जिसमे नियमानुसार एव क्रमबद्ध आय-व्यय एव अन्य कार्यो की जानकारी विस्तारपूर्वक लिखी जाती है।''

दूसरे शब्दो मे, ''रजिस्टर (Register) वह पुस्तक है जिसमे अभिलेखो की सूची को नियमित एव विधिवत् रूप से अकित किया जाता है।''

26.3 : विद्यालय अभिलेखों तथा रजिस्टरों की आवश्यकता एवं महत्त्व
(NEED AND IMPORTANCE OF SCHOOL RECORDS AND REGISTERS)

अभिलेख एव रजिस्टर विद्यालय प्रबन्धन एव प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण है। इनके बिना विद्यालय नि सन्देह एक अस्त-व्यस्त ससार होगा। (Records and registers are very essential for the smooth and successful functioning of the school. Without them a school will indeed be a topsy-tuvy world.) प्रत्येक विद्यालय को कुछ ऐसा रिकॉर्ड अवश्य रखना होता है जिससे उसके आरम्भ एव विकास, उसकी स्थितियो, उसके उद्देश्यो, आकाक्षाओ एव उपलब्धियो तथा उसकी कुशलता एव उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त हो सके। निम्नलिखित तथ्यो से विद्यालय के अभिलेखो तथा रजिस्टरो की आवश्यकता एव महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है—

1. कानूनी आवश्यकताएँ (Legal Requirements)—राज्य की कानूनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए विद्यालय के अभिलेखो तथा रजिस्टरो का प्रयोग किया जाता है। स्वीकृत विद्यालयो का शिक्षा विभाग द्वारा निश्चित अभिलेखो तथा रजिस्टरो की व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रत्येक विद्यालय को विद्यार्थियो के दाखिले तथा विद्यालय के विभिन्न पक्षो के विकास के सम्बन्ध मे वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके पेश करनी होती है। इस रिपोर्ट मे विद्यालय के कुल विद्यार्थियो की सख्या, प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक सेक्शन मे विद्यार्थियो की सख्या, औसत दैनिक हाजिरी, नया दाखिला, कितने विद्यार्थी खारिज किये गये, कृषि तथा अकृषि परिवारो से सम्बन्धित विद्यार्थियो की सख्या, हरिजन तथा पिछड़ी जातियो के विद्यार्थियो की सख्या, शुल्क से प्राप्त आय, सहायक अनुदान, अन्य साधनो से प्राप्त आय, व्यय, स्टाफ, विद्यालय के उपकरण, सम्पत्ति आदि का उल्लेख किया जाता है। प्राइवेट विद्यालयो को सहायक अनुदान तथा एडहॉक अनुदान (Adhoc Grant) देने के लिए इन तथ्यो को आधार बनाया जाता है।

2. वित्तीय आवश्यकताएँ (Financial Needs)—अपने बजट तथा वित्तीय आवश्यकताओ को न्यायसगत सिद्ध करने के लिए विद्यालय को विभिन्न प्रकार के तथ्यो एव आँकड़ो का उल्लेख करना

होता है। भावी कार्यक्रम की योजना के लिए इनका उल्लेख आवश्यक होता है। विद्यालय सत्र के आरम्भ में ही वित्तीय आवश्यकताओ की रिपोर्ट उच्च अधिकारियो को भेजनी होती है।

3. **प्रशासनीय आवश्यकताएँ** (Administrative Needs)—प्रशासनीय दृष्टिकोण से भी अभिलेख एव रजिस्टरो की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। विद्यालय के कुशल सगठन एव प्रशासन की योजना मे ये उपयोगी सहायता प्रदान करते है।

4. **अनुसन्धानात्मक आवश्यकताएँ** (Research Needs)—सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के विकास के लिए अनुसन्धान अत्यन्त आवश्यक है। अनुसन्धानात्मक कार्य करने वालो के लिए अभिलेख एव रजिस्टर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है। विद्यालय के अभिलेखो एव रजिस्टरो के आधार पर ही एम एड के विद्यार्थी, अनुसन्धान कार्य मे सलग्न विद्वान तथा अन्य सरकारी एव गैर-सरकारी सस्थाएँ अनुसन्धान कार्य करती है। अपव्यय एव अवरोध (Wastage and stagnation), किशोरो का कु-आयोजन, पाठ्य-सहायक क्रियाओ की उपयोगिता आदि कैसी भी समस्या क्यो न हो, उसके विश्लेषण मे विद्यालय रिकॉर्ड महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है और विद्यालय की नीतियो तथा उसके कार्यक्रमो के मूल्याकन मे उपयोगी सहायता प्रदान करता है। यहाँ तक कि प्रगतिशील अध्यापक अपने शिक्षण विषयो मे अनुसन्धान कार्य करने के लिए भी विद्यालय अभिलेखो तथा रजिस्टरो से पर्याप्त सहायता लेते है।

5. **संस्थात्मक कार्यक्रम का मूल्यांकन** (Assessment of Institutional Programme)—विद्यालय कार्यक्रमो की प्रभावशीलता के मूल्याकन मे विद्यालय अभिलेख हमे सहायता प्रदान करते है। विद्यालय अभिलेखो से ही ज्ञान होता है कि पाठ्य-क्रियाओ तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे विद्यार्थियो ने कितनी प्रगति की है, अध्यापको ने कितना काम किया है, मुख्याध्यापक एव उच्चाधिकारियो ने क्या निर्देशन प्रदान किया है, पुस्तकालय की कैसी व्यवस्था है आदि। यदि हम विद्यार्थियो की शैक्षिक उपलब्धियो का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो परीक्षा रजिस्टर से बहुत कुछ ज्ञात हो जायेगा। यदि हम विद्यार्थियो के शारीरिक विकास के सम्बन्ध मे जानना चाहते है तो मेडिकल रिकॉर्ड देखना होगा आदि। इस प्रकार के मूल्याकन से ही अध्यापको, मुख्याध्यापक तथा उच्चाधिकारियो द्वारा शिक्षण कार्यक्रम तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे कोई सुधार करना सम्भव हो सकता है।

6. **निर्देशन आवश्यकताएँ** (Guidance Needs)—विद्यालय अभिलेखो के आधार पर ही विद्यार्थियो का उचित निर्देशन किया जा सकता है और उनके काम के साथ उनका समायोजन स्थापित किया जा सकता है।

7. **सर्वमुखी विकास के लिए आवश्यक** (Essential for All-round Development)—विद्यालय पर प्रत्येक विद्यार्थी के सर्वमुखी विकास का दायित्व होता है और इस दायित्व को निभाने के लिए उस प्रत्येक विद्यार्थी की दैनिक प्रगति का उचित रिकॉर्ड रखना चाहिए।

8. **अभिभावकों का सहयोग** (Co-operation of Parents)—विद्यालय रिकॉर्ड की सहायता से अभिभावको को उनके बच्चो की प्रगति रिपोर्ट भेजी जाती है जिसमे उनकी उपलब्धियो तथा कमजोरियो का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। इसके आधार पर ही अभिभावको से विचार-विमर्श सम्भव हो सकता है। इससे विद्यालय और घर मे उपयोगी सम्पर्क स्थापित होता है और यह सम्पर्क विद्यार्थियो के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

9. **कुशल कार्य संचालन** (Efficient Functioning)—विद्यालय अभिलेखो की व्यवस्था विद्यालय के कुशल सचालन को सुविधाजनक बनाती है। विद्यार्थी, अध्यापक तथा अन्य व्यक्ति इस तथ्य के प्रति सचेत रहते है कि उनकी क्रियाओ, उपलब्धियो तथा कमजोरियो का नियमित रिकॉर्ड रखा जा रहा है। वे अपने रिकॉर्ड को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्न करते रहते है।

10. माता-पिता के प्रति उत्तरदायी (To be Answerable to Parents)—विद्यालय विद्यार्थियो की अच्छी शिक्षा के लिए उनके माता-पिता के प्रति उत्तरदायी है। माता-पिता को अपने बच्चो की शिक्षा के लिए कई प्रकार के शुल्क देने पड़ते है तथा अन्य कई त्याग करने पड़ते है। जहाँ शिक्षा नि शुल्क है वहाँ उन्हे करो के रूप मे कितना कुछ खर्च करना पड़ता है। कई माता-पिता अनुभव करते है कि अपने बच्चो को विद्यालय भेजकर वे उनसे घरो मे या अपने व्यवसाय मे काम नही ले सकते। अत विद्यालय उनके प्रति उत्तरदायी है परन्तु वह अपना यह दायित्व तभी निभा सकता है जब उसके पास अभिलेख तथा रजिस्टरो की उचित व्यवस्था हो।

11. समाज के प्रति उत्तरदायी (To be Answerable to the Society)—भारत जैसे लोकतन्त्रात्मक देश मे विद्यालय कई पक्षो मे समाज के प्रति उत्तरदायी है। विद्यालय समाज की ही एक औपचारिक सगठित सस्था है। उसे यह विश्वास दिलाना होता है कि वह समाज के भावी नागरिको को शिक्षा देने के दायित्व को अच्छी तरह निभायेगा। इससे सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करने के लिए उसे विधिवत् रिकॉर्ड रखना होता है।

12. सरकार के प्रति उत्तरदायी (To be Answerable to the Government)—विद्यालय प्रान्तीय एव केन्द्रीय सरकार के प्रति भी उत्तरदायी है। उसे अपने अभिलेखो द्वारा दोनो सरकारो को सन्तुष्ट करना होता है कि जनता के पैसे को शिक्षा के हित मे ही खर्च किया जा रहा है और उनके आदेशो का ईमानदारी से पालन किया जा रहा है। जिन विद्यालयो को सहायक अनुदान मिलता है, उनका इस दिशा मे अधिक दायित्व होता है। उन्हे अपने अभिलेखो से सिद्ध करना पड़ता है कि प्राप्त अनुदान का निश्चित उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा रहा है और उनका कार्य कुशलतापूर्वक चल रहा है।

13. विद्यालय प्रबन्धकों के प्रति उत्तरदायी (To be Answerable to School Management)—प्राइवेट विद्यालयो की प्रबन्धकीय कमेटियाँ अपने विद्यालयो के कुशल कार्य सचालन के लिए उत्तरदायी होती है। इसके लिए उन्हे विद्यालय अभिलेखो एव रजिस्टरो की आवश्यकता रहती है। अत विद्यालय के लिए अभिलेखो तथा रजिस्टरो की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है।

14. विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायी (To be Answerable to Pupils)—अन्तत विद्यालय अपने विद्यार्थियो के प्रति उत्तरदायी है। उनके मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, नैतिक व सास्कृतिक विकास का समय-समय पर उनकी क्रियाओ के माध्यम से निरीक्षण किया जाना चाहिए। इसके लिए अभिलेखो तथा रजिस्टरो की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

26.4 : विद्यालय अभिलेखों तथा रजिस्टर उपयोग (USES OF SCHOOL RECORDS AND REGISTER)

1. विद्यालय संचालन में सहायता (Assistance in School Functioning)—मुख्याध्यापक को विद्यालय सचालन मे सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ, विद्यालय टाइम टेबल, अध्यापको का रजिस्टर, प्रगति रजिस्टर एव पजीकृत रजिस्टर आदि।

2. आवश्यक सूचनाएँ (Essential Information)—अध्यापको तथा माता-पिता को छात्रो के सम्बन्ध मे आवश्यक सूचनाएँ देना तथा शिक्षण में सुधार करना।

3. सूचनाएँ प्रदान करने का आधार (Basis of Providing Information)—विद्यालय निरीक्षक, प्रबन्धन समिति अथवा कार्यकारिणी समिति के विद्यालय सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करने का आधार बनाना।

4. **पर्यवेक्षण एवं निर्देशन में सहायता** (Assistance in Supervision and Guidance)—पर्यवेक्षण एवं निर्देशन में सहायता देना, जैसे—छात्रों के वर्गीकरण, प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी देने में विद्यालय अभिलेख सहायक होते हैं।

5. **मूल्यांकन में सहायता** (Assistance in Evaluation)—विद्यालय के शैक्षिक कार्यक्रम के मूल्यांकन में सहायता करना।

6. **योजना तैयार करने में सहायता** (Assistance in Planning)—विद्यालय के विकास के लिए योजना तैयार करने में सहायता प्रदान करना।

हम विद्यालय अभिलेखों का निम्नलिखित प्रकार से भी अध्ययन कर सकते हैं—

(1) विद्यालय सम्बन्धी (Relating to the School)—अभिलेख विद्यालय को निम्नलिखित में सहायता प्रदान करते हैं—

1. प्रत्येक विद्यार्थी को शीघ्रता से ढूँढ़ना।
2. प्रत्येक विद्यार्थी के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त करना।
3. अवांछित स्थिति की व्याख्या करना तथा उन्हें दूर करना।
4. इस बात का निश्चय करना कि किसी प्रशासकीय परिवर्तन की तो आवश्यकता नहीं।
5. महत्त्वपूर्ण जाँच-पड़ताल करना।
6. इस बात का निश्चय करना कि विद्यालय के पास पर्याप्त फण्ड है और उनका उचित प्रयोग किया जा रहा है या नहीं।
7. कानूनी आवश्यकताएँ पूरी करना।
8. ह्रास (Retardation) को न्यूनतम करना।

(2) अध्यापकों सम्बन्धी (Relating to the Teachers)—अभिलेख अध्यापकों को निम्नलिखित कार्यों में सहायता प्रदान करते हैं—

1. विद्यालय वर्ष के आरम्भ में विद्यार्थियों को जानना।
2. इस बात का निश्चय करना कि विद्यार्थी कौन-सा काम कर सकता है।
3. प्रत्येक विद्यार्थी के लिए शिक्षण क्रियाओं की व्यवस्था करना।
4. विद्यार्थियों के बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन के लिए आधार निर्माण करना।
5. किसी विद्यार्थी के व्यवहार की विशेषताओं को समझना।
6. मानसिक रूप से धीमे बालकों को पहचानना और उनके लिए उचित व्यवस्था करना।
7. मॉनीटरों तथा विद्यार्थी कमेटियों को काम सौंपना।
8. प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी की विशिष्ट प्रतिभाओं के विकास के लिए उचित व्यवस्था करना।
9. समय पर ठीक रिपोर्ट करना।
10. अभिभावकों से बातचीत करते समय सम्बन्धित विद्यार्थी की पूर्ण जानकारी रखना।

(3) विद्यार्थियों सम्बन्धी (Relating to the Pupils)—अभिलेख विद्यार्थियों के निम्नलिखित कार्यों में सहायक होते हैं—

1. वर्गीकरण में उचित स्थान प्राप्त करना।
2. अच्छे रिकॉर्ड कायम करने के लिए प्रयत्नशील रहना।
3. अपनी योग्यता के अनुसार प्रगति करना।

4 अपनी प्राकृतिक योग्यताओ को विकसित करना।

5 आवश्यकता पड़ने पर दूसरे विद्यालयो को ठीक सूचना देना।

6 उचित समायोजन एव निर्देशन प्राप्त करना।

हाई विद्यालयो मे रखे गये विभिन्न प्रकार के अभिलेखो से ज्ञात होता है कि उनके मुख्य निम्नलिखित पाँच उद्देश्य होते है–

1 निर्देशन (Guidance), जिसमे वर्गीकरण तथा विद्यार्थियो को उचित स्थान पर रखना सम्मिलित है का मूल्याकन करना।

2 विद्यार्थियो को व्यक्तिगत विभिन्नताओ की सूचनाएँ प्रदान करके कक्षीय शिक्षण विधियो (Teaching methods) को सुधारना।

3 विद्यार्थियो को प्रेरित (Motivate) करना।

4 शिक्षा अनुसधान (Educational research) मे सहायता प्रदान करना।

5 राजकीय-स्थानीय अधिकारो की आवश्यकताएँ (Requirements) को पूरा करना तथा उनकी रिक्तियो के लिए आधार तैयार करना।

26.5 : विद्यालय अभिलेखों की विशिष्ट योग्यताएँ अथवा अनिवार्य आवश्यकताएँ (SALIENT OR ESSENTIAL REQUISITES OF SCHOOL RECORDS)

अभिलेखो को तब तक सार्थक एव उद्देश्यपूर्ण नही बनाया जा सकता जब तक उनकी कुछ आवश्यकताओ को प्रयोग मे न लाये जाये। **डॉ. जसवन्त सिंह** (Dr. Jaswant Singh) के शब्दो मे "कार्यालय समूचे कारखाने की मुख्य कमानी है और विद्यालय की कार्यकुशलता को महत्त्वहीन बनाये बिना इसके महत्त्व को कम नही किया जा सकता।"

"Office is really the kingpin in the enterprise and its importance cannot be minimised without undermining the efficiency of school" –**Dr. Jaswant Singh**

अत यह देखना मुख्याध्यापक का कर्त्तव्य है कि विद्यालय अभिलेखो की निम्नलिखित आवश्यकताएं पूरी हो–

1. पूर्णता (Completeness)–सभी अभिलेख तथा रजिस्टर आधुनिकतम तिथि तक पूर्ण होने चाहिए। उनमे कोई स्थान नही रहना चाहिए। उनमे जटिलता न हो। उनमे मुख्याध्यापक का अधिक समय खर्च नही होना चाहिए ताकि वे उसके अन्य कार्यों मे बाधक न बन सके। प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थी का डाटा (Data) तत्काल लिख लेना चाहिए और उसके विद्यालय बदलने पर उसका रिकॉर्ड भी उसी विद्यालय मे भेज देना चाहिए।

2. शुद्धता (Accuracy)–विद्यालय अभिलेखो मे प्राप्त सभी सूचनाएँ शुद्ध तथा सुगठित होनी चाहिए। सभी अभिलेख पूर्ण, विश्वसनीय तथा प्रमाणित होने चाहिए। **मुहियुद्दीन** (Mohiyuddin) के कथनानुसार "अपूर्ण अभिलेख व्यर्थ से भी बुरे है।" ("Inaccurate records are worse than useless") यह ध्यान रखना चाहिए कि अभिलेख उन व्यक्तियो की ईमानदारी का परीक्षण करते है जो उनकी रचना करते है। अभिलेख मे शीघ्र ही तथ्यो का उल्लेख करने तथा उनकी नियमित रूप से जाँच करते रहने से उनकी शुद्धता को निश्चित बनाया जा सकता है। (Accuracy can be sured by promptness of entries in the records and their regular and systematic checking)

3. **उपयोगिता** (Utility)—प्रत्येक अभिलेख उपयोगिता की दृष्टि से तैयार किया जाना चा केवल सम्बन्धित उपयोगी तथ्यो का ही उल्लेख करना चाहिए। भविष्य मे इन्हे सन्दर्भ क किया जाता है।

4. **संयुक्तता** (Prehensiveness)—बच्चे के सन्तुलित विकास को दृष्टि मे रखते हुए प्रकार के रिकॉर्ड रखे जाने चाहिए। प्रत्येक अध्यापक को अपने कार्यक्षेत्र का रिकॉर्ड रखना चाहि

5. **सरल एवं लचीले** (Simple and Flexible)—अभिलेख सरल एव लचीले होने चाहि लोगो के लिए सुबोध होने चाहिए जिनके लिए रखे जाते है।

6. **आसान व्यवस्था** (Easy Maintenance)—विद्यालय अभिलेखो तथा रिपोर्टो की आसान होनी चाहिए। इनमे आवश्यक तथ्यो का उल्लेख करने मे कम समय और कम शक्ति चाहिए।

7. **विधिवत् व्यवस्था** (Systematic Maintenance)—विद्यालय अभिलेखो की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि उनका उचित उपयोग किया जा सके। अभिलेख दोष रहित होने चाहिए। उनमे कि प्रकार की पुनरावृत्ति नही होनी चाहिए। अलग-अलग रिकॉर्डो के लिए अलग-अलग फाइल लगाए चाहिए। इससे आवश्यकता पड़ने पर इन्हे देखना सुविधाजनक होगा।

8. **अतिरिक्त उल्लेख के लिए स्थान** (Space for Additional Entries)—अभिलेखो म स्थान होना चाहिए ताकि विद्यार्थियो के अतिरिक्त तथ्यो का भी उल्लेख किया जा सके। विद्यार्थि तथ्यो का उल्लेख सतत् होते रहना चाहिए। वर्ष के किसी भी दिन किसी विद्यार्थी की कोई सूचना प्र है तो उसका सम्बन्धित रिकॉर्ड मे उल्लेख होना चाहिए।

9. **प्राप्यता** (Availability)—विद्यालय अभिलेख एव रजिस्टर महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। आवश्यक पड़ने पर वे प्राप्त होने चाहिए। अत सभी अभिलेख विद्यालय मे सुरक्षापूर्व रखे जाने चाहिए। अ मुख्याध्यापक, क्लर्क और निरीक्षक को भी अभिलेख पर ले जाने की आज्ञा नही होनी चाहि इनका निरीक्षण करना हो, विद्यालय मे ही किया जाना चाहिए।

अभिलेख तथा रजिस्टर सावधानी से तैयार किये जाने चाहिए, कुशलतापूर्वक रख और उनमे शुद्ध, पूर्ण तथा उपयोगी सूचनाओ का उल्लेख होना चाहिए।

26.6 : अभिलेखों का रखरखाव (MAINTAINING THESE RECORDS)

मुख्याध्यापक का कार्यालय विद्यालय का हृदय है जिसके द्वारा समूचे विद्यालय मे जीवन का स होता है। विद्यालय के समूचे कार्य का दायित्व मुख्याध्यापक पर होता है। अभिलेखो की सुव्यवस्था दायित्व उसी पर ही है, क्योकि उसे विद्यालय की अन्य क्रियाओ के सगठन और सचालन मे व्यस्त रहना पड़ता है। इसलिए प्रत्येक हाई तथा हायर सेकण्डरी विद्यालय मे एक पूर्णकालिक क्लर्क होना चाहिए। उसे अध्यापको को भी कार्यालय का कुछ काम सौपना चाहिए। जिन व्यक्तियो को अभिलेख एव रजिस्टर तैयार करने का दायित्व सौपा जाये, वे पक्षपात से मुक्त तथा गम्भीर व्यक्ति होने चाहिए। उनका दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए और उनमे निडरता से पूरी ईमानदारी के साथ तथ्य के उल्लेख करने का साहस होना चाहिए। विद्यालय अभिलेख की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित बाते उपयोगी सिद्ध होगी—

1. **पृथक् कमरा** (Separate room)—विद्यालय अभिलेख रखने के लिए एक पृथक कमरा होना चाहिए। इसे कार्यालय कहा जाता है। इस कमरे मे अलमारियाँ होनी चाहिए और इन अलमारियो मे

फाइले, रजिस्टर तथा अन्य अभिलेख व्यवस्थापूर्वक क्लर्क या कार्यालय अधीक्षक (Office superintendent) के अधीन रखे जाने चाहिए।

2. **अभिलेखा सूची तैयार करना** (Preparing Stock List)—रजिस्टरो तथा फाइलो की एक सूची तैयार की जानी चाहिए जिसे मुख्याध्यापक की मेज पर शीशे के नीचे रखा जाना चाहिए।

3. **पृष्ठो पर क्रमाक लगाना** (Numbered Pages)—प्रत्येक रजिस्टर के पृष्ठो पर अकन यन्त्र द्वारा क्रमाक लगा होना चाहिए या फिर लाल स्याही से उन पर क्रमाक लिखा जाना चाहिए।

4. **बाह्य कवर पर विशिष्ट उल्लेख** (Particulars on Outer Cover)—जब कोई नया रजिस्टर लगाया जाये तो उसके बाह्य कवर पर इन बातो का उल्लेख होना चाहिए—(i) विद्यालय का नाम, (ii) रजिस्टर का क्रमाक, (iii) रजिस्टर का नाम, (iv) पृष्ठो की सख्या, (v) तिथि—जब रजिस्टर आरम्भ किया गया।

5. **कोई पृष्ठ लगाना या अलग न करना** (No inserted or Detached Page)—किसी भी रजिस्टर मे न तो कोई नया पृष्ठ लगाया जाये और न ही उसमे से कोई पृष्ठ अलग किया जाये। यदि कोई पृष्ठ खराब हो जाये तो उस पर लिखी बातो को काटकर अगले पृष्ठ पर लिख दिया जाये और पिछले पृष्ठ पर 'रद्द किया गया' (Cancelled) लिख दिया जाये।

6. **साफ-सुथरे** (Neat and Tidy)—सभी रजिस्टर साफ-सुथरे रखे जाने चाहिए और उन पर जिल्द बँधी होनी चाहिए। स्थायी रजिस्टरो, जैसे—दाखिला व खारिज रजिस्टर आदि—पर यदि चमड़े की जिल्द बनवायी जाये तो अच्छा रहेगा। रजिस्टरो की लिखावट भी साफ-सुथरी होनी चाहिए। अक भी साफ-साफ लिखे जाने चाहिए। अको को एक-दूसरे से मिलाकर नही लिखना चाहिए ताकि उनको पढ़ने मे आसानी रहे और जोड़ (Total) करने मे भी सुविधा रहे। रजिस्टरो को मोड़ना नही चाहिए।

7. **उल्लेख स्याही में** (Entries in Ink)—रजिस्टरो के सभी उल्लेख स्याही मे होने चाहिए, परन्तु जोड़ को स्याही मे लिखने से पहले उसकी जाँच कर लेनी चाहिए।

8. **इन्दराज को ठीक करना** (Correction of Entries)—यथासम्भव रजिस्टरो मे काटे नही लगाये जाने चाहिए और न ही शब्दो को एक-दूसरे के ऊपर लिखना चाहिए। यदि कही कुछ ठीक करना हो तो उसके ऊपर लाल स्याही से एक रेखा खीच देनी चाहिए कि पहला और शुद्ध लिखा हुआ इन्दराज स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सके। इस प्रकार का प्रत्येक सशोधन अधिकृत होना चाहिए अर्थात् उस पर मुख्याध्यापक के हस्ताक्षर होने चाहिए।

9. **रेखाओं में जोड़** (Total in Lines)—सभी सीधी रेखाएँ लाल स्याही से खीची जानी चाहिए। प्रत्येक जोड़ के ऊपर एक रेखा तथा प्रत्येक अन्तिम जोड़ (Final total) के नीचे दो रेखाएँ खीची जानी चाहिए। प्रत्येक जोड़ के साथ रुपये, पैसे आदि का उल्लेख होना चाहिए, जैसे 5364 रुपये 96 पैसे। किसी लेखे के दोनो ओर का जोड़ एक ही रेखा पर होना चाहिए।

10. **नये रजिस्टर आरम्भ करना** (Starting New Registers)—यदि पिछले रजिस्टर मे पर्याप्त पृष्ठ बचे हो तो हर साल नया रजिस्टर नही लगा लेना चाहिए। जब कभी नया रजिस्टर लगाया जाये तो उसके पहले पृष्ठ पर यह कथन होना चाहिए कि पिछला रजिस्टर समाप्त हो चुका है और उसे रिकॉर्ड मे सुरक्षित रख दिया गया है। नये रजिस्टर को आरम्भ करने की तिथि तथा पृष्ठो की सख्या का भी उल्लेख कर देना चाहिए।

11. **प्रत्येक खाना भरना** (Filling Every Column)—रजिस्टर मे दिये गये प्रत्येक खाने को भरना चाहिए। इन्दराज (Entries) के बीच मे जगह नही छोड़नी चाहिए और न ही बाद मे उनके बीच मे कुछ लिखा जाना चाहिए।

12. पक्की जिल्द वाली नोटबुक का प्रयोग (Using Stiff-bound Note-book)—जब छप रजिस्टर प्राप्त न हो तो पक्की जिल्द वाली नोटबुक का प्रयोग करना चाहिए। ऐसी नोटबुक का आ यथासम्भव अन्य रजिस्टरो के समान होना चाहिए।

13. समय-समय पर पड़ताल (Periodical Checking)—सभी रजिस्टरो तथा फाइलो समय-समय पर पड़ताल की जानी चाहिए।

26.7 : विद्यालय अभिलेख एवं रजिस्टरों के प्रकार (TYPES OF SCHOOL RECORDS AND REGISTERS)

प्रत्येक विद्यालय को कई अभिलेखो एव रजिस्टरो की व्यवस्था करनी होती है। इन्हे मुख्य निम्नलिखित वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

1. सामान्य अभिलेख (General Records)—जैसे—(1) विद्यालय कलेण्डर (School Calendar) (2) लॉग बुक (Log Book), (3) सेवा रजिस्टर (Service Register), (4) शिक्षा अधिकारियो के आदेशो का रजिस्टर, (5) स्टाफ ड्यूटी रजिस्टर, (6) स्टाफ के पतो का रजिस्टर, (7) अध्यापको की व्यक्तिगत फाइले, (8) सामान्य आदेश पुस्तक (General Order Book), (9) आगंतुकों के विचार विवरण पुस्तिका (Visitor's Book), (10) 'से' और 'को' रजिस्टर (From and To Register) (11) मीमो बुक (Memo Book), (12) लोकल डिलीवरी बुक (Local Delivery Book)।

2. वित्तीय अभिलेख (Financial Records)—(1) कण्टिनजैण्ट ऑर्डर बुक (Contingency Order Book), (2) कण्टिनजैन्सी रजिस्टर (Contingency Register), (3) वेतन रजिस्टर (Acquittance Register), (4) शुल्क रजिस्टर (Fee Register), (5) रसीदे एव व्यय रजिस्टर (Receipt and Expenditure Register), (6) बिल रजिस्टर (Bills Register), (7) दान रजिस्टर (Donation Register), (8) सहायक अनुदान रजिस्टर (Grant-in-aid Register), (9) विद्यार्थी फण्ड रजिस्टर (Students' Fund Register), (10) सामान्य लेजर (General Ledger), (11) प्रॉविडेण्ट फण्ड रजिस्टर (Provident Fund Register) आदि।

3. उपकरण अभिलेख (Equipment Records)—जैसे (1) फर्नीचर तथा अन्य उपकरणों के स्टॉक रजिस्टर, (2) फर्नीचर देने का रजिस्टर (Furniture Issue Register), (3) स्टेशनरी स्टॉक रजिस्टर, (4) स्टेशनरी देने का रजिस्टर (Stationery Issue Register), (5) खेलो का सामान (6) पुस्तकालय रजिस्टर, (7) पुस्तकालय निकासन रजिस्टर (Library Issue Register), (8) पत्र पत्रिकाओ से सम्बन्धित रजिस्टर, (9) पुस्तकालय सूची (Library Catalogue), (10) शिल्प सम्बन्धी स्टॉक रजिस्टर (Craft Stock Register)।

4. पत्र-व्यवहार सम्बन्धी रजिस्टर (Correspondence Register)—जैसे (1) चपरासी पुस्तिका (Peon Book), (2) मीमो पुस्तिका (Memo Book), (3) विभागीय आदेशो की फाइल, (4) प्राप्ति एव भेजने के रजिस्टर, (5) विद्यालय शिक्षा बोर्ड के परिपत्रो की फाइल आदि।

5. शैक्षिक अभिलेख (Educational Records), जैसे—

(क) पाठ्यक्रम तथा दैनिक कार्य से सम्बन्धित (Dealing with Curriculum and Daily Work Records)—जैसे—(1) सामान्य टाइम टेबल, (2) कक्षा टाइम टेबल, (3) अध्यापक टाइम टेबल, (4) मासिक और टर्म (Term) के अनुसार पाठ्यक्रम, (5) अध्यापको के खाली पीरियडो का टाइम टेबल, (6) अध्यापको की डायरियाँ, (7) गृहकार्य का रजिस्टर, (8) क्रियाएँ सौपने (Activity allotment) का रजिस्टर, (9) प्राइवेट ट्यूशन रजिस्टर

(ख) **प्रवेश तथा उपस्थिति से सम्बन्धित** (Dealing with Admissions and Attendance)—जैसे (1) दाखिला रजिस्टर, (2) खारिज रजिस्टर, (3) स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र पुस्तिका (Transfer Certificate Book), (4) विद्यार्थियो का हाजिरी रजिस्टर, (5) अध्यापको का हाजिरी रजिस्टर।

(ग) **परीक्षाओं से सम्बन्धित** (Dealing with Examination)—जैसे (1) मासिक प्रगति रजिस्टर, (2) वार्षिक परीक्षा प्रमाण रजिस्टर, (3) विद्यालय बोर्ड विश्वविद्यालय का परीक्षा प्रमाण रजिस्टर, (4) सचित अभिलेख रजिस्टर (Cumulative Record Register)।

(घ) **निरीक्षण तथा परिनिरीक्षण से सम्बन्ध** (Dealing with Supervision and Inspection)—जैसे (1) मुख्याध्यापक का निरीक्षण रजिस्टर, (2) मुख्याध्यापक की इन्सट्रक्शन बुक (Headmaster's Instruction Book), (3) मुख्याध्यापक की ओदश पुस्तिका (Order Book), (4) दण्ड रजिस्टर (Punishment Register), (5) सम्मान उल्लेख रजिस्टर (Honours Roll Register), (6) विद्यार्थियो का स्वास्थ्य रिकॉर्ड, (7) रोचक कार्यों (Hobbies) का रिकॉर्ड, (8) निर्देशन रिकॉर्ड (Guidance Record)।

स्टेट शिक्षा कोड (State Educational Code) के अनुसार प्रत्येक स्वीकृत विद्यालय मे निम्नलिखित रजिस्टरो तथा अभिलेखो की व्यवस्था होनी चाहिए—

(1) स्टेट शिक्षा कोड की एक प्रति, (2) दाखिला खारिज रजिस्टर, (3) विद्यार्थियो का हाजिरी रजिस्टर, (4) अध्यापको का हाजिरी रजिस्टर, (5) कैश बुक, (6) आँकड़ा रजिस्टर (Statistics Register), (7) अध्यापको का वेतन रजिस्टर, (8) दण्ड रजिस्टर, (9) लॉग बुक, (10) छात्रवृत्ति (Scholarships) रजिस्टर, (11) यात्री विवरण पुस्तिका (Visitors Book), (12) शुल्क रजिस्टर (Fee Register), (13) ऑर्डर बुक, (14) प्राइवेट ट्यूशन रजिस्टर, (15) विद्यार्थियो का व्यवहार रजिस्टर, (16) पुस्तकालय सूची तथा पुस्तकालय निष्कासन रजिस्टर (Issue Register), (17) विद्यालय परीक्षा तथा विभागीय परीक्षाओ के परिणाम रजिस्टर, (18) सम्पत्ति (Property) रजिस्टर, (19) फण्ड रजिस्टर, (20) पत्र व्यवहार रजिस्टर।

26.8 : महत्त्वपूर्ण विद्यालय अभिलेख एवं रजिस्टरों का विवरण (DESCRIPTION OF IMPORTANT SCHOOL RECORDS AND REGISTERS)

1. विद्यालय कैलेण्डर (School Calendar)—विद्यालय कैलेण्डर पूर्व नियोजित होता है और वर्ष के आरम्भ मे तैयार किया जाता है। यह विद्यालय का उपयोगी अभिलेख है। यह विद्यालय का दर्पण है जो वर्ष मे होने वाली पाठ्य-क्रियाओ तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ की तिथियो को प्रतिबिम्बित करता है। इसमे निम्नलिखित बातो का उल्लेख होना चाहिए—

1. सभी छुटिटयाँ—स्थानीय, गजटिड (Gazetted) तथा लम्बी छुट्टियाँ।
2. मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एव वार्षिक रिपोर्ट भेजने की तिथियाँ।
3. मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक तथा सार्वजनिक परीक्षाओ की तिथियाँ।
4. विभागीय तथा बोर्ड की परीक्षाओ के दाखिला फार्म भेजने की तिथियाँ।
5. विद्यालय क्लबो तथा सभाओ की मीटिग की तिथियाँ।
6. स्टाफ मीटिग की तिथियाँ।

7 महत्त्वपूर्ण विद्यालय समारोहों, जैसे—पारितोषिक वितरण, अभिभावक दिवस, खेल दिवस, विद्यालय फाउण्डेशन दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि की तिथियाँ।

8 स्थानीय भ्रमणों तथा यात्राओं की तिथियाँ।

9 विद्यालय टूर्नामेण्ट की तिथियाँ।

इस प्रकार विद्यालय कैलेण्डर विद्यालय क्रियाओं के विधिवत् संगठन को सुनिश्चित बनाता है, एवं विद्यालय कार्य को नियमित बनाता है। यह प्रशासक, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए सहायक होता है।

2. लॉग बुक (Log Book)—शिक्षा नियमों के अनुसार प्रत्येक विद्यालय की लॉग बुक होनी चाहिए। इसे निरीक्षण व परिनिरीक्षण के लिए विशेष रूप से तैयार किया जाता है। इसमें निरीक्षण अधिकारी विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं की प्रगति तथा उपलब्धियों का उल्लेख करता है। हमारे विद्यालय में इसके अन्तर्गत विद्यालय की सभी क्रियाओं का उल्लेख होना चाहिए। इस प्रकार इसमें विद्यालय के प्रचलन, शिक्षण कोर्सों, नवीन शिक्षण विधियों, विद्यालय में नई सुविधाओं की व्यवस्था, निरीक्षकों द्वारा स्वीकृत शिक्षा योजनाओं, निरीक्षण अधिकारियों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आगमन, किसी महामारी या अन्य किसी आघात स्थिति के कारण विद्यालय बन्द होने तथा फिर खुलने की तिथि आदि बातों का उल्लेख होना चाहिए। लॉग बुक में यह सब उल्लेख मुख्याध्यापक द्वारा किये जाने चाहिए। लॉग बुक वस्तुत विद्यालय की डायरी है। इसमें केवल तथ्यों का ही उल्लेख होना चाहिए, तथ्यों पर अपने विचारों को प्रकट नहीं किया जाना चाहिए। भावी सन्दर्भ के लिए यह विद्यालय का स्थायी रिकॉर्ड है।

3. कैश बुक (Cash Book)—विद्यालय में कैश बुक की व्यवस्था भी सावधानी से होनी चाहिए। इसमें प्रतिदिन और प्रति मास किये जाने वाले खर्चे का लेखा-जोखा होता है। इसके दो भाग (Credit) में विभिन्न साधनों से प्राप्त धन का उल्लेख होता है, जैसे—शुल्क, फाइन, फण्ड, छात्रवृत्तियाँ, सहायक अनुदान, एडहॉक अनुदान आदि और खर्च के खाते (Debit) में समुचित खातों का उल्लेख होता है जैसे कर्मचारियों के वेतन प्रॉविडेण्ट फण्ड, उपकरणों का खर्च, टेलीफोन का बिल, भवन का किराया, विद्यार्थियों को दी गयी छात्रवृत्तियाँ तथा खजाने में, बैंक में, डाकखाने में जमा कराई गई रकम आदि। कैश बुक लिखते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1 हर दिन पिछला बकाया (Balance) आगे ले आना चाहिए।

2 अन्तिम बकाया (Closing Balance) तथा आरम्भिक बकाया (Opening Balance) सदा से लाल स्याही में लिखा जाना चाहिए।

3 बकाया हमेशा प्लस (Plus) में होना चाहिए, माइनस (Minus) में नहीं।

4 दैनिक खाता मुख्याध्यापक के हस्ताक्षर के साथ समाप्त किया जाना चाहिए।

5 कैश बुक के इन्दराज (Entries) अन्य रजिस्टरों के सम्बन्धित इन्दाज से मेल खाने चाहिए, जैसे—कण्टिनजैण्ट रजिस्टर, प्रवेश शुल्क रजिस्टर, मेडिकल रजिस्टर, खेल लेखा रजिस्टर आदि। कैश बुक के इन्दराज (Entries) पासबुक (Passbook) तथा चालान (Challan) के इन्दराजों से भी मेल खाने चाहिए।

कैश बुक के अनुपूरक के रूप में लेजर (Ledger) तैयार किया जाना चाहिए। कैश बुक के सभी इन्दराज (Entries) लेजर में दर्ज किये जाने चाहिए। यह प्रक्रिया वार्षिक रिपोर्ट तथा बोकड़ तैयार करने में सहायता प्रदान करती है।

4. **दाखिला और खारिजा रजिस्टर** (Admission and Withdrawal Register)—दाखिला और खारिजा रजिस्टर विद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह विद्यालय मे दाखिल होने तथा विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियो का अभिलेख है, क्योकि विभाग के आदेशानुसार इसे स्थायी रूप से रखना होता है, इसलिए इसकी मजबूत जिल्द होनी चाहिए। दाखिल होने वाले विद्यार्थी से सम्बन्धित निम्नलिखित बातो का उल्लेख होना चाहिए—

(i) क्रमाक, (ii) दाखिले की तिथि, (iii) विद्यार्थी का नाम, (iv) उसके पिता का नाम, (v) व्यवसाय, (vi) पता, (vii) जन्मतिथि, (viii) जाति (पिछड़ी जाति या नही), (ix) किस कक्षा मे दाखिल हुआ, (x) खारिज होने की तिथि, (xi) नाम खारिज करते समय विद्यार्थी किस कक्षा मे पढ़ता था, (xii) विशेष कथन।

यद्यपि रजिस्टर मे लिखे जाने वाली प्रत्येक बात महत्त्वपूर्ण होती है, परन्तु मुख्याध्यापक को विद्यार्थियो की जन्मतिथियो का विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योकि कई महत्त्वपूर्ण बातो मे दस्तावेजी साक्षी के रूप मे इसकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिए जन्मतिथि बिल्कुल ठीक लिखी जानी चाहिए। यह अको और शब्दो दोनो मे लिखी जानी चाहिए क्योकि इसका उत्तरदायित्व मुख्याध्यापक पर होता है, इसलिए उसे इसके प्रत्येक पृष्ठ की पड़ताल करनी चाहिए।

जब किसी विद्यार्थी का नाम लम्बी अनुपस्थिति या शुल्क न देने के कारण खारिज कर दिया जाता है या वह विद्यालय छोड़ देता है तो उसका स्पष्ट उल्लेख 'विशेष कथन' मे किया जाना चाहिए। विद्यालय छोड़ने का प्रमाण-पत्र देते समय मुख्याध्यापक को इस बात की पड़ताल कर लेनी चाहिए कि प्रमाण-पत्र पर जन्मतिथि का ठीक उल्लेख किया गया है या नही।

हर नये वर्ष मे दाखिले का नया क्रमाक दिया जाना चाहिए। पुन प्रवेश (Re-admission) को नया क्रमाक देने की आवश्यकता नही। वर्णमाला क्रम (Alphabetical index) के अनुसार व्यवस्था करने मे असुविधा भी नही होती और काम की गति मे भी तेजी आती है।

5. **विद्यार्थियों का हाजिरी रजिस्टर** (Pupils' Attendance Register)—विद्यार्थियो का हाजिरी रजिस्टर प्रत्येक विद्यालय के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक सैक्शन के विद्यार्थियो का हाजिरी रजिस्टर होना चाहिए। अच्छा हो, यदि उसमे विद्यार्थियो के नाम वर्णमाला क्रम से लिखे जायें। हाजिरी दो बार लगायी जानी चाहिए—एक विद्यालय खुलते समय और दूसरा विद्यालय बन्द होते समय। जो विद्यार्थी उपस्थित हो उनके नाम के आगे 'P', जो छुट्टी पर हो, उनके नाम के आगे 'L' और जो अनुपस्थित हो उनके नाम के आगे 'A' लिखा जाना चाहिए। जिन विद्यार्थियो की छुट्टी का प्रार्थना-पत्र अध्यापक/मुख्याध्यापक द्वारा स्वीकार किया गया हो, केवल उन्ही के नाम के आगे 'L' लिखा जाना चाहिए। शेष अनुपस्थित विद्यार्थियो के नाम के आगे 'A' ही लिखा जाना चाहिए। देर से आने वाले विद्यार्थियो को ताड़ना करनी चाहिए। क्योकि विद्यार्थियो के लिए 75% उपस्थितियाँ आवश्यक है इसलिए अनुपस्थित रहने के आदी विद्यार्थियो को सचेत करते रहना चाहिए। यदि कोई विद्यार्थी छ दिन लगातार अनुपस्थित रहता है तो उसका नाम काट देना चाहिए।

हाजिरी रजिस्टर मे कोई स्थान रिक्त नही होना चाहिए। रविवार तथा अन्य छुट्टियो का भी उचित स्थान पर उल्लेख किया जाना चाहिए। विद्यार्थियो से ली गई फीस, जुर्माने, फण्ड आदि उसी दिन दर्ज किये जाने चाहिए जिस दिन लिये जाये। मास के अन्तिम दिन कक्षा अध्यापक द्वारा मास मे एकत्रित की गई कुल राशि, मास के आरम्भ मे विद्यार्थियो की कुल सख्या, मास के अन्त मे विद्यार्थियो की सख्या, मास मे कार्य के कुल दिन, प्रत्येक विद्यार्थी की कुल हाजरियाँ आदि का विवरण तैयार करना होता है।

किसी अन्य अध्यापक द्वारा रजिस्टर की पड़ताल की जानी चाहिए और फिर उस पर मुख्य [illegible] हस्ताक्षर होने चाहिए।

6. **अध्यापकों का उपस्थिति रजिस्टर** (Teachers' Attendance Register)—प्रत्येक [illegible] मे अध्यापको का उपस्थिति रजिस्टर भी अत्यावश्यक है। इसमे अध्यापक स्वय अपने हाथ से [illegible] उपस्थिति लगाते है और उसमे विद्यालय आने तथा विद्यालय से जाने का समय भी [illegible] है। [illegible] रजिस्टर प्राय मुख्याध्यापक के कमरे के बाहर या स्टाफ रूप मे रखा रहता है। जब भी कोई अध्यापक [illegible] विद्यालय आता है वह अपने नाम के सामने आने का समय तथा अपने हस्ताक्षर कर देता है। मुख्याध्यापक को इस रजिस्टर की पड़ताल करनी चाहिए ताकि उसे पता चल सके कि कितने अध्यापक उपस्थित है, कितने छुट्टी पर है। कितने अनुपस्थित है तथा कितने देर से आये है। मुख्याध्यापक को भी अपनी उपस्थित लगानी चाहिए। रजिस्टर मे छुट्टियो का उल्लेख भी होना चाहिए।

प्रत्येक अध्यापक के नाम के नीचे उसके द्वारा ली गयी छुट्टियो तथा उसकी कुछ [illegible] का विवरण लिखने को स्थान होता है। मास के अन्त मे मुख्याध्यापक को प्रत्येक अध्यापक द्वारा ली गयी छुट्टियो का विवरण उचित स्थान पर लिखना चाहिए।

7. **स्टॉक रजिस्टर** (Stock Register)—यह विद्यालय की चलित सम्पत्ति (Movable Property) का रजिस्टर होता है। इसमे विद्यालय के फर्नीचर तथा अन्य उपकरणो का विवरण होता है। इसे सम्पत्ति रजिस्टर (Property Register) भी कहते है। इसमे निम्नलिखित इन्दराज होते है—

(i) खरीदने की तिथि, (ii) वस्तु का नाम, (iii) खरीदी गयी वस्तु की संख्या, (iv) [illegible] (v) जिस फर्म से खरीदी गयी, उसका नाम, (vi) उसकी खरीद का आदेश देने वाला अधिकारी [illegible]

विद्यालय का मुख्याध्यापक विद्यालय की समाप्ति का सरक्षक होता है। इसलिए समाप्ति [illegible] की सुव्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। वर्ष मे कम से कम एक बार मुख्याध्यापक को [illegible] करनी चाहिए और उस पर 'सही' करना चाहिए। प्रत्येक कमरे के लिए दिये गये फर्नीचर [illegible] बनाकर फर्नीचर की पड़ताल को सुविधाजनक बनाया जा सकता है। जब कोई वस्तु खराब [illegible] प्रयोग करने के योग्य न रहे तो मुख्याध्यापक से उसको नीलाम करवा देना चाहिए और [illegible] फाइल मे रिकॉर्ड रखा जाना चाहिए। पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला के लिए पृथक स्टॉक [illegible] व्यवस्था होनी चाहिए। वर्ष मे एक बार समूचे स्टॉक की पड़ताल की जानी चाहिए।

8. **सेवा रजिस्टर (सेवा पुस्तिका)** (Service Register or Service Book)—सेवा [illegible] विद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी का सेवा सम्बन्धी विवरण होता है। अत विद्यालय मे काम [illegible] प्रत्येक कर्मचारी के लिए सेवा पुस्तिका की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमे कर्मचारी के सम्ब [illegible] निम्नलिखित बातो का उल्लेख होता है—

(i) नियुक्ति तथा तबादले की तिथि, (ii) जन्मतिथि, (iii) शैक्षिक योग्यता, (iv) पहचान चिह्न, (v) घर का स्थायी पता, (vi) वैतनिक या अवैतनिक असामान्य छुट्टियाँ, (vii) विभिन्न समय पर वेतन [illegible] (viii) नये वेतनमान मिलने की तिथि, (ix) निपुणता रोक पार करने की तिथि, (x) वेतन वृद्धि (xi) सस्थाओ या विभागो मे सेवा, (xii) तबादला, (xiii) निलम्बन (Suspension), (xiv) अवनति या कोई अन्य दण्ड, उन्नति (Promotion) या पुरस्कार आदि। इन तथ्यो का उल्लेख ठीक और स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। इस रजिस्टर के इन्दराज अन्य सम्बन्धित रजिस्टरो के इन्दराज से मेल खाने चाहिए।

हाई तथा हायर सेकण्डरी विद्यालय के कर्मचारियो की सेवा पुस्तिकाएँ मुख्याध्यापक के सरक्षण मे रहनी चाहिए। प्राइमरी तथा मिडिल विद्यालयो के कर्मचारियो की सेवा पुस्तिकाएँ क्रमश ब्लॉक शिक्षा अधिकारियो तथा जिला शिक्षा अधिकारी के सरक्षण मे रखी जानी चाहिए।

9. **वेतन रजिस्टर** (Acquittance Roll)—वेतन रजिस्टर मे बेसिक वेतन (Basic Pay), महँगाई भत्ता, अन्य भत्ता, प्रॉविडेण्ट फण्ड की कटौती, विद्यालय की प्रबन्धन कमेटी का हिस्सा, आयकर की कटौती, अन्य कटौतियाँ तथा कुल देयराशि का उल्लेख होता है। प्रत्येक मास कर्मचारी अपने नाम के सामने रसीदी टिकट लगाकर और हस्ताक्षर करके वेतन प्राप्त करते है। यह रजिस्टर हमेशा पूर्ण रहना चाहिए और इसकी सुव्यवस्था होनी चाहिए क्योकि निरीक्षण के समय इसकी विशेष पड़ताल की जाती है।

10. **विद्यार्थियो का फण्ड रजिस्टर** (Pupils' Fund Register)—यह रजिस्टर विद्यार्थियो के प्रत्येक फण्ड की मासिक आय और व्यय को दर्शाता है, जैसे (i) अमलगामेटिड फण्ड (Amalgamated Fund), (ii) हैल्थ फण्ड (Health Fund), (iii) रैडक्रॉस फण्ड (Redcross Fund), (iv) साइकिल फण्ड। मुख्याध्यापक ही इन सभी फण्डो का इचार्ज होता है। अन्य किसी भी अधिकर्त्ता को इन फण्डो मे कुछ भी खर्च करने का अधिकार नही होता। मुख्याध्यापक को इन फण्डो का विद्यार्थियो के हित एव विकास के लिए सदुपयोग करना चाहिए। अमलगामेटिड फण्ड पुस्तकालय, छपाई, स्काउटिगए भ्रमण आदि के लिए खर्च किया जाता है। प्रत्येक खर्च के औचित्य के सम्बन्ध मे विभाग की ओर से समय-समय पर आदेश जारी किये जाते है। खर्च करते समय इन आदेशो का अच्छी तरह पालन किया जाना चाहिए। खर्च को औचित्यपूर्ण बनाने के लिए विद्यार्थियो तथा अध्यापको की एक परामर्श कमेटी बनानी चाहिए और समय-समय पर इस कमेटी का परामर्श लेते रहना चाहिए। विद्यार्थियो से अनुचित फण्ड एकत्रित नही करने चाहिए क्योकि ऐसा करने से अनुशासनहीनता की सम्भावना बढ़ जाती है। सभी फण्डो का उचित तथा न्यायसगत प्रयोग किया जाना चाहिए। इन फण्डो के आय-व्यय का सम्पूर्ण विवरण नियमित रूप से विद्यार्थी फण्ड रजिस्टर मे किया जाना चाहिए।

11. **कण्टिनजैंसी रजिस्टर** (Contingency Register)—इस रजिस्टर मे दैनिक छोटे-मोटे खर्चो का विवरण दिया जाता है, जैसे कार्यालय के लिए स्टेशनरी, डाक टिकटे, भवन और फर्नीचर की छोटी-मोटी मरम्मते आदि। सभी खर्चो की उचित रसीदे फाइल मे रखी जानी चाहिए।

12. **विद्यार्थियों की प्रगति रिपोर्ट** (Pupils' Progress Report)—विद्यार्थियो के माता-पिता को उनकी प्रगति रिपोर्ट भेजना एक प्रचलित परम्परा है। इसमे विद्यार्थी के द्वारा समय-समय पर किये गये कार्यो मे प्राप्त उपलब्धियो का विवरण होता है। यह विद्यार्थी की पढ़ाई मे उन्नति या अवनति, उसका स्वास्थ्य, पाठ्य-क्रियाओ तथा पाठ्य-सहायक क्रियाओ मे भाग लेना, गृहकार्य मे उसकी नियमितता, खेलो मे भाग लेना, अनुशासनहीनता की कोई घटना आदि का विवरण प्रस्तुत करती है।

मुहियुद्दीन (Mohiyuddin) के विचारानुसार, "विद्यार्थी के काम और प्रगति के रिकॉर्ड मे विद्यार्थी की विभिन्न विषयो मे उपलब्धियाँ तथा समय-समय पर कक्षा मे उसकी स्थिति का विवरण ही सम्मिलित नही होता बल्कि बुद्धि एव उपलब्ध परीक्षाओ मे उसके अंक, उसकी पाठ्य-सहायक क्रियाएँ तथा उन क्रियाओ मे उसकी प्राप्तियो, उसकी व्यावसायिक रुचियो, उसकी योग्यताओ तथा कमजोरियो, उसके स्वास्थ्य सम्बन्धी दोषो—वस्तुत उसके विद्यालयी जीवन के समूचे इतिहास को सम्मिलित किया जाता है।

विद्यार्थी की प्रगति रिपोर्ट उसके माता-पिता को वर्ष के दौरान समय-समय पर भेजी जाती है। इससे माता-पिता को उनके बच्चो की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एव सामाजिक प्रगति की सूचना देने का नैतिक और कानूनी कर्त्तव्य पूरा होता है। रिपोर्ट देखकर माता-पिता या अभिभावक उस पर अपने हस्ताक्षर करते है। यह रिपोर्ट माता-पिता और अध्यापक मे सम्पर्क स्थापित करने का सशक्त साधन है। विद्यार्थियो की प्रगति रिपोर्ट के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो की ओर ध्यान देना चाहिए—

1. माता-पिता को उनके बच्चो के काम के ठीक एव पूर्ण मूल्याकन की सूचना दी जानी चाहिए।

2. रिपोर्ट तैयार करने में सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

3. रिपोर्ट में लोकतान्त्रिक व्यवहार पर बल दिया जाना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत [illegible] पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

4. रिपोर्ट पद्धति समूचे विद्यालय के शिक्षा दर्शन के अनुसार होनी चाहिए।

13. **सचित अभिलेख कार्ड** (Cumulative record card)– सचित अभिलेख में [illegible] के विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सकलन होता है अर्थात् यह एक विद्यालय में विद्यार्थी के इतिहास का विवरण प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसा दस्तावेज है जो किसी विद्यार्थी के [illegible] सर्वतोमुखी विकास का पूर्ण एव व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। यह तब से आरम्भ होता है जब [illegible] विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करता है और यह उसके विद्यालय छोड़ने तक का विवरण देता है। कभी-कभी [illegible] विद्यालय के बाद का विवरण भी इसमें दिया जाता है। सचित अभिलेख का महत्त्व बताते हुए **सेकण्डरी शिक्षा आयोग** ने कहा है, "इसे समूचे देश के सभी विद्यालयों का सामान्य तत्त्व बनाना चाहिए।" सचित अभिलेख का विस्तार से वर्णन नीचे किया जा रहा है।

26.9 : संचित अभिलेख (CUMULATIVE RECORD)

राइटस्टोन तथा अन्य के विचार (View of Wrightstone and Others)– "सचित [illegible] विद्यार्थियों के निर्देशन के लिए आवश्यक सूचना रिकॉर्ड करने, फाइल करने तथा प्रयुक्त [illegible] है। यह प्रत्येक विद्यार्थी के शैक्षिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक तथा भावात्मक विकास [illegible] सम्बन्धी सूचना प्रस्तुत करता है।"

"The cumulative record is a method for recording, filing and using [illegible] essential to the guidance of students. It represents a cumulative individual [illegible] the educational, mental, physical, social and emotional development of each [illegible]

–**Wrightstone and Others**

जोन्स का विचार (View of Jones)– "सचित अभिलेख विद्यार्थी का स्थायी [illegible] विद्यालय द्वारा आधुनिकतम तिथि तक रखा जाता है। यह उसका शैक्षिक इतिहास है जो उसकी [illegible] की उपलब्धियों, उपस्थितियों, स्वास्थ्य, अंकों तथा इसी प्रकार की अन्य आधार सामग्री की सूचना [illegible] करता है।"

"A cumulative record is a permanent record of a student which is kpt up-to-d by the school. It is the educational history with information about his schol achievement, attendance, health, test scores and similar pertinent data. –**Jones**

जोन वार्टर्ज का विचार (View of Jone Warters)– विभिन्न विधियों परीक्षाओं सूचिकाओं प्रश्नावलियों, निरीक्षण, साक्षात्कार, केस अध्ययन, केस सम्मेलनों के प्रयोग से समय-समय पर एकत्रित विद्यार्थियों की महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को सचित अभिलेख में सारांश रूप में संचित किया जाना चाहिए।

"Periodically the significant information gathered on students through the use of various techniques, tests, inventories, questionnaires, observation, interview, case study, case conferences and the like–should be assembled in summary form on a cumulative record."

–**Jone Warters**

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि सचित अभिलेख व्यक्ति के महत्त्वपूर्ण तथ्यो का विधिवत एकत्रीकरण है—ये तथ्य एक निश्चित काल मे उसके व्यक्तित्व को प्रकट करते है। दूसरे शब्दो मे सचित अभिलेख विद्यालय मे बच्चे का इतिहास प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसा दस्तावेज है जो बच्चे के व्यक्तित्व के पूर्ण विस्तृत एव वृद्धिशील चित्र को प्रस्तुत करता है। यह तब आरम्भ होता है जब बच्चा विद्यालय मे दाखिल होता है ओर तब तक चलता है जब तक बच्चा विद्यालय मे रहता है। कई स्थितियो मे यह उसके विद्यालयी जीवन के बाद भी बना रहता है और इसमे व्यक्ति की सफलताओ तथा असफलताओ का उल्लेख किया जाता है, परन्तु विद्यालयी जीवन के बाद का ब्यौरा बहुत कम दिया जाता है अर्थात् सचित अभिलेख प्राय विद्यालयी जीवन तक ही सीमित रहता है।

(It can be concluded that the cumulative record is a systematic accumulation of significant factual information about an indidual, developed and maintained over sufficient period of time In other words, the culumative record is an account of child's history in the school It is a document which presents a complete, detailed and growing picture of the personality of a child. It begins as soon as the child enters the school and continues till he leaves school for good. In some cases it may be kept even beyond school, the success of an individual or otherwise and his adjustment may be mentioned. However, this would rarely be done.)

26.9.1 संचित अभिलेख के प्रकार या नमूने (Types or Designs of Cumulative Record)

1. फोल्डर (Folder)—यह एक बड़ा कार्ड होता है जिसे कई भागो मे मोड़ा अर्थात् फोल्ड किया जा सकता है। प्राय इसके आठ भाग और सोलह पृष्ठ होते है। पहले चार भाग स्थायी प्रकृति के रिकॉर्ड के लिए होते है और अगले चार भाग समय-समय पर उस द्वारा प्राप्त उपलब्धियो के रिकॉर्ड के लिए होते है।

2. फाइल (File)—फाइल मे भी सचित अभिलेख रखा जा सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक फाइल रखी जा सकती है। फाइल का कवर मजबूत और मोटा होना चाहिए। विद्यार्थी का नाम तथा अन्य आवश्यक पहचान सूचना फाइल के मुख्य पृष्ठ पर दी जानी चाहिए। प्रत्येक अवधि वर्ष मे उस द्वारा प्राप्त उपलब्धियो तथा की गई क्रियाओ का विवरण अलग पृष्ठो पर दिया जाना चाहिए और इन पृष्ठो को फाइल मे यथास्थान लगाते जाना चाहिए।

3. लिफाफा (Envelope Type)—उपर्युक्त फाइल को यदि तीन दिशाओ से बन्द करके एक दिशा मे खुला रखा जाये तो वह लिफाफा बन जायेगा। विद्यार्थी की स्थायी पहचान सूचना सामने वाले तथा पिछले कवर पर दी जानी चाहिए। समय-समय पर उसकी क्रियाओ एव उपलब्धियो को अलग पृष्ठो पर लिखकर और उन्हे नत्थी करके लिफाफे मे रखते रहना चाहिए।

सुविधानुसार उपर्युक्त तीन नमूनो मे से कोई नमूना अपनाया जा सकता है।

26.9.2 संचित अभिलेख की सामग्री (Contents of the Cumulative Record)

समूची आधार सामग्री (Data) को निम्नलिखित शीर्षको मे बाँटा जा सकता है—

1. पहचान सामग्री (Identifying Data)—विद्यार्थी का नाम, आयु, सैक्स, जन्म-तिथि, पता।

2. घर तथा परिवार की पृष्ठभूमि (Home and Family Background)—परिवार का सामाजिक एव आर्थिक स्तर, भाई-बहिनो की गिनती, उनकी शिक्षा तथा व्यवसाय।

3. **स्वास्थ्य सामग्री** (Health Data)—कद, भार, दृष्टि, श्रवण, हृदय गति, छाती, शारीरिक द तथा कोई अन्य विशेष कथन।

4. **मनोवैज्ञानिक सामग्री** (Psychological Data)—बुद्धि, रुचियों, अभिरुचियों, व्यक्तित्व, भा एव सामाजिक समायोजन तथा अन्य मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ।

5. **शैक्षिक सामग्री** (Educational Data)—विद्यालय के अक, विद्यालय में उपस्थिति, पाठ्य-सहायक क्रियाओ एव खेलो मे भाग लेना, साहित्यिक क्रियाओ, सामाजिक क्रियाओ, मनोरंज क्रियाओ, सामूहिक प्रार्थना आदि में योगदान।

6. **व्यावसायिक सामग्री** (Vocational Data)—विद्यार्थी की व्यावसायिक आकाक्षाएँ।

7. **व्यक्तित्व के गुण** (Personality Traits)—ईमानदारी, समय-पालन, आज्ञापालन, सहयो बौद्धिक योग्यताएँ, सामान्य व्यवहार।

8. **व्यक्तिगत राय** (Personal opinion)—परामर्शदाता, अध्यापक या मुख्याध्यापक की व्यक्तिगत राय।

26.9.3 संचित अभिलेख पत्र की विशेषताएँ (Chracteristics of Cumulative Record Card)

1. **वस्तुपरकता एवं विश्वसनीयता** (Objectivity and Reliability)—सचित अभिलेख पत्र में दी गयी सूचनाएँ वस्तुपरक एव विश्वसनीय होनी चाहिए। ये किसी प्रकार के पक्षपात, भ्रम तथा कल्पना पर आधारित नही होनी चाहिए।

2. **शुद्धता एवं प्रामाणिकता** (Accuracy and Validity)—सचित अभिलेख पत्र में दी गई सूच यथासम्भव शुद्ध तथा प्रामाणिक होनी चाहिए। गलत सूचना देने की अपेक्षा सूचना न देना उत्तम है की रिक्तता इसे सदिग्ध बना देगी।

3. **निरन्तरता** (Continuity)—यह विद्यार्थी का निरन्तर रिकॉर्ड होना चाहिए। इसमें

4. **मितव्ययता** (Economy)—सीमित स्थान मे अधिक से अधिक सूचना दी अनावश्यक विस्तार से बचना चाहिए। उल्लेख सक्षिप्त रूप से होना चाहिए।

5. **प्रयोगात्मकता** (Usability)—सूचना का इस प्रकार उल्लेख किया जाना चाहिए आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सके।

6. **तात्कालिक** (Recency)—जब भी सूचना प्राप्त हो, उसे तत्काल लिख लेना चाहिए भूल न जाये।

7. **व्यापकता** (Comprehensiveness)—सचित अभिलेख मे यथासम्भव सभी सूचनाएँ सम्म होनी चाहिए। उसमे सभी तत्त्वो से सम्बन्धित स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उसमे सूचना स्पष्ट तथा पूर्ण होनी चाहिए।

8. **सुप्राप्य** (Accessibility)—सचित अभिलेख अध्यापको, मुख्याध्यापक तथा परामर्शदाता सुप्राप्य होना चाहिए।

9. **सहयोगात्मक कार्य** (Co-operated Venture)—सचित अभिलेख की व्यवस्था मे सभी अध्यापको को सहयोग प्रदान करना चाहिए।

10. **मूल्यांकन** (Evaluation)—सचित अभिलेख का कुछ समय के पश्चात या वार्षिक मूल्याकन किया जाना चाहिए ताकि मालूम हो सके कि वह कहाँ तक उपयोगी है।

11. **एकात्मकता** (Uniformity)—समूचे प्रान्त मे सचित अभिलेख का एकात्मक आधार होना चाहिए। परन्तु स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार उसमे कुछ परिवर्तन की भी गुजाइश होनी चाहिए।

26.9.4 सचित अभिलेख पत्र के लाभ (Advantages of Cumulative Record Card)

1. **विद्यार्थी का ज्ञान** (Knowledge of Pupil)—सचित अभिलेख से अध्यापक विद्यार्थी की योग्यताओ, क्षमताओ, रुचियो, अभिरुचियो, शैक्षिक एव गैर-शैक्षिक क्षेत्र की उपलब्धियो, सामाजिक गुणो आदि को अच्छी तरह जान सकता है। **भारतीय शिक्षा आयोग** (Indian Education Commission) के शब्दो मे सचित अभिलेख पत्र प्रत्येक स्तर पर विद्यार्थी के विकास, उसकी शैक्षिक एव भावात्मक समस्याओ, उसकी समायोजन की समस्याओ तथा उसके समाधान के उपचार को दर्शाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

2. **बाहर से विद्यार्थी** (Migration Cases)—दूसरे विद्यालयो से आये हुए विद्यार्थियो को नये वातावरण मे समायोजित करने मे विद्यालय अधिकारियो को सचित अभिलेख पत्र से बहुत सहायता मिलती है।

3. **चुनाव और पदोन्नति** (Selection and Promotion)—सचित अभिलेख विद्यालय के विभिन्न कार्यों तथा बाद मे जीवन के विभिन्न कार्यों के लिए व्यक्ति के चुनाव और उसकी पदोन्नति मे सहायक सिद्ध होता है।

4. **खोज और निदान** (Research and Diagnosis)—सचित अभिलेख पत्र प्रतिभाशाली तथा पिछड़े हुए विद्यार्थियो को खोजने मे सहायता प्रदान करते है। ये कु-आयोजित विद्यार्थियो के निदान और उपचार मे भी सहायता प्रदान करते है।

5. **अध्यापक और माता-पिता में सम्पर्क** (Link between Teacher and Parents)—सचित अभिलेख अध्यापको और विद्यार्थियो के माता-पिता मे सम्पर्क स्थापित करता है। अध्यापको के लिए इस अभिलेख के आधार पर सम्बन्धित विद्यार्थी के माता-पिता को विस्तृत पत्र लिखना सुविधाजनक रहता है।

6. **प्रमाण-पत्र तैयार करना** (Preparing Certificates)—सचित अभिलेख पत्र चरित्र प्रमाण-पत्र पर तथा खेल प्रमाण-पत्र तैयार करने मे सहायता प्रदान करते है।

7. **शिक्षण विधियों में सुधार** (Improving Methods of Teaching)—सचित अभिलेख विद्यार्थियो की आवश्यकताओ के अनुसार शिक्षण विधियो के सुधार मे सहायता प्रदान करते है।

8. **शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन** (Providing Educational and Vocational Guidance)—सचित अभिलेख मे प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक, व्यावसायिक एव मनोविज्ञान आधार सामग्री प्रस्तुत होती है। यह सामग्री शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन का आधार बनती है।

9. **नये अध्यापक के लिए उपयोगी** (Useful for New Teacher)—सचित अभिलेख पत्र नये अध्यापक के लिए विद्यार्थियो की उपलब्धियो, आवश्यकताओ, समस्याओ, शक्तियो आदि का ज्ञान प्राप्त करने मे उपयोगी सिद्ध होते है।

10. **मूल्यांकन के लिए उपयोगी** (Useful for Evaluation)—सचित अभिलेख वस्तुपरक मूल्यांकन के लिए आवश्यक आधार सामग्री प्रदान करता है। इस प्रकार व्यक्तिपूरक मूल्यांकन के दोषो से बचा जा सकता है।

11. **नौकरी पर लगाने वाले के लिए उपयोगी** (Useful for the Employer)—ये नौकरी पर लगाने वाले के लिए भी उपयोगी है क्योकि इनकी सहायता से वह प्रत्याशियो की योग्यताओ, रुचियो, शक्तियो एव क्षमताओ का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

12. **आत्मबोध में सहायक** (Helpful in Self-understanding)—सचित अभिलेख विद्यार्थी के ...ए भी उपयोगी है क्योंकि यह उसे इस बात का निश्चय दिलाता है कि विद्यालय को उसमे रुचि है ...के द्वारा वह अपने आपको भी अच्छी तरह समझ सकता है और स्वय आवश्यक निर्णय ले सकता है।

सचित अभिलेख के महत्त्व का उल्लेख करते हुए **जॉन वार्टर** (Jone Warter) ने कहा है "यह ...अध्यापको को व्यक्ति के अध्ययन मे सहायता प्रदान करता है क्योंकि इसके द्वारा वे व्यक्ति के भूत का ...विश्लेषण से उसके वर्तमान को समझ सकते है। यह उसके व्यवहार तथा उसकी कठिनाइयों ...कलताओ के कारणो को दर्शाता है और उसकी शक्तियो एव कमजोरियो को स्पष्ट करता है।"

26.9.5 सचित अभिलेख पत्रों की व्यवस्था तथा उनके प्रयोग की समस्याएँ (Problem in the Maintenance and Use of Cumulative Record Cards)

1. **यह अभिलेख कौन रखे ?** (Who should Maintain the Records ?)—सचित अभिलेख ...त्र या तो विषय अध्यापक द्वारा रखे जाने चाहिए या कक्षा अध्यापक द्वारा।

(i) **विषय अध्यापक** (Subject Teacher)—पहले विभिन्न विषयो के अध्यापको को समय-समय ...र विद्यार्थियो की उपलब्धियो का मूल्याकन करके रिकॉर्ड रखना चाहिए और फिर यह रिकॉर्ड कक्षा ...ध्यापक को भेज देना चाहिए।

(ii) **कक्षा अध्यापक** (Class Teacher)—कक्षा के सभी विद्यार्थियो का सचित अभिलेख तैयार ...रना कक्षा अध्यापक का कर्त्तव्य है। विभिन्न अध्यापको के आवश्यक इन्दराज (Entries) करवाना ...का दायित्व है। उसका दायित्व अन्य अध्यापको की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि उसे आधुनिकतम ...वे तक अभिलेख पूरा रखना होता है और इसके अतिरिक्त वह विद्यार्थियो के माता-पिता के साथ ...म्बन्ध स्थापन का काम भी करता है।

2. **सचित अभिलेख पत्र कहाँ रखे जायें ?** (Where to keep Cumulative Record Cards ?)—...चित अभिलेख पत्र कक्षा अध्यापक को अपने सरक्षण मे रखने चाहिए। परन्तु यह दूसरे अध्यापकों ...ो सुप्राप्य होने चाहिए ताकि वे आवश्यक बाते लिख सके। इतना होने पर भी ये गुप्त रखे जाने ...अच्छा हो, यदि ये मुख्याध्यापक के कमरे मे या स्टाफ के कमरे मे रखे जाये।

3. **सचित अभिलेख पत्र कब भरे जायें ?** (When to fill up Cumulative Record Cards ?)—...कार्य का रिकॉर्ड अध्यापक द्वारा रखा जाना चाहिए और पन्द्रह दिनो या महीने के पश्चात सचित ...भरा जाना चाहिए। किसी विशेष अवसर या परीक्षा से सम्बन्धित तथ्यो का उल्लेख उसी समय ...जाना चाहिए। प्रत्येक अध्यापक के पास अपनी एक नोटबुक होनी चाहिए जिसमे वह विद्यार्थियों ...व्यवहार का निरीक्षण करके तथ्यो का उल्लेख करता रहे और सुविधापूर्वक उनका उल्लेख सचित ...कर दे। होना तो यह चाहिए कि सभी अध्यापक सचित पत्र मे न लिखे बल्कि वे कक्षा अध्यापक को ...सभी तथ्य भेज दे और कक्षा अध्यापक उनका उल्लेख सचित पत्र मे करे। इस प्रकार सचित अभिलेख ...को विधिवत् एव सुव्यवस्थित रूप से रखना सम्भव हो सकेगा। अधिक व्यक्तियो के लिखने से उसकी ...सुन्दरता एव स्वच्छता समाप्त हो सकती है।

4. **सचित अभिलेख की व्यवस्था की पडताल कैसे की जाये ?** (How to Check the Maintenance of the Cumulative Record ?)—यह देखना मुख्याध्यापक का कार्य है कि सचित ...पत्रो मे सभी तथ्यो का उल्लेख नियमित रूप से हो रहा है या नही। उसे चार महीनो के पश्चात अभिलेख ...की पड़ताल करनी चाहिए और इस बात को देख लेना चाहिए कि वह नियमित रूप से हो रहा है या नही। ...वह अपना यह कार्य अपने सहायक या अपने किसी साथी को सौप सकता है ...

हस्ताक्षर अवश्य करने चाहिए। मुख्याध्यापक को विद्यार्थियो के माता-पिता को प्रगति रिपोर्ट भिजवाने का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

5. **अभिलेख का नमूना कैसा होना चाहिए** ? (What should be the Design of Records ?)– इसके सामान्यत तीन नमूने उपलब्ध है–(i) फोल्डर (Folder), (ii) फाइल (File), (iii) लिफाफा टाइप (Envelop type)। अधिकारियो को किसी उपयोगी नमूने का चुनाव कर लेना चाहिए।

6. **नये प्रवेश तथा स्थानान्तरण की समस्या** (Problem of new Admissions and Migrations)–नये प्रवेश तथा स्थानान्तरण की भी समस्या है। यदि कोई विद्यार्थी एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय चला जाये तो उसका सचित अभिलेख पत्र भी साथ जाना चाहिए। यह एक कक्षा तथा एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय मे जाना चाहिए।

7. **यह कार्य करने वाले अध्यापक की समस्या** (Problem of Teacher in Discharging the Functions)–यह कार्य करने वाले अध्यापक की निम्नलिखित रूप से सहायता की जानी चाहिए–

(i) **प्रशिक्षण** (Training)–सचित अभिलेख की व्यवस्था के लिए अध्यापक को प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए। सेकण्डरी शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया है कि राजकीय शिक्षा विभाग को यह प्रशिक्षण अध्यापक प्रशिक्षण कॉलेजो मे प्रदान करना चाहिए।

(ii) **आदर्श फार्म** (Model Form)–राज्य अधिकारियो को इसके लिए आदर्श फार्म तैयार करवाने चाहिए।

(iii) **पर्याप्त समय** (Adequate Time)–अध्यापको को सचित अभिलेख भरने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। यह काम महीने के अन्तिम दिन होना चाहिए। उस दिन कोई शिक्षण कार्य नहीं होना चाहिए।

(iv) **सुरक्षित रूप से रखने का प्रबन्ध** (Provision for Safe Custody)–सचित अभिलेख पत्रो को सुरक्षित रूप से रखने का प्रबन्ध होना चाहिए।

(v) **पर्याप्त निरीक्षण** (Adequate Inspection)–विद्यालय के वार्षिक निरीक्षण मे निरीक्षक द्वारा सचित अभिलेख पत्रो का उचित निरीक्षण होना चाहिए।

सेकण्डरी शिक्षा आयोग अनुभव करता है कि प्रशिक्षण, अभ्यास तथा मुख्याध्यापक एव निरीक्षण का समय-समय पर निरीक्षण करने से अध्यापक इस काम को सन्तोषजनक रूप से कर सकेगे। भारत का अध्यापक दायित्व निभाने मे किसी अन्य देश के अध्यापक से कम नही। बस, उसे स्पष्ट दिशा प्रोत्साहन एव सहानुभूति की आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. विद्यालय अभिलेखो का अर्थ व परिभाषा बताते हुए उनके महत्त्व व आवश्यकता का वर्णन कीजिए
2. विद्यालय अभिलेखो तथा रजिस्टरो के विभिन्न भेद लिखिये।
3. विद्यालय अभिलेखो के विभिन्न लक्ष्य लिखिये।
4. विद्यालय अभिलेखो के रख-रखाव का वर्णन कीजिए।
5. सचित अभिलेखो से क्या तात्पर्य है ? इनके प्रारूपो का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. छात्र उपस्थिति रजिस्टर से क्या तात्पर्य है ?
2. सचित अभिलेखो के प्रकारो का वर्णन कीजिए।
3. विद्यालय अभिलेखों के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
4. विद्यालय कैलेण्डर से क्या तात्पर्य है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. सचित अभिलेखो के प्रकार है–

   (अ) फोल्डर
   (ब) लिफाफा
   (स) फाइल
   (द) उपर्युक्त सभी

   उत्तर – द

2. विद्यालय कार्यालय मे रखी जाने वाली वस्तुएँ है–

   (अ) विविध अभिलेख
   (ब) प्रतिवेदन रजिस्टर
   (स) उपर्युक्त दोनो
   (द) इनमे से कोई नही

   उत्तर – स

3. विद्यालय कैलेण्डर मे उल्लेख किया जाता है–

   (अ) सभाओ की तिथि
   (ब) सभी छुट्टियाँ
   (स) विद्यालय टूर्नामेण्ट की तिथि
   (द) उपर्युक्त सभी

   उत्तर – द

□□

अध्याय

27

अभिभावक-शिक्षक संघ
[PARENT-TEACHERS ASSOCIATION]

एक अध्यापक को बहुत से कर्तव्य निभाने होते है। उसके कुछ कर्तव्य कक्षाकक्ष के अन्दर होते है और कुछ कक्षाकक्ष के बाहर। इस प्रकार जब वह स्कूल में होता है तब भी सेवा करता है और जब वह बाहर होता है तब भी—चाहे बाजार में हो, किसी बस्ती में हो या किसी अभिभावक से मिलने गया हो। बच्चो के माता-पिता से सम्बन्धो को सुदृढ़ करने की उससे उम्मीद की जाती है। आज की बदलती परिस्थितियो के कारण इस प्रकार के सम्बन्ध की स्थापना की बहुत माँग है। आज के विद्यार्थी को अनुशासित किए जाने की जरूरत है। उसका अधिकतर समय अध्यापको और अभिभावको की निगरानी मे व्यतीत होता है। अभिभावको एवं अध्यापको को मिल-जुलकर बच्चे की बेहतर वृद्धि एवं विकास के लिये उपाय सोचने चाहिये।

अभिभावक, अध्यापक एसोसिएशन की स्थापना का विचार नया नहीं है। इस प्रकार की सघ औपचारिक रूप से बनाई जा चुकी हैं। भूतकाल में, भले ही ऐसी संघ नहीं थीं, परन्तु अभिभावको एव अध्यापको में अच्छे सम्बन्ध थे। अभिभावक, अध्यापक संघ का उद्देश्य तब अधिक अच्छी तरह से पूरा होता था। अभिभावक एवं अध्यापक एक-दूसरे से मिलना पसन्द करते थे और स्कूल, विद्यार्थी या सामान्य रूप से समाज से सम्बन्धित मुद्दों पर विचार करते थे। इसके पीछे बहुत से कारण हो सकते हैं–

1. अध्यापको एव विद्यार्थियों की संख्या कम थी।

2. सामान्य जीवन ऐसा नहीं था जैसा कि आजकल है, अभिभावक और अध्यापक अक्सर अपनी कुछ समस्याओ पर विचार-विमर्श करने के लिये मिला करते थे।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हमे ऐसे संघो की स्थापना करनी चाहिये अथवा क्या इन दोनो मे सम्बन्ध अपने आप सुदृढ हो सकते है। आज का व्यस्त जीवन अध्यापको एवं अभिभावको मे प्राय अनौपचारिक मुलाकातो पर नियन्त्रण रखता है। इसलिये, परिस्थितियो की माँग है कि औपचारिक रूप से ऐसे सघो की स्थापना की जाए।

27.1 : अभिभावक-शिक्षक संघ की स्थापना कैसे ?
(HOW TO ESTABLISH PARENT-TEACHERS ASSOCIATION ?)

किसी-न-किसी को तो इसके लिये पहल करनी पड़ेगी। सस्था के मुखिया या किसी अध्यापक को सामने आना चाहिये और ऐसे संघ के निर्माण को व्यावहारिक रूप देना चाहिये। वास्तव संघ को बनाना कोई कठिन कार्य नहीं है, परन्तु इसकी उचित कार्यप्रणाली के लिये विशेष सावधानी ध्यान की आवश्यकता है। ऐसे संघ के ठीक प्रकार से काम करने के लिये इस दिशा मे शुरू से ही कदम उठाए जाने चाहिये।

क्या और कैसे ? (What and How ?)—1. लक्ष्य और उद्देश्य निश्चित होने चाहिये। वे सामान्य रुचि के होने चाहिये। बच्चे का सुधार प्रत्येक व्यक्ति का प्रण होना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक प्रयत्न किये जाने चाहिये।

2. संघ के कार्यकारी सदस्य चुने जाने चाहिये। ऐसा करते हुए कुछ अभिभावको को सामान शामिल किया जाना चाहिये। किसी भी तरह से किसी भी स्थिति मे केवल अध्यापको का ही चुनाव किया जाना चाहिये।

3. कार्यकारी सदस्यों का चुनाव नहीं होना चाहिये। स्कूल जीवन की पवित्रता या अभिभावको सघ जो स्कूल पाठ्यक्रम का ही भाग है, में किसी प्रकार की राजनीति प्रवेश नही करनी चाहिये।

4. प्रत्येक शैक्षणिक सत्र के अन्त में कार्यकारी सदस्यों मे बदलाव होना चाहिये।

5. इसे विद्यार्थी समुदाय के लिये अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये विद्यार्थियो मे से कुछ प्रतिनिधि इस संघ में लिये जाने चाहिये। वे नि सन्देह परिपक्व विद्यार्थियों के समूह में से या किसी सेक्शन के विद्यार्थियों में से चुने जाने चाहिये।

अक्सर यह देखा जाता है कि संस्थाओं में अभिभावक शिक्षक सघ होते है परन्तु उनके भिन्न होते हैं। वे केवल स्कूल के वार्षिक उत्सव के समय मिलते है जब बच्चो को ईनाम मिलता उस दिन उपस्थिति को छोड़कर, माता-पिता को और कुछ नही करना होता। यह वांछित नहीं

कुछ अच्छे स्कूल भी हैं जिन्होंने संघ बनाए हुए हैं। वे जो अभिभावक-शिक्षक संघ आवश्यक है, उससे भी कुछ अधिक कर रही हैं। दिल्ली के कुछ स्कूलो मे अभिभावक शिक्षक ग्रीष्मवकाश के लिये स्कूल बन्द होने से पहले अभिभावको को एक या दो दिन के लिये स्कूल जाता है और उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे अपने बच्चो को अवकाश के लिये मिले हुए गृहकार्य करने में कैसे सहायता कर सकते हैं। वास्तव में, उन्हे इस उद्देश्य के लिये शिक्षित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, संघ प्राय: सामान्य समस्याओ पर वाद-विवाद करने के लिये भी होती है। यह देखा गया है कि इस प्रकार के स्कूलों मे वे स्वस्थ परम्पराओ और बेहतर वातावरण को बनाए हुए है और बेहतर विद्यार्थियों को सामने ला रहे है।

27.2 : अभिभावक-शिक्षक संघ
(PARENT-TEACHER ASSOCIATION)

विद्यालय तथा घर को निकट लाने के लिये प्रत्येक विद्यालय मे शिक्षक-अभिभावक संघ स्थापित होने से विशेष सहायता-प्राप्त होती है। यह संघ अभिभावको को विद्यालय के महत्वपूर्ण निर्णयो एव क्रियाओं में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार अभिभावक विद्यालय मे जो कुछ होता है उसमें रुचि रखने लगते है तथा विद्यालय के उद्देश्यो से भी अवगत होकर उनकी प्राप्ति मे अपने दायित्व

को समझने लगते है। संघ की सम्मिलित सभाओं के द्वारा विद्यालय तथा समुदाय एक-दूसरे के निकट आ जाते है जिससे बालको की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में विशेष सहायता प्राप्त होती है। जब अभिभावक विद्यालय के कार्यों मे रुचि लेगे तो उनकी शैक्षिक उन्नति के लिये विभिन्न कार्यों मे सहायता के लिये तत्पर भी होगे।

संघ के उद्देश्य (Objective of Association)—संघ के उद्देश्य निम्नलिखित है—

1. बालको के हित को अभिप्रेरित करना और शैक्षिक स्तर को अधिकाधिक उन्नत बनाना।
2. अभिभावको तथा शिक्षको के बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करके पारस्परिक सद्भावना एवं समझदारी उत्पन्न करना, जिससे विद्यालय तथा समुदाय एक-दूसरे के निकट आ सकें।
3. बालको के हित को दृष्टि मे रखते हुये पारिवारिक जीवन के स्तर को ऊँचा उठाना।
4. अभिभावको तथा शिक्षको के मध्य पारस्परिक संबंध एवं साझेदारी उत्पन्न करना।
5. अभिभावको एव शिक्षको के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित करना।
6. विद्यालय के शैक्षणिक स्तर को उन्नत करने के लिए।
7. विद्यालय का उच्चतम मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास करना।
8. विद्यालय तथा घर को निकट संपर्क मे लाना जिससे शिक्षक तथा अभिभावक दोनों बालक के प्रशिक्षण मे कुशलतापूर्वक योगदान दे सकें।
9. बालक की सपूर्ण गतिविधियों से अवगत होना।
10. बालक की संपूर्ण समस्याओं का निदान करना।
11. विद्यालय तथा घर को निकट लाना।
12. विद्यालय की गतिविधियों में सहयोग प्रदान करना।
13. परिवार के वातावरण में सुधार लाना ताकि स्वस्थ परिस्थितियों का निर्माण हो सके।
14. अभिभावकों को विद्यालय के प्रति सजग करना।

27.3 : अभिभावक-शिक्षक संघ के कार्य एवं आवश्यकता (FUNCTION AND NEED OF PARENT-TEACHER ASSOCIATION)

27.3.1 अभिभावक–शिक्षक संघ के कार्य (Functions of Parent-Teacher Association)

संघ के कार्य निम्नलिखित है—

1. अभिभावकों को विद्यालय-कार्यक्रम से अवगत होने में तथा विद्यालय-अधिकारियों को घर की परिस्थितियों व बालको की आवश्यकता को समझने में सहायता देना। इसके लिये संघ अभिभावक व शिक्षक-दिवसों का आयोजन कर सकता है जिनके द्वारा उनमें एक-दूसरे के प्रति सद्भावना व विश्वास की स्थापना होती है।
2. विभिन्न बैठकों का आयोजन करना जिनमें अभिभावक तथा शिक्षक सामूहिक या वैयक्तिक रूप से विद्यालय तथा बालकों सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं, उदाहरणार्थ—बाल-अपराध अनुशासनहीनता, कक्षा से भागने की आदत, शिक्षा पर माता-पिता के व्यय को कम करना। नवीन शिक्षण-विधियों के प्रयोग के सम्बन्ध मे भी विचार-विमर्श के द्वारा उचित कार्य करने का निर्णय हो सकता है।
3. ऐसे कार्यक्रम को सचालित करना जिनसे विद्यालय तथा समाज के बीच सद्भावना तथा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो सके। कभी-कभी शिक्षकों, अभिभावकों तथा बालकों के लिये सामाजिक एव

सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जा सकता है। शिक्षक प्रशिक्षण एवं अभिभावक-शि
सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की योजनाओं के संचालन से इस विषय में विशेष सहायता मिलती है

उपर्युक्त उपायों को अपनाकर विद्यालय तथा घर को अधिकाधिक निकट लाया जा सक
यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्रभावशाली सहयोग पर्याप्त सीमा तक शिक्षकों पर ही निर्भर
कुछ अभिभावक अशिक्षित भी हैं और वे इस सहयोग के महत्व को समझने में असमर्थ हैं। शिक्षक
परम कर्तव्य है कि वे अभिभावकों को इस ओर जागरूक करें और उनका सहयोग प्राप्त
कार्यक्रम को शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अधिक सफल बनायें।

27.3.2 अभिभावक-शिक्षक संघ की आवश्यकता (Need of Parent-Teacher Association)

अभिभावक-शिक्षक संघ की आवश्यकता से विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान हुआ है
से सम्बन्धित समस्याओं तथा प्रशिक्षण में कैसे सहायता की जाती है। इस पर विचार-विमर्श
है। इससे शिक्षक तथा विद्यार्थियों के सम्बन्धों को सुधारने में सहायता मिलती है।

प्रत्येक विद्यालय के यह स्वयं के अंग होते हैं। अभिभावक-शिक्षक संघ की आवश्यकता
निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं—

1. अभिभावक-शिक्षक संघ विद्यालय के लिए गर्व की बात है क्योंकि यह अभिभावकों
से संबंध स्थापित करने में सहायता करता है।
2. विद्यार्थियों तथा विद्यालय के विकास में सहायक है।
3. अभिभावकों को शिक्षकों से तथा शिक्षकों को अभिभावकों से वार्तालाप करने
करता है।
4. प्रत्येक विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर निगरानी रखता है तथा भविष्य
अनुमानित रूपरेखा प्रदान करता है।
5. अभिभावकों के अतिरिक्त अभिभावकों से मिलने हेतु मंच प्रदान करता है जिससे
समस्याओं से अवगत होते हैं तथा उनका हल ज्ञात करते हैं।
6. विद्यालय तथा घर के बीच संचार प्रदान करता है।
7. विद्यालय के लिए खर्च या आर्थिक सहायता की भी सुविधा इसी संघ द्वारा ही
8. विद्यार्थियों के गृह जीवन तथा व्यवहार को समझने में सहायता तथा अवसर प्रदान

27.4 : अभिभावक–शिक्षक संघ के लाभ (ADVANTAGES OF PARENT-TEACHER ASSOCIATION)

अभिभावक-शिक्षक संघ के महत्व निम्नलिखित है—

1. माता-पिता तथा शिक्षकों के बीच एक महान अवसर प्रदान करता है जिससे कि दोनों
में विद्यार्थियों को लेकर एक स्वास्थ्य अवधारणा का विकास होता है।
2. यह अवसर उपलब्ध कराता है, दोनों तरफ संचार के।
3. यह एक श्रेष्ठ मंच है, जहाँ अभिभावक शिक्षक दोनों आपस में विद्यार्थियों से संबंधित
तथा समस्या को साझा करते हैं।
4. यह शिक्षक को सहायता प्रदान करता है। यह ज्ञात करने में कि विद्यार्थी की सकारात्मक तथा
नकारात्मकता सोच के कारण क्या है, अभिभावकों के अवलोकन द्वारा।
5. यह विद्यार्थियों के विकास में अति लाभदायक है।
6. इससे विद्यार्थी के शैक्षणिक तथा गैर शैक्षणिक रुचियों को बढ़ावा मिल जाता है।

7. अभिभावक-शिक्षक संघ द्वारा एक बार अभिभावकों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में मस्ती, शैक्षणिक कार्यक्रम इत्यादि द्वारा उत्साह आ जाता है।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. अभिभावक-शिक्षक संघ का विवेचन कीजिए।
2. अभिभावक-शिक्षक संघ के लाभों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. अभिभावक-शिक्षक संघ के कार्य बताइए।
2. अभिभावक-शिक्षक संघ के उद्देश्य बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. अभिभावक-शिक्षक संघ क्यों आवश्यक है ?

   (अ) बालको के लिये (ब) अध्यापकों के लिये

   (स) (अ) व (ब) दोनो (द) इनमें से कोई नहीं। **उत्तर**–(स)

2. अभिभावक-शिक्षक संघ के उद्देश्य हैं–

   (अ) सम्पूर्ण समस्याओं का निदान (ब) विद्यालय की गतिविधियों में सहयोग

   (स) घर को निकट लाना (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

3. अभिभावक-शिक्षक संघ की आवश्यकता है–

   (अ) आर्थिक सहायत में सुविधा

   (ब) गृहजीवन तथा व्यवहार को समझने में

   (स) विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर निगरानी

   (द) उपर्युक्त सभी **उत्तर**–(द)

□□

अध्याय

28

विद्यालय प्रशासन में विद्यार्थी की भूमिका

[ROLE OF STUDENTS IN SCHOOL ADMINISTRATION]

विद्यार्थी ही शिक्षा प्रणाली का केन्द्र-बिन्दु होते है। विद्यार्थी समुदाय शैक्षणिक प्रक्रिया को [illegible] एव मस्तिष्क होता है। विद्यार्थी शैक्षणिक प्रक्रिया मे कच्ची सामग्री की तरह होते है एव अध्यापक [illegible] कच्ची सामग्री को अच्छा व परिपक्व बनाने के लिये कार्य करते है। प्रत्येक सीखने वाले [illegible] साकार रूप होता है। उनके लिये उचित वातावरण की आवश्यकता होती है। अध्यापक [illegible] एव विकास करने के लिये सहायता प्रदान करते है। सब बातो से बढ़कर सस्था के [illegible] अच्छा इन्सान बनने की उम्मीद की जाती है। मुखिया एव उसके स्टाफ के श्रेष्ठ मानवी [illegible] स्वस्थ टीम बनानी चाहिये।

आरम्भ में विद्यार्थी कच्ची माल की तरह होते है। वे खिलते हुए फूलो की तरह [illegible] भोले-भाले होते है। वे मनमोहक प्राणी होते है। सभी सम्बन्धित व्यक्तियो की उचित देखभ [illegible] एव स्नेह की उन्हें आवश्यकता होती है। स्कूल जीवन में उनका पालन-पोषण किया जाता है [illegible] नेता, स्वामी, समुदाय, एव जनता है एव उन्ही मे से मुख्याध्यापक, अध्यापक आदि भी बनते [illegible] उन्हे आत्म-अनुशासित, आज्ञाकारी, समर्पित एव बलिदानी बनाने की आवश्यकता है।

सम्पूर्ण स्कूल प्रणाली का अन्तिम लक्ष्य धनात्मक एव मनोहारी वातावरण का निर्माण [illegible] जहाँ बच्चा अपनी उच्चतम सम्भावित सीमा तक वृद्धि कर सके। विद्यार्थी समूची शिक्षा प्रणाली [illegible] मुख्य बिन्दु होता है। समूची प्रणाली उसके लिये रची जाती है।

कुछ कार्यक्रम/अभ्यास ऐसे है जो स्कूल वातावरण को समूह बना सकते है। इनमे से कुछ [illegible] कार्यक्रम विद्यार्थियो द्वारा चलाए जाते है जबकि कुछ स्कूल द्वारा औपचारिक रूप से लागू किये [illegible] जाते है।

28.1 : एक अच्छे विद्यार्थी की विशेषताएँ/गुण (QUALITIES OR CHARACTERISTICS OF A GOOD STUDENT)

विद्यार्थी सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली की आधारशिला है। विद्यार्थी के [illegible] मे स्कूल कॉलेज विश्वविद्यालय अस्तित्व मे नही आ सकता

प्राचीन समय मे 'विद्यार्थी' उसे कहा जाता था जो 'कुछ सीखता था', परन्तु वर्तमान समय मे विद्यार्थी उसे कहा जाता है जो 'किसी स्कूल, कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय मे जाता है।' यह नवीन भाषा यह सुझाव नहीं देती कि व्यक्ति 'स्कूल जा रहा है या कुछ सीख भी रहा है' से अधिक कोई कार्य करता है। अध्यापक और शिक्षा शास्त्री अभी भी पहली परिभाषा को उचित मानते है। शिक्षा प्रणाली कुछ निश्चित तरीकों, जैसे—परीक्षाएँ, योग्यता मापन, ग्रेड आदि का प्रयोग करती है जो यह सुनिश्चित करता है कि जो विद्यार्थी स्कूल मे आये, वे कुछ पढ़ें और सीखें।

एक विद्यार्थी वह होता है जो अपने आप को बेहतर बनाने के लिये पढ़ना एवं सीखना चाहता है। एक अच्छे विद्यार्थी की विशेषताएँ निम्नलिखित है—

1. स्व-अनुशासन (Self-Discipline)—स्व-अनुशासन एक विद्यार्थी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। स्व-अनुशासन के बिना उसमे अन्य विशेषताएँ बहुत कम होगी। स्व-अनुशासन का अभिप्राय यह है कि विद्यार्थी स्वय के द्वारा कहे जाने वाले शब्दो एवं कार्यों के बारे में सोचने में समर्थ है और ऐसे निर्णय लेता है जो स्वय उसके लिये एव दूसरो के लिये सर्वश्रेष्ठ हो। स्व-अनुशासित विद्यार्थी समय के महत्व को जानता एवं समझता है एवं निपुणतापूर्वक इसका प्रयोग करता है, जो काम जिस समय पर किया जाना चाहिये, वह उसी समय पर उस कार्य को करता है।

2. दृष्टिकोण (Attitude)—किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कुछ सीखने की चेष्टा एवं कठोर परिश्रम करने की इच्छा अच्छे दृष्टिकोण को प्रकट करती है। यह विद्यार्थी की वह योग्यता है जिस कारण वह नई चीजो एवं विषय अधिगम के लिये तत्पर रहता है, चाहे वह रुचिदायक हो या न हो। विषय का कठिन होना भी उसके लिये यह विषय छोड़ने के लिये विवश नहीं करता, बल्कि उसे और अधिक प्रोत्साहित करता है।

3. शैक्षणिक योग्यताएँ (Academic Skills)—शैक्षणिक योग्यताएँ प्राप्त करना विद्यार्थी का प्रमुख कर्तव्य है। विस्तृत रूप से पढ़ना, प्रवाहपूर्ण ढंग से बोलना, प्रभावशाली ढंग से लिखना एवं स्पष्ट रूप से सवाद करने की योग्यता ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें विद्यार्थी को निपुण होना चाहिये। यदि विद्यार्थी मे ये गुण हैं तो वह कक्षा में श्रेष्ठ सिद्ध हो सकेगा।

4. दूसरों के प्रति सम्मान (Respect for Others)—एक अच्छा विद्यार्थी दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा वह दूसरों से स्वयं के लिये चाहता है। वह जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने तरीके से अनुपम है। वह समझता है कि प्रत्येक व्यक्ति में अपनी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ होती है। एक अच्छे विद्यार्थी मे दूसरों के प्रति सम्मान की भावना होती है।

5. पहलकदमी (Initiative)—एक अच्छा विद्यार्थी बिना विलम्भ के अपना कार्य आरम्भ कर देता है। वह इस बात की प्रतीक्षा नहीं करता कि उसे कोई कार्य दिया जायेगा तथा कब वह उसे आरम्भ करेगा। अच्छा विद्यार्थी अध्यापक की ओर से दिये गये प्रश्नों तथा अभ्यासों से अधिक प्रश्न व समस्या का हल करने का प्रयत्न करता है। वह न केवल अध्यापक की ओर से दिया गया कार्य करता है, बल्कि नई वस्तुओं को सीखने के लिये अवसरों की तलाश में रहता है। जब किसी अच्छे विद्यार्थी को कोई प्रोजेक्ट आदि दिया जाये तो वह इस अवसर तथा उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार से सम्भालता है। वह यह भी जानना नहीं चाहता कि उसे इसके लिये किसी भी प्रकार का अतिरिक्त लाभ, ग्रेड या अक प्राप्त होगे या नहीं।

6. तर्कशील दिमाग (Rational Mind)—शिक्षा से अभिप्राय केवल जानकारी की प्राप्ति से नहीं है, अपितु यह नई जानकारी को प्राप्त करने, उस जानकारी को प्रमाणिक ढंग से मूल्याकित करने एवं सही एव प्रभावशाली ढग से उसे प्रयोग में लाने की योग्यता को शामिल करता है। एक अच्छा विद्यार्थी

खुले दिमाग का स्वामी होता है। उसका दिमाग नये विचारो एव तथ्यो को ग्रहण करने के लिये तैय
रहता है, लेकिन वह नये विचारों एव तथ्यों को उसी रूप मे स्वीकार नही करता जिस रूप मे
प्रस्तुत किये जाते है। वह पक्षपात रहित होकर तर्कपूर्ण ढग से नये विचारो एव तथ्यो का परीक्षण
करता है पहले से प्राप्त जानकारी एव तथ्यो की तुलना मे वस्तुनिष्ठ तरीके से तुलना
यदि वे सही एव शुद्ध रूप से सन्तुष्ट करते है तो वह उन्हे स्वीकार करता है।

7. वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—शिक्षा विद्यार्थी को अपने अहकार को एव तथ्य छोड़ने
तथ्यो का मूल्याकन एव अर्थ वस्तुनिष्ठ तरीके से करने योग्य बनाती है। शैक्षणिक
केवल व्यक्तिगत विचारो का कोई महत्व नही होता। अत विद्यार्थी को उन
पहचानने का प्रयत्न करना चाहिये, जिन्हे वह पसन्द नही करता। एक अच्छा विद्यार्थी
समझता है कि सृष्टि उसके इर्द-गिर्द नहीं घूमती। वह जानता है कि अन्य सस्कृतियो
का अलग अर्थ निकाल सकते है। इस प्रकार वह अपने अहकार केन्द्रित दृष्टिकोण
है और संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण को विस्तृत कर लेता है।

8. विनम्रता (Humility)—चाहे कोई व्यक्ति कितना भी ज्ञान अर्जित कर ले,
अनुभव कर लेना चाहिये कि अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है और जो कुछ वह
गलत भी हो सकता है। बहुत-सी बातों को जानना तो अच्छा है, लेकिन अपने
जानना ज्ञान को उचित प्रकार से प्रयोग मे लाने के लिये अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति
के विषय मे गर्वपूर्ण एव स्वय पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करने वाला है तो
कर सकता है। शिक्षा विद्यार्थी को नम्रता प्रदान करती है।

9. संवेदनशीलता (Perceptiveness)—एक अच्छा विद्यार्थी अपनी कक्षा
की अपेक्षा अधिक सवेदनशील होता है। वह किसी लेखक या वक्ता द्वारा लिखे
शब्दो को शीघ्रता व स्पष्टता से समझ जाता है। वह किसी भी बात को उसकी
के योग्य होता है। वह अनेको जटिलताओं के पश्चात् भी समस्या के केन्द्र को
अच्छा विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु के बारे में जानने के लिये दूसरों पर निर्भर नही रहता
अनुभव के द्वारा ही सीखता है।

10. उत्तरदायित्व (Responsibility)—यह एक ऐसा महत्वपूर्ण गुण है जो प्रत्येक
मे होना चाहिये। एक अच्छे विद्यार्थी पर सदैव विश्वास किया जा सकता है एव वह अच्छा
चुनाव करता है। वह जो कार्य करता है, उनकी ओर ध्यान देता है। उसका चरित्र एव व्यवहार
उत्तरदायित्व को दर्शाता है।

28.2 : विद्यालय प्रशासन में विद्यार्थी की भूमिका (ROLE OF STUDENT IN SCHOOL ADMINISTRATION)

किसी भी शिक्षा प्रणाली मे विद्यार्थी सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली
उसके इर्द-गिर्द घूमती है। किसी भी स्कूल, कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय का अस्तित्व विद्यार्थी के
बिना नहीं हो सकता। विद्यार्थी ही हमारे देश का भविष्य है, राष्ट्र के निर्माता भी है। बहुत से कर्तव्य
एव उत्तरदायित्व, उनके द्वारा निभाये जाने की उम्मीद की जाती है। एक विद्यार्थी के कर्तव्य बहुमुखी
होते है। उन पर पूरी तरह से चर्चा करना सम्भव नहीं है। यहाँ पर विद्यार्थी की महत्वपूर्ण भूमिका अग
प्रकार है—

1. विद्यार्थी का सर्वप्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य सीखना है। वह सर्वप्रथम सीखने वाला विद्यार्थी है एव बाद मे कुछ और है। वह अपनी अन्य सभी क्रियाओं में देरी कर सकता है, लेकिन सीखने के लिये नहीं।

2. विद्यार्थी को कक्षा मे अनुशासन बनाये रखना चाहिये। कक्षा एवं स्कूल में अनुशासन बनाय रखना विद्यार्थी का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

3. अध्यापक द्वारा दिये गये गृहकार्य को विद्यार्थी को समय पर करके इसकी जाँच अध्यापक द्वारा करवा लेनी चाहिये।

4. विद्यार्थी को कक्षा में नियमित रहना चाहिये। उस कक्षा से अनुपस्थित नहीं रहना चाहिये।

5. विद्यार्थी को खेलकूद एवं अन्य पाठ्य-सहायक गतिविधियों में अवश्य भाग लेना चाहिये। यह उसके सर्वांगीण विकास के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं।

6. एक अच्छे विद्यार्थी का चरित्र अच्छा होना चाहिये। उनमें अच्छे नैतिक गुण; जैसे–ईमानदारी सत्यता, धैर्य, प्रेम एवं विनम्रता आदि होने चाहिये।

7. विद्यार्थी को समय का पाबंद होना चाहिये। उसे स्कूल, कक्षा अथवा खेल के मैदान में सही समय पर आना चाहिये तथा कक्षा-कक्ष में एवं खेल के मैदान में सीखने के लिये उचित समय देना चाहिये।

8. विद्यार्थी को कठिन-परिश्रमी एवं उत्साही होना चाहिये। यदि वह उत्साहित होकर कठोर परिश्रम करेगा तो वह अधिक अच्छे तरीके से सीख पायेगा।

9. विद्यार्थी को अपने अध्यापकों का सम्मान करना चाहिये एवं उनके द्वारा दिया जाने वाला गृह-कार्य नियमित रूप से करना चाहिये।

10. विद्यार्थी को स्कूल की सम्पत्ति का सम्मान करना चाहिये एवं उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचानी चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. अच्छे विद्यार्थी के गुणों का विवेचन कीजिए।
2. विद्यालय प्रशासन में विद्यार्थी की भूमिका बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. विद्यार्थी के किन्हीं दो गुणों को बताओं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. विद्यार्थी के गुण होते हैं–

(अ) स्व–अनुशासन (ब) पहलकदमी
(स) तर्कशील होना (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर–(द)

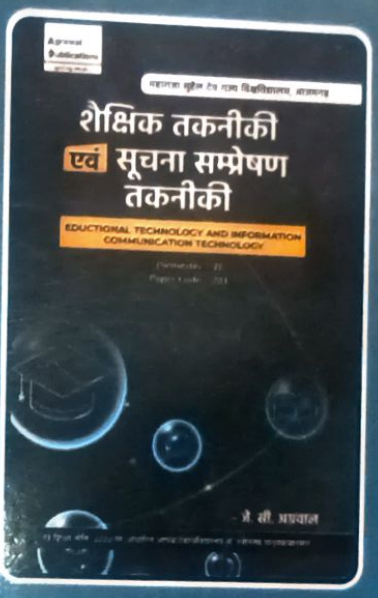
2. स्कूल प्रणाली का अन्तिम लक्ष्य है–

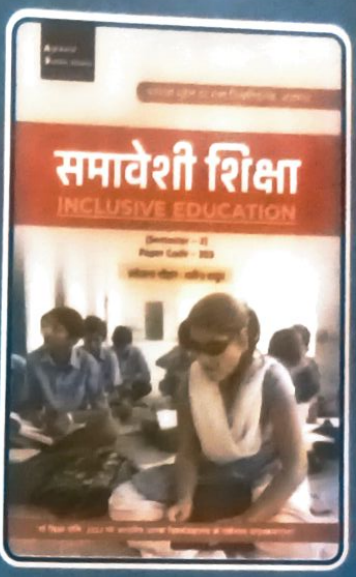
(अ) धनात्मक एवं मनोहारी वातावरण (ब) रुचिकर वातावरण
(स) अभ्यासकारी वातावरण (द) उपर्युक्त सभी

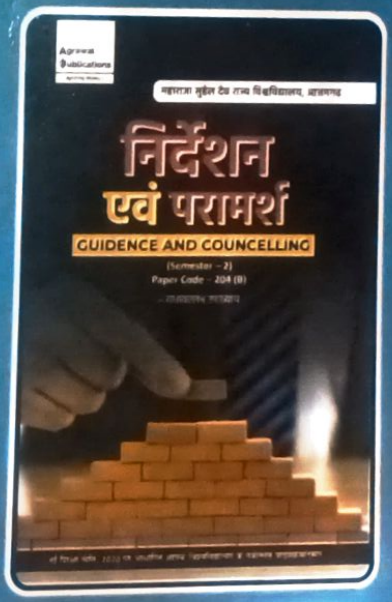
उत्तर–(द)

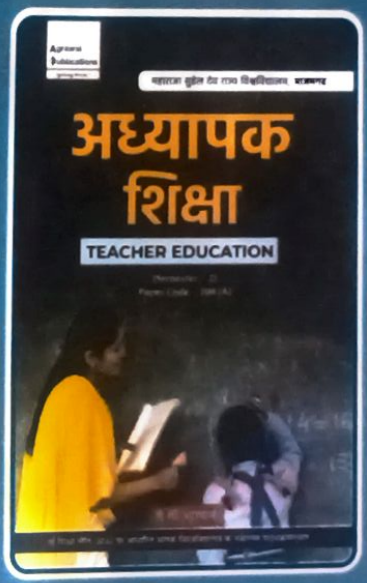
NOTE

महाराजा सुहेल देव राज्य विश्वविद्यालय, आजमगढ़ की अन्य उपयोगी पुस्तकें









विद्यालय प्रबन्धन एवं नेतृत्व

- एस. पी. सुखिया

ISBN - 978-93-5703-184-4

9 789357 031844

₹ 280

rawal
blications
iting Minds !

218
(SEM-2)